हिंदी काव्य-धारा

[हमारे मध्यकालीन कवियोंने अपना नाता सिर्फ संस्कृतके कवियोंसे जोड़े रक्खा जिससे हिंदी साहित्यके ऐतिहासिक विकासकी यह महत्त्वपूर्ण कड़ी काव्य-परंपरामेंसे टूटकर अलग जा पड़ी . . . . बीचकी पाँच सदियोंके अपभ्रंश-काव्योंका थोड़ा-सा भी अनुशीलन हमें लाभ ही पहुँचायेगा . . . . यह न केवल हिंदीकी ही, बल्कि बंगला-गुजराती-मराठी-सिंधी-उड़िया-पंजाबी-राजस्थानी-मगही-मैथिली-भोजपुरी आदि भाषाओंकी सम्मिलित निधि है, सिद्ध-सामंत-युगीन जन-साहित्यकी अवहेलना हमारे लिए परम हानिकर होगी ।]

राहुल सांकृत्यायन

किताब महल

इलाहाबाद

अवतरणिका

इस रागहम कवियोंकी अधिकसे अधिक कविताओंके देनेका निश्चय किया गया; ऐसी अवस्थामें एक-एक कविकी अलग-अलग आलोचना सभव नही। इसीलिए हमने एक-एक काव्य-युगके समझनेके लिये उसकी पृष्ठ-भूमि दे देने पर ही सन्तोष किया है।

सबसे पहले सवाल आता है इस युग--सिद्ध-सामन्त-युग---के कवियोकी भाषाके बारेमे।

१. कवियोंकी भाषा

हमारे इस युग (७६०-१३०० ई०)की भाषा और आजकी भाषामे काफी अन्तर है, यह हम मानते है; तो भी हम बतलायेंगे, कि मूलत वह भाषा और आजकी भाषा एक है। इस युगमे भी सरहपा (७६० ई०) और राजशेखर-सूरि (१३०० ई०)के बीचकी पॉच सदियोमे भाषा अचल नही बनी रही। वस्तुत दुनियामे कोई चीज अचल रह ही नही सकती। वहाँ यदि कोई अचल है, तो यही परिवर्त्तनका नियम। पीढीके बाद पीढी आती गई और भाषा भी उसके साथ बदलती गई। यदि हम सत्तर बरसकी दादीकी भाषाको ही देखे, तो उससे पोतीकी भाषामे परिवर्त्तन साफ दीख पडेगा। बोल-चालकी भाषाको तो छोड़िये, लेखबद्ध भाषा---जिसे छप जानेसे हम बाज वक्त अचल समझनेकी गलती करते है---म भी परिवर्त्तन दिखाई पडता है; इसे हम भारतेन्दु और राजा लक्ष्मणसिहकी भाषासे १९४४ की भाषाकी तुलना करके आसानीसे देख सकते हैं। यदि आधी शताब्दीमे इतना अन्तर हो सकता है, तो सरहपा और राजशेखरके बीचकी पॉच शताब्दियोंने भाषामे काफी अन्तर डाला है, यह आश्चर्यकी बात नही है।

पॉच शताब्दियोंमे कितना अन्तर हुआ, इसे हम आसानीसे समझ सकते; यदि कवियोके हाथके लिखे या उनके समकालीन ग्रन्थ हमारे पास होते। मुश्किल यह है, कि हमारे पास जो हस्तलिखित प्रतियॉ पहुँची है, वह कई-कई शताब्दियो बाद लिखी गई थी। यह भाषा सस्कृतकी तरह व्याकरण द्वारा दृढ़बद्ध कोई मृत-भाषा नही थी। इन हस्तलिखित प्रतियोंके लिखनेवाले काव्योके समझने

और रसास्वादनके लिये लिखते-लिखवाते थे, और जब किसी शब्दके पुराने रूपको कुछ अपरिचित-सा हुआ देखते, तो उसे नवीन रूपमें लिख डालते। इस तरह हस्तलिखित प्रतियोंमें कवि-कालीन भाषासे परिवर्त्तन हो गया। फिर वे प्रतियाँ यदि किसी "नीम-हकीम खतरा-जान" सम्पादकके हाथमें पड़ गईं, तो क्या गति बनी, इसे मुनि जिनविजय जीके शब्दोंमें कहें तो—"जो कोई एवी जूनी कृति परिमाणमा वधारे लोक-प्रिय बनी होय, तेवी भाषा रचनामा जुदा जुदा जमानाना अनेक जातना रूपो अने पाठ-भेदो उमेराई ते वधारे अनवस्थित रूप धारण करे छे। अने साथे कोई भाषा-तत्वानभिज्ञ संशोधक साक्षरने हाथे जो तेना जीर्ण-देहनू कायाकल्प थई जाय, तो तद्धन नूतन रूप प्राप्त करी ले वे।"

"आवी जूनी कृतिओनू मूल-स्वरूप मेलववा माटे अधिक संख्यामा अने जेम वने तेम वधारे जूनी लखेली प्रतिओ मेलववी जोइये, अने तेगना सूक्ष्म अवलोकन अने पृथक्करणना आधारे पाठ-विचारणा थवी जोइये। आ पद्धतिए कार्य करवाथीज आवी प्राचीन कृतिओनो आदर्शभूत पाठोद्धार थई शके, अने कर्त्तानी शुद्ध-भाषानो परिचय मली सके।"

यह तो हस्त-लिखित प्रतियोंके सम्पादनमें कितनी सावधानीकी जरूरत है, यह बात हुई।

इस संग्रहमें इन पुराने कवियोंकी कविताओंके जो नमूने दिये गये हैं, उनको एक बार देखते ही पाठक समझनेमें असमर्थ हो कह पड़ेंगे, कि यह तो हिन्दी-भाषा है ही नहीं। इसीलिए यहाँ यह बतलानेकी आवश्यकता है, कि वह उससे भी कहीं अधिक हिन्दी-भाषा है, जितनी कि आजकी मालवी, मारवाड़ी, मल्ली (भोजपुरी) और मैथिली। आपको जो दिक्कत हो रही है, वह दादी (पाली) की इस प्रतिज्ञा हीके कारण, कि उनके पास कोई शुद्ध संस्कृत—तत्सम—शब्द फटक नहीं सकता।

दादीकी इस प्रतिज्ञाको चाहे बुढभस कह लीजिए, उनके यहाँ गजको गय बोला जायगा; लेकिन गजेन्द्रकी जगह गयंद तो अब भी आप सुनते हैं, मृगांक (चंद्र)के स्थान पर मयंक अब भी प्रयुक्त होता है। इस भाषाके सम-

झनेमे जो दिक्कत होती है, वह इसी सस्कृत-रूपके पूरे बायकाट और एकमात्र तद्भव—अपभ्रंश—रूपके प्रचार हीके कारण।

आप जैसे ही तद्भव "मयक" को तत्सम (मृगांक) रूप देनेकी कुजी पा जायँगे, वैसे ही यह भाषा आपके लिए उतनी ही आसान हो जायेगी जितनी सूर और तुलसीकी। आपके लिए यह काम हमने आमने-सामनेके पृष्ठोपर तद्भव (मूल)-भाषा और तत्सम-भाषा (छाया) देकर कर दिया है। आप अपने किसी मित्रको सामनेका पृष्ठ पढनेके लिए कह कर यदि मूलभाषाकी पक्तियोंको देखते जायँ तो खुद समझने लग जायेगे कि यह भाषा सस्कृत-प्राकृत नही, हिन्दी है।

आपने सुन रक्खा होगा, कि इस भाषाको अपभ्रंश कहते है, शायद इससे आप समझने लगे होगे, कि तब तो यह हिन्दीसे जरूर अलग भाषा होगी। लेकिन नाम पर न जाइये, इसका दूसरा नाम "देशी" भाषा भी है। अपभ्रंश इसे इसलिए कहते है, कि इसमे सस्कृत शब्दोके रूप भ्रष्ट नही, अपभ्रष्ट—बहुत ही भ्रष्ट—है, इसलिए सस्कृत-पडितोंको ये जाति-भ्रष्ट शब्द बुरे लगते होगे। लेकिन शब्दोका रूप बदलते-बदलते नया रूप लेना—अपभ्रष्ट होना—दूषण नही भूषण है, इससे शब्दोंके उच्चारणमे ही नही अर्थमे भी अधिक कोमलता, अधिक मार्मिकता आती है। "माता" सस्कृत शब्द है, उसका "मातु", "माई", और "माबो" तक पहुँच जाना अधिक मधुर बननेके लिए था। खेद है यहाँ भी कितने ही "नीम-हकीमो" ने शुद्ध सस्कृत "माता" को ही नही लिया, बल्कि उसमे "जी" लगाकर "माताजी" बना उसके ऐतिहासिक माधुर्य्यको ही नष्ट कर डाला। अस्तु, यह निश्चित है कि अपभ्रंश होना दूषण नही भूषण था।

कवियोंकी भाषा पर विचार करते हुए हम तत्कालीन साधारण बोलचाल-की भाषापर चले गए, लेकिन हमे फिर सिर्फ साहित्यिक भाषापर विचार करना है। पाँच सदियोके जिन कवियोकी कृतियोका हमने यहाँ सग्रह किया है, वह दो चार जिलेके बराबर किसी छोटेसे प्रदेशके रहनेवाले नही थे। जहाँ सरहपा और शबरपा बिहार-बगालके निवासी थे, वहा अब्दुर्रहमानका जन्म मुल्तान-मे हुआ था। स्वयभू और कनकामर शायद अवधी और बुन्देली, क्षेत्र—युक्त

प्रान्त---के थे, तो हेमचंद्र और सोमप्रभ गुजरातके। और रसिक तथा आश्रयदाता होनेके कारण मान्यखेट (मालखेड) (निजाम हैदराबाद)का भी इस साहित्यके सृजनमे हाथ रहा है।

इस प्रकार हिमालयसे गोदावरी और सिंधसे ब्रह्मपुत्र तकने इस साहित्य-के निर्माणमे हाथ बँटाया है। यह भाषा संस्कृतकी तरह ही मृतभाषा नही थी, यह हम कह आये है। साहित्यकी भाषा भी कोई मूल बोलचालवाली भाषा होनी चाहिए, और वह भाषा जरूर एक परिमित क्षेत्रकी मातृभाषा हो सकती है। स्वयभूकी भाषाकी क्रियाओ और कितने ही कुंजीके शब्दोको देखनेसे वह अवधीके सबसे नजदीक मालूम होती है। यद्यपि ऐसा कहनेसे बहुत दिनोसे चली आई इस धारणाके हम खिलाफ जा रहे है, कि अपभ्रंश साहित्य सौरसेनी और महाराष्ट्री अपभ्रंशो हीमे लिखा गया। लेकिन, जो सामग्री हमारे सामने मौजूद है, वह हमे यही कहनेके लिए मजबूर करती है। हा, इसका यह मतलब नही कि और भाषाओके विशेष शब्द उसमे नही है। 'चगा' ("अच्छा") शब्द का बहुत अधिक प्रचार अब पंजाबी और मराठीमें ही रह गया है, लेकिन हमारे सामने जो भाषा है, उसमे इसका खूब प्रयोग हुआ है। "थाक" (रहना) जिस अर्थ मे यहां प्रयुक्त हुआ है, वह अब बगलामें ही मिलता है। 'मेल्ही' (छोडना) अब राजपूतानामे ही बोली जाती है। 'ढूक' (देखना) अब सिर्फ बुन्देली और व्रजभाषामे देखनेको मिलता है, और 'एवडा' (इतना) 'तेवडा' गढवाली और मराठीमे। अछे (है) 'छे' के रूपमे बंगला, मैथिली, गोरखा, मेवाडी और गुजरातीमें सुननेको मिलता है। इसलिए हम स्वयंभू जैसे कवियोंकी भाषाको जब पुरानी अवधी या कोसली कहते है, तो उसका यह मतलब नही, कि दूसरी प्रान्तीय भाषाओसे उसका कोई सबध नही था। वस्तुत: उस वक्त उत्तर-भारत की सारी भाषाये एक दूसरेके बहुत नजदीक थी। प्रान्तीय भाषाये उस वक्त काफी थीं। "प्राकृत-चंद्रिका"मे उनकी एक मोटीसी गणनाकी गई है, जो इस प्रकार है—

ब्राचडी	कैकेयी
लाटी	गौडी

वैदर्भी	औड्री (उडिया)
नागरी	सैहली
वर्वरी	गुर्जरी
आवन्ती (मालवी)	आभीरी
पाचाली	मध्यप्रदेशी, आदि
टक्की	

मार्कण्डेयने "प्राकृत सर्वस्व"में जिन अपभ्रशोको गिनाया है, उनमेसे कुछ है—

पाचाली (कन्नौज-बरेली)	सैहली
वैदर्भी (वरारी)	आभीरी
लाटी (दक्षिण-गुजराती)	मध्यदेशीया
औड्री	गुर्जरी
कैकेयी	पाश्चात्या (पछैयाँ)
गौडी	

"कुवलय-माला"ने भी कितने ही नाम दिये हैं—

गोल्ली (गौडी)	लाटी
मध्यदेशीया	मालवी
मागधी	कोसली
अन्तर्वेदी	महाराष्ट्री
कीरी	
टक्की	
सिंधी	
मरुदेशी	
गुर्जरी	

इस प्रकार हिमालय-गोदावरी और सिन्धु-ब्रह्मपुत्रके बीच यद्यपि बहुतसी बोल-चालकी भाषाये थी, मगर उनके साथ सबकी एक सम्मिलित भाषा भी थी ।

बोलचालकी भाषाओंमे लिखित साहित्य था या नही, इसके बारेमें अभी

कुछ कहा नही जा सकता। सम्भव है, उन कविताओंको जिस रूपमें हम पेश कर रहे हैं, उसमें बहुत कुछ शताब्दियोंके लेखकों, पाठकोंका हाथ हो।

मूल-रूप मे कितने ही कवियो—खास कर सिद्धो—ने अपनी कविताए अपनी ही मातृभाषामें की होंगी।

ऊपरके कथनसे मालूम होता है, कि हमारे यहां सास्कृतिक और साहित्यिक, राजनीतिक और व्यापारिक प्रयोजनके लिए एक भाषाकी आवश्यकताको बहुत पहिलेसे माना जाता रहा है। इसीलिए आज हिन्दीके राष्ट्रभाषाका सवाल कोई नई चीज नही है।

फिर भी सवाल दुहराया जायेगा, कि हमारे इन कवियोकी भाषा हिन्दी नही, बल्कि संस्कृत-प्राकृतकी तरह कोई बिल्कुल ही अलग भाषा है। "अपभ्रंश" नाम सुनते-सुनते इस गलत धारणाके शिकार हम जरूर हो चुके है; मगर बात ऐसी नही है। संस्कृत (छन्दस्), पाली और प्राकृत जितनी एक दूसरेके नजदीक है, अपभ्रंश उतनी नही है। पुरानी संस्कृत या छन्दस् (वैदिक)-भाषा १५०० ई० पू० से ६०० ई० पू० तक थोडा बदलते हुए बोली जानेवाली जीवित भाषा थी।

५०० ई० पू०में बुद्धके समय उसने मूल-पालीका रूप धारण कर लिया और आगे हल्केसे परिवर्तनके साथ वह पाच शताब्दियो तक जारी रही। फिर ईसवी सनके साथ प्राकृतका आरभ हुआ और वह छठी सदी तक चलती रही। इन बीस सदियोमे छन्दस्, पाली, प्राकृतके जो तीन छोटे-मोटे भाषा-स्वरूप हमें मिलते है, उनमें परस्पर भेद होते हुए भी बहुत कुछ समानता है। असमानता यही है कि संस्कृतके क्लिष्ट उच्चारणको आसान (बालभाषा) बनाकर पालीने तद्भव शब्दोकी रचना शुरू की। संस्कृतके भारी-भरकम व्याकरण कलेवरको कम करके उसने द्विवचन और कुछ प्रयोगोंके झंझटसे बोलनेवालोंको बचाया—बोलने-वालोने खुद अपनेको बचाया, यही कहना अधिक उचित होगा। कितना बचाया यह इसीसे मालूम होगा कि जहां शुद्ध संस्कृत बोलनेके लिए छ हजारसे ऊपर सूत्र-वार्त्तिकोंको याद रखनेकी जरूरत है, वहां पालीमें वह काम आठ-नौ सौ सूत्रोंसे ही हो जाता है।

प्राकृतने शायद व्याकरणके नियमोकी सख्याको और कम नही किया, लेकिन तद्भव या उच्चारणके सरलीकरणके कामको उसने और जोर-शोरसे किया। उस युगमें स्वर ही नही व्यजनोकी भी खैर नही थी, यदि वह शब्दके आरंभमे न रहे। तद्भव करनेमें पाली और प्राकृत एक-सी रहीं।

लेकिन, इतना होते हुए भी सुबन्त, तिङन्त या शब्द-रूप और धातु-रूपकी शैलीमें दोनों हीने सस्कृतका अनुसरण नही छोडा, इसीलिए पाली और प्राकृत-को सस्कृत रूप देनेमे बहुत थोडे श्रमकी जरूरत होती है——तद्भवको तत्सम कर दीजिए, आवश्यकता होनेपर द्विवचन और आत्मनेपद कर दीजिए, बस उसी पुराने ढाँचेमे ही सस्कृत रूप तैयार हो गया।

और अपभ्रश? यहाँ आकर भाषामे असाधारण परिवर्तन हो गया। उसका ढाँचा ही बिल्कुल बदल गया, उसने नये सुबन्तो, तिङन्तोकी सृष्टि की, और ऐसी सृष्टि की है, जिससे वह हिन्दीसे अभिन्न हो गई है, और सस्कृत-पाली-प्राकृतसे अत्यन्त भिन्न।

'कहेउ', 'गयउ', 'गउ', 'कहिज्जइ' ये शब्द बतलाते है कि अपभ्रशका स्थान हिन्दीके पास होना चाहिए या सस्कृत-पाली-प्राकृतके पास। वस्तुत सस्कृतसे पाली और प्राकृत तक भाषा-विकास क्रमिक या अविच्छिन्न-प्रवाह-युक्त हुआ, मगर आगे वह क्रमिक विकास नही, बल्कि विच्छिन्न-प्रवाह-युक्त विकास——जाति-परिवर्तन——हो गया। आज अपभ्रशकी यह अवस्था है कि सस्कृत-प्राकृत-पाली जाननेवाले मद्रास, सिंहल, और कर्नाटकके पडित इस जाति-परिवर्तनके कारण अपभ्रशसे बात तक नही करना चाहते। यह ठीक भी है, क्योंकि उन्हे इसके लिए हिन्दीकी विभक्तियोको सीखना पडेगा। वहाँ सस्कृत-ज्ञानके बल पर काम नही चलेगा। लेकिन दूसरी तरफ हिन्दी-भाषियोका अपभ्रशके प्रति क्या कर्त्तव्य है, इसे आप अपने दिलसे पूछ सकते है। "जिसके लिये किया वही कहे चोर" वाली कहावत है, बेचारी अपभ्रश हमारे लिए मारी गई।

मगर तर्क कर देनेसे काम नही चलेगा, आखिर पढने-समझनेमे आपकी दिक्कतका ख्याल करना ही होगा। लेकिन दिक्कत है सिर्फ तद्भव और तत्समके झगडे की। सस्कृत (छान्दस्)की औरस पुत्री पालीने तत्सम (शुद्ध सस्कृत)

शब्दोंका बायकाट शुरू किया, प्राकृतने दादीकी जगह् माका साथ दिया। बेचारी प्राचीनतम हिन्दी (अपभ्रंश)ने दादी और माँके पल्लेको पकडे रक्खा, लेकिन आगे चलकर उसके बोलनेवालोंने वास्तविक भाषा (क्रिया, विभक्ति)को तो रक्खा, मगर परदादी——संस्कृत——के शब्दोंके शुद्ध रूप (तत्सम)को खूब तत्परतासे उधार लेना शुरू किया। लोग जितनी मात्रामें तत्सम शब्दोसे अधिक और अधिक परिचित होते गये, उसी मात्रामें तद्भव रूपोंको भूलते गये, जिसका परिणाम है, यह आजकी दिक्कत।

तत्सम या शुद्ध संस्कृत-शब्दोंका प्रयोग क्यों फिरसे होने लगा? अवतरणिका-का कलेवर इसके विवरणके लिए पर्याप्त तो नही हो सकता। अस्तु, हम देखते है, कि चौदहवी सदीसे तत्सम शब्दोका प्रयोग बढ़ने लगता है। ब्रजभाषा तब भी इस बारेमें कुछ सयमसे काम लेती है, लेकिन तुलसी-बाबाको तो हम अपनी अवधीमें लुटिया ही डुबानेके लिये तैयार दीखते है। शायद, बाबाको अपने "मानस"पर विश्वनाथकी मुहर लगवानी थी। अच्छा, तत्समका प्रचार बढ़ा क्यो? तेरहवी सदीके आरम्भमे इस्लाम-धर्मी तुर्कोंका झंडा उत्तरी भारत-में गड गया था। कहा जा सकता है, कि उनके एक सदीके प्रभुत्वकी प्रतिक्रिया भाषा-क्षेत्रमें तत्समके रूपमें आई। लेकिन यही पर्याप्त कारण नही मालूम होता। लंकामें तो तुर्कों या इस्लामकी ध्वजा कभी नही गडी, लेकिन वहाँ भी तत्समकी यह प्रवृत्ति गद्य——भाषामें क्यों हुई? सिंहली-पद्यमें १६३२ तक तत्समका प्रवेश निषिद्ध था। एक और बात भी——इस्लाम शासनकी प्रतिक्रिया-में ही यदि पंडितोंने संस्कृत शब्द-रूपोंको जोडना शुरू किया, तो उसका प्रभाव साहित्य और पठित जनता तक ही सीमित होना चाहिए था, लेकिन तत्सम-शब्दो-का प्रचार निरक्षर साधारण जनतामें बहुत दूर तक कैसे घुसा? गावका अपठित किसान भी अपने लडकेका नाम 'माहव' नही रखता, बल्कि तत्सम-रूप 'माधव'को ही स्वीकार करता है। 'कृष्ण' आदि नामोंको भी वह तद्भवके 'धरम', 'करम' नही संस्कृतके नजदीकसे उच्चारण करना चाहता है; 'धर्म', 'कर्म'की जगह कहता है। इसलिए तत्समकी प्रवृत्ति चन्द शिक्षित दिमागोंकी उपज-मात्र नही कही जा सकती। तत्सम या परदादीकी पुन. प्राण-प्रतिष्ठा——एक परिमित क्षेत्र

मे——के बहुतसे कारण हे, जिनमे एक कारण यह भी है——समाजके विकासके साथ-साथ उसके लिए शब्दोकी आवश्यकता भी बढती है। नये शब्द पुरानी धातुओंसे गढे जा सकते हैं, या विदेशसे उधार लिये जा सकते है। साथ ही कभी-कभी इतिहास-प्रवाहमे छूट गये शब्दोंको भी नया अर्थ दिया जा सकता है। ये छूटे शब्द तद्भव-रूपमे भी हो सकते है, और तत्सम-रूपमे भी। जान पडता है, जिस वक्त शब्दोकी माँग बहुत बढ गई थी, उस वक्त कुछ तत्सम (सस्कृत)-शब्दोको भी चलाया जाने लगा। नये अर्थोमे नये शब्दोंका प्रयोग करनेके लिए साधारण लोग भी मजबूर थे और वह जैसे-तैसे सस्कृतके क्लिष्ट उच्चारणपर अधिकार प्राप्त करनेकी कोशिश करने लगे। जब इस तरह अनिवार्य कारणोसे लोग कितने ही तत्सम शब्दोको अपना चुके और उन्होंने उसके उच्चारण पर भी कुछ अधिकार प्राप्त किया, तो फिर पण्डितोकी बन आई और उन्होंने सस्कृत-तत्सम-शब्दोंको खूब ठूँसना शुरू किया। हमने कहा था कि अपभ्रश और आजकी हिन्दी (खडी, अवधी——व्रज लेते)मे अन्तर इतना ही है, कि एकमे शुद्ध सस्कृत——तत्सम——शब्दोंका प्रयोग बिल्कुल वर्जित है, जब कि आजकी साहित्यिक भाषामे मुश्किलसे किसी तद्भव-शब्दका प्रयोग होता है। अपभ्रशमे 'होई', 'कहेउ', 'गयउ', 'गउ', 'कहिज्जइ', आदि तुलसी-रामायण-वाली भाषाके क्रियापदोंका प्रयोग होनेपर भी जब तद्भव-शब्दोके कारण लोगोंको उसका समझना मुश्किल हो गया, तो स्वयभू आदि महान् कवियोंकी कृतियोका पठन-पाठन छूटने लगा, और धीरे-धीरे वह बिल्कुल विस्मृत हो गयी। संस्कृत-पाली-प्राकृतसे अलग होने तथा हमारी अपनी भाषा होनेपर भी हमने एक तरह इन कवियोको मार डालना चाहा। शायद, पहले-पहल इन कवियोंका जैन और बौद्ध होना भी इस उपेक्षाका कारण रहा हो, किन्तु आज शेक्सपियर और उमर खैय्यामकी दिल खोलकर दाद देनेवाले हम लोगोसे तो ऐसी आशा नही की जा सकती।

यहाँ एक बातको हम और साफ कर देना चाहते है। हम जब इन पुराने कवियोकी भाषाको हिन्दी कहते है, तो इसपर मराठी, उडिया, बँगला, आसामी, गोरखा, पजाबी, गुजराती-भाषा-भाषियोको आपत्ति हो सकती है। लेकिन

हमारा यह अभिप्राय हरगिज नही है, कि यह पुरानी भाषा मराठी आदिकी अपनी साहित्यिक भाषा नही है। उन्हे भी उसे अपना कहनेका उतना ही अधिकार है, जितना हिन्दी-भाषा-भाषियोंको। वस्तुत. ये सारी आधुनिक भाषाये बारहवी-तेरहवी शताब्दीमे अपभ्रंशसे अलग होती दीख पडती है। जिस समय (आठवी सदीमे) अपभ्रशका साहित्य पहले-पहल तैयार होने लगा था, उस वक्त बँगला आदि उससे अलग अस्तित्व नही रखती थी। उनके आजके क्षेत्रसे शायद मराठी और उडियाकी भूमिमे आखिरी लडाई खतम हो चुकी थी, और यह दोनों भाषाये अपने यहा पहलेसे चली आई किसी द्राविडी भाषाकी चिता शान्त करनेमे लगी थी। गुजरातने तो हमे कई कवि दिये है, उनकी कविताओंका आस्वादन आप इस सग्रहमे करेगे। वस्तुत., यह सिद्ध-सामत-युगीन कवियोंकी उपरोक्त सारी भाषाओकी सम्मिलित निधि है।

सम्मिलित निधि है, अर्थात् बारहवी-तेरहवी शताब्दी तक द्राविड भाषा-भाषी आन्ध्र, तमिल, केरल और कर्णाटकको छोडकर भारतके सभी प्रान्तोंकी एक सम्मिलित भाषा भी थी। यहाँ कोई-कोई अखण्ड हिन्दी-वादी या एक भाषा-वादी पाठक कह उठेगे—तब तो अब भी क्यो न अ-द्राविडीय प्रान्तोकी एक भाषा कर दी जाये। लेकिन, यह करना वैसा ही होगा, जैसे वयस्क स्वतन्त्र पोते-पोतियो-को फिर दादीके गर्भमे पहुँचानेकी कोशिश करना। गुजरात यद्यपि तेरहवी शताब्दी तक आजके हिन्दी-क्षेत्रका अभिन्न अग रहा है, आज भी होली दिवाली, नाच-गाने और दूसरी सैकडो बातोमे गुजरात हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोसे एकता रखता है, लेकिन आज उसके साहित्य और कितनी ही दूसरी सास्कृतिक बातोने गुजरातको एक स्वतन्त्र राष्ट्रका रूप दिया है, फिर हम क्या उससे वैसी अखण्डता-की माँग कर सकते है।

अपभ्रशके कवियोको विस्मरण करना हमारे लिये हानिकी वस्तु है। यही कवि हिन्दी-काव्य-धाराके प्रथम स्रष्टा थे। वे अश्वघोष, भास, कालिदास और बाणकी सिर्फ जूठी पत्तले नही चाटते रहे, बल्कि उन्होंने एक योग्य पुत्र-की तरह हमारे काव्य-क्षेत्रमे नया सृजन किया है; नये चमत्कार, नये भाव पैदा किये, यह स्वयभू आदिकी कविताओमे अच्छी तरहसे मालूम हो जायेगा।

नये-नये छन्दोकी सृष्टि करना तो इनका अद्भुत कृतित्व है। दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय आदि कई सौ ऐसे नये-नये छन्दोकी उन्होने सृष्टि की, जिन्हे हिन्दी कवियोने बराबर अपनाया है, यद्यपि सबको नही। हमारे विद्यापति, कबीर, सूर, जायसी और तुलसीके ये ही उज्जीवक और प्रथम प्रेरक रहे है। उन्हे छोड देनेसे बीचके कालमे हमारी बहुत हानि हुई और आज भी उसकी सभावना है।

हमारे मध्यकालीन कवियोने अपभ्रशके कवियोंको भुला दिया और वह प्रेरणा लेने लगे सिर्फ सस्कृतके कवियोसे। स्वयभू आदि कवि अपनी पॉच शताब्दियोमे सिर्फ घास नही छीलते रहे, उन्होने काव्य-निधिको और समृद्ध, भाषाको और परिपुष्ट करनेका जो महान् काम किया है, हमारे साहित्यको उनकी जो ऐतिहासिक देन है, उसे भुला कर, कडीको छोड़कर सीधे सस्कृतके कवियोसे सम्बन्ध स्थापित करना हमारे साहित्य और हिन्दी-भाषा दोनोके लिए हानिकर सिद्ध हुआ है। हम सस्कृत कवियोसे सम्बन्ध जोडनेके विरोधी नही है, लेकिन हमे इस बीचकी कडी——जो हमारी अपनी ही कडी है——को लेते सस्कृतके प्राचीन कवियोके साथ सम्बन्ध जोडना होगा; तभी हम ऐतिहासिक विकाससे पूरा लाभ उठा सकेगे।

२. आर्थिक और सामाजिक अवस्था

१—सम्पत्ति और उसके भोक्ता

सिद्ध-सामन्त-युगकी कविताओंकी सृष्टि आकाशमे नही हुई। वे हमारे देशकी ठोस धरतीकी उपज है। कवियोने जो खास-खास शैली-भावको लेकर कविताये की, वह देशकी तत्कालीन परिस्थितिके कारण ही। यह बात तब तक साफ नही होगी, जब तक तत्कालीन भारतकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक अवस्थाओंकी पृष्ठ-भूमिमे हम उसे नही देखते। पहले हम उस काल——अथवा आठवींसे बारहवी सदीकी पॉच सदियों——की आर्थिक अवस्थापर विचार करते है। उस समय भारत बहुत सम्पन्न था। अकेला रोम अपने यहॉसे हर साल ढाई लाख तोला सोना या साढे पाँच लाख सेस्तर्स

(पौने दो करोड़ रुपये) कपड़े और दूसरी चीजोंको खरीदनेके लिए भारत भेजा करता था। प्लीनी (२३-७९ ई०)ने बड़े क्षोभसे लिखा था—"हमें अपनी विलासिता और अपनी स्त्रियोंके लिए कितनी कीमत चुकानी पड़ती है।" उन्नीसवीं सदीके आरम्भके अंग्रेज भी प्लीनीकी तरह भारतीय कपड़ों और मसालोंके लिए देशसे धन खिचते देख चिन्तित थे, यद्यपि वह दूसरी ओर भारतको दूह भी रहे थे। भारत उन पांच शताब्दियोंमें शिल्प-व्यवसाय और वाणिज्यमें दुनियाका सबसे समृद्ध देश था। अरब, पश्चिमी-एशिया, उत्तरी अफरीका और यूरोपसे अपार धन-राशि खिच-खिचकर हमारे देशमें चली आ रही थी। शिल्प और व्यापार ही नहीं, कृषि भी उन पांच शताब्दियोंमें हमारे देशमें बहुत उन्नत-अवस्थामें थी। नदियों और जलाशयों द्वारा सिंचाईके प्रबन्धकी प्रथम जिम्मेदारी राज्यके ऊपर थी, इसे पाश्चात्य लेखकोंने भी माना है। इसका यह मतलब नहीं कि हमारी कृषि साइन्स-युगकी कृषिके समान उन्नत थी। उस वक्त दुनियाको आधुनिक भौतिक साइन्सका पता ही नहीं था और जो कुछ कृषि-विज्ञान सभ्य-संसारको ज्ञात था, भारत भी उसमें किसीसे पीछे नहीं था।

उस समयकी भारतीय समृद्धिकी बात सुनकर आप शायद सतयुगका ख्वाब देखने लगेंगे, और कह उठेंगे—"वह बस्तुत राम-राज्य था।" लेकिन यह कहना बहुत ग़लत होगा। चीन, जावा, अफ्रिका, यूरोपसे जो माया भारत-में आ रही थी उसको भोगनेवाली सारी भारतीय जनता नहीं थी। कौन भोगने-वाले थे, आइये इसे देखें।

(१) **राजा-सामन्त**—इस सम्पत्तिके सबसे अधिक भागको सामन्त-राजा अपनी मौज और आरामके लिए कितना खर्च किया करते थे, इसकी वहां कोई सीमा नहीं थी। आजकी कितनी ही देशी रियासतोंकी तरह सारा राजकोष ही उनका वैयक्तिक कोष नहीं था, बल्कि व्यापारियों और सेठोंके खजानोंमें भी जो कुछ था, उसे खर्च कर डालनेमें उनका हाथ पकड़नेवाला कोई नहीं था। जिन्होंने हालके वाजिदअली शाह तथा दूसरे विलासी शासकोंके भोग-विलास-के बारेमें पढ़ा है, वह आसानीसे समझ सकते हैं कि उस कालके कन्नौज, मान्य-

खेट और पटनाके राजमहलोमे विलासी भोजन, शौकीनीके वस्त्र, सुगन्धित द्रव्य-पर कितना खर्च होता रहा होगा। प्रजाकी मेहनतकी कमाईसे उपार्जित यह महार्घ वस्तुएँ चार-पाँच दिनमे ही खतम हो जानेवाली थी। इनके अतिरिक्त भी सामन्तोके भारी खर्च थे।—नये-नये महल, क्रीडा-उपवन, सिंहासन, राज-पलग, मोरछल, चमर और लाखोंके हीरा-मोती-महार्घ-रत्नोके आभूषण, राज-महलोकी सजावट, चित्र-कला, क्रीडामृग, सोनेके पीजडोमे बन्द शुक-सारिका, लोहेके पीजडोमे बन्द केसरी। दूर-दूर देशोसे लाई कितनी ही दुर्लभ महार्घ-वस्तुओंके सचयमे भी देशकी सम्पत्तिका भारी भाग खर्च होता था।

फिर सामन्त या राजा अकेले ही उस सम्पत्तिको स्वाहा नही करते थे। उस समयके राजाओके आदर्श थे—कृष्ण और दशरथ तथा उनकी सोलह-सोलह हजार रानियाँ। ये रानियाँ मोटा-झोटा कपडा पहन, रूखा-सूखा खाकर दिन काटनेके लिए रनिवासमे नही रखी जाती थी। इन हजारो रानियो और उसीके अनुसार उनके पुत्रो-पुत्रियो, बहुओ-दामादोका खर्च भी देशकी उसी सम्पत्तिके मत्थे था। राजवशके अतिरिक्त कितने ही राज-च्युत भगोडे राजवशी भी प्रजाकी गाढी कमाईमे आग लगानेके अधिकारी थे। उस वक्त राजवशोका उच्छेद अक्सर होता रहता था, फिर वे अपने सम्बन्धियोके पास कन्नौजसे सिंहल तकका चक्कर काटते रहते थे।

इनके अतिरिक्त राज-दरबारोंमे कलाकार, कवि, सगीतज्ञ, चित्रकार, मूर्त्तिकार ही नही, बहुत काफी सख्या विदूषको, चापलूसो, मसखरो आदिकी भी होती थी।

इन अमीरोकी सेवाका काम सिर्फ़ वेतन-भोगी चाकर-चाकरानियोसे नही चलता था, उनकी सेवाके लिए काफी सख्या दास-दासियोंकी होती थी। इसके बाद शिकार या किसी दूसरे मनोविनोदके लिए जिधर भी उनकी सवारी जाती, उधरके किसान, कमकर और कारीगर अपने धन-उत्पादनके कामको छोड़ बेगारमे पकडे जानेके लिए मजबूर होते।

(२) पुरोहित, महंथ—राजा अपने और अपने लग्गू-भग्गुओपर कितनी सम्पत्ति स्वाहा करते थे, इसका थोड़ा-सा अन्दाजा ऊपरके वर्णनसे लग गया

होगा। लेकिन समृद्ध भारतकी सम्पत्तिके अपव्ययका लेखा इतने हीमे समाप्त नही होता। पुरोहित और महंत लोगोंका भी खर्च राजसी ठाटके साथ होता था। उनके पास भी महल, दास, कमकर थे और उसीके अनुकूल उनका खर्च भी था। उस समय धार्मिक मठों और मन्दिरोंमे देशकी सम्पत्तिको खर्च करनेमे बहुत उदारता दिखलाई जाती थी।

सातवी सदीमे नालन्दाके तारासे सोना, रतन, जवाहिरसे भरे जिस मंदिर-का जिक्र विदेशी तीर्थ-यात्रियोंने किया है, उसमे बारहवी सदीके अंत तक बराबर वृद्धि ही होती गई और मुहम्मद बिन-बख्तियारको जितना धन वहाँसे मिला उतना किसी राजमहलसे भी नही मिला होगा। राजवंशोका हर सौ-दो सौ सालमे उच्छेद भी हो जाया करता था, लेकिन ये मंदिर तो चिरकाल तक सुरक्षित निधि बने रहते थे। महमूद राजपूतानेके रेगिस्तानोकी खाक छानते सोमनाथमे पत्थर तोडने नही गया था। यह निश्चित है कि देशकी सम्पत्तिका काफी भाग ब्राह्मण, जैन, बौद्ध मठो-मन्दिरोमे जाता था।

(३) **सेठ**—इसके बाद देशकी सम्पत्तिके भारी हिस्सेके मालिक थे, वह श्रेष्ठी-सार्थवाह (कारवाँ-अध्यक्ष) जिनकी कोठियोंका जाल देशके भीतर ही नही, विदेशों तकमे बिछा हुआ था, और जिनके जहाज उस समयकी सभ्य दुनियामें सभी जगह पहुँचते थे। इन महासेठों, नगरसेठोके पास कितनी सम्पत्ति थी, इसका कुछ अनुमान देलवाडा (आबू)के संगमर्मरके मन्दिर और उसके बहुमूल्य शिल्पकार्यको देखकर आप आसानीसे लगा सकते है।

वस्तुत तत्कालीन भारतकी अपार सम्पत्तिके मुख्य भोगनेवाले थे, यही सामन्त, पुरोहित और सेठ तथा उनके दरबारी-खुशामदी।

(४) ***युद्धका अपव्यय***—अमीर लोग, संगीत साहित्य काम-कलापर ही देशकी सम्पत्तिको स्वाहा नहीं करते थे, बल्कि उनकी फजूलखर्चीका एक और भी बहुत भारी क्षेत्र था, वह था युद्ध, दिग्विजय। किसी सामन्त (राजा)के लिए बडे शर्मकी बात होती यदि वह छोटा-मोटा दिग्विजय न करता या कमसे कम किसी पडोसी राजाकी कुमारीको न पकड़ लाता। यह सामन्तयुगके यौवन-का समय था। सामन्तो और उनके योद्धाओंके हाथोंमे लड़नेके लिए खुजली

पैदा होती रहती थी। उस समयका सामन्त मृत्युकी बिल्कुल ही पर्वाह नही करता था। उसकी सारी शिक्षा-दीक्षा उसे यही सिखलाती थी कि मौतसे डरना—कायरता—उसके लिए चिल्लू भर पानीमे डूब मरनेकी चीज है। आज जिस महायुद्धसे हम गुजर रहे हैं, उसने हमें साफ दिखला दिया है कि युद्धमे कितना अधिक अपव्यय होता है—आदमीकी गाढ़ी कमाईमे कितनी बेदर्दीसे और कितने भारी परिमाणमे आग लगाई जाती है। सत्तर सैकडा किसान, कम्मी, कारीगर जनताके श्रमसे उपार्जित धनका बहुत भारी ध्वस ये सामन्त अपने दिग्विजयो और आये दिनकी आपसी लडाइयोमें किया करते थे।

साधारण जनता—लेकिन सम्पत्ति पैदा कौन करता था? ये तीनो नही, बल्कि वह थे, किसान, कमकर और कारीगर। मिट्टीका सोना बनाना उन्हीके श्रमका चमत्कार था। चाहे सुनहले गेहूँ और सुगधित वासमतीको लीजिए, चाहे कमखाब और दुकूलको, अथवा गोलकुण्डामे निकलनेवाले कोहनूरको, ये सभी चीजे किसानो, कमकरों और कारीगरोके शारीरिक खूनको सुखानेसे पैदा होती थी। जिस तरह आजके राजाओ, नवाबों और करोडपति सेठोके वैभव-को देखकर सारा देश सुखी और समृद्ध नही कहा जा सकता, उसी तरह उस समयके राजा-पुरोहित-सेठ-वर्गके हृदयहीन अपव्ययके कारण सारे भारतको स्वर्ग नही कहा जा सकता। उस समय शायद सारी जनताका दस सैकडेसे अधिक भाग नही रहा होगा, जिसके जीवनको मौज-मस्ती और आरामका जीवन कहा जा सकता।.

(१) **दास-दासी**—फिर वह भारत दासप्रथाका भारत था। यदि दस सैकड़ा मौजवाले लोगोंके लिए व्यक्ति पीछे दो-दो दास-दासी रखे जाते थे, तो भारत-की कुल जन-सख्याका बीस सैकड़ा या हर पाँच आदमीमे एक आदमी दास था। दास आदमी नही थे, यद्यपि उनकी शकल-सूरत आदमीकी तरह होती थी। वह ढोरोंकी तरह अपने मालिककी जगम सम्पत्ति थे, जिन्हे मालिक जब चाहे बेंच-खरीद सकते थे। उनका जीवन बिल्कुल अपने मालिककी दयापर निर्भर था। अभी अग्रेज़ोंके राज्य स्थापित हो जानेपर अठारहवी सदीके बाद तक यह दास-प्रथा भारतमे बनी रही थी। अभी भी दरभगा जिलेमे दासोकी

बिक्रीके कितने ही ताम्र-पत्र आप देख सकते है। और नैपालके स्वतंत्र "हिन्दू-राज्य"मे तो १९२५ ई० तक बाकायदा दास-प्रथा जारी रही। यह ठीक है, दास-प्रथाके लिए हम सिर्फ भारत हीको दोषी नही ठहरा सकते, उस समय दुनियाके सभी मुल्कोमे दास-प्रथा मौजूद थी और बाजारोमे गोरे, भूरे, काले सभी रगोके ये मानव-पशु मिलते थे।

(२) **किसान, कम्मी, कारीगर**—जनताके बीस सैकड़े भारतीय दास तत्कालीन भारतीय समृद्धिके भोगनेके अधिकारी नही थे। बाकी सत्तर सैकड़े लोग किसान, कम्मी (अर्द्धदास) और कारीगर थे।—दस सैकडा कम्मी, पचास सैकडा किसान और दस सैकडा कारीगर मौजकी जिन्दगी नही बिता रहे थे। स्वयभू और पुष्पदन्तके खेत अगोरनेवालियोके मोटे गन्ने और द्राक्षा-लताओंको देखकर आप यह समझनेकी गलती न करे, कि वह उन्ही अगोरनेवालियोके उपभोगके लिए थे। वहाँ सारा शिल्प, सारा व्यवसाय, सारी कृषि मुट्ठीभर आदमियोके भोगके लिए होती थी। दूसरोको तो मुश्किलसे सिर्फ जीने और ब्याने भरका अधिकार था।

(क) **जनताका आत्म-सम्मान**—बीस सैकडा दासोंपर तो, नर-पशु होनेकी वजहसे विचार करनेकी जरूरत ही नही, लेकिन सत्तर सैकडा किसान-कम्मी-कारीगरकी अवस्था? आत्म-सम्मान? ऊपरी वर्गके सामने बिल्कुल शून्य "परम भट्टारक परमेश्वर महाराजाधिराज"के सामने सम्मान-प्रदर्शन करनेके लिए जब दूसरे राजाओ और सामन्तोको अपने मुकुट उनके चरणोपर रखने पडते थे, तो साधारण जनताको किस तरह जुहार करनी पड़ती होगी, इसे आप खुद समझ सकते है। और दूसरी बेबसियाँ? सत्तर सैकडा जनताको शरीरसे मजबूत अपने तरुण पुत्रोंको सामन्तोंके युद्धके लिए भेट करना पड़ता था—हाँ, यदि उनकी जाति छोटी नही समझी जाती हो, छोटी जातिके तरुणको बडी जातिके साथ एक पक्तिमे लड़कर मरनेका भी अधिकार नही था। सत्तर सैकडा जनताको अपनी सुन्दर लड़कियोको वैध या अवैध रूपसे रनिवासमे भेजनेके लिए भी तैयार रहना पड़ता था। कितनी ही जगह तो नव-विवाहिताकी प्रथम रात भी सामन्तके लिए रिजर्व थी, चाहे वह हाथसे छूकर ही छुट्टी

दे दे। उस वक्त साधारण जनताके आत्म-सम्मानकी बात करना ही फजूल है।

(ख) **अकाल आदिमें यातना**——उस वक्त इस आर्थिक हीनताके साथ कुछ सुभीते जरूर थे। उस समय भारतकी आबादी आजसे चौथाई या (दस करोड)से कम ही रही होगी, जिसका मतलब है——लोगोके पास अधिक खेत, खेत बनानेके लिए अधिक जगल, जगलोमे जरूरतके लिए अधिक शिकार। उस समय जैनोके तीर्थकरो और देवताओको छोड बाकी सभी देवी-देवता——ब्राह्मण बौद्ध दोनो——घास-खोर नही थे। यह भी अच्छा था कि अमीरोकी शौकीनीकी प्राय: सारी चीजे देशके भीतर तैयार होती थीं। सम्भव है कुछ रेशम और बारीक दुशाले या कालीन बाहरसे आते हो। अतएव इनके लिए देशका धन बाहर नही जाता था। लेकिन इतना होने पर भी अकाल, बाढ, युद्ध और महामारीमे साधारण जनताको कीडे-मकोडेकी तरह मरनेसे बचाया नही जा सकता था। फसल अच्छी हुई, शिल्पकी वस्तुओकी माँग रही, तो सत्तर सैकडा जनताकी साल-की खर्ची ठीकसे चलती रही। उस वक्तके साधारण किसानोसे आशा नही रखी जा सकती थी कि वे पचासों वैध-अवैध करो, राजकर्मचारियो, पुरोहितो और महाजनोकी लूट-खसोटके बाद भी एक सालकी उपजको दो साल तक चला लेगे। जब तक साल दो साल आगे तकके खानेका सामान घरमे नही है, तब तक किसान, कम्मी, कारीगर अकाल आदिके चगुलमे पडकर बुरी मौत मरनेसे कैसे बचाए जा सकते? जहाँगीरके वक्त (१६३० ई०) सत्तासिया अकालने दक्षिणी भारत और गुजरातमे क्या गजब ढाया, लोगोपर क्या-क्या बीती, यह समय सुन्दर कविके आँख देखे वर्णनसे मालूम होगा। इस अकालमे मनुष्यकी साधारण मानवता ही नही खो गई थी, बल्कि आदमी माँ, बहिन, बेटी, भाई, बाप सबके सम्बन्धको सबके सम्मानको ताकमे रखकर केवल अपने शरीरको बचानेकी कोशिश करता था। मरते इतने थे कि मुर्दोका हटाना मुश्किल था। १९४२मे बरमासे मणिपुरके रास्ते जो भारतीय भाग कर आए, उनकी अवस्थाको हमारे एक मित्रकी भ्रातृ-वधू बतला रही थी——"चलनेमे असमर्थ या बीमार पड जानेपर लोग अपने भाइयो और पुत्रोको भी वही जगलमे छोड-कर चल देते थे, हाँ उनके पास एक अच्छी दलील थी——यहाँ रहकर खुद भी

मर जानेके सिवा हम अपने बधुकी कोई सहायता नही कर सकते। भूख-प्यासे अपने शरीरको ले चलनेमे असमर्थ लोग अपने दुध-मुँहे बच्चोंको रास्तेके जगली पेडोपर टागकर चल देते थे। ऐसे बच्चे एक दो नही, सैकडो हमने अपनी आखो देखे।" उस पुरातन कालके युद्धोंमे भी जब भगदड होती होगी, तो लोगों-की अवस्था इससे बेहतर नही रहती होगी। सत्तर फीसदी जनताकी आर्थिक-अवस्था निश्चय ही इतनी हीन थी, कि किसी प्रकार, बाढ या दूसरी आफत आने पर लाखोकी सख्यामे मरनेके सिवा उनके लिए कोई चारा नही था।

हमने उस समयके बहुसख्यक समाजका यहा अतिरजित चित्र नही खीचा है, वस्तुत उस समयके जीवनकी जो आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक सामग्री जहाँ-तहाँ बिखरी हुई हमे प्राप्त है, उससे हम यह छोड दूसरे निष्कर्षपर नही पहुंच सकते।

(३) **कवि जनताकी यातनापर चुप क्यों ?**—हमारे इन कवियोके सामने वे पशु-तुल्य दास-दासी और उनके ऊपर होते पाशविक अत्याचार मौजूद थे। पद-पदपर अपमानित, त्रस्त, पीडित, किसान, कम्मी, कारीगर जनता भी उनके सामने मौजूद थी। अकाल महामारी, युद्ध और बाढ़की दारुण-यातना हृदय-द्रावक दृश्य भी उन्होने आखोसे देखे होंगे, फिर भी इन कवियोंकी कृतियोंमे उनके बारेमे इतनी चुप्पी क्यों ? सोचे होंगे, अकाल, बाढ़, युद्ध, महामारी सब भगवान्‌के भेजे हुए है—लोगोंके पुर्बिले कर्मका यह फल है; इसलिए क्रौंच-मिथुन-मेसे एकके वधसे तड़प उठनेवाली कविकी आत्माको उधर ध्यान देनेकी जरूरत नही। शायद ऐसा सोचकर इन कवियोंके बारेमे आप कोई कठोर निर्णय सुनाने लगे, लेकिन यह उचित नही होगा। जिस परिस्थितिके कारण कवियोंको यह मौन धारण करना पडा, उस परिस्थितिपर भी आपको ध्यान देना होगा। यदि कमाऊ जनताकी सारी यातनाओंके असली कारणको वह चाहे न भी बतलाते और सिर्फ लोगोंकी इन यातनाओका नग्न चित्र खीच देते तो उससे रेशम और रतनसे ढँका अमीरोका भोगमय-जीवन नग्न हो उठता; दोनो-की तुलना होने लगती और फिर जनताके कितने ही लोग वैसे समाजसे क्षुब्ध हो उठते; जिसका परिणाम अवश्य अमीरोके लिए अच्छा नही होता। इसलिए

आपको समझना होगा कि क्रौंच-मिथुनमेंसे एकके वधके लिए कविका आँसू बहाना जितना आसान था, उतना उस कालके बहुसंख्यक समाजकी विपदाओंका वर्णन करना आसान नही था। यदि कोई आदमी तत्कालीन भोगी समाजके विरुद्ध लिखनेके लिए अपनी कवि-प्रतिभाका कुछ भी दुरुपयोग करता, तो वह केवल पुरोहितोंके धर्म-दण्डका ही भागी नही होता, बल्कि उसके सरपर पड़ता क्रूर राज-दण्ड––छिपकर हत्या, भयकर शारीरिक यातना, सीधे शूली, देश और समाजसे निष्कासन और अपमान। इन दण्डोंको सामने रखकर जब आप इन कवियोंकी चुप्पीको देखेंगे, तो मालूम होगा कि उनके वैसा करनेके लिए प्रबल कारण मौजूद थे। उस वक्त अखबार नही थे और न देश-देशान्तरोंके उदार-मना पुरुषोमे सहानुभूति पैदा करनेका वैसा कोई साधन था कि गोर्कीके कठोर दडके लिए सारी दुनियामे तहलका मचने लगता। यही नही, कवियोने अपनी काव्य-प्रतिभाकी जो करामात दिखलाई है, उसका बचा-खुचा अश भी शायद राजा-पुरोहित-सेठकी कोपाग्निसे न बच पाता। कवि अपने स्थूल शरीर और कीर्त्ति-शरीर दोनो हीसे नष्ट होनेका भय सोच यदि मौन रहा, तो उसके विरुद्ध किसी कठोर फैसलेके देनेका हमे अधिकार नही है।

३. राजनीतिक अवस्था

हर देशकी राजनीतिक अवस्था उसकी आर्थिक अवस्थाके अनुसार ही होती है; बल्कि राजनीति कहते ही है आर्थिक ढाँचे––आर्थिक स्वार्थोंकी रक्षाके लिए तैयार किये गये फौलादी शिकजे––को। उन पाँच शताब्दियोंमे साधारण जनताकी आर्थिक अवस्था कैसी थी, उसके ऊपर कितने अत्याचार और उत्पीडन होते थे, इसे हम बतला आए है। हम देख चुके है कि जनता किस तरहसे मूक और निरीह बनी हुई थी। राजा सर्वशक्तिमान "परमेश्वर" बन गया था और उसकी निरंकुशताके रोकनेका कोई उपाय बहुसंख्यक जनताके पास नही था। लेकिन भारतीय जनता सदासे ही ऐसी नही थी। बुद्ध के समय (ई० पू० पाँचवी सदी-मे) भारतके कितने ही भू-भागोंपर लिच्छिवियोंकी तरहके शक्तिशाली प्रजा-तंत्र थे। युनानियो और शकोंके कालमें भी यौधेयो जैसे प्रजातन्त्रोने अपने

अस्तित्वको ही नही बनाये रखा, बल्कि विदेशियोंके शासनको नष्टकर देनेमे इन्ही का सबसे पहिला और सबसे अधिक हाथ था। चौथी शताब्दीके अतमे गुप्तोकी विजय तो एक तरहसे खून लगाकर शहीद बनती थी। इन प्रजातत्रोमे जन-स्वतन्त्रता थी, हाँ उतनी ही जितनी धनी-गरीब वर्गवाले समाजमे सभव हो सकती है। इन गणो (प्रजातन्त्रो)की जन-स्वतन्त्रताको देखकर राजाओको भी अपने राज्यमे "सर्वशक्तिमान् परमेश्वर" बननेकी हिम्मत नही होती थी। ४०० ई०के आस-पास चद्रगुप्त विक्रमादित्यने यौधेय-गणके उच्छेदके साथ भारतसे चिरकालके लिए जन-तन्त्रताका उच्छेद कर दिया। इसमे शक नही कि गणोके विनाशमे उनके भीतरकी आर्थिक विषमता, अल्पशक्ति भी कारण थी। तो भी जनताके इस स्वतत्र शासनके उच्छेद करनेवाले चद्रगुप्त विक्रमादित्यको क्षमा नही किया जा सकता। इस उच्छेदने भारतपर क्या प्रभाव डाला यह इसीसे समझमे आ सकता है, कि वर्तमान शताब्दीके आरम्भमे जब इति-हासवेत्ताओ और पुरातत्त्वज्ञोने भारतके पुराने प्रजातत्रोके सबधमे साहित्यिक और मुद्रा-सबंधी प्रमाण ढूँढ़ निकाले, तो उसकी ओर एक बार हमारे शिक्षित भी आँख मलकर आश्चर्यसे देखने लगे। उनको विश्वास नही होता था। कहाँ भारत और फिर वहाँ एथेन्स जैसा प्रजातत्र—यह हो ही नही सकता। यदि बौद्धोंके कुछ पुराने ग्रथो तक ही प्रमाण सीमित होते, तो शायद उसको क्षेपक और बाहरी प्रभाव कहकर टाल दिया जाता, मगर ईसाके पहिलेकी शताब्दियो-से लेकर ईसवी चौथी सदी तकके ठोस सिक्कोसे कैसे इनकार कर दिया जाये? तो भी यह ध्यान रखनेकी बात है कि इन प्रजातत्रोंके प्रति सारे पुराण-कारो, धर्मशास्त्ररचयिताओं और पीछेके कवियोकी चुप्पी खास कारणोसे थी। वह अपने प्रयत्नमे कितने सफल हुए, यह तो प्रजातत्रोंके बारेमे सदाके लिए हमारा अनभिज्ञ बन जाना ही साबित करता है। पिछली शताब्दियोंकी बात छोडिये, आज भी जब कि हमारे शिक्षित जनतंत्रताका नाम लेकर विदशी शासनके हटानेकी बात कर रहे है; तब भी किसी लिच्छिवि या यौधेय प्रजातन्त्रके स्मरण-महोत्सव या कीर्त्ति-स्तभकी बात नही की जाती। यदि क्रियात्मक प्रस्ताव आता है, तो सर्वगण-उच्छेत्ता चद्रगुप्त विक्रमादित्यके लिए कीर्त्ति-स्तभ स्थापित

करनेका। हम समझते है, यह प्रयत्न किसी भोलेपनके कारण नही है, बल्कि उसके भीतर बहुत गूढ अर्थ छिपा हुआ है।

हमारे कुछ भाई कह उठेंगे, कि भारतकी जनतत्रता कभी खतम नही हुई। वह तो गाँवोकी पचायतोके रूपमे मौजूद रही और इन पचायतोंको अग्रेजी शासनने नष्ट किया। लेकिन विक्रमादित्योने हमारे गावोंकी जनतंत्रताको जनताकी आजादीके लिए नही छोडा था। वह जानते थे कि सात लाख गाँव, एक दूसरेसे असबद्ध सर्वथा स्वतत्र प्रजातत्र, किसी निरकुश शक्तिका मुकाबिला नही कर सकते। इसीलिए उन्होने रस्सीके रेशोंको बिखेर दिया, धाराको बूँदोमे बाँट दिया और इस प्रकार ये ग्राम-प्रजातत्र निरकुश शासकोंके बडे कामकी चीज बन गए। जनताकी इस बिखरी शक्तिकी बेबसीने सदियोंके कडुवे तजर्बेके बाद तुलसीदाससे कहलवाया "कोउ नृप होइ हमै का हानी। चेरी छाँडि ना होउव रानी।"

अब राजा "परम स्वतत्र न सिर पर कोऊ" बन गए। उनके ऊपर असली अन्नदाताओका कोई अकुश न रहा। उनकी निरकुशतापर यदि कभी कोई दबाव पडता था, तो सामन्तोकी सदा बनी रहती आपसी खटपट का। सरहपा जिस वक्त अपने दोहोंको बना रहा था, उसीके आस-पास विहारमे वह आखिरी घटना घटी, जिसमे प्रजाने एक गुमनाम-वशके बहादुर व्यक्ति गोपालको अपना शासक चुना। इसके बाद फिर भारतीय इतिहासमे ऐसी कोई घटना देखनेमे नही आती। हाँ, तो सामन्तोके ऊपर एक अंकुश आपसी खटपट थी और दूसरा था बाहरी आक्रमण। हमारे इस कालके आरभहीमे अरब, सिंध (७१२ ई०) और मुल्तान (७१३)पर अधिकार जमा लेते है और वह भू-भाग हिन्दुस्तानसे बिल्कुल अलग कर लिया जाता है। पीछे ग्यारहवी सदीके आरभके साथ ही महमूद गजनवी (९९७-१०३० ई०)के हमले होने लगते है। शायद इन अरब और तुर्क हमलोने भारतीय नरेन्द्रोको सयमका कुछ पाठ जरूर पढाया होगा। धर्मको भी राजाओपर भारी अकुश बतलाया जाता है; लेकिन राजाओके टुकड़खोर पुरोहित और महथ उनपर कितना अंकुश रख सकते है, यह आसानीसे समझा जा सकता है, खासकर जब कि उनके पीछे साधारण जनता जैसी कोई

शक्ति सहायता देनेके लिए मौजूद नही हो। जन-शक्तिको तो बल्कि पूरी तरह कुचलनेमे राजाके बाद पुरोहितो और महंथोका ही सबसे अधिक हाथ रहा है। उन्होने भगवान् और ऋषियो-मुनियोके नामपर धर्मकी नयी व्यवस्थाएँ गढकर जन-शक्ति और जन-चेतनाको बिल्कुल खतम कर दिया। अब उनका राजा पृथ्वीपर विष्णुका अंश था और सारे विलास तथा उत्पीड़न पहले जन्मके कर्मके सुफल थे। धर्माचार्य यदि कुछ अंकुश रख सकते थे, तो शायद भक्ष्या-भक्ष्यपर।

बाहरका खतरा दिखलाई देनेपर जरूर देशके हर्त्ता-कर्त्ता लोग कुछ करनेके लिए मजबूर होते थे, लेकिन छठी सदीमे हूणोको परास्तकर भारत कुछ दिनोके लिए निश्चिन्त हो गया था। ७१२ ई०मे अरबोंकी सिन्ध-विजयने फिर खतरेकी घंटी बजाई। इसके लिए जरूरी था, कि देशका अधिकसे अधिक भाग एक शासन-सूत्रमे आ अपनी सैनिक-शक्तिको खूब मजबूत करे। इसके लिए आठवी सदीसे लेकर अगली सदियोमे जो प्रयत्न हुए, वह हमारे सामने कन्नौज, मान्यखेट और कभी-कभी पालोंकी प्रभुता या चक्रवर्त्तित्वके रूपमे आये।

(१) **कन्नौज**—कन्नौजने मौखरियों, हर्षवर्धन और उसके सेनापति भंडीके वंशके प्रबल और विशाल राज्योंका प्राय. तीन सौ सालो (५५०-८१५) तक राजधानी रहनेके कारण उसी तरह एक अत्यन्त सम्माननीय स्थान प्राप्त कर लिया था, जिस तरह मुस्लिम-कालमे दिल्लीने जिस वक्त सिंध और पजाबपर काले बादल मॅडला रहे थे, उस वक्त कन्नौजका भंडी-वंश निर्बल और निकम्मा हो रहा था। कन्नौजके पीछे एक समृद्ध देशकी माया और प्राचीन वैभव था, वह आस-पासके सामन्तोंको आकृष्ट कर रहा था। हर्षवर्धनके साम्राज्यके टुकडे-टुकड़े होनेपर जो अलग-अलग राज्य क़ायम हुए थे, उनमें बिहार-बगालके पाल और गुजरात-मालवाके प्रतिहार मुख्य थे। दोनों ही कन्नौजके मालिक बनना चाहते थे। वह कन्नौजके शासक इन्द्रायुध और चक्रायुधमेसे एकको गुड़िया बनाकर अपना प्रभुत्व जमाना चाहते थे। प्रतिहार वत्सराज (७८३) और गौड़ेश्वर धर्मपाल (७७०-८०६) इसके लिए अपनी सेनाओंके साथ कन्नौज तक दौडे। वह आपसमे लडकर किसी स्थायी फैसलेपर पहुँचना ही चाहते थे कि

सुदूर-दक्षिणसे राष्ट्रकूट ध्रुव (७८०-९४) आ धमका और उसीका पलड़ा भारी रहा। इसीलिए ध्रुवरायकी यात्राका एक सुफल हमारे महान् कवि स्वयंभू मालूम होते हैं। वह जो ध्रुवरायके किसी आमात्य रयडा धनंजयके साथ दक्षिण गए और वहीं उन्होंने अपनी अद्भुत अनमोल कृतियाँ रचीं। पाल, राष्ट्र-कूट और प्रतिहार तीनों कन्नौजपर दाँत लगाये थे। कन्नौजकी शक्ति ही बाहरी शत्रुओंसे उत्तरी भारत—अतएव सारे भारत—की रक्षा कर सकती थी। सौभाग्य समझिए कि अरब-तलवार सिंधकी धारमें पहुँचकर ठंढी पड़ गई, नहीं तो आठवीं सदीमें उत्तरी भारतकी राजनीतिक अवस्था उसके लिए बड़ी अनुकूल थी।

कन्नौज नगरी एक ऐसी स्वयंवर-कन्या थी, जिसे राष्ट्रकूट, प्रतिहार और पाल तीनों ब्याहना चाहते थे; लेकिन स्वयंवर-कन्या सौत बनकर नहीं रहना चाहती थी। अब तीनों उम्मेदवारोंको फैसला करना था—कौन अपना देश छोड़ कान्य-कुब्ज जानेके लिए तैयार है। प्रतिहार नागभट्टने फैसला किया, वह कन्नौजका स्वामी बन गया, बाकी दोनों मुँह ताकते रह गए। तबसे करीब-करीब महमूदके हमले तक कन्नौज उत्तरी भारत और सारे भारतके लिए जबर्दस्त ढाल बना रहा।

(२) **राष्ट्रकूट**—हर्षवर्धनको दक्षिणी भारतकी दिग्विजयसे खाली हाथ लौटानेके लिए मजबूर करनेवाले पुलकेशीके चालुक्य-वंशको खतमकर राष्ट्र-कूटोंने अपनी जबर्दस्त सत्ता उसी समय (७५३) स्थापित की, जब कि पूरबमें गोपाल पाल-वंशकी नींव रख रहा था। ७५३ ई०से ९७३ ई०की प्रायः दो सदियों तक राष्ट्रकूट-वंशी वल्लभराज भारतके सबसे बलवान् राजा रहे। नर्मदासे कृष्णा और कभी-कभी कांची तक उनका विशाल राज्य फैला हुआ था और सुदूर-दक्षिण रामेश्वर ही नहीं, कभी-कभी तो सिंहल भी उनकी आज्ञा-को मानता था। कितनी ही बार उनके घोड़ोंकी टाप यमुना और गंगाके द्वाबे (अंतर्वेद)में प्रतिध्वनित हुई थी। कितनी ही बार उनके सैनिक युक्त-प्रान्तके दुर्गोंमें मालिक बनकर बैठते थे।

(३) **पाल**—गोपाल और धर्मपालका जिक्र अभी कर चुके हैं। धर्मपाल बंगाल-बिहारसे संतुष्ट न रह कन्नौज तक हाथ फैला रहा था, इसे हम बतला

चुके है। धर्मपाल असफल रहा। उसका पुत्र देवपाल (८१५-३४)भी उत्तर-का चक्रवर्ती बनना चाहा, मगर अन्तम जयमाला नागभट्टके गलेम पडी, यह बतला चुके है। नवी-दसवी सदीमे यही तीनो भारतकी प्रधान शक्तिया थी। देशमे और भी कितने ही राज-वश थे, लेकिन वह इन्ही तीनोमेसे किसी एकके आधीन रहते थे। गौड़ चक्रवर्ती-क्षेत्रने हमे ८४ सिद्धोके रूपमे पुरानी हिन्दी (अपभ्रश)के कवि दिए। पाल-वश बौद्धधर्मानुयायी था, इसलिए लोक-भाषासे उसे थोडा-बहुत अनुराग था और वहा सस्कृत देश-भाषाके साहित्यका गला घोटनेकी क्षमता नही रखती थी।

राष्ट्रकूट चक्रवर्ती-क्षेत्रने भी प्राकृतके कितने ही कवियो तथा स्वयभू और पुष्पदन्त जैसे हमारी भाषाके सर्व्वोच्च कवियोको यदि पैदा न किया हो, तो कमसे कम उन्हे आश्रय जरूर दिया। जैन होनेसे राष्ट्रकूट-राजा देश-भाषाके प्रति अधिक उदार विचार रखते थे।

कान्य-कुब्ज चक्रवर्ती-क्षत्र यद्यपि वह क्षेत्र था, जिसके ही भीतर अपभ्रंश-का अपना मूल-क्षेत्र था : किन्तु वहा हम सदा (तुलसीबाबा तक) संस्कृतको ही सर्वसर्वा रहते देखते है। शायद इसमे ब्राह्मणो और ब्राह्मण-धर्मकी प्रधानता कारण थी, वह नही चाहते थे कि सस्कृतसे दस-पाच हाथ नीचे भी किसी दूसरी भाषाको स्थान मिले। बहुत सभव है, स्वयभू अवधी भाषा-क्षेत्रके थे और पुष्प-दन्त यौधेय (हरियाना, दिल्ली)-क्षेत्रके; इस प्रकार दोनो ही कान्यकुब्ज चक्र-वर्त्ती-क्षेत्रके थे, लेकिन उनकी पूछ अपने दरबारमे नही बल्कि दूर जाकर दक्षिणापथमे हुई। अपने दर्बारमे तो राजशेखर और श्रीहर्ष जैसे सस्कृतके महाकवियोंकी ही एकमात्र पूछ थी।

नवी शताब्दीसे प्राय: दो शताब्दियोंके लिए राष्ट्रकूट और प्रतिहार दो जबर्दस्त शक्तियाँ तैयार हो गई है, जो पश्चिमी खतरेको रोकनेकी काफी क्षमता रखती थी। बल्कि राष्ट्रकूटोको इसमे कुछ अधिक सुभीता था। उनकी तीन तरफ समुद्रकी खाईं थी, डर था तो सिर्फ़ उत्तर-पश्चिममे गुजरातकी ओर से। अरबोंने एकाध मर्तबे कोशिश भी की, लेकिन बीकानेरका रेगिस्तान और अरब समुद्र आसान रास्ते नही थे। ऊपरसे राष्ट्रकूटोंका सैनिक-बल बहुत मजबूत था।

प्रतिहारोपर उत्तरी भारतकी रक्षाका सबसे अधिक भार था। जब तक उन्होने इस कर्त्तव्यको पूरा किया, तब तक वह अचल रहे, लेकिन जैसे ही राज्यपाल (१०१८)ने महमूदके सामने सर झुकाया, वैसे ही प्रतिहार-वशका सितारा डूबने लगा, और उसके आधीनके चन्देल (कालिजर) कलचुरी (त्रिपुरी) तथा चौहान (साभर, अजमेर) स्वतत्र होने लगे। प्रतिहार फिर कुछ दिनो तक मुर्दा अगोरते रहे, क्योकि उनके प्रबल सामन्त आपसी झगडेके कारण कन्नौजके बारेमे कोई फैसला नही कर सकते थे। लेकिन, इस डॉवाडोल अवस्थामे कन्नौज सदाके लिए नही रह सकता था।

१०८० मे गहडवार चद्रदेवने कन्नौजपर हाथ साफ किया। यद्यपि गहडवार वशको गगा-यमुनाके बीचका बहुत ही गुजान और उर्वर प्रदेश मिला और इस प्रकार वह औरोकी अपेक्षा अधिक बलवान रहा, तो भी उसे प्रतिहार-वश जैसा बल नही प्राप्त हो सका। चौहान, चदेल, और कलचुरी अपने बलको कन्नौजसे मिलाकर बाहरी शक्तिसे मुकाबला करनेके लिए तैयार नही थे। तो भी चद्र देवके पौत्र गोविन्दचद्रके (१०६३-११३४) समय गहडवार-वश उत्तरी भारतका सबसे अधिक बलशाली राज्य था। गोविन्दचद्रके पौत्र जयचद्र (११७०-९३) के वक्त गहडवार शक्ति निर्बल हो चुकी थी। उस वक्त चदेल परमर्दी (११६७-१२०२) काफी शक्तिशाली था। लेकिन कलचुरी, चौहान या चंदेलो-की कितनी भी प्रबल शक्ति हो, उनमे किसीके लिए सभव नही था, कि प्रतिहारो-के चक्रवर्ती-क्षेत्र को फिरसे जीवित करके बाहरी आक्रमणको रोके।

दसवी सदीका अत होते-होते उत्तरी भारतमे पालो, गहडवारो, चालुक्यों, चदेलो और चौहानोंके अतिरिक्त गुजरात और मालवाके दो और स्वतत्र राज्य बन चुके थे। गुर्जर-सोलकी (चालुक्य) तो बहुत कुछ कन्नौजके पतनसे अस्तित्व-मे आये। मालवाके परमार राष्ट्रकूटोके विनाश (९७४)के फल-स्वरूप स्वतंत्र हो गये। ग्यारहवी-बारहवी सदीमे अब उत्तरी भारतकी शक्ति अधिक छिन्न-भिन्न हो चुकी थी, वहाँ सात स्वतत्र दर्बार थे। कोई एक बडी शक्तिके आधीन रहकर काम करनेके लिए तैयार नही था।

देशभाषाकी दृष्टिसे देखनेसे पाल अब भी सिद्ध-कवियोका सम्मान करते

थे। गहडवार-दर्बारमे भी अवश्य कुछ लोक-साहित्यका मान था, जैसा कि काशी-श्वर-सबधी कविताओं तथा स्वय जयचन्दके महामत्री विद्याधरकी स्फुट कविताओं-से मालूम होता है। कलचुरी कर्णके दर्बारमे भी बब्बर और दूसरे कितने ही कवियो-का सम्मान होता दिखलाई पडता है। कालिजरका चन्देल-दर्बार शायद इस बारे-मे सबसे पिछड़ा हुआ था। कनकामर मुनि, सभव है, इन्हीके बुन्देलखण्डके हों, मगर उनकी कविताओको आश्रय देने का श्रेय चन्देल दर्बारको नही मिल सकता।

मुज (९७४-७५) और भोज (१०१०-५६) चचा-भतीजे सस्कृत-प्राकृत-के साथ देशी-भाषाके भी प्रेमी थे और उनकी धाराने अवश्य कितने ही अपभ्रश कवियोंका स्वागत किया होगा, यद्यपि हमारे पास तक उनकी कृतियाँ बहुत थोडी पहुँची हैं। चौहान-दर्बारका कवि सिर्फ चन्द बरदाई हमारे सम्मुख है। यद्यपि उसकी रचना "पृथ्वीराज रासो"की जो प्रति आज उपलब्ध है, वह बहुत विकृत तथा मूलसे चार सदियों बाद की है। हमने उसके कुछ नमूने यहाँ सिर्फ इसी ख्यालसे दिये हैं, कि चन्दकी कविताका कुछ अश इसमें मौजूद है। उसकी भाषामें खूब मनमानीकी गई है, इसमें सदेह नही।

गुर्जर-चालुक्य-क्षेत्र (९६१-१२५७) यही नही कि दिल्ली-कन्नौजके काफी पीछे तक स्वतत्र रहा, बल्कि इसने अपभ्रश कवियोको सबसे अधिक पैदा किया। पैदा करनेसे भी ज्यादा उसने जो बड़ा काम किया, वह है अपभ्रंश-कृतियोंका रक्षा करना। शायद दर्बारके जैन होने तथा जैन नागरिकोके भाषा-प्रेमके कारण ऐसा हो सका।

हमारे इस साहित्यिक युगकी राजनीतिक पृष्ठभूमिकी और व्यापक दृष्टिसे देखनेपर मालूम होगा, कि पहले शतक अर्थात सातवीं-आठवी सदीमे बाहरी शत्रु अभी उतने प्रबल न थे। नवीं-दसवी सदीमे हमारा राजनीतिक-सगठन इतना विस्तृत और मजबूत था कि कोई उसका मुकाबला करके सफलताकी आशा नही कर सकता था। ग्यारहवी-बारहवी शताब्दीमे शक्ति आधे दर्जन टुकड़ोमें बँट गई। और यह था विदेशी आक्रमणकारियोंको न्यौता देना।

तत्कालीन कविताओंमे हमे तीन बातोंकी छाप मिलती है—रहस्यवाद या आध्यात्मिक भूल-भुलैया, निराशावाद और युद्धवाद या वीररस। ये तीनों ही

काव्य-भावनाएँ उस वक्तके शासक-समाजकी आवश्यकताके लिए बिल्कुल उपयुक्त थी। उस वक्तके सामन्त बच्चेको तलवारका चरणामृत दिखलावटी नही पिलाया जाता था, बल्कि दरअसल उसे बचपनसे ही मरने-मारनेकी शिक्षा दी जाती थी। मौतसे खेल करनेके लिए वह हर वक्त तैयार रहता था। अठारहवी-उन्नीसवी सदियोके कवियोने भी अपने आश्रय-दाताओकी बडी-बडी वीरताओंका वर्णन किया, लेकिन वह अधिकाश थोथी चापलूसी है, यह हमे मालूम है। हमारी इन पाँच सदियोमे सामन्त वस्तुत निर्भय वीर होते थे। उनके देश-विजयोंके बारेमे कवि अतिशयोक्ति भले ही कर सकता है, लेकिन शरीरपर तीरो और तलवारोके घावोके चिह्नोके बारेमे अतिरजनकी जरूरत नही थी। ऐसे समाजके लिए वीर-रसकी कविताएँ बिल्कुल स्वाभाविक है।

युद्ध एक पासा है, जो कभी चित्त भी पड सकता है, कभी पट भी। असफल सामन्तके लिए निराशा आवश्यक है, लेकिन निराशा हर वक्त आदमीके दिलको जलाया करती है, इसलिए सब कुछ भूल जानेके लिए आध्यात्मिक भूल-भुलैया या रहस्यवाद भी उतना ही आवश्यक है। प्रभु-वर्गको छोड बाकी अस्सी फीसदी जनताके लिए तो निराशावाद बिल्कुल स्वाभाविक है। आध्यात्मिक भूल-भुलैयासे फायदा उठानेवाले साधारण जनतामे शायद ही कोई थे। हाँ, सिद्धोने सरल जन-भाषामे अपनी कवितायें लिखकर उनके भीतर घुसनेकी कोशिश की। सिद्धोके बारेमे यहाँ एक बात स्मरण रखनेकी है—उनकी कवितामे रहस्यवाद है मगर निराशावाद उससे छू नही गया है। वह कायाको मल-मूत्र-पूर्ण गन्दी चीज नही बल्कि तीर्थकी तरह पवित्र मानते है, सब तरहके सासारिक भोगोको छोडने नही ग्रहण करनेकी शिक्षा देते हैं। शायद इसमे उनका क्षणिकवादी दर्शन कारण रहा हो। ससारकी सभी वस्तुएँ क्षण-क्षण बदलती रहती है, उनमे सयोग-वियोग होता रहता है, लेकिन जगत्की सारभूत यह क्षणिकता बुरी नही है, इसीसे जगत्का वैचित्र्य, जगत्का सौन्दर्य्य कायम है। अतएव क्षणिक होनेसे जगत् उपेक्षणीय नही है।

ग्यारहवी-बारहवी सदीमे महमूद गजनवीके सोमनाथ और बनारस तकके आक्रमणोंके बाद भी उत्तरी भारत कई राज्योंमे बँटा ही रहा। सातो दर्बार आपसमे लड़ते ही रहते, फिर वहाँ आशावाद कहाँ सभव था? अभी सामन्ती

वीरता मौजूद थी, तलवार झनझनाती रहती थी, लेकिन अपनी बिखरी ताकत देखकर निराशावाद उन्हें अपनी ओर खींच रहा था।

(४) **इस्लाम भारतका अभिन्न अंग**—हम पहिले कह चुके हैं, कि जिस वक्त हिन्दीके आदि कवि सरहपा अपनी कविताएँ रच रहे थे, उससे आधी शताब्दी पहिले ही (७१२-१३) सिंध और मुल्तान हिन्दुओंके हाथसे चले गए। तबसे दसवीं सदी तक इस्लामिक राज्य बहुत आगे नहीं बढ़ पाया। अभी काबुलपर भी हिन्दू ही शासन कर रहे थे। लेकिन ग्यारहवींके शुरू हीमें काबुल ही नहीं लाहौर भी हिन्दुओंके हाथसे निकल गया। मुस्लिम-राज्य-स्थापना भारतके इतिहासमें एक बहुत भारी घटना थी। अभी तक जितने भी विदेशी आक्रमणकारी भारतमें आए थे, वह भारतीय संस्कृतिको स्वीकार कर—हाँ उसमें कुछ अपनी ओरसे दे करके भी—हजारों जात-पातोंमें बिखरे भारतीय जन-समुद्रमें मिलते गये। लेकिन अब जिस संस्कृति और धर्मसे वास्ता पड़ा, वह काफी सबल था। उसे हजम करनेकी ताकत ब्राह्मणोंके जीर्ण-शीर्ण ढाँचेमें नहीं थी। हमारे युगसे आगे हिन्दी-कविताका सूफी-युग (चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी) इस बातका साफ सबूत है, कि मुसल्मान सूफियोंने हिन्दी-साहित्य और उसकी जनतापर काफी प्रभाव डाला, लेकिन इस्लामने भारतपर अधिकार करके सिर्फ आध्यात्मिक भूल-भुलैयाके कुछ पाठ ही नहीं पढ़ाये, बल्कि कुछ सामाजिक गुत्थियोंको भी हल किया।

'संदेश-रासक'के रचयिता कवि अब्दुर्रहमान (१०१० ई०)का जुलाहा-वंश दसवीं सदीके अंतसे पहिले ही मुसलमान हो चुका था। इस्लाम जब भारतके दूसरे प्रदेशोंमें फैला, तो वहाँपर भी हम प्रमुख शिल्पी जातियोंको बड़ी खुशीसे इस्लाम स्वीकार करते देखते हैं। कपड़े बनानेवाले कारीगर सिन्धसे ब्रह्मपुत्र तक जो इस्लाममें दाखिल हो गये, उनकी संख्या भारतीय मुसलमानोंमें आज यदि दो-तिहाई नहीं तो आधीसे ज्यादा जरूर है। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। हम जानते हैं, कपड़ेका व्यवसाय रोमनकालसे अंग्रेजी राज्यके स्थापित हो जाने तककी बीस सदियोंमें हमारे देशका बहुत ही महत्त्वपूर्ण व्यवसाय रहा, वह देशकी आमदनीका एक बहुत जबर्दस्त जरिया था। फिर कपड़े बनाने-

वाले कारीगर हिन्दू-धर्मसे इतने रुठ क्यो गये ? उनकी कारीगरीकी बडी माग थी, वह दास नही थे, पैसेके लिए बाजारमे बिकनेकी उन्हे जरूरत न थी, अब्दुर्रहमानकी सुदर कवितासे पता लगेगा, कि वह निरे निरक्षर गँवार भी नही थे। जो कारीगर सूक्ष्म मलमल, उसके ऊपर बेल-बूटे, बनारसी किमखाब और उसपरकी अद्भुत चित्रकारी करनेमे सिद्धहस्त हो, वह शिक्षा-सस्कृतिसे बिल्कुल शून्य हो ही नही सकते। लेकिन हिन्दुओकी जाति-प्रथा जिसे बौद्ध और जैन भी व्यवहार रूपमे स्वीकार कर चुके थे––इन शिल्पी-जातियोको शूद्र बनाकर उनपर सामाजिक अत्याचार करनेके लिए ऊपरी जातियोको अधिकार देती थी। कोई आश्चर्य नही यदि आत्म-सम्मान रखनेवाले पटकार इस्लाम स्वीकार करनेमे अपनी अर्धदासताका अन्त समझने लगे, और वह एक-एक करके नही बल्कि श्रेणी (Guild)-रूपेण इस्लामके झण्डेके नीचे चले गये। अरब तथा बाहरसे आनेवाली दूसरी मुसलमान जातियाँ अभी हिन्दुओंकी जाति-प्रथासे प्रभावित नही हुई थी। इसलिए उस समय सहस्राब्दियोसे पीडित इन हिन्दू-जातियोको हिंदुत्व छोड इस्लाममे जाते ही दमघोटू अन्धेरी कोठरीसे खुले प्रकाश, खुली हवामे सास लेते जैसा मालूम होता था। हिन्दू यह बात नही कर सकते थे। इस्लामने आरभिक शताब्दियोमे इस कामको बडी तत्परतासे किया, लेकिन जैसे-जैसे बडी जातियोके हिन्दू इस्लाममे दाखिल होने लगे; वैसे ही वैसे इस्लामकी वह क्रान्तिकारी भावना नष्ट होती गई और वहाँ भी ऊँच-नीचका बीज बोया जाने लगा।

बारहवी सदीके अतमे दिल्ली और कन्नौज भी इस्लामी झण्डेके नीचे चले गये थे। अब हिन्दू सामन्त एक-एक करके आत्म-समर्पण करनेके लिए कालकी प्रतीक्षा कर रहे थे। महमूद और कितने ही दूसरे मुस्लिम विजेताओने हिन्दुओके मन्दिरोंपर भी प्रहार किया; लेकिन जैसा कि हम कह आये है, वह इतनी मेहनत सिर्फ पत्थरोके तोडनेके लिए नही किया करते थे। वह जाते थे, महन्तों और पुजारियों द्वारा वहाँ जमा की हुई अपार मायाको लूटने। इससे यह लाभ जरूर हुआ कि मदिरों और देवताओकी हजारो बरससे स्थापित महिमा बहुत घट गई। कोई ताज्जुब नही, यदि दिल्ली-विजयके बाद तीन सदियो तक हिन्दू सन्त भी

मूर्त्तियो और देवताओके पीछे लट्ठ लेकर पड गये और चारो ओर निर्गुणवादकी दुदभी बजने लगी। इस ध्वस लीलाने कुछ फायदेका भी काम किया और पुरोहितो-महन्तोके प्रभावको कुछ हलका किया, यद्यपि वह उतना नही कर सकी, जितना कि ईरान और अफगानिस्तानमे, शायद यदि सारा हिन्दुस्तान इस्लामके अन्दर चला गया होता, तो यहाकी सैकडो सस्थाये खतम हो गई होती। मुमकिन है उस वक्त हमारे साहित्य-कलाको और भी क्षति हुई होती और एक बार ईरानकी तरह मुसलमान बने भारतके जातीयता-प्रेमियोंको भी झुझलाना पड़ता।

सिद्ध-युगकी अन्तिम—बारहवी-तेरहवी—सदीमे उत्तरी भारतकी राजनीतिक अवस्था अधिक डॉवाडोल थी। यद्यपि मालवा और गुजरात अपनी स्वतत्रताको बचाए हुए थे, मगर वह भी भविष्यके लिए निश्चिन्त नही थे। ऐसे कालमे भी महाकवियोका होना असभव नही है, लेकिन यदि महाकवि अपने पैरोको धरतीपर रखते तब न। आसमानी नायिका बनाते वक्त उनका स्वप्न बीच-बीचमे पृथ्वीकी विकलताके कारण भग्न हो जाता; इसलिए उनका सृजन भी पूर्ण नही भग्न ही हो सकता है। इस कालमे हमे लुक्खण तथा दूसरे ऐसे ही छोटे-छोटे कवि मिलते हैं। मुसलमान शरणागतकी रक्षाके लिए रणथम्भोरके राणा हम्मीरने हिन्दू-मुसलमान धर्मका ख्याल न करके जिस तरह अपने सर्वस्वकी बाजी लगाई, उसने कुछ महाकवियोको जरूर प्रेरणा दी; बाकी कवि बस छोटे-छोटे सामन्तो और सेठोंकी प्रशसाके पुल बाधनेमे ही अपनी सारी शक्ति खर्च करते रहे।

४. धार्मिक अवस्था

पहिलेके वर्णनमे जहा-तहाँ धर्मके बारेमें भी हम कुछ कह आये है, लेकिन वहाँ हमने उनका सिर्फ सामान्यरूपेण जिक्र किया। हमारे इस युगके कवियों-मे बौद्ध, जैन, हिन्दू और मुसल्मान चारो धर्मके माननेवाले है, इसलिए यहाँ उनके बारेमे कुछ और कहनेकी अवश्यकता है।

मानव-समाजके विकासमे धर्म बहुत पीछे आया है, इसे हम दूसरे स्थानपर

बतला आये हैं। जिस वक्त मनुष्यमें धनी-गरीबका भेद नही हुआ था, क्योंकि अभी उसके पास धन-उत्पादन और लडनेके हथियार बहुत दुर्बल—पत्थर, सीग, लकडीके थे; उस वक्त इन धर्मोकी आवश्यकता नही थी। ब्राह्मणो, बौद्धो तथा जैनोकी देव-माला अपने पुराने रूपमें राजसत्ता नही पितृसत्ताका अनुकरण करती है। वेदोके पुराने देवताओमें किसी एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वरका पता नही लगता, लेकिन जैसे ही दुनियामें "सर्वशक्तिमान् परमेश्वर" पैदा हुए, वैसे ही सर्वशक्तिमान् ईश्वर भी आ धमका। गुप्तोके निरकुश राजतन्त्रने सर्वशक्तिमान् ईश्वर—विष्णु—के महत्त्वको बहुत बढाया। यद्यपि बौद्ध और जैन सृष्टिकर्त्ता सर्वशक्तिमान् ईश्वरको नही मानते थे। तो भी वह स्थापित समाज-व्यवस्थाके लिए खतरनाक नही थे। प्रवाहण जेवलिके समाज-पोषक सामन्त-समर्थक पुनर्जन्मके सिद्धान्तको स्वीकारकर उन्होने पहिले ही अपने कार्य-क्षेत्रको सीमित कर लिया था। और अब तो वह ब्राह्मणोके जाति-पाति, ज्योतिष, सामुद्रिक सबको मानने लगे थे। जिस वक्त ईसाके पहिलेकी दो-तीन सदियोमें यवन, शक, आभीर, गुर्जर आदि जातियाँ बाहरसे हिन्दुस्तानमें घुस रही थी, उस वक्त बौद्धोका ही पलडा भारी था; क्योंकि उन्होने इन जातियोंको समाजमें समानताका स्थान देकर स्वागत किया था। ब्राह्मण इस बलाको बूझ नही पाये, वह अभी सबको "म्लेच्छ" "म्लेच्छ" कह तिरस्कार करते थे, लेकिन जब देखा कि ये आगतुक म्लेच्छ धर्ममें श्रद्धालु बनकर मिनान्दर और कनिष्ककी तरह मठो और मन्दिरोको सोनेसे पाट देते हैं, तो वह भी सोचनेके लिए मजबूर हुए। यद्यपि वह देरसे होशमें आये, मगर उनका हथियार सबसे जबर्दस्त निकला। बौद्ध आगतुक जातियोको सम्मानपूर्ण किन्तु समान स्थान देते थे। ब्राह्मणोने सम्मानपूर्ण ही नही बल्कि बहुत ऊँचा स्थान—सिर्फ अपनेसे एक सीढी नीचे—दिया, पीछे उन्हें आबूके अग्निकुण्डसे निकली क्षत्रिय-जातियाँ कहा गया। आबूके अग्निकुण्ड और उससे आदमियोकी बात भले ही बिलकुल झूठी है, मगर ब्राह्मणोने आगन्तुक म्लेच्छ-जातियोको क्षत्रिय बनाया, इसमें कोई सन्देह नही। और इस प्रकार सामन्ती भारतने चिरकालके लिए ब्राह्मणोंके प्रभावको स्वीकार किया।

(१) **बौद्ध धर्म**—ईसाकी पहिली तीन-चार शताब्दियोमें जब ये आगतुक

क्षत्रिय बनाए जा रहे थे, उसी वक्त बौद्ध धर्म निहत्था कर दिया गया। बौद्ध अब भारतकी किसी सामाजिक समस्याका अपने पास कोई हल नहीं रखते थे, अब उन्हें अपनी पुरानी कमाईको बैठकर खाना था। सामन्त पूरी तौरसे ब्राह्मणोंके हाथमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे चले गये थे। बौद्ध कभी-कभी दिङ्नाग और धर्मकीर्त्तिके प्रौढ़-दर्शनको सामने रखकर लोगोंकी आस्था या क्षोभ पैदा करना चाहते थे, कभी योग-समाधि, तन्त्र-मन्त्र डाकिनी-साकिनीके चमत्कारसे लोगोंको अपनी ओर खींचना चाहते थे और कभी सिद्धोंके निश्चिन्त जीवन और लोक-भाषाकी कविताओंको भी इस कामके लिए इस्तेमाल करते थे, मगर यह सब हवामें तीर चलाना था। अब भी बहुसंख्यक जनताकी कितनी ही समस्याएं सामने थीं, लेकिन बौद्धोंके मस्तिष्क और हथियार कुंठित हो चुके थे। उन्होंने चलते-चलाते हमारी भाषाकी कितनी ही सेवा जरूर की। अफसोस है कि उनकी कविताओंका बहुत कम अंश हमारे पास बच रहा। उनकी सैकड़ों छोटी-छोटी धार्मिक पुस्तकें ग्यारहवीं-बारहवीं सदीमें किये तिब्बती भाषाके अनुवादोंमें मौजूद हैं, मगर उससे भी अधिक संख्या उन पुस्तकोंकी रही होगी, जो शुद्ध सांसारिक दृष्टिसे लिखी गई थीं, अतएव वह भारतसे बाहर नहीं ले जाई गईं, और बौद्ध धर्मके साथ वह यहीं नष्ट हो गईं।

बौद्ध धर्म चलाचली पर था, उसकी भीतरी कितनी ही कमजोरियां उसके हितचिन्तकोंको मालूम होने लगी थीं, तो भी सबसे बड़ी कमजोरी——सामाजिक समस्यासे हाथ खींच लेना——की ओर उनका ध्यान नहीं गया। दूसरे धार्मिक पंथोंकी तरह बौद्ध धर्ममें भी ब्रह्मचर्य और भिक्षु-जीवनपर बहुत जोर दिया गया था, लेकिन बारह शताब्दियोंके तजुर्बेने बतला दिया कि वह ढोंगके सिवाय और कुछ नहीं है। आदमी आहारकी तरह काम-भोगमें भी दूसरे पशुओंसे बहुत भिन्नता नहीं रखता। मठोंके अप्राकृतिक-जीवनमें जो बहुत-सी बुराइयाँ बहुत भारी परिमाणमें घुस आयी थीं, उन्हें देखकर कुछ विचारकोंने सोचा, हमें इस ढोंगको हटाना चाहिए और मनुष्यको सहज-स्वाभाविक जीवनपर लाना चाहिए। इन बातोंको वह खुलकर नहीं कह सकते थे, क्योंकि खुलकर कहनेपर पन्थ और भक्त ही नहीं सारे बाहरी समाजका विरोध इतना

जबर्दस्त होता, कि उन्हे अपना अस्तित्व भी कायम रखना मुश्किल हो जाता। उन्होने छिप करके एक सीमित क्षेत्रमें अपने विचारोका प्रचार करना शुरू किया। मुक्त यौन-सबधके पोषक चक्र-सबर आदि देवता, उनके मत्र और पूजा-प्रकार तैयार किये। गुह्य-समाज एकत्रित होने लगे, जहाँ स्त्री-पुरुषोको मद्य-मैथुनकी पूरी स्वतत्रता दी गयी। लेकिन जल्दी ही यह सब काम सहज, स्वाभाविक नही अस्वाभाविक रूपमें होने लगा। सरहपाके वचनोसे जान पडता है, कि वह भोग-स्वातत्र्यको अस्वाभाविकता या अतिमे नही ले जाना चाहता था। वह इस बातका समर्थक था, कि सहज मानवकी जो सहज आवश्यकताएँ है, उन्हे सहज रूपसे पूरा होने देना चाहिए। उसने मतर-ततर, देवी-देवतापर भी ठोकर लगाए है। मगर जान पड़ता है, भीतरी-बाहरी विरोध बहुत जबर्दस्त था, सहज-मार्गसे पाखड-मार्ग पकड़ना अधिक आसान था, इसलिए सरहपाका सहज-यान, तन्तर-मन्तर, भूत-प्रेत, देवी-देवता-सबधी हजारो मिथ्या-विश्वासो और ढोगोके पैदा करने-का कारण बना। ये सारे मिथ्या-विश्वास, सारी दिव्य-शक्तियाँ महमूद और मुहम्मदबिन-बख्तियारके सामने थोथी निकली और तारा, कुरुकुल्ला, लोकेश्वर और मजुश्रीके मन्दिरो और मठोमे हजार-हजार बरसकी जमा हुई अपार सपत्ति अपने मालिकों और पुजारियोंके साथ ध्वस्त हो गयी। बौद्ध भिक्षुओके रहनेके लिए जब न कोई विहार रहा, न उनके सरक्षक और पोषक सेठ-सामन्त पहिली अवस्थामें रहे, न साधारण जनताका विश्वास पूर्ववत् रहा, तो उन्हे भारतमे दिन काटना मुश्किल होने लगा। पश्चिमकी धरती तो उनके हाथसे पहिले ही निकल चुकी थी; लेकिन उत्तर (तिब्बत), पूरब (बर्मा, चीन) और दक्खिन (सिहल)में अब भी उनके स्वागत करनेवाले मौजूद थे। इस प्रकार बचे-खुचे बौद्ध भिक्षु—बौद्ध गृहस्थोंके अगुआ—बाहर चले गये। भिक्षुओके अभावमें गृहस्थ बौद्ध धर्मको भूलने लगे, और जिसकी जिधर सीग समाई, उधर चले गए। इस प्रकार नालन्दा, विक्रमशिलाके ध्वसके बाद पाँच ही छ पीढियोमें बौद्ध-धर्म नाम-शेष रह गया।

(२) **जैन धर्म**—सामन्तोपर जैन धर्मका पुराने समयमे क्या प्रभाव पड़ा था, इसके समर्थनके लिए काफी प्रमाण नही मिलते। राष्ट्रकूट (७५३-९७)

और गुर्जर-सोलंकी (६६१-१२५७) राजाओंका जैन धर्मपर बहुत अनुराग था, लेकिन लड़ाकू सामन्तोंके इस अनुरागमें पहिला ही कदम तो यह था, कि बेचारी अहिंसा ताक पर रख दी गई। जैन गृहस्थ ही नहीं जैन मुनि (हेमचन्द्र) भी तलवारकी महिमा गाने लगे भला दिग्विजयोंके जमानेमें अहिंसाको कोई लेकर चला जा सकता था। बौद्ध धर्मकी तरह जैन धर्म भी जाति-पाँति विरोधी था, लेकिन हमारे युगमें वह भी जाति-पाँतिको वैसे ही मानने लगा था, जैसे ब्राह्मण। इतना ही नहीं हमारे एक जैन कवि मुनिने तो जैन गृहस्थोंको उपदेश दिया है, कि वह अपनी लड़कीको अजैन घरमें न दे। भीतर भिन्न-भिन्न मतोंके रखनेपर भी जो अब तक शादी-ब्याह हो सकता था, उसे भी बन्द कर दिया गया, चलो छुट्टी मिली। जैन धर्ममें सृष्टिकर्त्ता ईश्वर नहीं माना जाता, लेकिन अब तो स्वयं महावीरके नामके साथ परमेश्वर लगाया जाने लगा। जैन गृहस्थ और दूसरे लोगोंके लिए पारस-मणि परमेश्वर-शब्द मिल गया। परमेश्वरमें मिन्नत भी मानी जाने लगी। परमेश्वर-शब्द काफी था, साधारण लोग उसीमें सृष्टिकर्त्ता-विधाता सब समझ लेते थे, आगे बालकी खाल खींचनेकी उन्हें जरूरत नहीं थी।

सामन्तोंने जैन धर्मको अपनाकर भी कितना निबाहा, यह आपने देख लिया। हाँ, व्यापार करनेवाली जातियाँ ज्यादा कट्टर बनीं और आज भी जैनोंमें अधिकांश वैश्य ही मिलते हैं। उन्होंने अहिंसाको जरूर कुछ ज्यादा गंभीरताके साथ स्वीकार किया। पश्चिममें भी बनिया-वर्ग जीव-दयाकी ओर बहुत खिंचता है, यद्यपि उसकी दया है—

"जाननहारा जानिया, बनिया तेरी बान।
बिनु छाने लोहू पिवै, पानी पीवै छान॥"

इसे जैन धर्मकी सफलता कह लीजिए। मगर इस सफलताने हानि कितनी पहुँचाई? पोरवाल, ओसवाल, अग्रवाल, श्रीमाल, आदि जातियाँ मूलतः यौधेय-आर्जुनायन आदि गणोंकी वह वीर-क्षत्रिय जातियाँ थीं जिन्होंने किसी समय यवनों, शकों, गुप्तोंके दाँत खट्टे किये और भारतमें जनतंत्रताके प्रदीपको शताब्दियों तक जलाये रखा। अब सिंहोंके नख-दाँत तोड़ दिये गए और वे

बकरी बनकर सूद खाने और तराजू तोलनेमें लग गये; उन्हे तीर-तलवारकी जरूरत नही रह गई। सवाल हो सकता है, क्षत्रियसे वैश्य होने——ब्राह्मणी व्यवस्थाके अनुसार एक सीढी नीचे गिरने——के लिए ये क्षत्रिय तैयार कैसे हो गए ? हम इसके बारेमे इतना ही कह सकते है "व्यापारे वसति लक्ष्मी" अथवा कुछ पीढियों[1] तक अपनी स्वतन्त्रताके लिए तलवार चलाकर देख लिया, कि राज-तन्त्रके इतने बडे सैनिक-सगठनके सामने उनका तलवार हिलाना फजूल है। अब वह क्षत्रियकी जगह नगर-सेठ बने। व्यापार खूब चमका। करोडो रुपये लगाकर देलवाडा जैसे अनगिनत मदिर बने, परम-त्यागियों——पात्र और वस्त्र तक भी न रखनेवाले यतियो——का जैन धर्म सोने-हीरेकी राशिसे जगमग-जगमग करने लगा। लेकिन, इस नये सभ्य जैन समाजमे बेचारे निर्ग्रन्थो——नग्न साधुओ-की आफत आयी। सम्भ्रान्त परिवारोके पुत्र मुनि बन नगे-मादरजाद रहनेसे हिचकिचाने लगे और गृहस्थ भी अपने मुनियोंको इस रूपमे देखनेसे सकोच करने लगे। अब वस्त्रधारी श्वेतावरोका पलडा भारी हो चला; लेकिन वस्त्र ही तक भले घरोके लडके सन्तोष कैसे कर सकते थे ? सवाल उठ खडा हुआ, चैत्य-वासी (बस्तीसे बाहर मठोंमे रहनेवाले) और बस्ती-वासीका। लेकिन कुछ ही समय बाद यह भी सवाल व्यर्थ हो गया, और जैन मुनि बस्ती-वास ही नही दरबार-वास तक करने लगे।

इस युगमे तन्त्र-मन्त्र और भरवी-चक्र या गुप्त यौन-स्वातत्र्यका बहुत जोर था। बौद्ध और ब्राह्मण दोनो ही इसमे होड लगाए हुए थे। भूत-प्रेत, जादू-मन्तर और देवी-देवता-वादमे जैन भी किसीके पीछे नही थे, रहा सवाल वाम-मार्गका, शायद उसका उतना जोर नही हुआ, लेकिन वह बिल्कुल नही था, यह भी नही कहा जा सकता। आखिर चक्रेश्वरी देवी वहाँ भी विराजमान हुई, और हमारे मुनि कवि भी निर्वाण-कामिनीके आलिंगनका खूब गीत गाने लगे,

---

[1] जोहिवार (भावलपुर)के जोहियों तथा मेवोंने मुस्लिम काल तक अपनी तलवार नहीं छोड़ी।

जिससे उसी दिशाका सूक्ष्म संकेत मिलता है ।

जैनोने अपभ्रंश-साहित्यकी रचना और उसकी सुरक्षामें सबसे अधिक किया । वह ब्राह्मणोंकी तरह संस्कृतके अंधभक्त भी नहीं थ, क्योंकि व विश्वामित्रकी भांति उनके मुनियोंने संस्कृतमें ही नहीं प्राकृतमें अपने ग्र लिखे थे । व्यापारी होनेसे बही-खाता तथा मातृभाषा लिखने-पढ़नेका ज्ञान उनके लिए बहुत जरूरी था । ब्राह्मणोंकी समाज-व्यवस्थाके साथ वह बं थे । ब्राह्मणोके महाभारत, पुराण और कथा-वार्त्ताका हर तरफसे प्रभाव जरूरी था, क्योंकि वह समुद्रमें बूँदकी तरह थे । इस प्रकार जैन धार्मिक ने के लिए यह जरूरी हो पड़ा, कि अपने भक्तोंको ब्राह्मणोंका ग्रास बननेसे ब के लिए अपने स्वतन्त्र कथा-पुराण तैयार करे । व्यापारीसे यह आशा नहीं जा सकती कि वह धर्म जाननेके लिए कठिन-कठिन भाषाएँ सीखता फि अतएव जैनोने देश-भाषामें कथा-साहित्यकी सृष्टि की, जिसके कारण और पुष्पदन्त जैसे अनमोल अद्वितीय कविरत्न हमें मिले । उस साहि रक्षाके लिए हम और हमारी अगली पीढ़ियां उन जैन नर-नारियोंकी कृतज्ञ रहेंगी, जिन्होंने इन अमूल्य निधियोंको नष्ट होनेसे बचाया । याद र इन अमूल्य निधियोंमें सिर्फ जैनोंके ही ग्रन्थ नहीं बल्कि अब्दुर्रहमानके ' रासक" जैसे ग्रन्थ भी है ।

(२) **ब्राह्मण**—हम कह चुके हैं कि ईसवी सनके शुरू होनेके बाद ही ब्रा का पलड़ा भारी हो गया । हाँ, उन्होंने सिर्फ सामन्त-वर्गकी स्वेच्छा और क्ष युद्धाग्निकी भीतरी समस्याको ही अग्नि-कुण्डवाले क्षत्रिय बनाकर हल था । लेकिन समाजके हर्त्ता-कर्त्ता तो आखिर सामन्त थे । उन्हें जो कुछ मि जुलना था, वह इन्हीं सामन्तोंसे । बाकी भेड़ोंको भरमाना उनका काम जिसमें कि ब्राह्मणोके सिरजे ईश्वरकी निरंकुशताकी तरह राजाओंकी कुशताके खिलाफ भेड़ें कोई तूफान न खड़ा करें । सामन्त (राजा) और ब्राह्मणों—मेरा मतलब धार्मिक नेताओं और पुरोहितोंसे है—का चोली-दामनका साथ रहा है । ब्राह्मणोंपर सामन्त जितना विश्वास कर था, उतना वह अपनी जातिके व्यक्तिपर भी नहीं कर सकता था ।

सामत-वशी (क्षत्रिय)को राजके प्रधान-मत्री जैसे बडे पदको देकर कोई राजा अपने सिहासनको खतरेमे डाल कैसे सकता था ? बिम्बसार (५०० ई० पू०)के ब्राह्मण प्रधान-मत्री वर्षकारसे लेकर सदा ही हिन्दू-राजाओके प्रधान-मत्री ब्राह्मण होते रहे। पुष्पमित्र और पेशवा जैसे दो-एक ही अपवाद है, जब कि ब्राह्मणोने नमक-हरामी की हो। वह कभी सिहासनपर बैठनेकी कामना नही करते थे, इसलिए प्रधान-मत्रीका पद यदि ब्राह्मणोके लिए सदा सुरक्षित रहता हो, तो इसमे आश्चर्यकी क्या बात है।

और ब्राह्मण घाटेमे भी नही थे। शुकनासका ऐश्वर्य तारापीडसे कम न था। प्रधान-मत्रीके महलकी सजावट और अन्तःपुरकी रौनक राजाओके हरमसे कम न थी। ब्राह्मणोने जो भारतीय जनतन्त्रताके हल्केसे हल्के चिह्नको भी न रहने देनेकी हर तरहसे कोशिश की, उसके लिए उनका स्वार्थ मजबूर करता था। प्रधान-मत्री और मत्री ही नही दूसरे ब्राह्मणोके लिए भी सामन्त हर तरहसे पूरी भोग-साधना जुटाते थे। चन्द्रदेवने १०६३ ई०मे हाथमे कुश लेकर एक ही बार कटेहली (बनारस)के सारे परगने (पत्तला)को ब्राह्मणोंको दान दे दिया; ११०० ई०मे फिर उसने वृहदब्रह्हवरथ पत्तलाको दान किया। राष्ट्रकूट, पाल तथा दूसरे राजवश भी ब्राह्मणोके प्रति ऐसी ही उदारता दिखाते रहे। विश्वामित्र-वशिष्ठ-भरद्वाजके समयमे भी ब्राह्मणोका जीवन भोग-शून्य नही था, फिर हमारे इस कालके बारेमे पूँछना ही क्या ? ब्राह्मणोके मदिरो-पर किस तरह मुक्त-हस्त हो धन खर्च किया जाता था, इसे देखना हो, तो एलौराके कैलाशको देख लीजिए—एक अद्भुत, विशाल शिवालय पहाड काट-कर निकाल लिया गया है।

हम कह चुके है, कि वाम-मार्गमे ब्राह्मण भी बौद्धोके साथ कन्धेसे कन्धा मिलाकर खडे थे। मन्तर-तन्तरकी बात तो खैर आँखमे धूल झोकनेकी नीतिके कारण हो सकती है, लेकिन चक्र-पूजा। यौन-स्वातन्त्र्यकी उन्हे क्या जरूरत थी ? आखिर ब्राह्मण एकपत्नि-व्रत नही थे, सपत्तिके अनुसार वह चाहे जितने व्याह कर सकते थे। दासियोके रखनेमे भी उनके लिए कोई सीमा न थी। बौद्ध भिक्षु तो बेचारे जबर्दस्तीके ब्रह्मचर्यके फन्देको किसी तरह ढीला करना

चाहते थे, जिनकी कि ब्राह्मणोंको जरूरत नहीं थी। हाँ, हो सकता है, मद्य-पानके विरुद्ध जो कड़ाइयाँ पीछेके स्मृतिकारोंने कर दी थी, उनसे मुक्त होनेके लिए इन्होंने वज्रका आश्रय लिया। मीन-मांस उस युगके ब्राह्मणोंमें वर्जित था ही नहीं और मुद्रा—हाथकी अंगुलियोंको टेढ़ी-मेढ़ी करना—के लिए वज्रकी शरण लेनेकी जरूरत नहीं थी। इस प्रकार मुख्य कारण मद्य रहा होगा और स्त्रीके बारेमें उन्होंने "अधिकस्याधिक फल" समझ लिया होगा।

ब्राह्मणोंने सीधे सेवा करके ही सामन्तोंका उपकार नहीं किया, बल्कि उन्होंने उनके फायदेके वास्ते साधारण जनताकी शक्तिको छिन्न-भिन्न करनेके लिए खूब ढूंढ-ढूंढ करके हथियार चलाए। खानेकी छुआछूतमें खूब तरक्की की और "आठ कनौजिया नव चूल्हा" करके उसे अपने घरसे शुरू किया। उस वक्त भारतके जो व्यापारी अरब जाते थे, उनके बारेमें एक अरब लेखक (अलबरूनी)ने लिखा है—वे हमारे (मुसल्मानोंके) ही हाथका खाना खानेसे परहेज नहीं करते, बल्कि आपसमें भी एक दूसरेका छुआ नहीं खाते।" बहुत-सी नीच कही जानेवाली जातियोंके प्रति तो ब्राह्मणोंकी व्यवस्था बहुत क्रूर थी। कितनी क्रूर थी इसका अन्दाजा कुछ-कुछ आपको लग सकता है, यदि परम अद्वैतवादी शंकराचार्यकी जन्मभूमि मलबारके पंचमोंकी बीसवीं शताब्दीकी अवस्थाका आपको थोड़ा-सा परिचय हो। उस युगके नगरोंकी बहुतसी सड़कें उनके लिए वर्जित थीं; कितनी ही सड़कोंपर थूकनेके लिए उन्हें अपने साथ पुरवा रखना पड़ता था। लेकिन ब्राह्मणोंकी एक और भी व्यवस्था थी—"स्त्री-रत्नं दुष्कुला-दपि", इसलिए श्रोत्रिय ब्राह्मण भी शूद्रा सुंदरीसे पार्शव[1] सन्तान पैदा करनेका पूरा अधिकार रखता था।

ब्राह्मणोंने मिथ्या-विश्वासोंको फैलाने, वयस्क मानवताको बच्चा बनानेके लिए पुराणोंकी संख्या और कलेवरको इसी कालमें खूब बढ़ाया। बुद्धि रखनेवालोंपर यह हथियार नहीं चलता, इसलिए उसी युगमें बुद्धिको भूल-

---

[1] शूद्रा स्त्रीमें ब्राह्मणका पुत्र।

भुलेयामे डालनेके लिए शकर (७८८-८३०) श्री हर्ष (११८० ई०) जैसे दार्शनिकोने "मुँहमे राम बगलमे छूरी" वाला अद्वैतवाद पैदा किया।

इस कालमे जातीय बिखरावको ब्राह्मणोने चरम-सीमापर पहुँचाया। अभी तक जातियोके लिए भाषा या प्रान्तोका भेद नही था, मगर अब ब्राह्मणोने कनौजिया आदि बिल्कुल अलग-अलग ब्राह्मण जातियाँ तैयार की और एक जातिमे भी गोविन्दचद्र-जयचन्द्र (१११४-९३)के कालमे सरयू-पारियोमे पक्ति (उच्चतम) ब्राह्मण और बल्लालसेन (११५८-७९)के समय बगालमे "कुलीन" ब्राह्मणके नामसे और नये-नये टुकडे किये गये। दडीके कुम्हार-ब्राह्मण जहाँ भारतके किसी भी प्रान्तमे जाकर स्वच्छन्दतापूर्वक रोटी-बेटी कर सकते थे, वहाँ अब रास्ता चारों ओरसे बन्द था। ब्राह्मणोकी व्यवस्थाने देश-रक्षाके कामके लिए क्या-क्या किया? स्त्रियोके लिए तो युद्धमे कोई स्थान था ही नही। ब्राह्मण-देवता युद्ध-सेवासे मुक्त थे। वैश्यका काम था डेढा-सवाई करना। शूद्रोंकी हजार जातियाँ?—उन्हे हथियार लेकर अपनी पाँतिमे लडनेको कौन क्षत्रिय इजाजत देता। लडनेका काम था सिर्फ क्षत्रिय-पुरुषोंका, और उनके सामने भी युद्ध करनेके लिए कोई बडा आदर्श नही था, सिर्फ नमक-हलाली और इसके बाद सामन्तका भय रह गया था। सामन्तके भयसे या "हम मालिकका नमक खाते है" इस ख्यालसे लडनेवाले योद्धा, किस श्रेणीके होंगे, इसे आप खुद समझ ले। आप कहेगे, इस युगमे अरबों और तुर्कोंसे युद्ध छिड़ता रहता था, जिसमे योद्धाके दिलमे हिन्दू-धर्मकी रक्षाका भी ख्याल आ सकता था। हम इसे मानते है, लेकिन कुछ ही हद तक। क्योंकि मुसल्मान सामन्तकी सेनामे सिर्फ मुसल्मान ही मुसल्मान और हिन्दू सामन्तकी सेनामे सिर्फ हिन्दू ही हिन्दू सैनिक रहे, इसका कोई नियम नही था। अक्सर दोनों हीकी सेनाये मिली-जुली होती थी।

(४) **इस्लाम**—इस्लामकी इस युगमे क्या अवस्था थी, इसका जिक्र हम पहले कर चुके हैं। अभी सदियोंकी मानसिक और शारीरिक दासताओंको तोडनेकी उसमे हिम्मत और क्षमता थी। साथ ही अरबी खलीफा (उमैया और अब्बासी) कोई सकीर्ण विचारवाले धर्मान्ध शासक नही थे। इस्लामकी

पहिली सदीमें चाहे कुछ तोड़-फोड़ हुआ हो, मगर बादमें दुनियाकी सभी संस्कृतियों और उनकी देनोंके मुसल्मान शासक जबर्दस्त कदरदान संरक्षक थे। अफलातूँ, अरस्तू और दूसरे यूनानी दार्शनिकों—सादेश-वेत्ताओंका पता भी नहीं लगता, यदि बगदादके खलीफाके समय अनुवाद और टीकाओं द्वारा उनकी रक्षा न की गई होती। उस समय भारतसे भी कितने ही विद्वान बड़े सम्मानपूर्वक बगदाद बुलाये गए थे, जिन्होंने भारतीय दर्शन, वैद्यक, गणित और ज्योतिषके बहुतसे ग्रन्थोंके अरबी अनुवाद करनेमें सहायता की थी। मुस्लिम अरबोंने हिन्दुस्तानी अंकोंको स्वीकार ही नहीं किया, बल्कि उन्हींके द्वारा वह सारे युरोपमें फैला।

अब्दुर्रहमानकी कवितामें जो बिल्कुल भारतीय आत्मा बोल रही है वह बनावटी बात नहीं थी। अब्दुर्रहमानने देवताका मंगलाचरण करते वक्त अपने ग्रंथमें अपनेको मुसल्मान भक्त साबित किया है। ग्यारहवीं शताब्दीसे मुस्लिम और हिन्दू सामन्तोंमें राजनीतिक शक्तिको हथियानेके लिए जो भीषण संघर्ष शुरू हुए, उसीके प्रोपेगण्डामें हिन्दू और इस्लाम धर्म घसीटे जाने लगे, जैसे कि आज हॉलिफेक्स और चर्चिल जैसे कट्टर साम्राज्यवादी ईसाई-धर्मको घसीट रहे हैं। यह देशका दुर्भाग्य था कि सामन्तोंके उस झूठे प्रोपेगण्डाका शिकार साधारण जनता भी होती थी और उसने कितने ही समय अपनेको अन्धा सिद्ध किया।

जिस वक्त सामन्त अपने स्वार्थके लिए धर्मकी दुहाई देकर कटुताका बीज बो रहे थे, उसी समय सरल-हृदय मानवता-प्रेमी कुछ दूसरे भी पुरुष हुए थे, जो सामन्तोंकी चालसे क्षुब्ध थे और अपनी शक्ति भर दोनों संस्कृतियों और धर्मोंमें भाई-चारा स्थापित करनेकी कोशिश करते थे। हाँ, वह संख्या और साधन दोनोंमें कमजोर थे। सूफी महात्माओंकी संख्या कभी अधिक नहीं रही और वह जिस तसव्वुफ और अद्वैतका प्रचार करते थे, वह साधारण जनताकी पहुँचसे बाहरकी बात थी। साधारण जनताके समझने और लाभकी बातको लेकर यदि वह कुछ करना चाहते, तो उनकी हालत भी वही हुई होती, जो कि

साम्यवादी सैयद मुहम्मद मेंहदी जौनपुरी[१]की हुई। सामन्तोका हथियार सीधा सासारिक भोगका प्रलोभन था, जब कि दोनो संस्कृतियोमे समन्वय स्थापित करनेवालोका हथियार था, अधिकतर परलोकवाद और मानवकी सहज सहृदयतासे अपील करना।

तेरहवी और बादकी भी दो-तीन सदियोमे हमें यदि खुसरोको छोडकर कोई मुस्लिम कवि नही दिखलाई पडता, तो इसका यह मतलब नही कि करोडो भारतीय मुसल्मान बनते ही कवि-हृदयसे बिल्कुल वञ्चित हो गए। हिन्दुस्तानकी खाकसे पैदा हुए सभी मुसल्मानोके लिए अरबी-फारसीका पडित होना सम्भव नही था। अब्दुर्रहमान जेसे कितने ही कवियोने अपनी भाषामे मानव-समाजकी भिन्न-भिन्न अन्तर्वेदनाओको लेकर कविताकी होगी। कुछको उन्होने कागजपर भी लिखा होगा; मगर उनको हम तक पहुँचानेके लिए सहायक नही मिले। सुल्तानी दर्बारमे विदेशी भाषाओकी तूती बोल रही थी। मुस्लिम सामन्तोके पुस्तकालयोमे हिन्दुस्तानी लिपि और हिन्दुस्तानी भाषामे लिखी गई कविताएँ पचास-पचास पीढी तक कैसे सुरक्षित रह सकती थी। उधर हिन्दू सामन्तोके यहाँ जब स्वयभू जैसे प्रथम श्रेणीके कवि भी जैन होनेके कारण भुला दिए जा सकते है, तो मुसल्मान कविके बारेमे पूछना ही क्या है। यह वजह है जो अब्दुर्रहमान (१०१०)से कुतबन (१४९३) तककी प्राय पाँच सदियोमे हम किसी मुसल्मान कविकी रचनाका पता नही पाते। रचनाएँ काफी रही होगी, लेकिन परिस्थितियाँ उनके जीवित रहनेके अनुकूल नही थी। उन्हे एक ओर "हिन्दी-गन्दी" समझा जाता था और दूसरी ओर म्लेच्छ कविकी कृति।

५. सांस्कृतिक अवस्था

संस्कृति एक बहुत ही व्यापक शब्द है। यहाँ इस युगकी चित्रकला, मूर्त्तिकला, वास्तुकला, सगीतकलाके बारेमें ही दो-चार शब्द हम कहना चाहते है। पाँचवी-छठी

---

[१] देखो "मानव-समाज"

सदी भारतीय कलाके मध्याह्नका युग था। सातवी सदी तक पूर्व-अर्जित मान बना रहा। आठवी-नवी सदीमे कुछ ह्रास जरूर होने लगा, लेकिन पतन पूरी तोरसे दसवी सदीमे दिखलाई पडता है। खास करके यह बात चित्र और मूर्त्ति-कलाके बारेमे बहुत देखी जाती है। दसवी शताब्दी और उसके बादकी मूर्त्तियाँ बिल्कुल ही बदसूरत और भावशून्य है। तेरा नो तीर्थंकरकी मूर्त्तियोंको बनानेमे पहिलेसे भी कलाकार बेगार-सी टालते दीख पडते थे। पाचवी, छठी, सातवी सदीकी कुछ बुद्ध मूर्त्तियाँ बडी सुन्दर है, मगर आठवी सदीके बाद तो बुद्ध और तीर्थंकरोकी मूर्त्तिया निरी पाषाण-सी रह गई है। हा, बोधिसत्त्वों और ताराकी मूर्त्तिया नवी-दसवी सदीमे उतनी बुरी नही देख पडती, बल्कि कोई-कोई तो बहुत सुन्दर है, खास करके कुर्किहारकी आठवी-नवी सदीकी कितनी ही पीतलकी मूर्त्तियाँ बहुत सुन्दर है। दसवी, ग्यारहवीं सदीके कुछ चित्रपट तिब्बतमे मौजूद है। लदाख और स्पितिके बौद्ध मठोमे कुछ भित्ति-चित्र भी बहुत अच्छे हैं। लेकिन दसवी-ग्यारहवी सदीके जो चित्र जैन और बौद्ध ताल-पोथियों-पर मिले है, वे जरूर भद्दे है। जान पडता है नवी सदीके बाद अपवाद रूपसे ही कोई-कोई अच्छे चित्रकार और मूर्त्तिकार रह गये। कला जितनी दूर तक अव-नत हो चुकी थी और जिस तरहके भद्दे नमूनोको तैयार किया जा रहा था, उसे देखनेसे महमूदके आक्रमणके बाद—खासकर बारहवी सदीके बाद—से जो चित्र-मूर्त्तिकलाकी ओरसे उदासीनता बर्ती जाने लगी, वह अनुचित नही थी। वास्तुशिल्प और खासकर पत्थरोंकी नक्काशी बारहवी शताब्दीमें उतनी बुरी न थी। देलवाडाके जैन मदिरोंमे सगमर्मरपर खुदे कमल मधुच्छत्र बहुत सुन्दर हैं, यद्यपि उनमे अलंकरणकी मात्रा जरूरतसे ज्यादा दीख पडती है, जिससे गुप्तकालीन सादे सौम्य सौन्दर्यकी उसमे कमी है। तो भी, संगमर्मरको मोम या मक्खनकी तरह अपनी छेनियोसे काट-छाटकर कलाकारने जो कौशल दिखाया है, वह सराहनीय है। लेकिन उसी पत्थरमे जो मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं, उनसे विश्वास ही नही होता, कि उतने सुन्दर कमल और मधुच्छत्र बनानेवाले हाथ इतनी भद्दी मूर्त्तियाँ भी बना सकते है। बारहवी सदीके बाद तो एक तरह चित्र और मूर्त्तिकलाका दिवाला ही निकल जाता है।

इस युगमे सगीतकी ओर भी ध्यान दिया गया था। आजकलकी कितनी ही राग-रागिनियोंका वर्गीकरण और नामकरण अपभ्रंश-साहित्यके आरभके साथ होता है। नृत्य और सगीतकी ओर यद्यपि सामन्त-वर्ग बहुत ध्यान देता था और सामन्त-कन्याओकी शिक्षामे वह अनिवार्य विषय था; लेकिन अब राजकुमारियाँ दडीके समयकी तरह अपने कौशलका प्रदर्शन खुले आम नही कर सकती थी। खुले आम नृत्य-सगीतकी जिम्मेवारी अब केवल वेश्याओपर रह गई थी।

यद्यपि हमारे युगमे कालिजरमे "प्रबोध-चद्रोदय" जैसे कुछ नाटक लिखे गए, मगर जान पडता है, अब नाटकोका समय बीत चुका था। जहाँ नाटकके लिए जबर्दस्त प्रेरणा स्वाभाविक मानव-जीवन था, वहाँ अब वेदान्त और दर्शन अपने ध्यान-ज्ञान और राग-द्वेष आदिके रूपमे नाटकोके लिए पात्र देने लगे, फिर वह नाटक कैसा होगा, यह आप खुद समझ सकते है।

सामन्तोकी विलासिताने कुछ नई कलाओकी भी सृष्टि की। स्वयभूने राष्ट्रकूट ध्रुव और उसके उत्तराधिकारीके जल-क्रीडा-मण्डपमे जो देखा-सुना था, उसीका वर्णन अपने रामायणमे जल-क्रीडाके रूपमे किया। उस समय सामन्तोके स्नान-कुण्ड, स्नान-मण्डप उसके खभे और दीवारोंके अलकृत करनेमें जगम और स्थावर रत्नोका व्यय दिल खोल कर किया जाता था। सामन्तोकी कलाका प्रधान उद्देश्य होता ही था कामोद्दीपन। वस्तुत सामन्तोके जीवनका आदर्श ही था—खाओ, पिओ, मौज करो। धर्म, दर्शन सारे उसके लिए दिखावे और जब तब मन बहलावकी चीज थे।

६. साहित्यिक अवस्था

हमारा यह साहित्य-युग उस वक्त आरम्भ होता है, जब कि बाण और हर्षवर्धनको रगमच छोडे बहुत देर नही हुई थी। कवियोमे अश्वघोष, भास, कालिदास, दण्डी भवभूति, और बाणकी कृतियाँ बहुत चावसे पढी जाती है। स्वयभूने इन पुराने कवियोके प्रति अपनी कृतज्ञता साफ प्रकट की है। सिद्धोमेसे भी सरहपा, तिलोपा, शान्तिपा जैसे कितने ही सस्कृतके बडे-बडे पंडित थे; हाँ, जब

वे भाषा-कविता लिखने बैठते, तो अपने संस्कृत-भाषाके ज्ञानको भूल जाते थे। तभी वह इतनी सरल भाषामें लिखनेमें सफल हुए।

कविता और कविको सदा आश्रयकी जरूरत होती है। वह युग सामन्तोंका था। जिस काव्य और कविको सामन्त-वर्गका आश्रय प्राप्त था, वह आर्थिक लाभके तौर पर ही सफल नहीं होता, बल्कि वह चिरस्थायी होनेका अधिकार रखता था। हर युगकी तरह उस समय भी साधारण जनताकी माँगको पूर्ण करनेके लिए कविताएँ बनती थीं। मगर उनके चिरस्थायी होनेके मार्गमें बहुत सी बाधाएँ थीं। यद्यपि स्वयंभू और पुष्पदन्त जैसे कवि अत्यन्त असाधारण कवि थे, मगर उनके लिए सामन्ती दर्बारोंमें वह भी सुभीता नहीं था, जो कि किसी थर्ड-क्लास संस्कृतके विद्वानका होता था। पुष्पदन्तने तो इसीलिए बल्कि झुँझलाकर कह भी दिया कि जिस वक्त प्रभुवर्गकी यह हालत है, उस वक्त हमारे जैसोंके लिए जंगलमें गुमनाम मारे-मारे फिरते रहना ही अच्छा है। इसीलिए पुष्पदन्तने सामन्तोंके चमर और अभिषेक जलको सज्जनताको धो-बहानेवाला ठहराया। उत्तर-कुरु वैसे भी एक वर्गहीन सुजल, सुफल, सुखी देशके तौरपर प्रसिद्ध था, मगर पुष्पदन्तसे पहिले हीसे कवि लोग उसे भूल गए थे। पुष्पदन्तने "न दास न कोउ राज" "मानव दिव्व", "अगर्व सुभव्व, समानहि सर्व" कहकर "अहो कुरु-भूमि निकाम स्वर्ग" कहा, इससे भी जान पड़ता है कि देशभाषाके प्रतिभाशाली कवियोंको कितनी प्रतिकूल स्थितिमें रहना पड़ता था। स्वयंभू जैसे महान् कविको भी किसी बड़े दर्बारमें स्थान न पा एक गुमनामसे अधिकारी धनंजय, रयडाके आश्रयमें रहकर जिन्दगी गुजार देना भी उसी बातको पुष्ट करता है। अभी चक्रवर्ती लोग संस्कृत और थोड़ा-बहुत प्राकृत—जो कि अब मृत-भाषा बन चुकी थी—पर ही ज्यादा निगाह रखते थे। शायद वह समझते थे, कि देशी-भाषामें गुथी उनकी कीर्ति-माला चन्द ही दिनोंमें कुम्हला जाएगी, अमर कीर्ति तो संस्कृत काव्यों द्वारा ही मिल सकती है, इसीलिए उन्हें अपभ्रंश कवियोंकी ओर ज्यादा ध्यान देनेकी जरूरत नहीं थी।

सिद्धोंके लिए इस बारेमें कोई दिक्कत नहीं थी। उन्हें किसी दर्बारके

आश्रयकी उतनी जरूरत नही थी, जितनी कि दर्बारको। जल्द भुला देनेवाली उनकी मीठी गोलियोका जनतापर बहुत प्रभाव था—विचित्र जीवनके कारण दिव्य चमत्कारके कारण, अथवा ज्ञान-विज्ञानके कारण कह लीजिए, राजा सिद्धोकी पूजा-अर्चामे सबसे आगे रहना चाहते थे। शान्ति पा या रत्नाकर शान्तिको गौड नरेश उसी तरह आँखोपर रखनेके लिए तैयार थे, जैसे मालव-दर्बार या सिंहलेश्वर।

(१) **सिद्धोकी कविता**—शायद कविताके रूढि-बद्ध सकीर्ण लक्षणको लेनेपर कबीरकी तरह सिद्धोकी कविता भी कविता न गिनी जाए या कमसे कम अच्छी कविता न समझी जाए, लेकिन लाखो नर-नारियोको उनमे रस, एक तरहकी आत्म-तृप्ति मिलती थी और आज भी उस तरहकी मनोवृत्ति रखनेवाले कितने ही पाठकोको वह उतनी ही रुचिकर मालूम होती है, इसलिए उन्हे कविता मानना ही पडेगा। यह ठीक है, उनकी भाषा सीधी-सादी है समझनेमे बहुत सुगम है, लेकिन यह कविताका कोई दोष नही। साथ ही यह भी याद रखना चाहिए, कि सिद्धोकी सीधी-सादी भाषाको भी लोगोने खीचातानी करके दृष्टकूट बना उनकी भाषाको "सन्ध्या-भाषा" बना डाला, और फिर तो वह उतनी ही दुर्बोध और क्लिष्ट हो गयी, जितना कि श्रीहर्षका "नैषध" या माघका "शिशुपाल-वध"।

हम बतला चुके है, आदिम सिद्ध किस तरह कृत्रिम बहु-निर्बन्ध-पूर्ण जीवनको सहज-जीवनका रूप देना चाहते थे और इसके लिए समाजके चौधरियोकी कितनी ही रूढियोको वह तोड़-फेकना चाहते थे। उनका उद्देश्य कभी नही था कि लोग सहज-जीवन बितानेके लिए अँधेरी कोठरियों और "गुह्य-समाजो"का आश्रय ले। वह इस बातमे सफल नही हुए और उनका सहज-यान भी सामन्त-समाजका एक दूसरा कोढ बनकर रह गया। उनके आशावादको भी आगे बढ़नेका अवसर नही मिला। हाँ, अलख-निरजनका जो राग उन्होने गाया, वह चिरकालके लिए अपना असर छोड गया। यद्यपि सिद्धोके अलख-निरजनसे राम-रहीम या ईश्वर-परमेश्वरसे कोई सबध नही था। वह तो पडितों और रूढिवादियोके शास्त्र, वेद, पोथी-पत्रोसे न जाने जा सकनेवाले—अ-लख, विशुद्ध सत्य—को बतलाता

था, जो कि वस्तुतः बौद्धोंके निर्वाणका ही विशेषण है। लेकिन पीछेके सन्तों—कबीर नानकसे लेकर राधास्वामी दयाल तक—ने उसका और ही अर्थ लगाकर लोगोंको मुक्तिकी ओर नहीं दिमागी गुलामीकी ओर ढकेला।

सिद्ध पुरानी रूढ़ियों, पुराने पाखण्डोंके बहुत विरोधी थे। आदिम सिद्धोंने तो सरहकी तरह अपने बड़े सम्मान और सुखी जीवनकी भी पर्वाह नहीं की। सरह किसी वक्त नालन्दाके एक बड़े प्रतिष्ठित पंडित थे। मगर जब उन्हें वहाँका जीवन दमघोटू लगने लगा, तो उन्होंने सब कुछको लात मारा, भिक्षुओंका बाना छोड़ा, अपनी (ब्राह्मण) नहीं किसी दूसरी छोटी जातिकी तरुणीको लेकर खुल्लमखुल्ला सहजयानका रास्ता पकड़ा। सरहने सिर्फ दूसरे ही पन्थोंके पाखण्डोंका खण्डन नहीं किया, बल्कि बौद्धोंको भी नहीं छोड़ा। इस बातका अनुकरण पीछेके सन्तोंमें भी पाया जाता है, लेकिन अपने पन्थ और मतको बचाकर। यद्यपि ये पुराने सिद्ध किसी पाखण्डको फैलाना नहीं चाहते थे, लेकिन पीछे उन्हींके नामपर कितने ही मन्त्र-तन्त्र और पाखण्ड चल पड़े। सिद्धोंने सुख-दुख और दुनियाकी सभी समस्याओंको केवल व्यक्तिके रूपमें देखा। उन्हें ख्यालमें भी नहीं आया, कि समाजकी बुराइयोंका सामाजिक रूपमें ही दूर करनेपर सफलता मिल सकती है। लेकिन जैसा कि हमने पहिले लिखा है, सिद्धोंको निराशावाद छू नहीं गया था। वह निराशावाद, त्याग-वैराग्यसे लोगोंका पिण्ड छुड़ाना चाहते थे और उन्होंने मरनेके पीछे मिलनेवाले निर्वाणके पीछे भागनेवाले लोगोंकेलिए इसी संसारमें स्वाभाविक भोगमय जीवन बितानेका आदर्श उपस्थित किया। सिद्धोंने आत्मावलम्बनको यद्यपि पसन्द किया, मगर साथ ही गुरुकी महिमाको उन्होंने इतना बढ़ाया, कि पीछे वही अन्धेरगर्दीका एक भारी साधन बन गया। सिद्धोंके बाद जैन रहस्यवादी कवि, कबीर, दादू, राधास्वामी सबने गुरुकी अनन्य भक्तिका राग अलापा।

सिद्धोंकी कवितामें अधिकतर सहजयान और रहस्यवाद ही मिलता है। जिनकी सामन्त-समाजको कभी-कभी जरूरत पड़ती थी, उनको आवश्यकता ऐसे काव्योंकी थी, जिनमें शृंगार और वीररसका जोर हो।

(२) शृंगार और वीररस—उस समयके सामन्त-जीवनका उद्देश्य था

चाहे जेसे भी हो दुनियाका आनन्द खूब डट करके लेना। ऐसा कहनेसे आचारके नियमोके विरुद्ध जानेकी जरूरत नही है; क्योकि पुरोहित और महन्त अपने मालिकोकी रुचिके अनुसार हर वक्त नये धर्मशास्त्र और नये आचार-नियम बनानेके लिए तैयार थे। हाँ, भोग निष्कटक नही हो सकता था। हर तक़्त एक सामन्तको दूसरे सामन्तसे ही खतरा नही था, बल्कि खुद अपने भाई-बहिनोंसे भय लगा रहता था। यदि जरा भी चूके, कि भोग और जान दोनोसे हाथ धोना पडा। इसीलिए सामन्तोको भोगके लिए पूरी कीमत अदा करनेको तैयार रहना पडता था। स्वयंभू और पुष्पदन्तने सामन्त-जीवनके इन दोनो पहलुओ—भोग भोगना और मृत्युको तृणवत् समझना—का सुन्दर चित्रण किया है, इतना सुन्दर चित्रण पीछेके काव्योमे हमे नही मिलता। सामन्तको मृत्युकी कोई पर्वाह नही थी, न मृत्युके बादकी। विजय हुई तो उसके चरणोमे सारे भोग पड़े है। हाँ, यदि कभी पराजयका मुँह देखना पडा, तब या तो सरहपाके पास जाना पडता या किसी अपने कविसे निराशावादकी बात सुन सन्तोष करना पडता। स्वयभू और पुष्पदन्तने पराजित सामन्तोके लिए काफी सन्देश छोड़े हैं।

हेमचन्द्रके सगृहीत एक पदमे "बापकी भूमडी" (पितृ-भूमि)के लिए सर्वस्व-उत्सर्ग करनेकी जो भावना दर्शायी गई है, उसे देखकर हमारे कितने ही पाठक शायद उछल पड़े। लेकिन यह बापकी भूमड़ी साधारण जनताके ख्यालसे नही कही गई। यह सामन्तोंकी अपने हाथसे निकल गई बापकी भूमड़ी—निरकुश राज—को फिरसे लौटानेके लिए आदेश है। अस्सी फीसदी जनता और भविष्यकी सारी पीढियोके सुख और स्वार्थका वहाँ कोई ख्याल नही था।

तब और पीछेके भी कवि सन्देश देते है—काया नरक, ससार तुच्छ, कोई किसीका नही। यह कोई उच्च भावनाका परिचायक नही है। चूँकि उनके जीवनके कुछ महीने या कुछ बरस दुखमे कटे और जिस दुखका कारण भी बहुत कुछ समाजकी विषमनीति है, जिसे कि हटानेसे बहुतसे दुखोंके कारण खतम हो सकते है। लेकिन कविने अपने उस थोड़े समयके दुखको इतना बड़ा करके देखा कि उसे आनेवाली हजारो पीढ़ीके सुख-दुखका कुछ भी ख्याल

नहीं आया। एक जीवनके सुख-दुखसे आनेवाली अगनित पीढ़ियोंका सुख-दुख परिमाणमें कहीं अधिक है, लेकिन जो उसका न ख्यालकर सिर्फ अपने हीको सब कुछ समझ लेता है, क्या यह उसकी अत्यन्त निम्न कोटिकी स्वार्थान्धता नहीं है? हमारे कवियोंने व्यक्तिके सामाजिक कर्त्तव्यकी ओर ध्यान नहीं दिया। उसका कारण था, वही सामन्त-समाज, जिसके हाथमें सारे समाजकी नकेल थी और जो व्यक्तिगत आनन्दको ही सर्वोपरि चीज समझता था। हमारे आजके भी कवि जब ऐसी ग़लती कर बैठते हैं, तो इन पुराने कवियोंको दोष देनेकी क्या जरूरत। वस्तुतः कवियोंने अत्यन्त संदिग्ध परलोकवाद और वैयक्तिक निराशावादपर जितना जोर दिया, उससे ज्यादा उन्हें चाहिए था, अपनी आगेवाली पीढ़ियोंके मुँहकी ओर देखना—जो पीढ़ियाँ कि संदिग्ध और काल्पनिक नहीं बिल्कुल वास्तविक हैं, यह बात खुद उन्हें अपना अस्तित्व बतला देता। केवल अपने लिए अनन्तजीवनकी मिथ्या आशाकी वेदीपर उन्होंने आनेवाली पीढ़ियोंके वास्तविक अनन्त-जीवनकी बलि चढ़ा देनेमें जरा भी आनाकानी नहीं की।

(३) **कुछ कवियोंका मूल्यांकन**—(क) **स्वयंभू**—हमारे इसी युगमें नहीं हिन्दी-कविताके पाँचों युगों (१—सिद्ध-सामन्त-युग, २—सूफी-युग, ३—भक्त-युग, ४—दर्बारी-युग, ५—नवजागरण-युग)के जितने कवियोंको हमने यहाँ संग्रहीत किया है, उनमें यह निस्संकोच कहा जा सकता है, कि स्वयंभू सबसे बड़ा कवि था। वस्तुतः वह भारतके एक दर्जन अमर कवियोंमेंसे एक था। आश्चर्य और क्षोभ दोनों होता है कि लोगोंने कैसे ऐसे महान् कविको भुला देना चाहा। स्वयंभूके रामायण और महाभारत (या कृष्ण-चरित्र) दोनों ही विशाल-काव्य हैं। उनके विशाल आकारको देखकर सन्देह हो सकता है कि कविने कितनी जगह काव्य-शरीरको जैसे-तैसे भी फुलानेकी कोशिश की होगी, मगर ऐसा प्रयत्न सिर्फ वहीं देखनेमें आता है, जहाँ अपने सहधर्मियोंकी जबर्दस्तीके कारण वह जैन-धर्मकी कितनी ही नीरस रूढ़ियोंको बखाननेके लिए मजबूर होता है—ठीक वैसे ही जैसे कुशल चित्रकार और मूर्तिकार तीर्थंकरोंकी मूर्त्ति बनानेमें बेगार टालने लगते। हम रामभक्तों

है कि ऐसे बेगारवाले अश कविके कविता-कलेवरके अभिन्न अग नही है । उनके हटा देनेसे न कथानककी शृखला ही टूटती है और न रसधारा ही ।

यद्यपि स्वयभू बाणसे "घनघनऊ" या समास उधार लेनेकी बात कहता है, लेकिन हर्षचरित और कादवरीके विकट समासोंका स्वयभूमे पता नही लगता। स्वयभूकी भाषाका प्रवाह बिल्कुल स्वाभाविक है। उसने खामख्वाह दुरूहता लानेकी कही कोशिश नही की। पद्य-स्वर बडे ही कर्णप्रिय है। शब्द बिल्कुल नपे-तुले है, और रस-परिपाक तो बराबर ऊपर और और ऊपर उठता जाता है। उसका कवि-कौशल कितना श्रेष्ठ है, यह इसीसे मालूम होगा कि मैंने रामायणसे शृगार, वीर, बीभत्स, आदिके उदाहरणोंको जब जमा किया, तो ग्रन्थके कलेवरके बढ़ जानेके भयसे उनमेसे एक ही एकको देना चाहा, मगर फिरसे पढनेपर मालूम हुआ, कि स्वयभूके वर्णनमे हर जगह नवीनता है, इस-लिए एकसे अधिक उद्धरण देनेके लिए मजबूर होना पडा।

स्वयभूने प्रकृतिका बहुत गहरा अध्ययन किया है, यह हमारे दिये हुए उद्धरणोसे मालूम होगा। समुद्र और कितने ही अन्य स्थलो, प्राकृतिक दृश्यो-का वर्णन करनेमे वह अद्वितीय है। और सामन्त समाजके वर्णनमे उसकी किसीसे तुलना नही की जा सकती। किसी एक सुन्दरीके सौन्दर्यको जितना अच्छी तरह उसने चित्रित किया है, वह तो किया ही है, लेकिन सुन्दरियोंके सामूहिक सौदर्यका वर्णन करनेमे उसने कमाल कर दिया है। चित्रकारकी भाँति कविके सामने भी कोई साकार नमूना रहना चाहिए। स्वयभूने राष्ट्रकूटोंके रनिवास और उनके आमोद-प्रमोदको नजदीकसे देखा था। वहाँ परदा बिल्कुल नही था, इसलिए और सुविधा थी। उसी सौन्दर्यको उसने रावण और अयोध्या-के रनिवासोके सौन्दर्यके रूपमे चित्रित किया है।

विलाप-चित्रणमे भी उसने बडी सफलता प्राप्त की है। रावणके मरने-पर मन्दोदरी और विभीषणके विलाप सिर्फ पाठकके नेत्रोको ही सिक्त नही कर देते, बल्कि उसका मन मन्दोदरी और विभीषण तथा मृत रावणके गम्भीर और उदात्त भावोकी दाद देता है।

सामन्ती युगमे स्त्रियोका अधिकार ही क्या हो सकता है ? तो भी सिद्ध-

युग, तथा बादकी शताब्दियोंकी अपेक्षा उनकी अवस्था कुछ बहतर जरूर थी। स्वयभूने सीताका जो रूप रावणको जवाब देते और अग्नि-परीक्षाके समय चित्रित किया है, पीछे उसका कही पता नही लगता।

मालूम होता है, तुलसी बाबाने स्वयभू-रामायणको जरूर देखा होगा, फिर आश्चर्य है कि उन्होंने स्वयभूकी सीताकी एकाध किरण भी अपनी सीतामे क्यो नही डाल दिया। तुलसी बाबाने स्वयभू-रामायणको देखा था, मेरी इस बातपर आपत्ति हो सकती है, लेकिन मै समझता हूँ कि तुलसी बाबाने "क्वचिदन्यतोपि"से स्वयभू-रामायणकी ओर ही सकेत किया है। आखिर नाना पुराण निगम आगम और रामायणके बाद ब्राह्मणोका कौनसा ग्रन्थ बाकी रह जाता है, जिसमे रामकी कथा आई है। "क्वचिदन्यतोपि"से तुलसी बाबाका मतलब है, ब्राह्मणोके साहित्यसे बाहर "कही अन्यत्रसे भी" और अन्यत्र इस जैन ग्रन्थमे रामकथा बडे सुन्दर रूपमे मौजूद है। जिस सोरों या शूकरक्षेत्रमे गोस्वामी जीने रामकी कथा सुनी, उसी सोरोंमे जैन-घरोंमे स्वयभू रामायण पढा जाता था। राम-भक्त रामानन्दी साधु रामके पीछे जिस प्रकार पडे थे, उससे यह बिल्कुल सम्भव है कि उन्हे जैनोंके यहा इस रामायणका पता लग गया हो। यह यद्यपि गोस्वामी जीसे आठ सौ बरस पहले बना था किन्तु तद्भव शब्दोके प्राचुर्य तथा लेखको-वाचकोके जब-तबके शब्द-सुधारके कारण अभी आसानीसे समझमे आ सकता था। जो उद्धरण हमने यहा दिये है, उनमेंसे कितनोंका प्रभाव रामचरितमानसके कई स्थलोपर दिखलाई पडेगा। इसका यह हरगिज मतलब नही, कि गोसाईजीने भाव वहांसे चुराया, या उनकी प्रतिभा सिर्फ नकल करनेकी थी; गोस्वामी जीकी काव्य-प्रतिभा स्वत: महान् है। उसे पहलेकी प्रतिभाओंका वैसे ही सहारा मिला होगा, जैसे हरेक बालकको अपने पूर्वजोंकी कृतियोंकी सहायतासे अपने ज्ञानका विस्तार करना पड़ता है।

(ख) पुष्पदन्त—पुष्पदन्तका नम्बर स्वयभूके बाद आता है, किन्तु इस युगके बाकी कवियोंमे उसका स्थान बहुत ऊँचा है। पुष्पदन्तकी उपाधियोंमे अभिमान-मेरु बिल्कुल यथार्थ मालूम होता है। मत्री भरतको इस फक्कड

कविकी बहुत नाजबरदारी करनी पडी होगी। अमीरोंके लिए तो उसने पहले ही कह दिया था "चमरानिलही उड्डेउ गुणाइँ"। "अभिषेक धोँयउ-सुजननननाय।" कृष्णराजके दर्बारमे पुष्पदन्त कभी अपने मनसे गया होगा, इसमें सन्देह ही मालूम होता है। पुष्पदन्तने विरहका वर्णन बडा सुन्दर किया है और गरीबीका भी। अमीरोंके विलासको छोडकर तो वह महाकाव्यको लिख ही नही सकता था, इसलिए वह तो जरूरी ही था, मगर सामन्तोंकी संक्षिप्त किन्तु अतिकठोर आलोचना की है कुछ ही शताब्दियों पहले अपनी प्रजातन्त्रीय स्वतंत्रतासे वंचित मगर अब भी जब-तब लडती रहनेवाली यौधेयकी भूमिका इतना आकर्षक वर्णन और अन्तमे उत्तर-कुरुकी धनी-गरीब-रहित दास-राजा-शून्य दिव्य-मानववाली भूमिकी भारी तारीफ बतलाती है कि पुष्पदन्तका व्यक्तित्व किसी दूसरी ही तरहका था, जिसके लिए उस कालकी परिस्थिति अनुकूल नही थी।

(ग) **दो कलिकाल-सर्वज्ञ**—हमारे इस युगमे दो "कलिकाल-सर्वज्ञ" भी है। सिद्ध शान्तिपा या रत्नाकरशान्ति (१००० ई०) भारतके शायद सर्व-प्रथम "कलिकाल-सर्वज्ञ" थे। गौड नृपतिके राजगुरु और विक्रमशिलाके प्रधान होनेसे भी मालूम हो सकता है, कि वह अपने समयके असाधारण पण्डित थे। शान्तिपाके कुछ दर्शन और एक छन्द शास्त्र "छन्दो-रत्नाकर" ग्रन्थ अब भी बच रहे है। दूसरे कलिकाल-सर्वज्ञ है आचार्य हेमचन्द्रसूरि (१०८८-११७९)। इनके संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। अपनी मातृभाषामें उन्होंने कोई स्वतन्त्र काव्य रचा था, इसकी कम सम्भावना है। लेकिन अपने व्याकरण 'छन्दोनुशासन' और "देशी-नाममाला" (कोष) द्वारा जो सेवा उन्होने हमारी भाषाकी की है, वह स्मरणीय है। अपने व्याकरण और छन्दोनुशासनमें उदाहरणके तौरपर उन्होंने अपभ्रंशके बड़े सुन्दर-सुन्दर सैकडों पद्य उद्धृत किये है, जिससे मालूम होता है कि वह इस भाषाको लम्बी नाकवाले पण्डितोंकी तरह उपेक्षणीय नही समझते थे।

(घ) **कवि अब्दुर्रहमान**—अब्दुर्रहमान हिन्दीका प्रथम मुस्लिम कवि है। (उसकी) भाषा और कलासे मालूम होता है कि कविकी वाणी खूब मँजी

हुई है। मधुर शब्दोके चुनाव तथा सरल और प्रवाहयुक्त भाषा लिखनेमें अब्दुर्रहमानने बडी सफलता प्राप्त की है। अफ़सोस है कि इतने सुन्दर कवि-की इतनी कम कविता हमें प्राप्त है। वह भी लुप्त हो गई होती, अगर किसी जैन-पुस्तक-भण्डारने रक्षा न की होती। मंगलाचरणकी कुछ पंक्तियोको छोड़-कर इसकी कवितामें धर्म कही छू नही गया। कविके वास्तविक कालके बारे-में हमें कुछ नही मालूम, लेकिन जान पडता है कविकी जन्म-भूमि मुलतानके महमूदके हाथमें जानेसे पहले अब्दुर्रहमान मौजूद थे।

(४) कवियोंकी अमर कीर्त्ति

कवियोने संसार तुच्छ, कोई किसीका नही, काया नरक आदि बातोका प्रचार करके सामन्तोका ही हित किया, साधारण जनता और आगे आनेवाली पीढ़ीका तो इससे घोर अहित हुआ। उन्होंने उत्पीडित प्रजाका पक्ष लेना तो दूर, उनके कष्टों तथा कारणोके चित्रण करनेका भी प्रयास नही किया—इत्यादि-इत्यादि कितने ही दोष उनके ऊपर लगाए जा सकते है; लेकिन इसकी जिम्मेवारी बहुत कुछ तत्कालीन परिस्थिति और समाजपर है, इस बातका अपने पुराने महान् कवियोके संबंधमें कोई फैसला देते वक्त हमें हमेशा ख्याल रखना होगा। सबसे बड़ी बात यह है, कि दोष भी तभी तक लोग देखेंगे, जब तक हमारी दुनिया नई नही बनती, इसकी सारी गदगियाँ दूर नही हो जाती। एक बार जहाँ हमारे समाजका कलेवर बदला, कि कवियोकी महिमा सिर्फ़ उनके कवित्वके कारण होगी। रामके हाथो मुक्ति पानेवालोंका जब हमारे देशमें नाम भी नही रह जाएगा, तब भी तुलसीकी कद्र होगी। स्वयंभूके धर्म (जैन)का अस्तित्व भी न रहनेपर स्वयंभू नास्तिक भारतका महान् कवि रहेगा। उसकी वाणीमें हमेशा यह शक्ति बनी रहेगी कि कहीं अपने पाठकोंको हर्षोत्फुल्ल कर दे, कही शरीरको रोमाञ्चित बना दे और कही आखोंको भीगनेके लिए मजबूर कर दे। सनातन-तुलामें नापनेपर हमारे कवियोंका सम्मान शताब्दियोंके बीतनेके साथ अधिक और अधिक बढ़ता जाएगा। जिस वक्त शत-प्रतिशत जनता शिक्षित और संस्कृत होगी, जिस वक्त कलाकी निष्पक्ष परखका मान

और ऊँचा होगा, उस वक्त हमारे कवियोका कीर्त्ति-कलेवर, उनका आसन और ऊँचा होगा।

कालने बडी बेदर्दीसे हमारे पुराने कवियोंकी छँटाई की है। जाने कितने उच्च काव्योसे आज हम वचित हैं। लेकिन इस छँटाईके बाद जो कुछ हमारे पास बचकर चला आया है, उसकी कद्र और रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है। ऐसा करके ही हम अपने पूर्वजोंका उत्तराधिकारी होनेका दावा कर सकते है।

हम चाहते हैं कि आदिसे लेकर आज तकके सभी महान् कवियोंकी कृतियोको पाठकोके सामने इस तरह रखा जाए, जिसमे वह काव्य-रसका अच्छी तरह आस्वादन कर सके, कवियोके मुखसे तत्कालीन समाजकी आप-बीती जान सकें और कवि-परपराने किस तरह आनेवाली पीढियोको प्रेरणा और सहायता दी, इसे भी अच्छी तरह समझ सके। हमारे सग्रहका पॉच युगोवाला वर्त्तमान प्रयास सिर्फ बीचवाला भाग है जो चार खडोंमे समाप्त होगा। बीसवी सदीके कवियोका सग्रह पाँचवाँ खण्ड होगा और वेदसे लेकर पीछे तकके सस्कृत-पाली-प्राकृत कवियोका सूक्ति-सग्रह एक अलग खण्ड। उस खण्डमे छायासे काम नही चलेगा और मूल-भाषाका देना भी बेकार होगा, लेकिन हम चाहेंगे कि अनुवाद पद्य-बद्ध हो और जहाँ तक हो सके उन्ही छन्दोंमे; लेकिन यह काम कवि ही कर सकते है। यदि ऐसे कवि उसे अपने हाथमे लेना चाहेगे, तो हम सहर्ष उनकी यथायोग्य सहायता करेगे।

प्रयाग
१४-८-४८

राहुल सांकृत्यायन

विषय-सूची

३ : दसवीँ सदी

५ : बारहवीँ सदी

[१]

१—सिद्ध-सामन्त-युग

(७६०—१३०० ई०)

हिन्दी काव्य-धारा

१. सिद्ध-सामन्त-युग

१. आठवीं सदी

§ १. सरहपा

काल—७६० ई० (गोपाल-धर्मपाल ७५०-७०-८०६ ई०)। देश—मगध (नालंदा)। कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (६)। कृतियाँ[1]—कायकोष-अमृत-वज्रगीति, चित्तकोष-अज-वज्रगीति, डाकिनी-गुह्य-वज्रगीति, दोहाकोष-

१—दोहा[2]

(१) रहस्यवाद

अलिओ । धम्म-महासुह पइसइ। लवणो जिमि पाणीहि विलिज्जइ ॥२॥
मन्तह मन्ते सन्ति ण होइ। पडिलभित्ति की उट्ठिउ होइ ॥६॥
तरुफल-दरिसण णउ अग्घाइ। वेज्ज देक्खि की रोग पलाइ ॥७॥

जाव ण आप जणिज्जइ, ताव ण सिरस करेइ।
अन्धां अन्ध कढाव तिम, वेण्ण 'वि कूव पडेइ ॥८॥ —दोहाकोष[2]

सङ्क-पास तोडहु गुरु-वअणे। ण सुनइ सो णउ दीसइ णअणे ॥३॥
पवण वहन्ते णउ सो हल्लाइ। जलण जलन्ते णउ सो डज्झइ ॥४॥
घण वरिसन्ते णउ सो तिम्मइ। ण उवज्जहि णउ खअहि पइस्सइ ॥५॥

णउ त बाअहि गुरु कहइ, णउ त बुज्झइ सीस।
सहजामिअ-रसु सअल जगु, कासु कहिज्जइ कीस ॥९॥
सअ-संवित्ती तत्तफलु, सरहापाअ भणन्ति।
जो मण-गोअर पाविअइ, सो परमत्थ ण होन्ति ॥१०॥

—सरहपादीय दोहा ७, ८

---

[1] देखो मेरी "पुरातत्त्व-निबंधावलि" पृ० १६६ [2] 'The Joutnal of the

हिन्दी काव्य-धारा

१. सिद्ध-सामन्त-युग (७६०-१३०० ई०)

१. आठवीं सदी

§ १. सरहपा

उपदेशगीति, दोहाकोष, तत्त्वोपदेश-शिखर-दोहाकोष, भावनाफल-दृष्टिचर्या-दोहाकोष, वसन्ततिलक-दोहाकोष, चर्यागीति-दोहाकोष, महामुद्रोपदेश-दोहाकोष, सरहपाद-गीतिका।

१—दोहा

(१) रहस्यवाद

अलिओ ! धर्ममहासुख प्रविशइ। नोन जिमी पानिही विलिज्जइ ॥२॥
मंत्रहिँ मंत्रे शान्ति न होइ। प्रतिलब्धी का उत्थित होइ ॥६॥
तरुफल-दर्शन नाहि अघाइ। वैद्यहिँ देखि कि रोग पराइ ॥७॥

जबलों आप न जानिये, तबलों सिख न करेइ।
अन्धा काढे अन्ध तिमि, दोउहिँ कूप पडेइ ॥८॥ —दोहाकोष

शाक-पाश तोडहु गुरु-वचने। न सुनइ सो नहि दीसइ नयने ॥३॥
पवन वहन्ते ना सो हिल्लइ। ज्वलन जलन्ते ना सो डहियइ ॥४॥
घन वरसन्ते ना सो भीजइ। न उपजै न क्षयहिं पईसइ ॥५॥

ना सो वाचहि गुरु कहइ, ना सो बूझइ शिष्य।
सहजामृत-रस सकल जग, कासु कहीजै कस्य ॥९॥
स्वक-सवित्ती तत्त्व-फल, सरहापाद भनन्ति।
जो मन-गोचर पाइअइ, सो परमार्थ न होन्ति ॥१०॥

—दोहा ७,८

Department of Letters, Calcutta University, Vol. XXVIII

(२) पाखंड-खंडन

बम्हणहि म जाणन्त हि भेउ। एँवइ पढ़िअउ ए चउबेउ ॥१॥
मट्टि पाणि कुस लई पढन्त। घरहीं बइसी अग्गि हुणन्त ॥
कज्जे विरहइ हुअवह होमें। अक्खि डहाविअ कडुएँ धूयें ॥२॥
एँकदण्डि त्रिदण्डी भअवाँ वेसें। विणुआ होंइअइ हस-उएसें।
मिच्छेहाँ जग वाहिअ भुल्लें। धम्माधम्म ण जाणिअ तुल्लें ॥३॥
अइरिएहिँ उद्दूलिअ छारें। सीस सु वाहिअ ए जडभारें ॥
घरही वइसी दीवा जाली। कोणहिँ वइसी घण्डा चाली ॥४॥
अक्खि णिवेसी आसण बन्धी। कण्णेहिँ खुसखुसाइ जण धन्धी ॥
रण्डी-मुण्डी अण्ण 'वि वेसें। दिक्खिज्जइ दक्खिण-उद्देसें ॥५॥
दीहणक्ख जइ मलिणे वेसें। णग्गल होइ उपाडिअ केसें ॥
खवणेहि जाण-विडविअ वेसें। अप्पण वाहिअ मोक्ख-उवेसे ॥६॥

जइ णग्गाविअ होइ मुत्ति, ता सुणह सिआलह।
लोम उपाडण अत्थि सिद्धि, ता जुवइ-णिअम्बह ॥७॥

पिच्छी गेहणे दिट्ठ मोक्ख, ता मोरह चमरह।
उञ्छ-भोअणें होइ जाण, ता करिह तुरङ्गह ॥८॥

सरह भणइ खवणाण मोक्ख, महु किम्पि न भावइ।
तत्त-रहिअ काआ ण ताव, पर केवल साहइ ॥९॥

चेल्लु भिक्खु जे थविर उदेसें। बन्देहिँ आ पव्वज्जिउ-वेसें ॥
कोइ सुतण्त बक्खाण बइट्ठो। कोवि चिण्ते कर सोसइ डिट्ठो ॥१०॥

(३) मंत्र-देवता बेकार

जो जसु जेण होइ सन्तुट्ठो। मोक्ख कि लब्भइ झाण पविट्ठो ॥
किन्तह दीवें किं तह णेवेज्जें। किन्तह किज्जइ मंतह सेब्बे ॥१४॥

(२) पाखंड-खंडन

ब्राह्मणहिँ ना जानन्ता भेद । यो ही पढेँउ ये चारो वेद ॥१॥
माटि पानि कुश लिये पढन्त । घरही बइठी अग्नि होँमन्त ॥
कार्य विना ही हुतवह होमेँ । आँखि डहावै कडुये धूयेँ ॥२॥

ऍकदण्डि त्रिदण्डी भगवा वेसे । ना होइहि विनु हस्-उपदेशे ॥
मिथ्यहि जग बाहेऊ भूले । धर्म-अधर्म न जानेँउ तुल्येँ ॥३॥

आचरियेहिँ लपेटी छारा । सीसहिं ढोअत ये जट-भारा ॥
घरहीँ वइसे दीपक बारी । कोनहिं वइसे घंटा चाली ॥४॥

आँखि निवेशी आसन बाँधा । कर्णे खुसखुसाय जन मन्दा ॥
रडी-मुडी अन्यहुँ भेसेँ । देखीयत दच्छिना-उदेसे ॥५॥

दीर्घनखा जो मलिने भेसे । नगा होड उपाडिय केशे ॥
क्षपणक ज्ञान-विडबित भेसे । अपना बाहर मोक्ष गवेषे ॥६॥

यदि नगाये होइ मुक्ति, तो शुनक-शृगालहुँ ।
लोम उपाटे होइ सिद्धि, तो युवति-नितम्बहुँ ॥७॥

पिच्छि गहे देखेँउ जोँ मोक्ष, तो मोरहु चमरहुँ ।
उञ्छ-भोजने होइ ज्ञान, तो करिहु तुरंगहुँ ॥८॥

सरह भनै क्षपणकी मोक्ष, मोहि तनिक न भावइ ।
तत्त्व-रहित काया न ताप, पर केवल साधइ ॥९॥

चेला भिक्षु जेँ स्थविर-उदेसे । वन्दहि आ प्रव्रजिता-वेसेँ ।
कोँइ स्वतंत्र व्याख्यानेँ बईठो । कोँइ चिन्ता करि शोषइ दीठो ॥१०॥

(३) मंत्र-देवता बेकार

जो जाँसु जेन होइ सन्तुष्टो । मोक्ष कि लभियइ ध्यान-प्रविष्टो ॥
की तेहिँ दीपेहिँ की नैवेद्ये । की हि कीजियइ मन्त्रहँ सेवे ॥१४॥

किन्तह तित्थ तपोवण जाई । मोक्ख कि लब्भइ पाणी न्हाई ॥१५॥
छाड़हुरे आलीका बन्धा । सो मुचहु जो अच्छहु धन्धा ॥
तसु परिआणे अण्ण ण कोई । अवरें गणे सव्व'वी सोई ॥१६॥
सोवि पढिज्जइ सोवि गुणिज्जइ । सत्थ-पुराणे वक्खाणिज्जइ ॥
णहि सो दिट्ठि जो ताउ ण लक्खइ । एक्के वर गुरु-पाअे पेक्खइ ॥१७॥
झाण-हीण पव्वज्जे रहिअउ । घरहि वसन्ते भज्जे सहिअउ ।
जइ भिँड़ि विसअ रमन्त ण मुच्चइ । सरह भणइ परिआण कि मुच्चइ ॥१८॥
जइ पच्चक्ख कि झाणे कीअअ । जइ परोक्ख अभार म धीअअ ॥
सरहें णित्ते कड्ढिउ राव । सहज सहाव ण भावाभाव ॥२०॥

(४) सहज-मार्ग

जल्लइ मरइ उवज्जइ बज्झइ । तल्लइ परममहासुह सिज्झइ ॥
सरहे गहण गुहिर मग कहिआ । पसू-लोअ निव्वहि जिम रहिआ ॥२१॥
झाण-रहिअ की कीअइ झाणें । जो अवाअ तहि काह वखाणे ॥
भव मुद्दें सअलहि जग बाहिउ । णिअ सहाव णउ केण' वि साहिउ ॥२२॥
मन्त ण तन्त ण धेअ ण धारण । सव्व' वि रे बढ ! विब्भम-कारण ॥
असमल चित्त म झाणे खरडह । सुह अच्छन्त म अप्पणु झगडह ॥२३॥

(५) भोगमें निर्वाण

खाअन्त पिअन्ते सुहहि रमन्ते । णित्त पुण्णु चक्का'वि भरन्ते ॥
अइस धँम्म सिज्झइ परलोअह । णाह पाए दलीउ भअलोअह ॥२४॥

जहि मण पवण ण सञ्चरइ, रवि ससि णाह पवेस ।
तहिं बढ !! चित्त विसाम करु, सरहें कहिअ उएस ॥२५॥
आइ ण अन्त ण मज्झ णउ, णउ भव णउ णिब्बाण ।
एँहु सो परममहासुह, णउ पर णउ अप्पाण ॥२७॥

सअ-संवित्ति म करहु रे धन्धा । भावाभाव सुगति रे बन्धा ॥
णिअ मण मुणहुरें णिउणें जोई । जिम जल जलहिं मिलन्ते सोई ॥३२॥

की तेहि तीर्थ तपोवन जाई । मोक्ष कि लभियहि पानि नहाई ॥१५॥
छाडहु रे अलीका बन्धा । सो मुचहु जो आछै मन्दा ।
तसु परि-ज्ञाने अन्य न कोई । अपरे गने सर्व ही सोई ॥१६॥
सोइ पढिज्जइ सोइ गुणिज्जइ । शास्त्र-पुराणे वक्खानिज्जइ ।
नहि सो दीख जों तब ना लक्खई । एकहिँ वर गुरु-पादें पेखई ॥१७॥
ध्यानहीन प्रव्रज्या - रहितउ । घरहिं वसन्ते भार्या-सहितउ ॥
यदि दृढ़ विषय-रती ना मुचइ । सरह भणइ परि-ज्ञान कि मुंचइ ॥१६॥
यदि प्रत्यक्ष कि ध्याने कीजिय । यदि परोक्ष अधारमे ध्याइय ।
सरहेंहि नित्ये काढिउ राव । सहज स्वभाव न भावाभाव ॥२०॥

(४) सहज-मार्ग

जरइ मरइ उपजइ बध्यायइ । तहँ लय होइ महासुख सिध्यइ ।
सरहे गहन गह्वर मग कहिया । पशू-लोक निर्बोध जिमि रहिया ॥२१॥
ध्यान-रहित की कीजै ध्याने । जो अवाक् तेहि, काहि बखाने ।
भव-मुद्रहिं जग सकल बहायउ । निज स्वभाव ना काहुहि साधेउ ॥२२॥
मन्त्र न तन्त्र न ध्येय न धारण । सर्वहु मूढ रें । विभ्रम-कारण ।
निर्मल चित्त न ध्याने खीचहु । शुभ अछते न आपन झगड़हु ॥२३॥

(५) भोगमें निर्वाण

खाते पीते सुखहि रमन्ते । नित्य पूर्ण चक्कहू भरन्ते ।
अइस धर्म सिध्यइ परलोका । नाथ पाइ दलिया भयलोका ॥२४॥

जहँ मन पवन न सचरइ, रवि-शशि नाहि प्रवेश ।
तहँ मुढ ! चित्त विश्राम करु, सरह कहेउ उपदेश ॥२५॥
आदि न अंत न मध्य नहिं, नहिं भव नहिं निर्वाण ।
एँहु सो परममहासुख, नहिं पर नहिं अप्पान ॥२७॥

स्वक-संवित्ति न करहु रें मदा । भावाभाव सुगति रे बंधा ।
निज मन ध्यायहु निपुणे योगी । जिमि जल जलहिं मिलंते सोई ।'

पढमें जइ आभास विसुद्धो । चाहते चाहतें दिट्ठि णिरुद्धो ॥
एसें जइ आयास विकालो । णिअ मण दोस ण बुज्झइ बालो ॥३८॥
मूल-रहिअ जो चिन्तइ तत्त । गुरु-उवएसे एत्त-विअत्त ॥
सरह भणइ बढ़ ! जाणहु चंगे । चित्त-रूअ संसारह भंगे ॥३७॥
णिअ मण सब्बे सोहिअ जब्बें । गुरु-गुण हिअए पइसइ तब्बें ॥
एवँ मणे मुणि सरहें गाहिउ । तन्त मन्त णउ एक्क'वि गाहिउ ॥३९॥
जब्बे मण अत्थमण जाइ, तणु तुट्टइ बधण ।

तब्बे समरस सहजे, वज्जइ सुद्द ण बम्हण ॥४६॥

(६) काया तीर्थ

एत्थु से सुरसरि जमुणा, एत्थ से गगा साअरु ।

एत्थु पआग बणारसि, एत्थु से चन्द दिवाअरु ॥४७॥

खेत्तु-पीठ-उपपीठ, एत्थु मइँ भमइ परिट्ठओ ।

देहा-सरिसअ तित्थ, मइँ सुह अण्ण ण दिट्ठओ ॥४८॥

सण्ड-पुअणि-दल-कमल-गन्ध केसर वरणाले ।

छड्डहु वेणिम ण करहु सोसँण लग्गहु बढ़ ! आले ॥४९॥

काय तित्थ खअ जाइ, पुच्छह कुल हीणओ ।

बम्ह-बिट्ठु तेलोअ, राअल जाहि णिलीणओ ॥५०॥

बुद्धि विणासइ मण मरइ, जहि तुट्टइ अहिमाण ।

स माआमअ परम फलु, तहि कि बज्झइ झाण ॥५३॥

भवहि उअज्जइ खअहि णिवज्जइ । भाव-रहिअ पुणु कहि उवज्जइ ॥
बिण्ण-विवज्जिइ जोऊ वज्जइ । अच्छह सिरि गुरुणाह कहिज्जइ ॥५४॥
देक्खहु सुणहु परीसहु खाहु । जिग्घहु कमहुं बइट्ठ-उट्ठाहु ॥
आल - माल व्यवहारे पेल्लह । मण छड़ एक्काकार म चल्लह ॥५५॥

(७) गुरु-महिमा

गुरु-उवएसे अमिअ-रसु, धाव ण पीअउ जेहि ।

बहु-सत्थत्थ-मरुत्थलहिँ, तिसिए मरिअउ तेहि ॥५६॥

प्रथमे यदि आकाश विशुद्धा । देखत देखत दृष्टि निरुद्धा ॥
ऐसे यदि आयास विकालो । निज मन दोषहिं बूझ न बालो ॥३४॥
मूल-रहित जो चिन्तइ तत्त्व । गुरु-उपदेशे अस्त-व्यस्त ॥
सरह भनै मुढ ! जानहु चगा । चित्त-रूप संसारहु भगा ॥३७॥
निज मन सब्बै शोधिय जब्बै । गुरु-गुण हृदये पइसइ तब्बै ॥
ऐस समुझि मन सरहे गाहेँउ । तन्त्र-मंत्र नहिं एकहु चाहेउ ॥३९॥
जब्बै मन अस्तमन जाइ, तन टूटइ बधन ।
तब्बै समरस सहजे, कहियइ शूद्र न ब्राह्मण ॥४६॥

(६) काया तीर्थ

एहिँ सो सुरसरि जमुना, एहिँ सो गगासागर ।
एहिँ प्रयाग वाराणसी, एहिँ सो चद्र-दिवाकर ॥४७॥
क्षेत्र-पीठ-उपपीठ, एहीँ मै भ्रमउँ वाहिरा ।
देहा सदृशा तीर्थ, नही मै अन्यहिं देखा ॥४८॥
वन-पद्मिनि-दल-कमल-गध-केसर-वर-नाले ।
छाडहु द्वैतहि न करहु शोषण, मूढ़ ! न लागहु आरे ॥४९॥
काय तीर्थ क्षय जाय, पूछहु कुलहीनहँ ।
ब्रह्म-विष्णु त्रैलोक्य, सकलहि निलीन जहँ ॥५०॥
वुद्धि विनासै मन मरै, जहँ टूटै अभिमान ।
सो मायामय परम-फल, तहँ की वाँधिय ध्यान ॥५३॥
भवहीँ उपजै क्षयहि विनाशै । भाव-रहित पुनि का उत्पादै ॥
द्वैत-विवर्जित योगहुँ वर्जै । ऐसो श्रीगुरुनाथ कहीजै ॥५४॥
देखहु सुनहू छूवहु खाहु । सूँघहु भ्रमहु वइठु उट्ठाहु ॥
क्रय-विक्रय व्यवहारे पेल्लहु । मन छाडहु ऍक-कार न चल्लहु ॥५५॥

(७) गुरु-महिमा

गुरु-उपदेशे अमृत-रस, धाइ न पीयेँउ जेहि ।
वहु-शास्त्रार्थ-मरुस्थलहिँ, तृषितै मरेँऊ तेहि ॥५६॥

चित्ताचित्ति'वि परिहरहु, तिम अच्छहु जिम बालु ।
गुरु-वअण दिढ भत्ति करु, होइ जइ सहज उलालु ॥५७॥
अक्खर वण्ण परमगुण रहिजे । भणइ ण जाणइ एमइ कहिजे ॥
सो परमेसरु कासु कहिज्जइ । गुरअ-कुमारी जीम पड़िज्जइ ॥५८॥
भावाभावे जो परिहीणो । तहि जग सअलासेस विलीणो ॥
जब्बे तहँ मण णिच्चल थक्कइ । तब्बे भव-ससारह मुक्कइ ॥५९॥
जाव ण अप्पहि पर परिआणसि । ताव कि देहाणुत्तर पावसि ॥
एमइ कहिजे भन्ति ण कब्बा । अप्पहि अप्पा बुज्झसि तब्बा ॥६०॥
घरें अच्छई बाहिरे पुच्छइ । पइ देक्खइ पड़िवेरी पुच्छइ ॥
सरह भणइ बढ़ ! जाणउ अप्पा । णउ सो धेअ ण धारण-जप्पा ॥६२॥
विसअ रमन्त ण विसअें बिलिप्पइ । ऊअर हरइ ण पाणी छिप्पइ ॥
एमइ जोई मूल सरन्तो । विसहि ण बांहइ विसअ रमन्तो ॥६४॥
अणिमिस-लोअण चित्त णिरोहें । पवण णिरूहइ सिरि-गुरु-बोहें ॥
पवण बहइ सो णिच्चलु जब्बै । जोई कालु करइ कि रें तब्बै ॥६६॥
पण्डिअ सअल सत्थ वक्खाणइ । देहहिं बुद्ध वसन्त ण जाणइ ॥
अवणागमण ण तेण विखण्डिअ । तो'वि णिलज्ज भणइ हउँ पण्डिअ ॥६८॥
जीवन्तह जो णउ जरइ, सो अजरामर होइ ।
गुरु-उवएसें विमल-मइ, सो पर धण्णा कोइ ॥६९॥
विसअ-विसुद्धें णउ रमइ, केवल सुण्ण चरेइ ।
उड्डी वोहिअ-काउ जिम, पलुटिअ तह'वि पड़ेइ ॥७०॥
विसआसत्ति म बन्ध करु, अरें बढ़ ! सरहें वुत्त ।
मीण-पअङ्ग-करि-भभर, पेक्खह हरिणहँ जुत्त ॥७१॥
जत्त'बि चित्तह विप्फुरइ, तत्त'वि णाह सरुअ ।
अण्ण तरंग कि अण्ण जलु, भव-सम ख-सम सरुअ ॥७२॥
जत्त' बि पइसइ जलहि जलु, तत्तइ समरस होइ ।
दोस-गुणाअर चित्त तह, बढ ! परिवक्खण कोइ ॥७४॥

चित्त अचित्तहिं परिहरहु, तिमि होवहु जिमि बाल।
गुरु-वचने दृढ़ भक्ति करु, ज्यों होंइ सहज उलास ॥५७॥
अक्षर वर्ण परम गुण रहिए। भनइ न जानइ अइसे कहिये॥
सो परमेश्वर कासों कहिए। सुरत-कुमारी जिमि पतिऐहे॥५८॥
भावाभावहि जो परिहीना। तहँ जग सकलाशेष विलीना॥
जब्बै तहँ मन निश्चल थाकै। तब्बे भव-ससारहँ मुचै॥५९॥
जौ लों ना आपुहिँ परि-जानै। तौ लों कि देह अनुत्तर पावै॥
ऐसेहि कहिये भ्रान्ति न कब्बै। आपुहि आपा बूझसि तब्बै॥६०॥
घरे आछतै बाहर पूछै। पति देखई पडोसी पूछै॥
सरह भनै मुढ! जानहु आपा। नहि सो ध्येय न धारण जापा॥६२॥
विषय रमन्त न विषय विलिपै। पदुम हरइ ना पानी भीजै॥
ऐसेहि योगी मूल बुझन्तो। विषय वहै ना विषय रमन्तो॥६४॥
अनिमिष-लोचन चित्त निरोधे। पवन निरोधै श्री-गुरु-बोधे॥
पवन वहै सो निश्चल जब्बैं। योगी काल करै कि रें तब्बैं॥६६॥
पडित सकल शास्त्र वक्खानै। देहहिं बुद्ध वसत न जानै॥
अवना-गवन न तेहिँ विखडित। तोपि निलज्ज भनै हौं पडित॥६८॥
जीवन्तो जो ना जरै, सो अजरामर होइ।
गुरु-उपदेसे विमल मति, सो पर धन्या कोइ॥६९॥
विपय विसुद्धे ना रमै, केवल शून्य चरेइ।
उडिया वोहित-काक जिमि, पलटिय तँहहि पड़ेइ॥७०॥
विषयासक्ति न बन्ध करु, अरें मुढ! सरहे उक्त।
मीन-पतगम-करि-भ्रमर, पेखहु हरिनहु युक्त॥७१॥
जहँवाँ चित्ता विस्फुरै, तहँवै नाहि स्वरूप।
अन्य तरंग कि अन्य जल, भव-सम ख-सम स्वरूप॥७२॥
जहवाँ पइसै जलहिं जल, तहँवा समरस होइ।
दोष-गुणाकर चित्त तहँ, मुढ़! परिवीक्ष न कोइ॥७४॥

सुण्णहिँ सङ्ग म करहि तुहु, जहिँ तहिँ सम चिन्तस्स।
तिल-तुस-मत्त'बि सल्लता, बेअणु करइ अवस्स ॥७५॥
सब्ब रूअ तहिँ ख-सम करिज्जइ। ख-सम-सहावें मण'वि धरिज्जइ ॥
सो'वी मणु तहि अमणु करिज्जइ। सहज-सहावें सो परु रज्जइ ॥७७॥
घरें-घरें कहिअइ सोज्झु कहाणा। णउ परि सुणिअइ महसुह ठाणा ॥
सरह भणइ जग चित्तें बाहिअ। सो अचित्त णउ केण'वि गाहिअ ॥७८॥
एक्कु देव बहु आगम दीसइ। अप्पणु इच्छें फुड पडिहासइ ॥७९॥
अप्पणु णाहो अण्ण' वि रुद्धो। घरें-घरें सोअ सिधन्त पसिद्धो ॥
एक्कु खाइ अवर अण्ण 'वि पोडइ। बाहिँर गइ भत्तारह लोड़इ ॥८०॥
आवँत ण दिस्सइ जन्त णहि, अच्छन्त ण मुणिअइ।
णित्तरग परमेसुरु, णिक्कलङ्क धारिज्जइ ॥८१॥
सोहइ चित्त णिराल दिण्णा। अउण-रुअ मा देखह भिण्णा ॥
काअ-वाअ-मणु जाव ण भिज्जइ। सहज सहावें ताव ण रज्जइ ॥८३॥
घरबइ खज्जइ घरणिअहि, जहिँ देसहि अविआर।
माइएँ तहि की ऊबरइ, बिसरिअ जोइणि चार ॥८४॥
घरबइ खज्जइ सहजे रज्जइ, किज्जइ राअ-विराअ ॥
णिअ पास बइट्ठी चित्ते भट्ठी, जोइणि महु पड़िहाअ ॥८५॥

(८) सहज संयम

इअ दिवस णिसहि अहीणमइ, तिहू जासु णिगाण।
सो चित्त सिद्धी जोइणि, सहज संवरु जाण ॥८७॥
अक्खर बाढा सअल जगु, णाहि णिरक्खर कोइ।
ताव सें अक्खर घोलिआ, जाव णिरक्खर होइ ॥८८॥
जिम बाहिर तिम अब्भन्तरु। चउदह भुवणे ठिअउ णिरन्तरु ॥
असरिर काहें सरीरहि लुक्को। जो तहि जाणइ सो तहि मुक्को ॥८९॥
रुअणें सअल'बि जोँहि णउ गाहइ। कुन्दुरु खणहि महासुहें साहइ ॥
जिम तिसिओ मिअ-तिरिणे धावइ। मरइ सोँसहिँ णभ-जलु कहिँ पावइ ॥९१॥

शून्यहि संग न करहुँ तैं, जहँ तहँ सम चिन्तेहि ।
तिल-तुष-मात्रउ शल्यता, वेदन करइ अवश्य ।।७५।।
सर्व रूप तहँ ख-सम करीजै । ख-सम स्वभावे मनहुँ धरीजै ।।
सो भी मन तहँ अ-मन करीजै । सहज स्वभावे सो पर कीजै ।।७७।।
घरें घरें कहियत सोभ कहाना । नहि पर सुनियत महसुख थाना ।।
सरह भनै जग चित्तें बहाई । सो अचित्त ना केंहुहि गहाई ।।७८।।
एक देव बहु आगम दीसै । आपन इच्छें स्फुट परिभासै ।।७९।।
आपन नाथा अन्यहु रुद्धा । घरें घरें सोंइ सिद्धान्त प्रसिद्धा ।।
एक खाइ अरु अन्यहिँ फोडै । बाहर जाइ भतारैं लोडै ।।८०।।
अवत न दीसै जात नहिँ, होवत नहिँ जानीजै ।
निस्तरंग परमेश्वर, निष्कलक धारीजै ।।८१।।
सोहै चित्त ललाटे दिन्ना । अपन रूप ना देखहु भिन्ना ।।
काय-वाक्-मन जौ ना भाँगै । सहज-स्वभावे तौ ना राजै ।।८३।।
घरनी खाइस घरपतिहिँ, जहँ देशे अविचार ।
मारिय तह की ऊबरै, विसरिय योगिनि चार ।।८४।।
घरपति खाइअ सहजै राजै, कीजै राग-विराग ।
निज पास बइट्ठी चित्ते भ्रष्टी, योगिनि मधु प्रतिभास ।।८५।।

(८) सहज संयम

इमि दिवस निशहिँ अभिमानै, त्रिभुवन जाँसु निर्माण ।
सो चित सिद्धा योगिनी, सहज संवरा जान ।।८७।।
अक्षर बाढ़ा सकल जग, नाहिं निरक्षर कोइ ।
तौलौ अक्षर घोलिया, जौ लों निरक्षर होइ ।।८८।।
जिमि बाहर तिमि अभ्यन्तर । चौदह भुवने थितउ निरंतर ।।
अशरिर कोंई शरीरे लूकेउ । जो तेंहिँ जानेंउ सो तहँ मुंचेउ ।।८९।।
रूपणें सकलउ जो ना गहियै । कुदुरु क्षणहिँ महासुख साधै ।।
जिमि तृषितो मृगतृष्णे धावै । मरें सोखहिं, नभ-जल कहँ पावै ।।९१।।

कन्ध-भूअ-आअत्तण इन्दिअ-विसअ-विआर अप हुअ ।
णउ णउ दोहाच्छदेण, कहवि किम्पि गोप्पु ॥९२॥
पण्डिअ लोअहु खमहु महु, एत्थु ण किअइ विअप्पु ।
जो गुरुवअणे गइ सुअउ, तहि कि कहमि सु गोप्पु ॥९३॥

(९) कमल-कुलिश (वाममार्ग) साधना

कमल-कुलिस वे'बि मज्भ ठिउ, जो सो सुरअ-विलास ।
को न रमइ णह तिहुअणहिं, कस्स ण पूरइ आस ॥९४॥
खण-उबाअ सुह अहवा, अहवा वेण्णि'बि सो'बि ।
गुरु-प्पसाएँ पुराण जइ, विरला जाणइ कोबि ॥९५॥
गम्भीरह उआहरणें, णउ पर णउ अप्पाण ।
सहजाणन्द चउट्ठ खण, णिअ-सवेअण जाण ॥९६॥
घोरेंन्धारे चन्दमणि, जिम उज्जोअ करेइ ।
परम-महासुह एक्कु खणें, दुरिआसेस करेइ ॥९७॥
दुक्ख-दिवाअर अत्थगउ, उवइ तराबइ सुक्क ।
ठिअ-णिम्माणें णिम्मिअउ, तेण'बि मण्डल-चक्क ॥९८॥
चित्तहिं चित्त णिहालु बढ़ ! सअल विमुच्च कुदिट्ठि ।
परमगहासुहें सोज्भ परु, तसु आअत्ता सिद्धि ॥९९॥
मुक्कउ चित्त-गयद करु, एत्थ विअप्प ण पुच्छ ।
गअण-गिरी-णइ-जल पिअउ, तहिँ तड वसउ सइच्छ ॥१००॥
विसअ-गएँन्दे करें गहिअ, जिम मारइ पड़िहाइ ।
जोई कबड़ीआर जिम, तिम तहों णिस्सरि जाइ ॥१०१॥
जो भव सो णिब्बाण खलु, सो उण मण्णहु अण्ण ।
एक्क सहावें विरहिअ, णिम्मल मइँ पड़िवण्ण ॥१०२॥
घरहि म थक्कु म जाहि वणें, जहि तहि मण परिआण ।
सअलु णिरन्तर बोहि-ठिअ, कहिँ भव कहिँ णिब्बाण ॥१०३॥

स्कन्ध-भूत-आयतन-इन्द्री-विषय-विचार आप हुव ।
नव-नव दोहा-छन्देहिँ, कहब किछु गोप्य ॥९२॥
पडित लोगो क्षमहु मोहि, एहु न कियहु विकल्प ।
जो गुरु-वचने मैं सुनेँउ, तेहि किमि कहब सुगोप्य ॥९३॥

(९) कमल-कुलिश (वाममार्ग) साधना

कमल-कुलिश दोउ मध्य थित, जो सो सुरत-विलास ।
को तेँहिँ रमे न त्रिभुवने, कासु न पूरे आस ॥९४॥
क्षण-उपाय सुख अथवा, अथवा दोऊ सोइ ।
गुरु-प्रसादे पुण्य यदि, विरला जाने कोइ ॥९५॥
गम्भीरेँहि उदाँहरणे, ना पर ना अप्पान ।
सहजानन्द चतुर्थ क्षण, निज-सवेदन जान ॥९६॥
घोर अन्हारे चन्द्रमणि, जिमि उद्योत करेइ ।
परम-महासुख एक क्षण, दुरित-अशेष करेइ ॥९७॥
दुःख-दिवाकर अस्त गउ, उयेँउ तारपति शुक्र ।
स्थित निर्माणे निर्मियउ, तेहिहिँ मण्डल-चक्र ॥९८॥
चित्रहिं चित्र निहार मूढ़ ! सकल विमुच कुदृष्टि ।
परम-महासुखे सोध पर, तासु हाथ मोँ सिद्धि ॥९९॥
मुक्तउ चित्त गयद करु, एहि विकल्प ना पूछ ।
गगन-गिरी-नदि-जल पियहु, तहँ तट वसै स्व-इच्छ ॥१००॥
विषय-गयन्दे कर गही, जिमि मारै प्रतिभास ।
योगी कैडीकार जिमि, तिमि तहँ निस्सरि जाइ ॥१०१॥
जो भव सो निर्वाणहू, सो पुनि मानहु अन्य ।
एक स्वभावे विरहिता, निर्मल मैँ प्रतिपन्न ॥१०२॥
घरहि न रहु ना जाहु वन, जहँ तहँ मन परि-जान ।
सकल निरतर बोधि थित, कहँ भव कहँ निर्वाण ॥१०३॥

ऍहु सो अप्पा ऍहु परु, जो परिभावइ को'बि।
ते विणु बन्धे बेट्ठि किउ, अप्प-विमुक्काउ तो'वि ॥१०५॥
पर-अप्पाण म भन्ति करु, सअल णिरन्तर बुद्ध।
ऍहु सो णिम्मल परमपउ, चित्त सहावे सुद्ध ॥१०६॥
अद्दअ-चित्त-तरूअरह, गउ तिहुँवणेँ वित्थार।
करुणा फुल्ली फल धरइ, णाउ परत्त उआर ॥१०७॥
सुण्णा तरूवर फुल्लिअउ, करुणा विविह विचित्त।
अण्णा भोअ परत्त फलु, एहु सोँक्ख परु चित्त ॥१०८॥
सुण्ण तरूवर णिक्करुण, जहि पुणु मूल ण साह।
तहि अलमूला जो करइ, तसु पडिभिज्जइ बाह ॥१०९॥
ऍक्केँ बी' ऍक्के'बि तरु, तेँ कारणेँ फल ऍक्क।
ए अभिण्ण जो मुणइ सो, भव-णिब्बाण-विमुक्क ॥११०॥
जो अत्थी अणठीअउ, सो जइ जाइ णिरास।
खण्णु सरावे भिक्ख वरु, त्यजहू ए गिहवास ॥१११॥
पर-ऊआर ण कीअऊ, अत्थि ण दीअउ दाण।
ऍहु संसारे कवणु फलु, बरु छड्डहु अप्पाण ॥११२॥
—दोहाकोष पृ० ८-२३

२—गीत

(१) संसार-निर्वाणका भेद बनावटी

(राग गुजरी)

अपणे रचि रचि भव निब्बाणा, मिच्छेँ लोअ बँधावइ अपणा।
अक्खेँ ण जाणहु अचिन्त जोई, जाम-मरण भव कइसन होई ॥
जइसो जाम मरण 'वी तइसो, जीवँतेँ मइलेँ णाहि विशेशो।
जा एथु जामा मरणेँ विशंका, सोँ करउ रस-रसानेँ रे कंखा ॥
जो सचराचर तिअस भमन्ति। जे अजरामर किम्प न होन्ति।
जामे काम कि कामे जाम। सरह भणइ अचिन्त सो धाम ॥२॥

ऍहु सो आपा एहु पर, जो परिभावै कोइ।
सो बिनु बधे बँध गयउ, आपु विमुक्तउ तोपि ॥१०५॥
पर-आपन ना भ्रान्ति करु, सकल निरतर बुद्ध।
ऍहु सो निर्मल परम-पद, चित्त स्वभावे शुद्ध ॥१०६॥
अद्वय-चित्त-तरुवरा, गउ त्रिभुवन विस्तार।
करुणा फूली फल धरइ, ना परत्र उपकार ॥१०७॥
शून्य तरूवर फूलेँऊ, करुणा विविध विचित्र।
अन्या भोग परत्र फल, ऍहू सौख्य परचित्त ॥१०८॥
शून्य तरूवर निष्करुण, जेँहि पुनि मूल न शाख।
तहँ अलमूला जो करै, तासुइ भाँगै वाह ॥१०९॥
एक्कै एक्के ही तरु, ते कारण फल एक।
ऍहु अभिज्ञता करै सो, भव-निर्वाण-विमुक्त ॥११०॥
जो अर्थी अनर्थीअऊ, सो यदि जाइ निराश।
खड शरावे भिक्षहू, छाडहु ऍहु गृहवास ॥१११॥
पर-उपकार न कीयेँऊ, अर्थिं न दीजेँउ दान।
एहि ससारे कवन फल, वरु छाँडहु अप्पान ॥११२॥
—दोहाकोष पृ० ८—२३

२—गीत

(१) संसार-निर्वाणका भेद बनावटी

(राग गुंजरी)

अपने रचि-रचि भव-निर्वाणा, मिथ्यै लोक बँधावै अपना।
मैं ना जानहुँ अचिन्त योगी, जन्म मरण भव कैसन होई ॥
जैसो जन्म-मरणहू तैसो, जीवन मरणे नाहिँ विशेषो।
जो यह जन्म-मरण वीशंका, सो कर स्वर्ण-रसायन काछा ॥
सो सचराचर त्रिदश भ्रमन्ति, ते अजरामर किमि ना होंति।
जन्महिं कर्म कि कर्महिं जन्म, सरह भनै अचित सो धर्म ॥२॥

(२) सहज-मार्ग

(राग देशाख)

नाद न विन्दु न रवि-शशि-मण्डल , चीआ राअ - सहावे मूकल ।
उजु रे उजु छाड़ि मा लेहु बंक , निअड़ि बोहि मा जाहु रे लंक ॥
हाथेर कंकण मा लेहु दप्पण , अपणे आपा बूझतु निअ-मण ।
पार - उआरें सोई गजिई , दुज्जण-सागे अवसरि जाई ॥
वाम - दहिण जो खाल-विखाला , सरह भणइ बप ! उजु वट भइला ॥३२॥

(राग भैरवी)

काअ नावडि खान्टि मण केडुआल । सद् गुरु वअणे धर पतवाल ॥
चीअ थिर करि धरहु रे नाई । अण्ण उपाए पार न जाई ॥
नौवहि नौका टानअ गुणे । निर्मलि सहजे जाउ ण आणें ॥
बाटत भअ खान्ट 'बी बलआ । भव-उल्लोलें सब्ब वि' बलिआ ॥
कूल लई खरे सोन्ते उजाअ । सरहा भणइ गअणें समाअ ॥

(राग मालशी)

सुण्णे हो बिदारिअ रे निअ मण तोहोंर दोसे ।
गुरु-वअण विहारें रें थाकिब तइँ पुत ! कइसे ॥
एकाट हु भवई गअणा ।
वगे जाया नीलेसि पारे, भागेल तों होंर विणाणा ।
अबाभुअ भव-मोह रे दीसइ पर अप्पाणा ।
ए जग जल-बिंबाकारे सहजें सूण अपाणा ॥
अमिअ अच्छन्तें विस गीलेसि रे चिअ पर रस अप्पा ।
घरें परें का वुज्झीले मारि खाइब मइ दुठ कुँडवा ॥
सरह भणइ वर सून गोंहाली की मो दूठ बलन्दें ।
एकेले जग नाशिअ रे विहरहु छन्दें ॥३६॥
—चर्या पद[1]

---

[1] *Caryapadas. J.D.L., Cal. vol. XXX, pp. 1—156*

(२) सहज-मार्ग

(राग बेशाख)

नाद न विन्दु न रवि-शशि-मण्डल । चित्ता राग स्वभावे मुचल ।
ऋजु रे ऋजु छाड़ि ना लेहु वक । नियरें बोधि न जाहु रें लक ॥
हाथेइ ककण ना लेहु दर्पण । अपने आपा बूझहु निज मन ॥
पारे - वारे सोंई मादई , दुर्जन - सगे अवसर जाई ॥
वाम दहिन जो खाल-विखाला , सरह भनै बॉप ! ऋजु बाटें भइला ॥३२॥

(राग भैरवी)

काय नावडी नीकी मन केडुवाल[१] । सद्‌गुरु वचने धरु पतवार ॥
चित्तैं थिर करु धरु रे नाई । अन्य उपाये पार न जाई ॥
नाविक नौकहि खीच गुनेहि । मेली सहजे जानु न आनहिं ॥
बाटे भय बड़ ही बलवा । भव-उल्लोले सर्वउ कम्पा ॥
कूल लेइ खर स्रोतें बहाय । सरह भनै गगनहीं समाय ॥

(राग मालशी)

शून्य हो ! विदारिउ निज मन तोहरे दोषे ।
गुरु-वचन विहारे रे रहिबे तैं पुत ! कइसे ॥
एकटहु होई गगना ।
वके जाइ लीलेसि पारे, भॉगल तोंहर विज्ञाना ।
अद्‌भुत भव-मोह रे दीसइ पर अप्पाना ॥
ए जग जल-बिंबाकार सहजे शून्य अपाना ।
अमृत अछतै विष गिलेसि रे चित्त पर रस आपा ।
घरे परे का वूझीले मारि खाइब मैं दुष्ट कुटुवा ॥
सरह भने वर शून्य गोंहारी की मोंर दुष्ट बलदे ।
एकले जग नाशेंउ रे विहरहु छन्दे ॥३३॥

—चर्यापद[२]

---

[१] पतवार

§ २. शबरपा

कालः—८८० ई० (धर्मपाल-७७०-८०६)। देश—विक्रमशिला (भागलपुर)। कुल—क्षत्रिय, सिद्ध (५)। कृतियाँ—चित्तगुह्यगम्भीरार्थ-

(रहस्यवाद)

(गीत—राग बलाड्डि)

ऊचा ऊचा पावत तहिं बसइ सबरी बाली।
मोरँगि पिच्छ परिहिण शबरी गीवत गुजरि-माली॥
उमत शबरो पागल शबरो मा कर गुली-गुहाडा।
तोहोँरि णिअ घरिणी नामे सहज-सुन्दरी॥
नाना तरुवर मौँउलिल रे गअणत लागेँलि डाली।
एकेलि सबरी ए वण हिंडइ कर्ण कुंडल वज्रधारी॥
तिअ-धाउ खाट पडिला सबरो महासुहे सेज छाइली।
सबर भुजंग नैरामणि दारी पेक्ख राति पोहाइली॥
चिअ तांबोला महासुहे कापुर खाई।
सुन-नैरामणि कण्ठे लइआ महासुहे राति पोहाई॥
गुरु-वाक-पुंजिआ धनु णिअ-मण वाणे।
एके शर सन्धाने विन्धह विन्धह परम-णिवाणे॥
उमत सबरो गुरुआ रोषे गिरिवर-सिहरे सांधी।
पइसन्ते सबरो लोडिब कइसो॥२८॥

—चर्यापद

§ २. शबरपा

गीति, महामुद्रा-वज्रगीति, शून्यतादृष्टि, षडंगयोग, सहज-संवर-स्वाधिष्ठान, सहजोपदेश-स्वाधिष्ठान ।

(रहस्यवाद)

(गीत---राग वलाड्डि)

ऊँचा ऊँचा पर्वत, तँह वसै शबरी बाली ।
मोर-पिच्छ पहिरले शबरी ग्रीवा गुजा-माली ।।
उन्मत शबरो पागल शबरो ना करु गुली-गुहाड़ा ।
तोँहार निज घरनी नामे सहज-सुन्दरी ।।
नाना तरुवर मौरिल रे गगन ते लागल डारी ।
एकली शबरी यहि बन हीँडै कर्ण कुँडल वज्रधारी ।।
त्रिधातु-खाटे पडल शबरो महाँसुखेँ सेज छाइल ।
शवर भुजग निरात्मा दारी पेखत राति विताइल ।।
चित्त ताबूला महासुख कपूर खाई ।
शून्य-नैरात्मा कठे लेई महासुखे राति विताई ।।
गुरु-वाक-पुंज धनुष निज-मन वाणे ।
ऍक शर संधाने विंधहु परम-निर्वाणे ।।
उन्मत शबरा गुरुआ रोपे गिरिवर-शिखरे साँधी ।
पइठत शबरहिँ लौटाइब कैसे ।।२८।।

—चर्यापद

§ ३. स्वयंभूदेव

कविराज। काल—७९० ई० (ध्रुव धारावर्ष ७८०-९४ ई०)। देश—कोसल (? मध्यदेश)। कुल—ब्राह्मण (?) कवि माउरदेव और पद्मिनीके

१–आत्म-परिचय

(१) कविका आत्मनिवेदन

बुह-यण सयंभु पइँ विण्णवइ। महु सरिसउ अण्ण णाहि कुकइ॥
वायरणु कयाइ ण जाणियउ[1]। णउ वित्ति-सुत्त वक्खाणियउ॥
णा णिसुणिउ पच महाय कव्वु। णउ भरहु ण लक्खणु छंदु सव्वु॥
णउ बुज्झिउ पिंगल-पच्छारु। णउ भामह-दंडिय 'लंकारु॥
वेवेसाय तो 'वि णउ परिहरमि। वरि रयडा वुत्तु कव्वु करमि॥

---

[1] ९२ संधियाँ या प्रायः १२००० श्लोक स्वयंभूने रचे। आगे ९३—१०८वीं संधितक त्रिभुवन स्वयंभूने रचा। कथा ९२ तकमें ही पूरी हो जाती है।

[2] ८३वीं संधि तक स्वयंभूने रचा। कथा यहीं पूरी हो जाती है, तो भी त्रिभुवन स्वयंभू ने ७ संधियाँ और जोड़ी हैं। स्वयंभू-रामायणकी सबसे पुरानी प्रति भंडारकर इन्स्टीट्यूट (पूना)में है। यह गोपाचल (ग्वालियर) में १५६४ ई० (संवत् १५२१ ज्येष्ठ सुदी १० बुधवार) को लिखकर समाप्त की गई। दूसरी प्रति जयपुरमें मिली है। इस प्रकार पहिली प्रति गोस्वामी तुलसीदासके देहान्त १६२३ ई० (संवत् १६८०) से ५९ वर्ष पहिले लिखी गई थी। तुलसीकृत रामायणकी भाँति यह रामायण भी चौपाई (पज्झडिया) में है, और आठ-आठ पाँतियों (अर्धालियों)के बाद दोहा या किसी दूसरे छन्दमें घत्ता (विश्राम) मिलता है। स्वयंभूके उक्त दोनों ग्रंथ अप्रकाशित हैं।

[1] इच्छानुसार ह्रस्वको दीर्घ करके पढ़िये ह्रस्वचिन्ह ˘ है।

§ ३. स्वंयभू*

पुत्र, आदित्यदेवीके पति, त्रिभुवन स्वयंभूके पिता। कृतियाँ—हरिवंशपुराण[१], रामायण (पउमचरिउ[१]), और स्वयंभू-छन्द।

१—आत्म-परिचय

(१) कविका आत्मनिवेदन

बुध-जन स्वयमु तोँहि वीनवई। मोँहि सरिसउ अन्य नाहि कुकवी॥
व्याकरण किछू ना जानियऊ। ना वृत्ति-सूत्र बक्खानियऊ॥
ना सुनेउँ पाँच महान् काव्य। ना भरत न लक्षण छन्द सर्व॥
ना बूझेउँ पिंगल-प्रस्तारा। ना भामह - दंडि - अलकारा॥
व्यवसाय तऊ ना परिहरऊँ। वरु रयडा कहेँउ काव्य करऊँ॥

---

*बाण (हर्ष ६०६—४८ ई०) और रविषेण (६७६ ई०)के नाम स्वयंभू-ने अपने ग्रंथमें लिये हैं; उधर पुष्पदंत (९५९—७२ ई०)ने स्वयंभूका नाम लिया है; इस प्रकार स्वयंभू ६७६ और ९५९के बीचमें हुये। वह रयडा (राजश्रेष्ठी ?) धनंजयके आश्रित थे और उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू वंदइ (वंदक)के आश्रित। वंदइका ज्येष्ठ पुत्र गोविंद था। हमारे कवि (स्वयंभू)के नाम, श्रीपाल और धवलदय भी परिचित थे। किंतु उनमें कोई नाम प्रसिद्ध नही है। रामायणकी २०वीँ संधिमेँ उन्होँने "धुवराय राय व तइय भुअ-प्पणत्तिणत्तीसु याणुपायेण" पदमेँ ध्रुव-राज नामक किसी राजाका नाम दिया है। राष्ट्रकूटोँमें तीन ध्रुव हुये हैं, जिनमें एक महान् विजेता ध्रुव धारावर्ष (७८०-९४ ई०)था, दो उसके पुत्रसे होने वाली गुर्जर-शाखामें हुये, तो भी वह ८६७ ई०से पहिले हुये थे। ध्रुव धारावर्ष सेनाके साथ कन्नोज आया था। जान पड़ता है, उसीके अमात्य रयडाँके साथ स्वयंभू दक्षिण गये। ध्रुव धारावर्षके पुत्र इंद्रकी गुर्जर (खेडा) शाखामें दो ध्रुव थे——ध्रुव (प्रथम) धारावर्ष ८३०—३५, और ध्रुव (द्वितीय) ८६७ ई०।

सामाण भास छुड मा विहडउ । छुडु आगम-जुत्ति किंपि घडउ ॥
छुडु होंति सुहासिय-वयणाइँ । गामेल्ल - भास परिहरणाइँ ॥
ऍहु सज्जण लोयहु किउ विणउ । जं अबुहु पदरिसिउ अप्पणउ ॥
ज एवँवि रूसइ कोवि खलु । तहों हत्थुत्थल्लिउ लेउ छलु ॥
घत्ता। पिसुणें किं अब्भत्थिएण, जसु कोवि ण रुच्चइ ।
किं छण-इन्दु मरुग्गहे, ण कपंतु विमुच्चइ ॥३॥

—रामायण १।३

इय एत्थ पउमचरिए धणजआसिय सयंभु एव कए ॥

—रामायण (अन्त)

आइच्चएवि पडिमोवमाएँ, आइच्च नामा ए ।
वीअम उज्झा-कंड सयभु-घरिणीऍं लेहाविय ॥

—रामायण ४२ (अन्त)

रावण-रामहु जुज्भु ज, त निसुणहु रामायण । .
जएँ लोयहु सुयणहु पडियाहु । सद्दत्थ - सत्थ - परिचंडियाहु ॥
किं चित्तइ गेह्लवि सविकयाइँ । वारोण वि जाइँ न रंजियाइँ ॥
तो कवणु गहणु अम्हारिसेहिँ । वायरण - विहूणहिँ आरिसेहिँ ॥
कइ अत्थि अणेअ-गेअ भरिया । जे सुगण सहासहिँ आयरिया ।
हँउ कि वि न जाणमि मुक्खु मणे । णिय-बुद्धि पयासिय तो वि जणे ॥
जं सयलें वि तिहुवणें वित्थरिउ । आरंभिउ पुणु राहव-चरिउ ॥

—रामायण २३।१

तहिँ अवसरि सरसइ धीरवइ । "करि कव्वु दिण्ण मइँ विमल मइ" ॥
इंदेण समप्पिउ वायरणु । रसु भरहें वासे वित्थरणु ॥
पिंगलेंण छन्द - पय - पत्थारु । भम्महँ-दंडिणिहिं अलंकारु ॥
बाणेण समप्पिउ घणघणउ । त अक्खर-डबर घण-घणउ ॥
हरिसेणिं पाणिउ णित्तणउ । अवरेहिँ मि कइहिँ कइत्तणउ ॥

—हरिवंशपुराण १

सामान्य भाष यदि ना गढउँ । यदि आगम-युक्ति किछू गढउँ ॥
यदि होइँ सुभाषित वचनाईँ । ग्रामीण - भाष - परिहरणाईँ ॥
एँहु सज्जन-लोगहँ का विनऊ । जो अबुधि प्रदर्शउँ आपनऊ ॥
जो ऐसेंउ रूसै कोइ खला । तो हाथ-उछाला लेउ छल ॥
घत्ता । पिशुनहि का अभ्यर्थना, जासु किछू ना रूचई ।
का पूर्णेन्दु मरुद् ग्रहेँ, हिँ कंपंतो विमुच्चई ॥३॥

—रामायण १।३

एहु इहँ पद्म-चरिते, धनजयाश्रित स्वयभुये हिँ किये ।

—रामायण (अन्त)

आदित्यदेवि देवि-प्रतिमा आदित्यदेवीहिँ ।
द्वितिय अयोध्याकाडहिँ लिखेंउ स्वयंभु-घरनीहिँ ॥

—रामायण ४२ (अन्त)

रावण-रामहु जुद्धे जो । सोंई सुनहु **रामायण** ।
यदि लोग सुजन पडित अहे । शब्दार्थ-शास्त्र परिचित अहे ॥
की चित्तेहिँ ग्रहण न सक्कियाइँ । वासे हूँ होहि न रजियाइँ ॥
तो कौन ग्रहण हमरे सदृशहि । व्याकरण - विहून एतादृशहिँ ॥
कवि अहे अनेक-भेद-भरिया । जे सुजन स्वभाषहिँ आचरिया ॥
हौँ किछुअ न जानउँ मूर्ख-मने । निज वुद्धि प्रकासेउँ तोउ जने ॥
जो सकलेहिँ त्रिभुवनेँ विस्तरिऊ । आरभेंउ पुनि राघव-चरिऊ ॥

—रामायण २३।१

तेँहि अवसर सरसति धिरजाती । "करु काव्य, दियो मैँ विमलमति ॥"
इन्द्रेहि समर्पेउ व्याकरणा । रस **भरत** सु-वासहिं विस्तरणा ॥
पिंगलेंहिँ छन्द - पद - प्रस्तारा । **भामह** **वंडिनेहि** अलकारा ॥
वाणेहिँ समर्पेउ घनघनऊ । सो अक्षर - डंवर घन - घनऊ ॥
हरिसेनने पानिउ आपनऊ । अवरेंहिँ कवियेहिँ कवित्वनऊ ॥

—हरिवंशपुराण १

छव्वरिसाइँ तिमासा एयारस वासरा सयभुस्स ।
वाणवइ साधि करणे, बोलिणों इत्तिओ कालो ॥
दिगहाहियरसा वारे दसमी-दियहम्मि मूल-णक्खत्ते ।
एयारसम्मि चंदे[1] उत्तरकंड समाढत्त ॥
—हरिवंशपुराण ६२।३, ४

भद्दमासें विणासिय-भवकलि । हुउ परिपुण्ण चउद्दिसि णिम्मलि ॥
—हरिवंशपुराण (अंत)

धुवराय व तइय लु अप्पठत्ति-णत्ती सु याणु पाढेण
णामेण सागि अव्वा सयंभु-घरिणी महासत्ता ॥
—रामायण २० (अन्त)

(२) रामायण-रचना

अक्खर - वास - जलोह - मणोहर । सुयलंकार -छंद-मच्छोहर ॥
दीह-समास-पवाहा-वंकिय । सक्कय-पायय-पुलिणा-लंकिय ॥
देसी-भासा-उभय-तडुज्जल । कवि-दुक्कर-घण-सद्द-सिलायल ॥
अत्थ-बहल-कल्लोला णिट्ठिय । आसा-सय-सम-ऊह-परिट्ठिय ॥
राम-कहा सरि एँह सोहंती ।.. ....
—रामायण १

२—ऋतु और काल-वर्णन

(१) पावस

सीय स-लक्खण दासरहि, तरुवर-मूलें परिट्ठिय जावेंहिँ ।
पसरइ सुकइहि कव्वु जिह, मेह-जालु गयणगणें तावेंहिँ ॥
पसरइ जेम बुद्धि बहु-जाणहों । पसरइ जेम पाउ पाविट्ठहों ॥
पसरइ जेम धम्मु धम्मिट्ठहों । पसरइ जेम जोण्ह मयवाहहों ॥
पसरइ जेम कित्ति जगणाहहों । पसरइ जेंम चिंता धणहीणहों ॥
पसरइ जेम कित्ति सुकुलीणहों । पसरइ जेंम किलेसु णिहीणहु ॥

छै वर्ष तिमास इग्यारह वासरा स्वयभूको ।
बानवे सधि रचने हि, बोलियउ एत्तनो कालो ॥
दिवसाधिप को वार, 'दशमी दिवस मूल-नक्षत्रे ।
ग्यारहवें चद्र(मासे) उत्तरकाड समाप्त भवो ॥
—हरिवंशपुराण

भादौ मास विनाशित भव कलि, हुअ परिपूर्ण चऊदस निर्मलें ।
—हरिवशपुराण (अन्त)

ध्रुव राजा ....
नामेन स्वामि.......स्वयंभुघरिनी महासत्त्वा ॥
—रामायण २० (अन्त)

(२) रामायण-रचना

अक्षर - वास - जलोघ - मनोहर । सु - अलकार - छद - मत्स्योधर ॥
दीर्घसमास-प्रवाहहिं वकित । सस्कृत-प्राकृत-पुलिनालकृत ॥
देशी भाषा दोउ-तट उज्ज्वल । कवि-दुष्कर-घन-शब्द-शिलातल ॥
अर्थ-बहुल कल्लोलहिं सज्जित । आशा-शत-सम-ओघ-समर्पित ॥
राम-कथा सरि एहु सोहती । ....
रामायण १

२—ऋतु- और काल-वर्णन

(१) पावस

सीय स-लक्ष्मण दाशरथि, तरुवर-मूले वैठेंउ जवहीं ।
पसरै सुकविहिँ काव्य जिमि, मेघ-जाल गगनगणे तबहीं ॥
पसरै जिमि बुद्धी वहु-ज्ञानहँ । पसरै जिमि पापा पापिष्टहँ ।
पसरै जिमि धर्मा धर्मिष्टहँ । पसरै जिमि ज्योत्स्ना मृगवाहहँ ॥
पसरै जिमि कीर्ती जगनाथहँ । पसरै जिमि चिन्ता धनहीनहँ ॥
पसरै जिमि कीर्त्ती सुकुलीनहँ । पसरै जिमि किलेश निहीनहँ ॥

पसरइ जेम राइ सुर-तूरहों । पसरइ जेम रासि णहें सूरहों ॥
पसरइ जेम दवग्गि वणतरे । पसरिउ मेह-जालु तह अवरे ॥
तड़ि तड़-तड़इ पडइ घणु गज्जइ । जाणइ रामहों सरणु पवज्जइ ।
घत्ता । अमर महद्धणु गहिय करें, मेह-गइन्दे चडिवि जस-लुद्धउ ।
उप्परि गिभ णराहिवहों, पाउस-राउ णाइँ सण्णद्धउ ॥१॥
जे पाउस-णरिन्दु गल-गज्जिउ । धूली रउ गिभेण विसज्जिउ ॥
गपिणु मेह विंदि आलग्गउ । तडि करवालु पहारें हिँ भग्गउ ॥
ज 'वि वरम्मुहु चलिउ विसालउ । उट्ठिउ हणु-हणंतु उण्हालउ ॥
धग-धग-धग-धगतु उद्धाइउ । हस-हस-हस-हसतु संधाइउ ॥
जल-जल-जल-जलतु पयलंतउ । जालावलि-फुलिंग मेल्लंतउ ॥
धूमावलि-धय-दंड अभेग्गिणु । वर-वाउल्लि-खग्ग कड्ढेप्पिणु ॥
झड़-झड़-झड़-झड़तु पहरतउ । तरुअर-रिउ भड-थड-भज्जतउ ॥
मेह-महग्गय-घड विहडंतउ । ज उण्हालउ दिट्ठु भिड़ंतउ ॥
पाउस-राउ ताव संपत्तउ । जल-कल्लोल-सति पयडतउ ।
घत्ता । धणु अप्फालिउ पाउसेण, तडि-डंकार-फार दरिसंतउ ।
चोइवि जलहर-हत्थि-हड, णीर सरासणि मुक्क तुरंतउ ॥२॥
जल-वाणासणें घायहिँ घाइउ । गिण्हु णराहिउ रणें विणिवाइउ ।
ददुर रडें वि लग्ग ण सज्जण । ण णच्चंति मोर खल-दुज्जण ॥
णं पूरेंत सरिउ अक्कदें । णं कइ किलकिलन्ति आणन्दें ।
ण परहुय विमुक्कु उग्घोसें । ण वरहिण लवंति परिओसें ।
णं सरवर बहु असु-जलोल्लिय । ण गिरिवर हरिसें गंजोल्लिय ।
ण उण्हविय दवग्गि विओएँ । णं णच्चिय महि विविह-विणोए ।
णं अत्थविउ दिवायर दुक्खे । णं पइसरइ रयणि सइ सोक्खे ।
रत्तपत्त-तरु-पवणाकंपिय । केण'वि, काहेंउ गिंभुऊ जंपिय ।
घत्ता । तेहएँ कालें भयाउरये, विण्णि'वि वासुएव बलएव ।
तरुवर-मूलें स-सीय थिय, जोग लयेविणु मुणिवर जेंव ॥३०॥
——रामायण २८।१-३

पसरै जिमि शब्दा सुर-सूर्यहूँ। पसरै जिमि राशि नभें सूरहूँ ।।
पसरै जिमि दावाग्नि वनातरें। पसरेंउ मेघ-जाल तिमि अवरें ।।
तडि तड़-सडै पडै घन गरजै। जानकि रामहँ शरणहिं व्रजै ।।
घत्ता। अमर महाधनु गहि करै, मेघ गयदे चढेंउ यशलुब्धा।
ग्रीष्म नराधिप कहँ ऊपर, पावस-राज केर दल सज्जा ।।१।।
जनु पावस-नरेन्द्र गल-गर्जेउ। धूली-रज ग्रीष्मेहि विसर्जेउ ।।
जपिय मेघवृन्द आ-लागेउ। तडि करवाल प्रहारेहिँ भागेउ।
जनु हि पराङ्-मुख चलेंउ विशाला। उट्ठेंउ हनहनत ऊष्णाला।
धग-धग-धगत उद्-धायउ। हस-हस-हस-हसन्त संजायउ।
ज्वल-ज्वल-ज्वल-ज्वलंत प्रचलंता। ज्वालावलि फुलिंग मेलता।
धूमावलि-ध्वज-दंड उठायेउ। वर-बादली खड्ग कड्ढायेउ।
झड-झड़-झड़-झडत प्रहरता। तरुवर-रिपु भट-ठट भज्जता।
मेघ महागज-घट विघटता। जनु उष्णाला दीख भिडता।
पावस-राव तबहिं आयता। जल-कल्लोल शाति प्रकटता।
घत्ता। धनु फरकायेउ पावसहिं, तडि टकार फार दरसता।
प्रेरिय जलधर-हस्ति-घट, तीर शरासन मोचु तुरता ।।२।।
जल-वाणासने घातहिं धायेउ। ग्रीष्म नराधिप रणेंहि निपातेउ।
दादुर रटन लागु जनु सज्जन। जनु नाचई मोर खल-दुर्जन।
जनु पूरहिं सरिता आक्रंदे। जनु कपि किलकिलंति आनन्दे।
जनु परभृत विमोच्चु उद्घोषे। जनु वर्हिन लपति परदोषे।
जनु सरवर वहु-अश्रु-जलोल्लित। जनु गिरिवर हर्ष गजोल्लित।
जनु ऊपमिय दवाग्नि वियोगें। जनु नाचिय मंहि विविधि-विनोदे।
जनु अस्तमेउ दिवाकर दु.खे। जनु पइसे रजनी सति सौख्ये।
रक्तपत्र-तरु-पवना-कपिय। केंहेहि कहेउ ग्रीष्मऊ जल्पिय।
घत्ता। तेहेंहि कालें भयातुरे, दोउहि वासुदेव वलदेव।
तरुवर-मूले स-सीय चित, जोग लइय मुनिवर जेम ।।३।।

—रामायण २८।१-३

(२) वसंत

कुव्वर-णयरु पराइय जावेहि । फागुण-मासु पवोलिउ तावेहि ।
पइठु वसंत-राउ आणंदें । कोइल कलयलु मंगल-सद्दें ।
अलि-मिहुणेंहिं वंदिणेंहिं पढन्तेंहि । बरहिण बावणेहि णच्चन्तेहिं ।
अंदोला-सय-तोरणवारेंहिं । ढुक्कु वसंतु अणेय-पयारेंहिं ।
कत्थइ चूअ-वणइ पल्लवियइँ । णव-किसलय-फल-फुल्लु 'ब्भवियइँ ।
कत्थइ गिरि-सिहरहिं विच्छायइ । खल-मुँह इव मसि-वण्णइं जायइं ।
कत्थइ माहव-मासहो मेइणि । पिय-विरहेण 'व सूसइ कामिणि ।
कत्थइ गिज्जइ-वज्जइ मदलु । णर-मिहुणेहिं पणच्चिउ गोंदलु ।
त तहों णयरहों उत्तर-पासेंहिं । जण-मण-हरु जोयण-उद्देसेहिं ।
दिट्ठु वसंत-तिलउ उज्जाणु । सज्जण-हियउँ जेम अपमाणु ।
—रामायण २६।५

ण वीसर-पइ सारएं सारएं । माहव-मासु णाइ हक्कारइ ।
सासय-सिव स पावणें पावणें । दरिसावियउ फग्गुणे फग्गुणें ।
णव-फल-पारिपक्काणणें काणणें । कुसुमिग साहारएँ साहारएँ ।
रिद्धि गयपकोक्कणयहि कणयहों । हरा ब्भरिये कु-वलएँ कुवलएं ।
महुयर महु गज्जतएँ जराएं । कोइल वासतएँ वासतए ।
कीर-वदि उट्ठतए-ठतए । मलयाणिलें आवंतएँ वंतएँ ।
मधुवरि-पडिसल्लावएं लावएं । जहि णवि तित्तिरयहों तित्तिरएं ।
णाउ ण णावइ किसुइ किसुइ । जहि वरोण गय-णाहहों णाहहों ।
तहि तणु तप्पइ सीयहें सीयहें ।
घत्ता—अच्छउ सामण्णे केणवि अण्णो, जहि अइमुत्तउ रइ करइ ।
तं जण-मण-भज्जावणों, रच्छ-सहावणु को महुमासु ण संभरइ ॥१॥
कत्थइ अंगारय-संकाराउ । रेहइ तंबिरु फुल्ल पलासउ ।
ण दावाणलु आउ गवेसउ । "को मइ दड्ढ ण दड्ढु पएसउ" ।

(२) वसंत

कुव्वर नगर पहूँचेउ जब्बहि । फागुन-मास प्रवोलेउ तव्वहि ।
पइसु वसत-राव आनन्दे । कोइल-कलकल मंगल-शब्दे ।
अलि-मिथुनेंहि वदीहिं पढ़न्तेंहि । वर्हिन वामनेहिं नाचतेहि ।
अन्दोलित-शत-तोरणवारेहिँ । ढुक्कु वसत अनेक-प्रकारहिँ ।
कहि कहिँ चूत-वनहिँ पल्लवितहिँ । नव-किसलय-फल फूलु' ऊविलहिँ ।
कहिँ कहिँ गिरिशिखरा वि-च्छाया । खल-मुख इव मसिवर्णहिँ लाया ।
कहिँ कहिँ माधव-मासहिँ मेदिनि । प्रिय-विरहेंहिँ जनु श्वसही कामिनि ।
कहिँ कहिँ गावै वाजै माँदर । नर-मिथुनेहिँ प्रनाचेंउ गोंदल ।
सो तेहिँ नगरहँ उत्तर-पासेँ । जन-मनहर योजन-उद्देशेँ ।
दीख वसत-तिलक उद्याना । सज्जन हियहिँ यथा अप्रमाणा ।
—रामायण २६।५

जनु दीवस-पति धीरेइँ धीरे । माधव-मास न्याइँ हकारे ।
शाश्वत-शिव इव पावन-पावन । दरसायऊ फागुने फा-गुन ।
नव-फल-परिपक्वानन कानन । कुसुमेंउ सहकारे-सहकारे ।
ऋद्धि गयेउ कोकनद करकहँ । हसा हँसे कुवलय कु-वलय ।
मधुकर मधु मज्जते याते । कोकिल वासतेँ वासतेँ ।
कीर-वदि उट्ठते ठते । मलयानिल आवंते-वते ।
मधुकरि प्रतिसलापै लापै । जहँ नव-तीतरयेँ तीतरये ।
नाम न नावै किंशुकि किं-सुकि । जँह वशेहि गजनाथहँ नाथहँ ।
तहँ तनु तप्पै सीतहँ शीते ।

घत्ता—आछेउ सामान्ये कौनहुँ अन्ये, जहँ अतिमुक्तउं रति करइ ।
जन-मन-मज्जावन, स्वच्छ-सुहावन, को मधु-मास न आदरइ ॥१॥

कहिँ कहिँ अंगारक-सकाशा । राजे तामरु फुल्ल पलाशा ।
जनु दावानल आइ गवेषा । "को मैं दाहु न दाहु प्रदेशा" ।

कत्थवि गाहविए णिय-मदिरु । यतु णिवारिउ त इंदिदिरु ।
ऊसरु ऊसरुतहु अपावित्तउ । अण्णएँ णव पुप्फवइऍच्छित्तउ ।
कत्थइ भूय-कुसुम-मजरियउ । णाइ यसत वड़ायउ भरियउ ।
कत्थइ पवण-हयइ पुण्णायइ । ण जगे उत्थल्लिया पुण्णायइ ।
कत्थइ अहिणवाइ भमरउलइ । थियइ वसंत-सिरिहे णं कुरलइ ।
फणसइ अयुह-मुहा इव जड्डइ । सिरि-हलाइ सिरिहल इव वड्डइ ।
—रामायण ७१।१-२

(३) संध्या-वर्णन

उवहसइ संझाराउ सुह-बधुरु । विद्दुमयाहरु मोत्तिय-दंतुरु ।
छिवइ'व मत्थउ मेरु-महीहरु । तुज्झुवि मज्झुवि कवणु पईहरु ।
जं चंद-कंत-सलिलाहिसित्तु । अहिसेय-पणालु'व फुसिय चित्तु ।
जं विद्दुम-मरगय-कंतिआहि । थिउ गयणु'व सुरधणु-पंतिआहि ।
ज इंदणील-माला-मरीऍ । आलिहइ वदि भित्तीऍ तीए ।
जहि पोमराय-पह तणु विहाइ । थिउ अहिणव-संझाराउ णाइ ।
जहि सूरकंति खेइज्जमाणु । गउ उत्तार-येराहों णाइ भाणु ।
जहि चंद-कंति मणि-चंदियाउ । णव-यद-ब्भासें चंदियाउ ।
अच्छरिउ कुमार चवंति येच । वहु चंदी-हूयउ गयणु केम ।
पिक्खेप्पिणु मुत्ता-हल-णिहाय । गिरि-णिज्झर भणेवि धुवंति पाय ।
—रामायण ७२।३

३. भौगोलिक वर्णन

(१) देश-वर्णन

अवहत्थे'वि खल-यणु णिरवसेसु । पहिलउ णिरु वण्णमि मगह-देसु ।
जहिं पक्क-कलम-कमलिणि णिसण्णु । अलहंत तरणि थेरव विसण्णु ।

कहिँ कहिँ माधविया निज मदिर । जोउ निवारेउ इदिदिरू ।
ऊसर ऊस ऋतुहुँ अपविश्रा । अन्ये नव पुष्पवतिएँ क्षिप्तउ ।
कहिँ कहिँ मूक कुसुम-मजरिया । न्याइँ वसत बडापउ धरिया ।
कहिँ कहिँ पवनाहत पुन्नागा । जनु जग ऊछ्ल्ले ँउ पु-नागा ।
कहिँ कहिँ अभिनव-भ्रमर-कुलाऊ । रहे ँउ वसत-सिरिहि इव कुरुलउ ।
पनसा अवुध-मुखा इव जड्डा । सिरि-फल सिरिफलाहि इव बड्डा ।
—रामायण

(३) संध्या-वर्णन

उपहसै संध्या-राग सुख-बंधुर । विद्रुमक-अधर, मौक्तिक-दतुर ।
छुवइ इव मस्तक मेरु-महीधर । तुम्हंरे ँउ हमरे ँउ कवन पतीघर ।
जनु चंद्रकान्त सलिलाभिषिक्त । अभिषेक-प्रणालि 'व स्पृशित-चित्त ।
जनु विद्रुम-मरकत-कातियाहि । रहु गगन इव सुरधनु-पंक्तियाहि ।
जनु इद्रनील-माला-मसीहि । आलिखइ बन्द भित्तीहि ताहि ।
जहँ पद्मराग-प्रभ-तनु विभाहिं । रहु अभिनव-सध्या-राग न्याइँ ।
जहँ सूर्यकांति क्षीइज्जमान । गउ उत्तर-देसहिं न्याइ भानु ।
जहँ चंद्रकातमणि-चद्रियाव । नव-चंद्राभासे चद्रिकाव ।
अँचरजे ँउ कुमार च्यवंत एव । बहु चद्रीभूतउ गगन केम ।
पेखियवउ मुक्ताफल-निभाय । गिरि-निर्झर भनि धोवत पाय ।
—रामायण ७२।३

३-भौगोलिक वर्णन

(१) देश-वर्णन

अपभ्रशे ँउ खल-जन-अनवशेष । पहिले ँउ मैं वर्णउँ मगह-देश ।
जहँ पक्व कलम-कमलिनि निषण्ण । अलभंत तरणि थिरवहिँ विषण्ण ।

जहिँ सुय-पतिउ सुपरिट्ठिआउ । ण वणसिरि-मरगय-कंठियाउ ।
जहिँ उच्छु-वणइ पवणाहयाइँ । कपंति'व पीलणभय-गयाइ ।
जहिँ णंदण-वणइँ मणोहराइँ । णच्चंति'व चल-पल्लव-कराइँ ।
जहिँ फाडिम-नयणइँ दाडिमाइँ । णज्जंति ताइ णं कइ-मुहाइँ ।
जहिँ महुयर-पंतिउ सुंदराउ । केअइ-केसर-रय-धूसराउ ।
जहिँ दक्खा-मंडव परियलंति । पुणु पथिय रस-सलिलइँ पियंति ।
——रामायण १।४

(२) नगर-वर्णन

(क) राजगृह

घत्ता । तहिँ पट्टणु णामें रायगिहु, धण-कणय-समिद्धउ ।
ण पुहइऍ णव-जोव्वणाइ, सिरि-सेहरु आइद्धउ ।।४।।
चउ गोउर-त्ति पायार-वन्तु । हँरा इव मुत्ताहल-धवल-दन्तु ।
णच्चइ'व मरुद्धुय-धय-करग्गु । धर इव णिवडतउ गयण-मग्गु ।
सूलग्ग-भिण्णु देउल-सिहरु । कण इव पारावय-सद्द-गहिरु ।
धुग्गइ'व गएँहि मयभिभलेहिँ । उड्डइ'व तुरंगहि चंचलेहिँ ।
ण्हाइ'व ससिकंत-जलोयरेहिँ । णच्चइ'व तार-गेहल-हरेहिँ ।
पक्खलइ'व नेउर-णिय-लएहिँ । विप्फुरइ'व कुंडल-युयलएहिँ ।
किलकिलइ 'व सव्व-जणोच्छवेण । गज्जइ इव मुरव-भेरी-रवेण ।
गायइ 'व अलाव-णिमुच्छणेहिँ । पुरवइ 'व धम्मु धण-कच्चणेहिँ ।
——रामायण १।५४-५

(ख) महेन्द्रनगर

घत्ता । गयणंगणे थिएण, विज्जाहर-पवर णरिन्दहो ।
णाइ स-णिच्छरेण, अवलोइउ णयरु महिंदहो ।।१।।
चउ-दुवारु चउ-गोउरु चउ-पायारु-पंडर । गयण-लग्ग पवणाहय-धयमालाउर पुर ।
गिरि-महिन्द-सिहरे रमाउले । रिद्धि-विद्धि-धण-धण्ण-साकुले ।
तं णिएवि हणुयेण चिंतियं । सुरपुरं • किमिदेण धरिसिय ।
——रामायण ४६।१-२

जहँ शुक-पक्तिउ सुपरि-स्थिताव । जनु वन-श्री-मरकत-कठियाव ।
जहँ इक्षु-वना पवनाहता । कपत इव पेलन-भय-भीता ।
जहँ नदन-वने मनोहरा । नाचत इव चल-पल्लव-करा ।
जहँ फाटें वदन दाडिमा । दीखत से वे जनु कपि-मुखा ।
जहँ मधुकर-पक्तिउ सुदराईं । केतकि-केसर-रज-धूसराइँ ।
जहँ दाखा-मडप परिचलहीं । पुनि पथिक रस-सलिलहिं पियहीं ।
—रामायण १।४

(२) नगर-वर्णन

(क) राजगृह

घत्ता । तहँ पत्तन नामा राजगृह, धन-कनक-समृद्धउ ।
जनु पुहुमिहिँ नवयौवन-श्री-शेखर आदेशितऊ ।।
चौगोपुर चौप्राकार-वन्त । हँस इव मुक्ताफल धवल-दन्त ।
नाचत 'व मरुत-धुत-ध्वज-कराग्र । धारा इव पडतो गगन-मार्ग ।
शूलाग्र विँधेँउ देवल-शिखर । क्वण इव पारावत शब्द-गहिर ।
धूँवत इव मद-विह्वल-गजेहिँ । ऊड़त इव तुरगेँहिँ चचलेहिँ ।
न्हावत शशिकात-जलोदरेहिँ । प्रणमति 'व तार-मेखल-धरेहिँ ।
प्रस्खलइ 'व नूपुर-निजलयेहिँ । विस्फुरइ 'व कुडल-जुगलऐहि ।
किलकिलति 'व सर्व-जनोत्सवेन । गर्जति 'व मुरज-भेरी-रवेन ।
गायति 'व अलापा-मूर्छनेहिँ । पूरति 'व धर्म-धन-काचनेहिं ।
—रामायण

(ख) महेन्द्रनगर

घत्ता । गगनागणे स्थितउ, विद्याधर-प्रवर-नरेन्द्रहु ।
न्याइँ स-निश्चरहिँ, अवलोकेउ नगर-महेन्द्रकहु ।
चौद्वार चौगोपुर चौप्राकार पाडुर । गगन लाग पवनाहत-ध्वजमालाकुल पुर ।
गिरि-महेन्द्र-शिखरे रमाकुल । ऋद्धि-वृद्धि-धनधान्य-संकुल ।
ताहि देखि हनुमत चितयेँउ । सुरपुर किमि इन्द्र धरत्तियउँ ।
—रामायण ४६।१-२

(ग) दधिमुख-नगर

मण-गमणेण तेण णहें जंते । दहिमुह-णयरु दिट्ठु हणुवंते ।
दिट्ठु राम-सीमा चउपासेंहि । धरिउ णाइ पुर-रिणिय सहासेंहि ।
जहि पफुल्लियाइँ उज्जाणइ । बट्टइ' ण तित्थयर-पुराणइ ।
जहि ण कयावि तलायइ सुक्कइ । णं सीयलइ सुट्ठु पर-दुक्खइ ।
जहि वाविउ विरथय-सोवाणउ । ण कुगइ'व हेट्ठा-मुह-गमणउ ।
जहि पायार ण केणवि लंघिय । जिण-उवएस णाइ गुरु-लंघिय ।
जहि देउलइ धवल-पुंडरियइँ । पोत्था वायरणइ बहु-चरियइँ ।
जहि मंदिरइँ स-तोरणवारइँ । ण सम-सरणइँ सहपरिवारइँ ।
जहि भुव-णेत्त-सुत्त दरिसावण । हरि-हर-बम्हेहि जेहा आवण ।
जहि वर-वेसउ तिणयण-भूवउ । पवन-भुयंग-सतहि अणुहुअउ ।
जहि गयणत्थ-वसह हर हरसइ । राम-तिलोयण जेहा गहवइ ।
घत्ता—तहि पट्टणें बहु उवमहु भरिअऍ, णं जगें सुकइ-कव्वि वित्थरियएँ ।
सहइ स-परियणु दहिमुहि-राणउ, णं सुरवइ सुरपुरहों पहाणउ ॥१॥

रामायण ४७।१

(३) समुद्र-वर्णन

णिद्दलिय भुअंग-विसग्गि गुमकु । मुक्कांत ण वर-सायरहु ढुक्कु' ।
ढुक्कतेंहि वहल फुलिंग पित्त । मण रिप्पि-संख-सपुड-पलित्त ।
धग-धग-धगति गुत्ता-हलाइँ । कढ़-कढ-कढ़ंति सायर - जलाइँ ।
हस-हस-हसन्ति पुलिणंतराइँ । जल-जल-जलन्ति भुवणंतराइँ ।

—रामायण २७।५

संचल्लेउ राहव साहणेण । संघट्टिउ वाहणु वाहणेण ।
थोवंतरे दिट्ठु महासमुद्दु । सुंसुयर-मयर-जलयर-रउद्द ।
मच्छोहरु-णक्क-गोहु घोरु । कल्लोलावलु तरंग-थोरु ।

' बाटे, बाडै, बाप ' बेल्यो (व्रज और बुंदेली)

(ग) दधिमुख-नगर

मनकी गतिसों सो नभ जंता । दधिमुख नगर देखु हनुमता ।
देखु आराम-सीम चौपासेंहिं । धरेंउ जनू पुर-रणित सहासहिँ ।
जहँ प्रफफुल्लिताउ उद्याना । बाटै[1] जनु तीर्थंकर[2]-पुराणा ।
जहँ न कदापि तलावा सूखहिँ । जनु शीतलत सुप्ट पर-दुखहिँ ।
जहँ वापी विस्तृत-सोपाना । जनु कुगती हेठे-मुँह जाना ।
जहँ प्राकार न कोऊ लघेंउ । जिन-उपदेश न्याइँ दुर्लघेंउ ।
जहँ देवलहिँ धवल-पुडरिका । पोथी बाँचै औ बहु-चरिता ।
जहँ मंदिरा स-तोरणवारा । जनु शाम-शरणा सह-परिवारा ।
जहँ भुव-नेत्र-सूत्र-दरसावन । हरि-हर-ब्रह्मा जैसो आवन ।
जहँ वर-वेश्या त्रिनयन-भूता । प्रवर-भुजग[3]-शतेंहिँ अनुभूता ।
जहँ गगनस्थ वृषभ हर हरषति । राम-त्रिलोचन सरिसो गृहपति ।
घत्ता । सो पत्तन बहु-उपमा-भरिया, जनु जग सुकवि-काव्य विस्तरिया ।
रहै स-परिजन दशमुख राना । जनु सुरपति सुरपुरहिँ प्रधाना ॥

—रामायण ४७।१

(३) समुद्र-वर्णन

निर्दलेंउ भुजग विसर्ग मोचु । मोचत जनु वर-सागरहिँ ढूकु[4] ।
ढूकत हि बहु स्फुलिग क्षिप्त । घन-सीप-शख-सपुट-प्रलिप्त ।
धग-धग-धगत मुक्ताफला । कड-कड-कडत सागर-जला ।
हस-हस-हसत पुलिनातरा । ज्वल-ज्वल-ज्वलत भुवनातरा ।

—रामायण २७।५

सचल्लेंउ राघव साधन-सँग । सघट्टेंउ वाहन वाहन-सँग ।
थोडान्तरे देखु महासमुद्र । सूँस अवर मकर-जलचरेंहिँ रौद्र ।
मत्स्योधर-नाका-गोह-घोर । कल्लोलावत तरग-जोर ।[5]

---

[1] हैं [2] पथप्रवर्त्तक महावीर [3] वेश्यालम्पट [4] देखु [5] थोर

वेला गड्ढतउ दुहुदुहतु। फेणुज्जल-तोय तुषार दितु।
तहों अवरें पगडउ राग-सेण्णु। ण मेह-जालु णहयलें णिगण्णु।

—रामायण ५६।६

घत्ता। मण-गमणेंहिं गयणि पयट्टेंहि, लग्गिउ रावण-समुद्दु किह।
महि-गइयहों णह-यल-रक्खसेण, फाडेंउ जठर-पयेसु जिह।२

दीसइ रयणायरु रयण-वाहु। विण्णु'व सवारि छदु 'व सगाहु।
अत्थहु सुहि'व हत्थि'व करालु। भंडारिउ'व्व वहु-रयण-पालु।
सूहव-पुरिसो'व्व सलोण-सीरु। सुग्गीउ'व पयडिय इंद-लीलु।
जिण-सुव चक्कावइ'व कियव सेलु। गज्भाणु'व उप्परि चडिय वेलु।
तवसि'व परिपालिय समय-सारु[1]। दुज्जण पुरिसो'व्व सहाव-खारु।
णिद्धण आलाउ'व अप्पमाणु। जोइसु'व मीण-कक्कडय-थाणु।
महकव्व-णिबन्धु'व सद्द-गहिरु। चामीयर'व सव्य-पीय-मयरु।
तहि जलणिहिउ लघतएहि। वोहित्थए दिट्ठइ जतएहि।
सीह-वडए लंबिय एलाइं। महरिसि चित्ताइँव अचिन्तलाइं।

—रामायण ६९।२-३

(४) नदी (गोदावरी)-वर्णन

थोवंतरे मच्छुत्थल्ल देंति। गोला-णइ दिट्ठु समुव्वहंति।
सुंसुअ घोरग्घुरु-घुरु-हुरति। करि-मय-रङ्घोहिय डुहु-डुहंति।
डिडीर-सड-मंडलिउ दिंति। ददुदुर यरडिय दुरु-दुरु-दुरंति।
कल्लोलुल्लोहिउ उव्वहंति। उग्घोरा-घोरा घव-घव-घवंति।
पडिखलण-वलण खल-खल-खलंति। खल-खलिय खडक्कि भडक्क देंति।
सरि-संख-कुंद-धवलो भरेण। कारडुड्डाविय डंवरेण।

---

[1] आचारव्रत

बेलहिँ बर्धंतउ दुह-दुहंत । फेनु-'ज्ज्वल तोय-तुषार देत ।
तेँहि ऊपर पहुँचेँउ राम-सेन । जनु मेघजाल नभ-तलेँ निषण्ण ।

—रामायण ५६।९

घत्ता । मन-गतिहि गगनेँ चलतउ, लक्खेउ लवण-समुद्र किमि ।
महि-मडल नभ-तल राक्षसेँहिँ, फाडेँउ जठर-प्रदेश जिमि ।।

दीसइ रत्नाकर रतन-चारु । विष्णु'व सवारि छदि'व सगाथ ।
अर्थहु सुख इव हस्ति'व कराल । भडारी इव वहु-रतन-पाल ।

सु-भव[1] पुरुष इव सलोन-शील । सुग्रीवि'व प्रकटेँउ इन्द्र-नील ।
जिनसुत चक्रवर्ति'व कियेँउ शैल । मध्यान्हि'व ऊपर चढेँउ बेल ।

तपसी इव पालेँउ समय-सार । दुर्जन-पुरुष इव स्वभाव-खार ।
निर्धन-अलाप इव अ-प्रमाण । जोतिसि 'व मीन-कर्कटक-थान ।

महकव्य-निबँध इव शब्द-गहिर । चामीकरि'व शयित-पीत-मकर ।
तहँ जलनिधिहू लघतयेहु । बोहितऊ देखेँउ जातएहु ।

सिह-वटहिँ लबित-फलाउ । महऋषि-चित्ता इव अविचलाउ ।

—रामायण ६९।२-३

(४) नदी-वर्णन

थोडातरे मच्छ-उछल्ल देत । गोदा-नदि देखु समा-वहत ।
सूँसउ घोरा घुर-घुर-धुरत । करि-मद-रड्डोहित डुहु-डुहुंत ।

हिडीर-खंड मंडलिउ देत । दादुर-ध्वनियहु दुर-दुर-दुरत ।
कल्लोलु-'ल्लोहित उद्वहत । उद्घोष घोप घब्-घब्-घबंति ।

प्रतिखलन-वलन खल-खल-खलत । खल-खलिउ खडक्कि भटक्कि देत ।
शशि-शंख-कुद-धवला भरेण । कारंडव 'डायउ डंबरेण ।

---

[1] सुजात

घत्ता । फेणावलि वंकिय-वलयालंकिय, ण महि बहुअहे तणिया ।
जल-णिहि भत्तारहों मोत्तिय हारहों, वाह पसारिय दाहिणिया ॥३॥
—रामायण ३१।३

(५) वन-वर्णन

तहि तेहए सुंदरे सुप्पवहे । आरण्ण-महग्गय-जुत्त-रहे ।
धुर लक्खणु रहवरे दासरहि । सुर-लीलएँ पुणु विहरंत महि ।
त कण्ह-वण्ण-णइ मुएँ विगगा । वण कहिंगि णिहालिय मत्तगया ।
कत्थवि पंचाणण गिरि-गुहेहिँ । मुत्तावलि विक्खिरंति णहेहिँ ।
कत्थवि उड्डाविय सउण-सया । ण अडविहे उड्डे विणण-गया ।
कत्थवि कलाव णच्चंति वणे । णावइ णट्टावा जुयइ-जणे ।
कत्थइ हरिणइँ भय-भीयाइ । ससारहों जिह पावइ याइँ ।
कत्थवि णाणा-विह रुक्ख-राइँ । ण महि-कुल-बहुअहि रोमराइँ ।
—रामायण ३६।१

(६) मातृभूमि (अयोध्या)-प्रशंसा

धूवंत धवल-धय चड-गउरा । पिय पेक्खु अउज्झाउरि णयरु ।
घत्ता । किर जम्मभूमि जणणीय सम, अण्णु विहूसिय जिणवरेहि ।
पुरि वंदिय सिर सयंभुव करेंहि, जणय-तणय-हरि-हलहरेहिँ[१] ॥२॥
—रामायण ७८।२०

(७) यात्रा-वर्णन

(क) हनूमानकी लंकासे अयोध्याकी यात्रा—

घत्ता । मणगमणेहिँ गयणे पयट्टेहि, लक्खिउ रावण-समुद्दु किह ।...
अण्णुवि थोवंतरु जतएहि, तिहिंमि णिहालिउ गिरि-मलउ ।
जो लवली-वलहो चदण सरहो, दाहिण-पवणहों थाम लउ ॥३॥

---

[१] राम-लक्ष्मण

घत्ता । फेणावलि-वंकिम वलयालंकृत, जनु महि-वधुअहि-तनिया ।[1]
जलनिधि भत्तारह मौक्तिकहारहं, बाँह पसारिय दाहिनिया ॥
—रामायण ३।१।३

(५) वन-वर्णन

तँह तेहिहि सुदर सु-प्रभो । आरण्य महागज-युक्त रहो ।
धुर लक्ष्मण रथवरें दाशरथी । सुर-लीलहिं पुनि विहरत मही ।
सो कृष्ण-वेण-नदि मृग-सहिता । वन कहुउँ निहारिय मत्तगजा ।
कहिँ कहिँ पंचानन गिरि-गुहाहिँ । मुक्तावलियहिँ विकिरत नभहिँ ।
कहिँ कहिँ उड्डायेँउ शकुन-शता । जनु अटविहि उड्डुँ वियद-गता ।
कहिँ कहिँ कलापि नाचत वने । न्याईं नाट्या वा युवति-जने ।
कहिँ कहिँ हरिना भय-भीताइँ । ससारहु जिमि पापहिं जाइ ।
कहिँ कहिँ नानाविध वृक्षराजि । जनु महि-कुलवधुवहि रोमराजि ।
—रामायण ३६।१

(६) मातृभूमि-प्रशंसा

धूवंत धवल-ध्वज वट-प्रवरू । प्रियें ! पेखु अयोध्यापुरि नगरू ।
घत्ता । फुरु जन्म-भूमि जननीहिँ सम, आन विभूपित जिनवरेहिँ ।
पुरि वंदि सिर स्वयभू करेहि, जनकतनय-हरि-हलधरेहिँ ।
—रामायण ७८।२०

(७) यात्रा-वर्णन

(क) हनूमान्‌की लंका-अयोध्या

घत्ता । मन वेगेंहिँ गगनें चलतो, लखेँउ लवण-समुद्र जिमि ।
अवरो थोडं तरे जातो, तहँहिँ निहारेँउ गिरि-मलयो ।
जो लवली वलहो चदन-सरहो[2], दक्षिण पवन विस्तार लियो ।

---

[1] तनी=वाली　　[2] बेँत

जहि जुवइ-पउरु पारज्जियाएँ। रत्तुप्पल-कयलिय-वण थियाइँ।
कामिणि-गइ छाया मरियाइँ। जहि हंस-वलउ आवासियाइँ।
कर-करयल-ऊहामिय गणाइ। जहि माणइ-कंकेल्ली-वणाइँ।
जहि वयण-णयण-पहु घल्लियाउ। कमलिंदीवरइ समल्लियाउ।
जहि महुरवाणि-अवहत्थिआउ। कोइल-कुलाइँ कसणइ थियाइँ।
भउहावलि-छाया-चकियाइँ। जहि णिंब-दलइ कडुअइँ कियाइँ।
जहि चिहुर-भार ऊहामियाइ। वरहिण-कुलाइँ रोवाधियाइँ।
त गलउ मुएँवि विहरंति जाव। दाहिण-महुरएँ आसण्ण ताव।
घत्ता। **किक्किंध-महागिरि** लक्खियउ, राग-रिहउ कोडावणउ।
छुड रमिअहे पुहइ-विलासणिहे, उर-पयोरु णंग सव्वणउ ॥४॥
जहि इंदणील-कर-भिज्जमाणु। ससि थाइ जुण्ण-दप्पणु-समाणु।
जहि पउमराग-कर-तेय-पिडु। रत्तुप्पल-सण्णिहु होइ चंदु।
जहि मरगय-खाणिवि विप्फुरंति। ससिबिंबु भिसिणि पत्तु वकरंति।
त गेल्लें विरह-सुच्छल्लिय-गत्त। णिविसद्धे सरि **कावेरि** पत्त।
जालिइय विहंजेंवि णरवरेहि। महकव्व-कहा इव कइ-वरेहि।
सामिय-आणा इव किंकरेहि। तित्थकर-वाणि'व गणहरेहि[1]।
सिव-सासयमोक्खि'व हेउयेहि। वरसाहदुपत्ति'व वाउएहि।
पुणु दिट्ठु महानइ **तुंगभद्द**। करि-मयर-मच्छ-कच्छय-रउद्द।
घत्ता। असहंतो वण-दव-पवण-झडु, दसह-किरण-दिवायरहों।
ण सज्झें सुट्ठु ति साएण, जीहें पसारिय सायरहों ॥५॥
पुणु दिट्ठ पवाहिणि **कण्णवेण्ण**। किविणत्थ-पडत्ति'व महि-णिराण्ण।
ण इंदणील-कंठिय-भरेण। दक्खविय समुद्दहों आयरेण।
पुणु सरिभीम-जलोह फार। जा सेउण देसहों अमिय-धार।
पुणु **गोला**-णइ गंभर-पवाह। सभेण पसारिय णाइ वाह।

---

[1] तीर्थंकर महावीरके प्रथम प्रमुख शिष्य

जहँ युवति-प्रवर पाराजिताइँ । रक्तोत्पल-कदली-वन थिताइँ ।
कामिनिगति-छाया-र्माषिताइँ । जहँ हस-यूथ आवासिताइँ ।
कर-करतल ईहामृग-मनाइँ । जहँ मालति-ककेल्ली-वनाइँ ।
जहँ वदन-नयन-प्रभ फेँकियाइँ । कमलि-'दीवरहु समेलियाइँ ।
जहँ मधुर-वाणि अपहरितताइँ[1] । कोकिल-कुलाइँ कृष्णा थिताइँ ।
भौँहावलि-छाया-वंकिमाइँ । जहँ निँव-पत्र कटुका कियाइँ ।
जहँ चिकुर-भार ईहामृगाइँ । वर्हिण-कुलाइँ रोवाडताइँ ।
सो मलय-भूमि विहरत जौ । दक्षिण-**मथुरहिँ** आसन्न तौ ।
घत्ता । **किष्किंध**-महागिरि लखियहू, तुग-शिखर कोडावनऊ ।
यदि रम्यहि पुहुमि-विलासिनिहीँ, उर प्रदेश अनग सर्वनऊ ।।३४।।
जहँ इन्द्रनील-कर-भिद्यमान । शशि रहै जीर्ण-दर्पण-समान ।
जहँ पद्मराग-कर-तेज-पिड । रक्तोत्पल-सदृश होइ चंद ।
जहँ मरकत-खानिहि विस्फुरति । शशिबिब भिसिहि प्रत्युपकरति ।
सो छाडि विरह-सुच्छलिय-गात्र । निमिपार्धे सरि **कावेरि** प्राप्त ।
ज्वालयित विभगेहु नरवरेहिँ । महकाव्य-कथा सोँ कविवरेहि ।
स्वामी-आज्ञा सोँ किकरेहिँ । तीर्थंकर-वाणि सोँ गणधरेहिँ ।
शिव-शाश्वत भोति सोँ हेतुएहिँ । वर शब्दु-'त्पत्ति सोँ वायुएहिँ ।
पुनि देखु महानदि **तुंगभद्र** । करि-मकर-मच्छ-कच्छप-रउद्र ।
घत्ता । असहतो वन-दव-पवन झड, दुसह किरण-दिवाकरहू ।
जनु संध्यहि सुठि तृषितयहि, जीभ पसारेँउ सागरेहिँ ।।५।।
पुनि देखु प्रवाहिणि **कृष्णवेण्य** । कृपिणार्थ-प्रवृत्ति'व महि-निषण्ण ।
जनु इंद्रनील कठे धरेहिँ । देखिविय समुद्रहु आकरेहिँ ।
पुनि सरि **भीम** जलोघ फार । जो सेतुन देसहु अमृधार ।
पुनि **गोदा** नदि मथर-प्रवाह । सझेहिँ पसारेँउ नारि-वाँह ।

---

[1] पराजित

पुणु वेण्णि पाइण्हिउ वाहिणीउ । ण कुडिल-सहावउ कामिणीउ ।
पुणु तापि महाणइ सुणवाह । सज्जण-मत्तिव्व अलद्धथाह ।
थोवतरालें पुणु विंझु थाइ । सीमतउ पि हिमिहितणउ णाइ ।
पुणु रेवा णइ हणुवत एहि । सांणदिय रोराव संगएहि ।
कि विंझहों पासिउ उवहि चारु । जो रविसु किविणु अझब खारु ।
त णिसुणेवि सीय-सहोयरेण । विग्गाच्छय णहयल-गोयरेण ।
घत्ता । ज विंझु मुए'वि गय सायरहों, मा रुसहि रेवा-णइहें ।
णिल्लोणु मुयइ सलोणु सरइ, णिय-सहाउ यहु तिय मइहें ॥६॥
साणम्मय दूरवरेण वत्त । पुण उज्जयणें णिविसेण पत ।
जहि जणवउ सधणु महग्घणो'व्व । रामो वरिवच्छलु लक्खणोव्व ।
गुणवतउ घणु कर-सगहों'व्व । अमुणिय-कर-सिर-तणु वम्महो'व्व ।
साविउ महिल'व्व उज्जेणि मुवक । पुणु पारियत्त मालवु ढुक्कु ।
जो धण्णालकिउ णर-वइ'व्व । उच्छहणु कुसुम-सरु रइवइ'व्व ।
त मेल्लें'वि जउणा णइ पवण्ण । जा अलय[1]-जलय-गव-लालि-वण्ण ।
जा कसिण भुयंगि'व विसहों भरिय । कज्जल-रेहा-वण धरणिएँ धरिय ।
थोवंतरें जल-णिग्गल-तरग । ससि-सख-सम-प्पह दिट्ठ गंग ।
घत्ता । अग्गहहँ विहि गरुवउ कवणु जइ, जुज्झि वि आयं मच्छरेण ।
हिमवंतहों ण अवहरिविणिया, धरा-वडाइँ रयणायरेण ॥७॥
थोवंतरें तिहि मि अउज्झ दिट्ठ । णं सिद्धिपुरिहि सिद्धव पइट्ठ ।
जहि मिहुणइ आरभिय रयाइ । पंथिय इव उव्वाहय पयाइ ।
पाहुण इव अवखंडण-मणाइ । गिरिवर-मत्ता इव सव्व णाइ ।
अविचल-रज्जा इव सुकरणाइ । रिसि-उल इव भाण-परायणाइ ।
धणुहर इव गुण-मेल्लिय सराइँ । अहोंरत्ता इव पहराउराइ ।.....
घत्ता । महि-मदरु-सायरु जावणहु, जाव दिसाइ महणइ जलइ ।
तउ होंति ताव जिणकेराइ, पुण्ण पवित्तइ मगलइ ॥८॥
—रामायण ६९।३-८

---

[1] मूंगा

पुनि दोउ **पयस्विनि** वाहिनीहुँ । जनु कुटिल-स्वभावउ कामिनीहुँ ।
पुनि **तापि** महानदि-सुप्रवाह । सज्जन-मैत्री 'व अलब्ध-थाह ।
थोडतराले॑ पुनि **विंध्य** जाइ । सीमतहूँ हिमकेरि न्याइँ ।
पुनि **रेवा** नदि हनुमत आव । सानदिउ रोपउ सगतेहि ।
कीँ विंध्यहु पासे उदधि चारु । जो सवहुँ कृपण झाँपेउ खार ।
सो सुनि सीय-सहोदरेन । विमरशेँउ नभतल-गोचरेन ।
घत्ता ।| जो विंध्यभुमिहुँ गउ सागरहु, ना रुसइ **रेवा** नदिहि ।
निर्लवण मुचइ सलवण सरइ, निज स्वभाव स्त्रीमयहि ॥६॥
सा **नर्मद** दूरतरेण त्यक्त । पुनि **उज्जयिनी** निमिषेण प्राप्त ।
जहँ जनपद सघन महार्घ इव । रामोपरि वत्सल लक्ष्मण इव ।
गुणवतउ धन कर-संग्रह इव । अमुनिय-कर-शिर तनु मन्मथ इव ।
शापित महिलि'व **उज्जयन** मुचु । पुनि पारियात्र **मालवहिँ** ढूकु ।
जो धान्यालकृत नरपति इव । उत्सहन कुसुम-शर रतिपति इव ।
सो छाडिय **जमुना** नदी पहुँच । जो अलक[१]-जलक गो लाल-वर्ण ।
जो कृष्णभुजगि'व विष-भरिया । कज्जल-रेखा-वन धरनि धरिया ।
थोडतरे जल-निर्मल-तरंग । शशि-शख-समप्रभ देखु **गंग** ।
घत्ता । हमरो सम गरुओ कौन, यदि जूझिव वहु-मत्सरहीँ ।
हिमवतहु जनु अपहरण किय, ध्वजपताक रतनाकरहीँ ॥७॥
थोडतरे तहँहि **अयोध्य** दृष्ट । जनु सिद्धिपुरिहि सिद्धप प्रविष्ट ।
जहँ मिथुनइ आरभेँउ रजाइँ । पंथिक इव उट्ठाइय पदाइँ ।
पाहुन इव आलिगन-मनाइँ । गिरिवर-गात्रा इ सर्व न्याइँ ।
अविचल राज्या इव सु-करणाइँ । ऋषि-कुल इव भांड-परायणाइँ ।
धनुधर इव गुणे॑ मेले'उ शराइँ । अहोँरात्रा इव प्रहरावराइँ । . . . .
घत्ता । महि-मदर-सागर जावनहूँ, जौ लौ दीसइ महनदि जलईं ।
ता होति तौ लौ जिनकेरइ, पुण्य-पवित्र मगलइ ॥८॥
—रामायण ६९।३-८

---

[१] मूँगा

(ख) रामकी लंकासे अयोध्या-यात्रा—

गउ लंक विहीसणु गिच्चगलु । सोलहउरो दिवसे पयट्टु बलु ।
रा-विमाणु रा-साहणु गगण-वहे । दावतु णिवाणइ पिअय महे ।
एहु सुंदर दीसइ मयरहरु । एहु मलय-मणोहरु सुरहि-तरु ।
किक्किंध-महिवहो इह रायल । इह तुलिय कुमारे कोडिसिल ।
हउँ लक्खणु एण पहेण गय । एत्तहि खर-दूसण-तिसिर हय ।
इह राबु कुमारहो खुडिउ सिरु । इह फेडिउ रिसि-उवसग्गु चिरु ।
इह सो उद्देसु णिअच्छियउ । जिय मोंस जणणु जहि अच्छियउ ।
एहु देसु असेसु वियारु चरिउ । अइवीर णराहिउ जहि धरिउ ।
घत्ता । त सुंदरियउ जियत उरु, जहि वण बाल समावडिय ।
लक्खिज्जइ लक्खण णागवहो, अहिणव वेल्लि णाइ चडिय ॥१६॥
रामउरि एह गुण-गारविय । जा पूयण जक्खे कारविय ।
एहु अरुणु गामु कविलहो तणउ । जहि गत-थल्लाविउ अप्पणउ ।
एहु दीसइ सुंदरि ! विंझ-इरि । जहि नरा किउ वालि-खिल्लु वइरि ।
वइदेहि ! एउ कुव्वर-णयरु । कल्लाण-माल जहि जाउ णरु ।
एहु वसउरु जहि लक्खणु भणिउ । सीहोयर सीह रागरि वणिउ. . . .
दीसइ सव्वु सुवण्णु भउ । णिब्भणिउ विहीसणि ण णवउ ।
धूवत धवल-धय-वड-पउरु । पिय ! पेक्खु अउज्झाउरि णयरु ।

—रामायण ७८।१६-२०

४—सामन्त-समाज

(१) भोजन-प्रकार

लहु[1] भोयणु आणहि सुंदरउ । ज सरस-सलोणउ जेहे सुरउ ।
त णिसुणेवि वेवि सचल्लिउ । णं सुरसरि-जउणा उत्थल्लिउ ।

---

[1] तुरंत

(ख) लंका-अयोध्या

गयउ लक विभीषण-मित्र-बल। सोलहवें दिवस प्रवृत्त बल।
स-विमान स-सेना गगनपथी। दर्शत निवानइ प्रियकाक्षी।
ऍहु सुदर दीसइ मकरधरु। एहु मलय-धराधर सुरभि-तरु।
किष्किन्ध महेन्द्रहु एहु सकला। एहिँ ठायउ कुमारें कोटि-शिला।
हौं लक्ष्मण जेहि पथहिँ गयउँ। ऍहिठँव खर-दूषण त्रिशिर हतेंउँ।
एहिँ शाव कुमारहु खुटेंउ शिरु। एहिँ नाशेंउ ऋषि-उपसर्ग चिरू।
ऍहिँ सोई देश निरीक्षियऊ। जित मोमजनन जहँ अच्छियऊ[1]।
एहु देश अशेष विचार चरेंऊ। अतिवीर नराधिप जहँ धरेंऊ।
घत्ता। सो सुदरियउ जयतपुरु, जहँ वनपाल आइ पडिया।
लखहु ऍह लक्ष्मण पादपहु, अभिनव वेइल-जस चढिया ॥१॥
रामपुरि एह गुण-गौरविया। जा पूजन यक्षहिँ कारविया।
एहु अरुण-ग्राम कपिलहु-तनऊ[2]। जहँ फेक दियेंउ मैं आपनऊ।
एहु दीसइ सुदरि! विध्यगिरी। जहँ वश किउ वालखिल्य वैरी।
वैदेहि! एहु कुब्बर-नगरु। कल्याण-माल जहँ जनेंउ नरू।
एहु दशपुर जहँ लक्ष्मण भ्रमेंऊ। सिंहोदर सिंह समरें दमेंऊ।
दीसइ सर्व सुवर्ण भवऊ। निर्मियेंउ विभीषण जनु नवऊ।
धूवंत धवल-ध्वज-पट-प्रवरू। प्रिये! अयोध्यापुरि नगरू।

—रामायण

४—सामन्त-समाज

(१) भोजन-प्रकार

लघु[3] भोजन आनहिँ सुदरऊ। जो सरस-सलोनउ जिमि सुरऊ।
सो सुनिकर दोऊ सचलियउ। जनु सुरसरि-जमुना उच्छलियउ।

---

[1] आछे=हैं [2] केरउ [3] तुरत

रद्ध एक्कु लहु लेविणु आउउ । ण सुरसरि-लच्छिउ विलग्गाइउ ।
नड्ढिउ भोयणु मोयण-राज्जउ । अच्छइ पच्छइ लहयइ पेज्जइ ।
सक्कर-खंडेंहि पायरा-पयरेंहि । तप्पुव-तावण-गुल-दग्धु-रसेंहि ।
मडा-सोमवत्ति धीअउरेंहि । गुग्ग-सूप णाणाविह कूरेंहि ।
सालणएहि विवण्ण-विचित्तेंहि । गाउणि मामदेहि निम्मित्तेंहिं ।
अल्लय-पिप्पलि-मिरिआ-मलयहि । लावण-मालूरेंहि कोमलयहि ।
न्विभिडिया[1]-कणेर-वासुत्तिहि । पेउव-पप्पडेहि सुपहुत्तेंहि ।
केलय-णालिकेर-जबीरिहि । करमर-करविंदेहि करीरिहि ।
तिम्मणेहि णाणाविह-वण्णेंहि । राउप-भज्जिय-खट्टावण्णेंहि ।
अण्णु वि खड-सोल्ल-गुल-रोल्लिहि । बउवा-इंगणेहि कारेल्लेंहि ।
विंजणेहि स-महिय-दहि-खीरिहि । सिहरणि-चूय-पत्ति-सोवीरिहि ।
घत्ता । अच्छउ एवउ मुह-रसिउ, अविअण्हउ उल्हावणउ किह ।
जहि जि लहिज्जइ तहि जि तहि, गुलियारउ जिणवर-वयणु जिह ॥११॥
—रामायण ५०।११

(२) नारी-सौंदर्य

(क) सीता—

हरि पहरसु पसरिउ जावेंहिं । जाणइ-णयण कडक्खय तावेंहिं ।
सुकइ-सुकव्व-सुसंधि सु-संधिय । सुपय-सुवयण-सुसद्द-सुवद्धिय ।
थिर-कलहंस-गमण गइ-मथर । किस-मज्झारें णियवें सुवित्थर ।
रोमावलि मयरहरुत्तिण्णी । ण पिपिलि-रिञ्छोलि विलिण्णी ।
अहिणव-हुंडूपिंड-पीणत्थण । णं मयगल उर-खंभणिसुंभण ।
रेहइ वयण-कमलु अकलकउ । ण माणरा-सार विअसिउ पकउ ।
सुललिय-लोयणु ललिय-पसण्णहँ । ण वरइत्त मिलिय वर-कण्णहँ ।
घोलइ पुट्ठिहि वेणि महाइणि । चदण-लयहिँ ललइ णं णायणि ।
घत्ता । कि बहु जपिएण तिहिँ भुयणिहिँ जं जं चंगउ ।
तं त मेलवेवि णं, दइवें णिम्मिउ अगउ ॥३॥
—रामायण ३८।३

---

[1] कँकडी

राँधु एक लघु लेके आयउ । जनु सुरसरि-लक्ष्मी बिखरायउ ।
परसेँउ भोजन मोदन-सज्जइ । चर्व्यइ चोष्यइ लेह्यइ पेयइ ।
शक्कर-खडेहिँ पायस-पयसेहिँ । लड्डू-रावण गोल-इक्षुरसेहिँ ।
मडा-सोय वत्ति घेवरहीँ । मूँगसूप नाना-विधि गुडहीँ[२] ।
सालन एहू वर्णबिचित्रा । माइन माकदहीँ विचित्रा ।
अदरक-पीपरि-मिरिचा-मलयहिँ । लावण-कइथईहि कोमलयहिँ ।
चिरभटिका[१] कनेर-वासुत्तेहिँ । पेउब पापडही सुबहूतहिँ ।
केला-नारिकेल-जंबीरा । करभर-करविंदा कारीरा ।
तेँवनही नानाविध वर्णहि । स्वादू भजिया-खट्टावनहिँ ।
अन्यउ खड-सोल गुड-सोली । वडवा-इकनारु कारैली ।
व्यंजनहीँ स-भैँस-दधि-खीरहिँ । शिखरण-अम्मावट-सौवीरहिँ[४] ।
घत्ता । रहहेँऊ एहू मुख-रसिक, अवितृष्णा ललचाव किमि ।
जहँहि लेइये तहँहि तहँ, मीठो जिनवर-वचन जिमि ॥११॥
—रामायण ५०।११

(२) नारी-सौंदर्य

(क) सीता—
हरि प्रहरत प्रशसेँउ जब्बेँ । जानकि नयन कटाक्षेँउ तब्बेँ ।
सुकवि-सुकाव्य मुसंधि सधिया । सुपद-सुवचन-सुशब्द, सुवधिय ।
थिर-कलहस-गमन गतिमथर । कृश मझारेँ नितब सुविस्तर ।
रोमावली मकरघर तीनी । जनु पिपीलिका पक्ति-विलीनी ।
अभिनव हुड-पिड पीनस्तन । जनु मदकल[५]-उरु-खभ-निजीतन ।
राजै वदन-कमल अकलंकउ । जनु मानससर विकसेँउ पकज ।
सुललित-लोचन ललित-प्रसन्ना । जनु वरियात मिलेँउ वर-कन्या ।
डोले पीठिहिँ वेणि महाइनि । चदन-लतहिँ ललै जनु नागिनि ।
घत्ता । का बहु जल्पनेहिँ तिहु भुवनहिँ जो जो चगा ।
सो सो मिलाईया जनु दैवेँ निरमेँउ अगा ॥३॥
—रामायण ३८।३

---

[१] कँकड़ी [२] सेवईँ [३] भात [४] मट्ठा [५] हाथी

सचल्ले विंभ महाणयेण । लक्खिज्जइ जाणइ राणयेण ।
पप्फुल्लिय धवलकमल-वयणा । इंदीवर-दल-दीहर-णयणा ।
तणु मज्झें णियवे वच्छें गरुआ । जं णयण कडक्खिय जणय-सुया ।
उम्मायण मयणहिं मोगणेहिं । वाणेंहि सदीवण-सोसणेहिं ।
आइग्गिय सल्लिउ मुच्छियउ । पुणु दुक्खु दुक्खु उम्मुच्छियउ ।
कर मोडइ अंगु वलइ हसइ । अससइ ससइ पुणु णीससइ ।
घत्ता । मयरद्धय-सर-जज्जरिय-तणु, पहु येम गजगिउ वुड्डयमणु ।
वलिवडएँण वसि वणवसहु, उद्दालें विआणहु गासु सहु ॥
—रामायण २७।२

(ख) मंदोदरी—

घत्ता । सहसत्ति दिट्ठु मदोयरिए, दिट्ठिएँ णल-भउहालइ ।
दूरहों जें समाहउ वच्छयले, ण णीलुप्पल-मालए ॥२॥
दीसइ तेण वि सहसत्ति बाल । ण भसले अहिणव-कुसुममाल ।
दीसत चलण-णेउर रसंत । ण महुर-राव वंदिण पठत ।
दीसइ णियव-मेहला-समग्ग । ण कामएव-अत्थाण-मग्ग ।
दीसइ रोमावलि छुड चडंति । ण कसण-वाल-सप्पिणि ललंति ।
दीसंति सिहिणि[1] उवसोह देंत । ण उरयलु भिंदिवि हत्थि-दंत ।
दीसइ पप्फुल्लिय वयण-कमलु । णीसासामोवासत्त-भसलु ।
दीसइ सुणा(सु)अणुहुव[2] रागधु । ण णयण-जलहों किउ सेयउबधु ।
दीसइ णिड्डलु[3]-सिरु चिहुर-छण्णु । ससि-बिंबु व णव-जलहर-णिसण्णु ।
घत्ता । परिभमइ दिट्ठि तहों तहि जि तहिँ, अण्णहि कहि' मि ण थक्कइ ।
रस-लपडु महुयर-पंति जिम, केयइँ मुइवि ण सक्कइ ॥३॥
—रामायण १०।२-३

---

[1] सिहिण—पूनावाली प्रति का पाठभेद [2] य—पूना [3] णिडालु—पूना

सचल्लें उ विध्या पथनयेहिँ । लक्खिज्जै जानकि रामएहिँ ।
प्रप्फुल्लित-धवल-कमल-वदनी । इदीवर-दल-दीरघ-नयनी ।
माँझे क्षीण नितब-वक्ष गरुश्रा । जो नयन कटाक्षिय जनकसुता ।
उन्मादन मदनहि मोदनेहिँ । बाणें हिँ संदीपन-शोषणेहिँ ।
ग्राक्रमिया सालिय मूर्छियऊ । पुनि "दुख दुख" उन्मूर्छियऊ ।
कर मोड़ै अग कँपै हसई । ग्राश्वसै श्वसै पुनि निश्वसई ।
घत्ता । मकरध्वज-शर-जर्जरित-तनु, प्रभु ईमि प्रजल्प्ये उ कुपित-मना ।
बलवतएँ मवस बन बसहू, उद्दारे जानहु यासु (?) भेमा ॥३॥
—रामायण २९।३

(ख) मंदोदरी

घत्ता । सहसा दृष्ट मदोदरिए, दृष्टिहि चल-भौँहा-लई ।
दूरहुँ हि धारे'उ वक्षतले, जनु नीलोत्पल-मालई ॥२॥
दीसइ तेहिहिँ सहसा हि वाल । जनु भ्रमरे अभिनव-कुसुममाल ।
दीसत चरण-नूपुर रमत । जनु मधुर-राव वदिन पठत ।
दीसइ नितब-मेखल-समग्र । जनु कामदेव-दर्बार-मार्ग ।
दीसइ रोमावलि छुड[1] चढति । जनु कृष्ण-बाल-सर्पिणि ललति ।
दीसत स्तनहू शोभ देत । जनु उर-तल भिदें उ हस्तिदत ।
दीसइ प्रप्फुल्लित वदन-कमल । निश्वासामोदासक्त-भ्रमर ।
दीसइ सुनास अनुभुत-सुगध । जनु नयन-जलधि किये उ सेतुबध ।
दीसइ निस्तर शिर चिकुर-छन्न । शशि-बिंब'व नव-जलधर-निमग्न ।
घत्ता । परिभ्रमै दृष्टि तहि तहँहि तहीँ, अन्यहि कहहिँ न थक्कई ।[2]
रस-लपट मधुकर-पक्ति जिमि, केतकि भूमि न सक्कई ॥३॥
—रामायण १०।२-३

---

[1] तुरत　　[2] ठहरती, बगला—थाक

तहि अवसरें आइय मन्दोयरि । सीहहों पासि 'व सीह-किसोयरि ।
वर-गणियारि 'व लीला-गामिणि । पिय गाहवियँ वि महुरालाविणि ।
सारंगि 'व विप्फारिय-णयणी । सत्तावीं सजोयण-वयणी ।
कलहंसि 'व थिर-मंथर-गमणी । लच्छि 'व तिय तू वेजू रवणी ।
अहयो भाणि हि अणुहर-भाणी । जिह सा तिह एहवि पउ[1] राणी ।
जिह सा तिह एह वि सुमणोहर । जिह सा तिह एह वि पयसुंदर ।
जिह सा तिह एह वि जिण-सासणें । जिह सा तिह एह वि ण कुसासणें ।
घत्ता । किं बहु जंपिएण उवमिज्जइ काहें किसोयरि ।
णिय-पडिछंदइ णा थिय, सइं जें णाइँ मंदोयरि ॥४॥

—रामायण ४१।८

(ग) रावण-रनिवास—

। सचल्लिय मंदोयरि राणी ।
ताइ समाणु स-डोरु स-णेउरु । सचल्लिउ सयलु 'वि अंतेउरु ।
जं पप्फुल्लिय पंकय-णयणउ । जं कुवलय-दल-दीहर-णयणउ ।
जं सुरवर-करि-मंथर-गमणउ । जं पर-णरवर-मण-जूरणवउ ।
जं सुंदरु सोहग्गु 'ग्घवियउ । जं पीणत्थण-भारें णमियउ ।
जं मणहरु तणु-मज्झु सरीरउ । जं उरयट्ठणिय गंभीरउ ।
जं णेउर-रव घणु झंकारउ । जं रंधोलिय मोत्तिय-हारउ ।
जं कंची-कलाव-पब्भारउ । जं विब्भम-भूभंगु-वियारउ ।
घत्ता । तं तेहउ रावणकेरउ, अंतेउरु संचल्लियउ ।
ण सभमरु माणस-सरहें 'रें, कमलिणि-वणु पप्फुल्लियउ ।

—रामायण ४०।११

तहिँ पइसंतें हि दिट्ठु स-णेउरु । रावण-केरउ इट्ठ 'तेउरु ।
चिहुरेहि सिहंडि-उलंबु भाइ । कुरुलेहिँ इंदिंदिर-विंदु णाइ ।

---

[1] पट्ट, प्रधान

तेहि अवसर आइय मदोदरि । सिंह-पासें जनु सिंह-कृशोदरि ।
वर-गयदि जिमि लीलागामिनि । प्रिय-माधवियहिँ मधुरालापिनि ।
सारगी इव फारिय-नयनी । सत्ताईस-सयोजक-वदनी ।
कलहसि'व थिर-मथर-गमनी । लक्ष्मी इव या रूपारमणी ।
अभया भाणी अनुहर-भाणी । जेहिँ सा तेंहिहि सो पटरानी ।
जेहिँ सा तेहिँ ऐसहि सुमनोहर । जेहिँ सा तेहिँ ऐसहि पदसुदर ।
जेहिँ सा तेहिँ ऐसहि जित-शासन । जेहिँ सा तेहि ऐसहि न कुशासन ।
घत्ता । का बहु जल्पनेहिँ उपमिज्जै, कैस कृशोदरी ।
निज प्रतिबिंबउ ना ठिय, स्वयं न्याइँ मदोदरी ।।४।।

—रामायण ४१।४

(ग) **रावण-रनिवास—**

.... । सचल्लिय मंदोदरि रानी ।
ताहि स-मान स-डोर स-नूपुर । सचल्लेँउ सकलहु अन्तःपुर ।
जो प्रप्फुल्लिय पकज-नयनउ । जो कुवलयदल-दीरघ-नयनउ ।
जो सुर-वर-करि-मथर-गमनउ । जो पर-नरवर-मन-झूरनउ ।
जो सुदर-सौभाग्य-अर्च्यवयउ । जो पीनस्तन-भारे नमिअउ ।
जो मन-हर तनु-मध्य शरीरउ । जो उरोज स्तनियउ गभीरउ ।
जो नूपुर-रव-घन-झकारउ । जो सडोलिय मुक्ता-हारउ ।
जो काची-कलाप प्राग्-भारउ । जो विभ्रम-भ्रूभग-विकारउ ।
घत्ता । सो तेँहु रावणकेरउ, अत पुर सचल्लियउ ।
जनु सभ्रमर मानससरहिँ, कमलिनि-वन प्रप्फुल्लियउ ।

—रामायण ४०।११

तहँ पइसतहि देखु स-नूपुर । रावण-केरउ इष्ट्-अतःपुर ।
चिकुरेहिँ शिखंडि-कुल मनहुँ भाय । कुटिलेहिँ[1] इदीवर-वृन्द न्याइँ ।

---

[1] कुटिलन-प्रकाशै

भउहेहिँ अणंग-धणु-लइ वन'व । णयणिहि णीलुप्पल-काणण 'व ।
मुह-बिंबेंहि मय-लछण-वल 'व । कल-वाणिहि कल-कोइल-कुल 'व ।
कोमल्ल-बाहेंहिँ लयाहर 'व । पाणिहि रत्तुप्पल-सरवर 'व ।
णक्खेंहि वेअइ-सूई-थल 'व । सिहिणेंहि सुवण्ण-घड-मडल 'व ।
सोहग्गें वम्मह-साहण 'व । रोमावलि णाइणि-परियण 'व ।
तिवलिहि अणगपुरि--खाइय 'व । गुज्झेहि मयण-मज्जण-हर 'व ।
उरुएहि तरुण-केली-वण 'व । चलणग्गेहि पल्लव-काणण 'व ।
घत्ता । हस-उलु 'व गइएहि, कुजर-जूहु 'व वर-लीलहि ।
चाव-वलु 'व गुणेहि, छण-ससिबिबु 'व सयल-कलहि ।।५।।
—रामायण ७।२।५

(घ) अयोध्याका रनिवास--

किं चलण-तलग्गइ कोमलाइ । ण ण अहिणव-रत्तुप्पलाइ ।
किं ऊरु परोप्परु भिण्ण-तेय । ण ण वर-रंभा-खंभ येय ।
किं कणय-दोरु धोलइ विसालु । ण ण अहिरयण-णिहाण-पालु ।
किं तिवलिउ जठर पद धाविआउ । ण ण कामउरिहि खाईआउ ।
किं रोमावलि घण-कसण एह । ण ण मयणाणल-धूम-लेह ।
किं णव-थण, ण ण कणय-कलस । किं कर ण ण पारोह-सरिस ।
किं आयविर-करयल चलंति । ण ण असोय-पल्लव ललंति ।
किं आणणु, ण ण चंद-बिंब । किं अहरउ ण ण पक्क-बिंबु ।
किं दसणावलिउ स-मुत्तियाउ । ण ण मल्लिय कलियउइ भाउ ।
किं गड-वास ण दंति-दाण । किं लोयण, ण ण कामबाण ।
किं भउह इमाउ परिट्ठियाउ । ण ण बम्मह-धणु-लट्ठियाउ ।
किं कण्णा कुडल-हरण एय । ण ण रवि-ससि-विप्फुरिय-तेय ।
किं भालउ, ण ण ससहरद्धु । किं सिरु, ण ण अलि-उल-णिवद्धु ।
--रामायण ६९।२१

भौँहे`हिँ अनग-धनु लता-वन इव । नयनहिँ नीलोत्पल-कानन इव।
मुख-बिबेहिँ मृगलाञ्छन-वल इव । कल-वाणिहिँ कल-कोकिल-कुल इव ।
कोमल-बाहेहिँ (काम-)लताघर इव । पाणिहिँ रक्तोत्पल-सरवर इव ।
नखही` केतकी-सूचि-थल इव । स्तनही` सुवर्णघट-मडल-इव ।
सौभाग्ये मन्मथ-सेना इव । रोमावलि नागिनि-परिजन इव ।
त्रिवलीहिँ अनगपुरी-खाई` इव । गुह्येहिँ मदन-मज्जन-गृह इव ।
उरुएहिँ तरुण-कदलीवन इव।। चरणाग्रे`हिँ पल्लव-कानन इव ।
घत्ता । हसकुल इव गतिएहिँ, कुजर-जूथ इव वर-लीलहिँ ।
चाप-बल इव गुणेहिँ, क्षण-शशिबिंब इव सकल-कलेहिँ ।।५।।
—रामायण ७२।५

(घ) अयोध्याका रनिवास—

की चरण-तलाग्रा कोमला । जनु जनु अभिनव-रक्तोत्पला ।
की ऊरु परस्पर-भिन्न-तेज । जनु जनु वर-रभा-खभ एह ।
की कनकडोरि डोलइ विशाल । जनु जनु अहि रतन-निधान-पाल ।
की त्रिवली जठरु'परि धाइया । जनु जनु कामपुरिहि खाइँया ।
की रोमावलि घन-कृष्ण एह । जनु जनु मदनानल-धूम-लेख ।
की नव-थन, जनु जनु कनक-कलश । की कर, जनु जनु प्रारोह-सरिस ।
की आलबित-करतल चलति । जनु जनु अशोक-पल्लव ललति ।
की आनन, जनु जनु चद्रबिंब । की अधरउ, जनु जनु पक्व-बिंब ।
की दशनावलिउ स-मौक्तिकाउ । जनु जनु मल्लिक-कलियही भाउ ।
की गडपास जनु दन्ति-दान । की लोचन, जनु जनु काम-बाण ।
की भौहा एह परिस्थिताउ । जनु जनु मन्मथ-धनु-यष्टियाउ ।
की कर्ण कुडलाभरण एह । जनु जनु रवि-शशि विस्फुरित-तेज ।
की भालउ, जनु जनु शशधरार्ध । की शिर, जनु जनु अलि-कुल-निबद्ध ।
—रामायण ६६।२१

(ङ) **भिन्न-भिन्न देशोंकी नारियाँ—**

घत्ता। तहों वणहों मज्झे हणुवत्तेण, सीय णिहालिय दुम्मणिया।
ण गयण-मग्गेउ मेल्लिय, चंदलेह-बीयहें तणिया ॥७॥

महिय सहासहि परिअरिय, ण वणदेवय अवयरिय।
तिण-मेत्तुवि णवलक्खणु जाहें, णिव्वणिज्जइ काइँ तहें॥
वर-पय-तलेंहिं पउणारएहिं। **सिंघलणहें**हि दिहि गारएहि।
उच्चंगुलिएँहि **वेंडल्लिएहि**। वडुल्लिएँ गुप्फेंहि **गोलए**हिं[1]।
वर-पोट्टरिएहि **मायंदियेहि**। **सिरिपव्वय**-तणिएँहि मंडियेहि।
ऊरुअ-जुयलें णिप्पालएण। कडिमंडलेण **करहाडएण**।
वरसोणिय **कंची**-केरियाएँ। तणु-णाहिएण गंभीरियाएँ।
सुललिय-पुट्ठिएँ **सीवारियाएँ**। पिडंत्थणिअएँ **एलउलियाएँ**।
वच्छयले **मज्झिमएसएण**। भुअ-सिहरें **पच्छिमएसएण**।
वारमईकेरेंहि बाहुलेहि। **सिंधव** मणिबंधहि वट्टुलेहि।
माणग्गीवेंहि **कच्छाणणें**हिं। उट्ठउडेहि **कोंकणियहि**-तणेहि।
दसणावलियए **कण्णाडियए**। जीहएँ को **रोहणवाडियए**।
णासउडें तुंग **विसयत्तणें**हिं। गंभीरएहि वर-लोयणेहिं।
भउहाजुएण **उज्जेणएण**। भालेण विचित्त **उडाणएण**।
कासियहि कवोलेहि पुज्जयेहि। कण्णेहि मि **कण्णाउज्जयेहि**।
काविल्लेहिं केस-विसेसएण। विणएण **विदाहिण-एसएण**।

घत्ता। अह किं बहुणा वित्थरेण, अण्णिवि इणणें सुंदरि-मद्दण।
एक्केकीवत्थु लएप्पिणु, णावइ घडिय पयावइण ॥८॥

—रामायण ४९।८

दिव्वेहि णाणा-पयारेहि पुप्फेहि। रत्तुप्पल-दीवरभोय-पुप्फहि।
अइउत्तया-सोय-पुण्णाय-णाएहि। सयवत्तिया-मालई-पारिजाएहि।

---

[1] **गोलक देश**

(ङ) **भिन्न-भिन्न देशोंकी नारियाँ**—

घत्ता । तहँ वनहि मध्ये हनुमतउ, सीय निहारेँउ दुर्मनिया ।
जनु गगन-मार्गे उन्मीलिन, चद्रलेख दुतियह-तनिया ॥७॥
सखिय सहस्रेहि परिवारिय, जनु वनदेवी अवतरिया ।
तृण-मात्रहु नव-लक्षण जाहि, निर्वर्णिये काइँ ताहि ॥
वर-पद-तलेहिँ पद्मार-एहिँ । **सिंहलिनिएँहिँ** दिशि-गौरवेहिँ ।
उच्चागुलीहि वैपुल्यएहिँ । बाढल्लिए गुल्फेँहिँ गोलएहिँ
वर-पेट्ट-एहिँ माकदिएहिँ । **श्रीपर्वत**-केरिहिँ मडितेहिँ ।
ऊरुअ-जुगलेँ **नेपालयेहि** । कटिमडलेइ **करहाटिके**हि ।
वरश्रोणिय **कांची**-केरियाँ । सूक्ष्म-नाभिकेहि गभीरियाँ ।
सुललित-पृष्ठिय **शिवारियेहि** । पिड-स्तनियइ **एलकुलियइ** ।
वक्ष-तले **मध्यम-देशिया** । भुज-शिखरे **पच्छिम-देशिया** ।
द्वारवती-केरइ बाहुयहिँ । **सिंधविय** वर्त्तुल-मणिबधहिँ ।
मान-ग्रीवहिँ **कच्छाणनिया** । ओठउडे[1] **कोँकणि**-तनिया ।
दशनावलिहिँ **कन्नाडिया** । जीभहिँ **रोहण-वाडिया** ।
नासउडे **तुग-विषय**-तनिया । गभीरिया वरलोचनिया ।
भौहा-युगेइ **उज्जेनिया** । भालेहँ विचित्र **ओडियानिया** ।
काशिया कपोलेहिँ पुजकेहिँ । कर्णेहिँ हि **कनउज्जकेहिँ** ।
केश-विशेषकेहिँ **काबिलिया** । विनयेहि हि **दक्षिण**-देशिया ।
घत्ता । अरु का वहु-विस्तारेहिँ, अन्यान्येहिँ सुदरिमयी ।
एक-एक वस्तु लेइके, जनु गढेँउ प्रजापति ।

—रामायण ४६।८

दिव्येहिँ नाना-प्रकारेहि पुष्पेहिँ । रक्तोत्पले-दीवर-भोज-पुष्पेहिँ ।
अतिमुक्तका-शोक-पुन्नाग-नागेहिँ । शतपत्रिका-मालति-पारिजातेहिँ ।

---

[1] उड—कोमलालाप में

कणिया (र)-कणवीर-मदार-कुदेहि । विग्रइल्ल-वर-निलय-वउलेहि मदेहि ।
सिंधूर-वधूक-कोरंट-कुज्जेहि । दमणेण मरुएण पिक्का-लिसज्झेहि ।
एव च मालाहि अण्णण्ण-रूवाहि । **कण्णाडियाहि**'व्व सरसार-भूयाहि ।
आहीरियाहि'व्व वायाल-भसलाहि । **वलाडियाहि**' व्व मुह-वण्ण-कुसलाहि ।
सोरट्ठियाहि'व्व सव्वंग-मउआहि । **मालविणिआहि** 'व्व मज्झारछउआहि ।
मरहट्ठियाहि'व्व उद्दाम-वायाहि । गीयज्झुणीहि'व्व अण्णण्ण-छायाहि ।
—रामायण ७१।६

(३) जल-क्रीडा

घत्ता । तहि सर-णह-यले स-स-कलत्त वेवि हरि-हलहरा ।
रोहिणि[१]-रण्णहि ण परमिय चद-दिवायरा ॥१४॥
तहि तेहएँ सरें सलिले तरतइँ । सचरति चामीयर-जतइँ ।
णाइ विमाणइ सग्गहों पडियइँ । वण्ण-विचित्त-रयण-वेयडियइँ ।
णत्थि रयणु जहि जतु ण घडियउ । णत्थि जंतु जहि मिहुणु ण चडिअउ ।
णत्थि मिहुणु जहि णेहु ण वड्ढिय । णत्थि णेहु जहि सुरउ ण बड्ढिउ ।
तहि नर-नारि-जुवइ जल कीडइ । कीडताइ ण्हंति सुरलीलइ ।
सलिलु करग्गह आप्फालतइँ । मुरय-वज्ज-धायव दरिसतइँ ।
खलियहि वलियहि अहिणव-गेयहि । बद्धइ सुरयक्खित्तिय तेयहिँ ।
छंदेहिँ तालिहिँ बहुलय-भगेहि । करुणुच्छेत्तिहि णाणा भंगेहिँ ।
घत्ता । चोक्खु स-रागउ, सिगार-हार-दरिसावणु ।
पुप्फ-रज्जु-ज्झुवत, जलकीडणउ सलक्खणु ॥१५॥
जलें जय-जय सद्दें ण्हाय णर । पुणु णिग्गय-हल सारग-धर ।
—रामायण २६।१४-१६

सल्लविसल्ला-सुदरि सीयहिँ । वज्जयण्ण-सीहोयर-धीएँहिँ ।
घत्ता । वुच्चइ भरह णराहिवइ, सर-मज्झे तरंत-तरताइँ ।
देवर थोडि वारवरिअच्छहु, जल-कील-करताइँ ॥१०॥

---

[१] नक्षत्र

कर्णकार-कर्णवीर-मदार-कुदेहिँ । बेईल-वग्तिलक-वकुलेहिँ मद्रेहिँ ।
सिधूर-वधूक-कोरट-कच्चेहिँ । दवनेहिँ मरुएहिँ पिक्का-तिसध्येहिँ ।
ऐसेहि मालाहिँ अन्यान्य-रूपाहिँ । कन्नाडियहिँ इव सरसार-भूताहिँ ।
आहीरियाँहि'व वाचाल-भसला'हिँ । वाराडियाहिँ'व मुखवर्ण-कुशलाहिँ ।
सौराष्ट्रियाहिँ'व सर्वांग-मृदुकाहि । मालविणियाहिँ'व कटिमध्य' सूक्ष्माहि ।
मरहट्ठियाहिँ'व उद्दाम-वाचाहिँ । गीत-ध्वनिहिँ इव अन्यान्य-छायाहिँ ।
—रामायण ७।१६

(३) जलक्रीडा

घत्ता । तहँ सर-नभ-तले स्वस्व-कलत्रेहिँ हरि-हलधरा[२] ।
रोहिणि रानिहिँ जनु प्र-रमेँउ चद्र-दिवाकरा ॥१४॥
तहँ तेहि हि सर सलिल तरता । सचरहीँ चामीकर-यत्रा ।
नारि-विमाना स्वर्गहुँ पडिया । वर्ण-विचित्र-रत्न-बीजडिया ।
नाहि रतन जहिँ जतु न गढियउ । नाहि जतु जहिँ मिथुन[३] न चढियउ ।
नाहि मिथुन जँह नेह न बढियउ । नाहि नेह जँह सुरत न बढियउ ।
तहँ नर-नारि-युवति जलक्रीडैँ । क्रीडती नहाइं सुरलीलैँ ।
सलिल कराग्रहिँ उच्छालन्तैँ । मुरज-वाद्य थापा दरसन्तैँ ।
स्खलितहिँ बलितहिँ अभिनव-गीतेहिँ । बर्द्धैँ सुरत-समन्वित तेजहिँ ।
छन्देहिँ तालहिँ वहुलय-भगहिँ । करुण-तेरक्षेपी नाना-भगहिँ ।
घत्ता । चक्षु सरागउ शृगार-हार-दरसावन ।
पुष्परज्जु युध्यत, जलक्रीडनउ सलखावन ॥१५॥
जले जय-जय-शब्देहिँ नहाएँ नर । पुनि निकसे हल-सारगधर ।
——रामायण २६।१४-१६

सल्लविसल्ला सुदरि सीतहिँ । वज्रकर्ण-सिंहोदर-धीतहिँ ।
घत्ता । बोले भरत नराधिप, सर-मध्ये तरत-तरताई ।
देवर थोडिवार रहउ, जलक्रीड करताई ॥१०॥

---

[१] भ्रमर [२] हरि=लक्ष्मण, हलधर=राम [३] जोड़ा

तं पडिवण्णु पइट्ठु महासरु । जल-कीडहें 'वि अचलु परमेसरु[1] ।
　　लग्गउ सुंदरीउ चउ-पासेहि । गाढालिंगण-चुंवण-हासें हि ।
हेला-हाव-भाव-विण्णासेहिँ । किलिकिंचिय विच्छित्ति-विलासेहिँ ।
　　मोट्टाविय कुट्टमिय वियारेहि । विब्भम वरविव्वोक-पयारेहिँ ।
तो वि ण खुहिउ भरहु सहसुट्ठिउ । अविचलु ण गिरि-मेरु परिट्ठिउ ।
　　अच्छइ जाव तीरें सुह-दंसणु । ताव महागउ-तिजग-विहीसणु ।
णिय आलाण-खभु उप्पाडेवि । मदिर सयइ अणेयइ पाडेवि ।
　　परिभमंतु गउ तं जें महासरु । जलकीलइ जहि भरहु णरेसरु ।

—रामायण ७६।११

(४) प्रेम (काम)-अवस्था

(सीता और रामकी)

सीयहें देह-रिद्धि पावंतिहे । येक्कु दिवसु दप्पणु जोयंतिहे ।
　　पडिमाछलेँण महाभयगारउ । आरिस वेस णिहालिय णारउ ।
जणय-तणय सहसत्ति पणट्ठी । सीहागमणें कुरंगि'व दिट्ठी ।
　　"हा हा माएँ" भणंतिहिँ सहियहिँ । कलयलु कियउ भग्ग गह-गहियहिँ ।
अमरिस कुज्झइय किंकर । उक्खय'व क्खरवाल भयंकर ।
　　मिलिबि तेहि-कहँ कहमि ण मारिउ । लेवि अद्धचंदेंहिँ णीसारिउ ।
घत्ता । गउ सव राहउ देवरिसि, पडे पडिम लिहेवि सीयहें तणिया ।
　　दरिसाविय भामंडलहों वि, सजुत्ति णाइ-णर धारणिया ॥८॥
दिट्ठ जं जें पडपडिम कुमारें । पंचहि सरहि विद्धुणं मारें ।
　　सुसिय वयणु घुम्मइय णिडालउ । वलिय अंगु मोडिय भुयडालउ ।
बद्ध केसु परकोडिय वच्छउ । दरिसाविय दस कामावत्थउ ।
　　चिंत पढम थाणंतरें लग्गइ । वीयएँ पिय-मुह-दंसणु मग्गइ ।

---

[1] राजा।

सो प्रतिपन्न पइसु महासर । जलक्रीडहिँहि अचल परमेश्वर ।
लागीँ सुदरी उ चौपासेहिँ । गाढालिगन-चुंवन-हासेहिँ ।
हेला-हाव-भाव-विन्यासेहिँ । किलकिंचित-विक्षिप्ति-विलासेहिँ ।
मोट्टावन-कुट्टमन-विकारेहिँ । विभ्रम-वरविव्वोक-प्रकारेहिँ ।
तोउ न क्षुभेँउ भरत झट उट्ठेउ । अविचल जनु गिरि मेरु परिट्-ठिउ ।
जौ लोँ रहैं तीर शुभ-दर्शन । तौ लोँ महगज-त्रिजग-विभीषण ।
निज वंधान-खंभ उप्पाडिय । मंदिर-शतहिँ अनेकहिँ पातिय ।
परिभ्रमंत गउ तेँहिहिँ महासर । जलक्रीडैँ जहँ भरत-नरेश्वर ।
—रामायण ७६।११

(४) प्रेम-अवस्था

(सीता और रामकी)

सीता देह ऋद्धि पावतिह । एक दिवस दर्पण जोयंतिह ।
प्रतिमा छलेँइ महाभयकारू । ऐसो वेस निहारेँउ न्यारू ।
जनकतनयाँ सहसाही भागी । सिंहागमनेँ कुरँगि'व लागी ।
"हा हा माइ" भनंतिहिँ सखियहिँ । कलकल कियेँउ, भागु गहिगहियहिँ ।
आमरखी क्रोधेऊ ! किंकर । उत्क्षिप इव करवाल भयंकर ।
मिलब तेहि कहँ कहउँ न मारिउ । लेबि अर्धचंद्रेँहि निस्सारिउ ।
घत्ता । गउ सव राघव-देव-ऋषि, पटेँ प्रतिम लिखब सीता-तनिया[1] ।
दरसायेँउ भामंडलहुँ, युक्ति नारि-नर धारणिया ॥८॥
देखु जोहि प्रति-प्रतिम कुमारा । पचहिँ शरहि वेधु जन मारा ।
सुखेँउ वदन घूमिया ललाटउ । कँपेउ अँग मोडेँउ भुजडालउ ।
बँधेँउ केश मरोड़िय वक्षा । दरसायेँउ दश कामावस्था ।
चित्त प्रथम स्थानंतरेँ लागै । दुसरे प्रियमुख-दर्शन माँगै ।

---

[1] सीताकेर

तइयएँ ससइ दीह-णीसासें। कणइ चउत्थइ कर-विण्णासें।
पंचम डाहें अँगु ण वुच्चइ। छट्ठइ मुहहों ण काइ विरुव्वइ।
सत्तमि थाणे ण गासु लइज्जइ। अट्ठमे गमणू माएहिँ भिज्जइ।
णवमएँ पाण-सँदेहहों ढुक्कइ। दसमएँ मरइ ण केम'वि चुक्कइ।

घत्ता। कहिउ णरिंदहों किंकरिहिँ, पहु दुक्करु जीवइ पुत्तु तउ।
हा तेहिँ वि कण्णह कारणेण, सो दसमी कामावत्थ गउ ॥९॥

—रामायण २१।८-९

लक्खिउ लक्खणु लक्खण-भरियउ। णं पच्चक्खु मयणु अवयरियउ।
भू उणियवि सुर-भवणाणंदहों। मणु उल्लोलेंहिँ जाइ णरेंदहों।
मयण-सरसणें धरें वि ण सक्किउ। वम्महों दस ठाणेहि पढुक्कउ।
पहिलइ कहुबि समाणु ण बोल्लइ। वीयएँ गुरु णीसासु पमेल्लइ।
तइयए सयलु अंगु परितप्पइ। चउथइ णं करवत्तेंहि कप्पइ।
पंचमें पुणु पुणु पासेइज्जइ। छट्ठएँ वार-वार मुच्छिज्जइ।
सत्तमे जलुवि जलद् ण भावइ। अट्ठमें मरण-लील दरिसावइ।
णवमएँ पाण पडंत ण वेअइँ। दसमएँ सिरु छिज्जंतु ण चेयइ।

घत्ता। एम वियंभिउ कुसुमाउहु, दसहेंमि थाणेहिँ।
तं अच्छरिउ जं मुक्कु, कुमारु ण पाणेहिँ ॥८॥

—रामायण २६।८

(५) विरह (सीता)

राम-विऊएँ दुम्मणिया, अंसु-जलोल्लिय-लोयणिया।
मोक्कल केस कवोलु भुआ, दिट्ठ विसंठुल जणय-सुया ॥
जाणइ-वयण-कमलु अलहंतिउ। मुहु ण देंति फुल्लंधुय पतिउ।
हणइँ तो वि ण करंति णिवारिउँ। करयलेहि लग्गंति णिरारिउँ।
एँव सिलीमुह सा णिज्जंती। अण्णु विऊय-सोय-संतत्ती।
वणें अच्छंति दिट्ठ परमेसरि। सेस सरिहि मज्झेण सुरसरि।

तिसरे श्वसै दीर्घ-निःश्वासै। कँदै चतुर्थे करविन्यासैँ।
पंचम दाहै अंग, न बोलइ। छठये मुखहिँ न काहुहि देखइ।
सतयें थान न ग्रास लईजै। अठये गमनोन्मादे भिज्जै।
नवयें प्राणसँदेहहु ढूकै। दसये मरब न कथमपि चूकै।
घत्ता। कहेँउ नरेन्द्रहिँ किंकरिन्ह, प्रभु! दुष्कर जीवै पुत्र तव।
हा ताहिहिँ कन्यहिँ कारणे, सो दसई कामावस्थ गउ ॥९॥

—रामायण २१।८-९

लखेँऊ लक्ष्मण लक्षण-भरिया। जनु प्रत्यक्ष मदन अवतरिया।
भू आनेउ सुरभवनानंदहु। मन उल्लोलेहिँ जाइ नरेंद्रहु।
मदन शरासनेँ धरब न शक्येउ। मन्मथ दश थानेहिँ प्रढूकेँउ।
पहिले काहुहि सँग ना बोलै। दूजेँहिँ बड निःश्वास प्रमेलै।
तीजे सकल अग परितप्पै। चौथे जनु तरवारहिँ कँपै।
पंचयेँ पुनि पुनि प्रासादिज्जै। छठयेँ वार-वार मूर्छिज्जै।
सतयेँ जलहु जलादं न भावै। अठयेँ मरण-लीलाँ दरसावै।
नवयेँ प्राण पतंत न वेदै। दसयेँ शिर छेदंत न चेतै।
घत्ता। इमि विजृंभेँउ कुसुमायुध, दसहुहिँ थानहँ।
सो अचरज जो छूट, न प्राण कुमारकहँ ॥८॥

—रामायण २६।८

(५) विरह (सीता)

राम-वियोगे दुर्मनिया, अश्रु जलोल्लित-लोचनिया।
मुक्तहु केश कपोलेँ भुजा, देखु विसंस्थुल जनकसुता ॥
जानकि-वदन-कमल अलभंतिउ। मुख न देति फुल्ल'न्धुक-पंक्तिउ।
हनैँ तो उ न करति निवारेँउ। करतलेँहीँ लागंति निरालेँउ।
ऐस शिलीमुख सासनयंता। अन्येँ बियोग-शोक-संतप्ता।
वनेँ वसंति दीखु परमेश्वरि। शेष सरिहिँ मध्ये (जनु) सुरसरि।

हरिसिउ अंजणेउ इत्थतरे। धण्णउ एक्कु रामु भुवणतरे।
जो तिय एह आसि माणंतउ। रावणु सइ जि मरइ अलहंतउ।
णिरलंकार जों होंती सोहइ। जइ मंडिय तो तिहुयणु मोहइ।
सीयहों तणउ रूउ वण्णेप्पिणु। अप्पहु णहें पच्छण्णु करेप्पिणु।
घत्ता। जो पेसिउ राहवचंदेण, सो घत्तिउ अंगुत्थलउ।
उच्छंगि पडिउ वइदेहिहे, णावइ हरिसहों पोट्टलउ ॥६॥ . . .
लक्खिय सीया एवि किह। वियसिय सरिया होइ जिह।
णं मय-लंछण ससि-जोण्हा इव। तित्ति-विरहिय गिम्ह-तण्हा इव।
णिव्वियार-जिणवर-पडिमा इव। रइविहि विण्णाणिय-घडिया इव।
अभय-करच्छज्जीव-दया इव। अहिणव-कोमल-वण्ण-लया इव।
स-पउहर पाउस-सोहा इव। अविचल सव्वंसह वसुहा इव।
कंति-समुज्जल-तडिमाला इव। सुट्ठ सलोण उयहि-वेला इव।
णिम्मल-कित्ति'व रामहों केरी। तिहुयणुमिवि परिट्ठिय सेरी।
—रामायण ४६।६, १२

(६) मिलन (सीता-राम)

"अहों अहों परमेसर दासरहि। पच्छएँ लंकाउरि पइँसरहि।
मिलि ताव भडारा[१] जाणइहे। तरु दुत्तरु विरह-महाणइहे।
चडु ति-जग-विहूसण-कुंभ-यले। मय-परिमल-मेलाविय भसले"।
घत्ता। तं णिसुणेंवि हलहरु-चक्कहरु, सीयहें पासें समुच्चलिया।
अहिसेय-समएँ सिरिदेवयहो, दिग्गय विण्णि णाइ मिलिया ॥६॥
वइदेहि दिट्ठ हरि-हलहरेहि। णं चंद-लेह विहि-जलहरेहि।
णं सरय-लच्छि पंकय-सरेहिँ। णं पुण्णएँ विहि पक्खंतरेहिँ।
णं सुरसरि हिम-गिरि-सागरेहिँ। णं णह-सिरि चंद-दिवायरेहिँ।
परिपुण्ण-मणोरह जाणईहि। तर इव लायण्ण-महाणईहि।

---

[१] **राजा, स्वामी**

हरषेँउ आंजनेय ऐँहि अवसरेँ। धन्यउ एक राम भुवनंतरेँ।
जो तिय एहु अहै मानंतिउ। रावण मरै सतिहिँ अलभंतउ।
निरलंकार होति जो सोहै। यदि मंडित तो त्रिभुवन मोहै।
सीयहिँ केर रूप वर्णेबिउ। आपुहँ नभेँ प्रच्छन्न करेबिउ।
घत्ता। जो प्रेषेँउ राघवचंद्रेण, सो डारेँउ अंगुट्ठि लिऊ।
उत्संगेँ पडिउ वैदेहिकहँ, मानो हर्षहँ पोट्टलिऊ ॥६॥
लक्खेउ सीत ऐसु किमि। विकसिउ सरिता होइ जिमि।
जनु मृणलांछन शशि ज्योत्स्ना इव। तृप्ति-विरहित ग्रीष्म-तृष्णा इव।
निर्विकार जिनवर-प्रतिमा इव। रतिपतिहिँ जनु निज गढिया इव।
अभयकर् अच्छ जीवदया इव। अभिनव-कोमल-वर्णलता इव।
स-पयधर पावस-शोभा इव। अविचल सर्वंसह वसुधा इव।
कांति-समुज्ज्वल तडिमाला इव। सुट्ठि सलोन उदधि-बेला इव।
निर्मल कीर्त्ति इव रामहिँ केरी। त्रिभुवनहूँहि परिस्थिय सेरी।
—रामायण ४६।६,१२

(६) मिलन (सीता-राम)

"अहोँ अहोँ परमेश्वर ! दाशरथी। पाछे लंकापुरी पइसैही।
मिलु तब भट्टारक[१] जानकिहीँ। तरु दुस्तर विरह-महानदिहीँ।
चढु त्रिजग-विभूषण कुंभतले। मद-परिमल मेलायेँउ भसले[२]"।
घत्ता। सो सुनियहि हलधर-चक्रधरु, सीतहिँ पास समुच्-चलिया।
अभिषेक समय श्रीदेवियहूँ, दोँउ दिग्गज न्याईँ आमिलिया ॥
वैदेहि दीख हरि-हलधरेहिँ। जनु चंद्रलेख विधु-जलधरेहिँ।
जनु शरद-लक्ष्मि पंकज-सरेहिँ। जनु पूर्णो विधु पक्षांतरेहिँ।
जनु सुरसरि हिमगिरि सागरेहिँ। जनु नभश्री चंद्र-दिवाकरेहिँ।
परिपूर्ण-मनोरथ जानकीहिँ। तरेँ इव लावण्य-महानदीहिँ।

---

[१] राजा [२] भ्रमर

णिय-णयण-सरासणि संध इव । पिउ पगुण-गुणेहिँ णिबंध इव ।
जस-कद्दमें णं जगु लिप इव । हस्सिंसु पवाहें सिप्प इव ।
विज्जे इव करयल-पल्लवेहिँ । अंच्चे इव णहकुसुमेंहि णवेहिँ ।
पइसर इव हियएँ हलाउहहों । कर इव उज्जोउ दिसामुहहों ।
घत्ता । मेहलिय[1] मिलंतहों रहुवइहें, सुहु उप्पण्णउ जेत्तडउ ।
इंदहो इंदत्तणु पत्ताहो, होंज्जण होंज्जवें तेत्तडउ ॥७॥
सकलत्तउ लक्खणु पणय-सिरु । पभणइ जलहर-गंभीर-गिरु ।
"जं किउ खर-दूसण-तिसर-वहु । जं हंसदीवें जिउ हंसरहु ।
जं सत्ति पडिच्छिय समर-मुहे । जं लग्गु विसल्ल करंवुरुहे ।
जं रणें उप्पण्णु चक्करयणु । जं णिहिउ वलुद्धरु दहवयणु ।
तं देवि ! पसाएँ तउतणेंण । कुलु धवलिउ जाइ सइत्तणेंण" ।
अहिवायणु किउ लक्खणेण जिह । सुग्गीव-पमुह-णरवरहिँ तिह ।
सयलवि णिय-णिय वाहणेंहिँ थिय । पर-पुर-पवेस-सामग्गि किय ।
जय-मंगल-तूरइ ताडियाइँ । रिउ-घरिणिहिँ चित्तइ पाडियाइँ ।
—रामायण ७८।६-८

(७) नारी-अधिकार

(क) रावणको सीताका जवाब—

रावण—"हले हलें सीएँ सीएँ किं मूढ़ी । अच्छहि दुक्खें महण्णवें छूढ़ी । . . . .
हलें हलें सीएँ ! सीएँ ! महि भुंजहिँ । माणुस-जम्महों अणहुंजहिँ ।
घत्ता । पिउ इच्छहि पट्टु पडिच्छहिँ, जइ सब्भावें हसिउ पइँ ।
तो लइ मह एवि पसाहणु, अब्भत्थिय एत्तउ उ मइ" ॥१३॥
तं णिसुणेवि वयदेहि सुया । पभणइ पुलय-विसट्ट भुआ ।

---

[1] महिला=मेहरी

निज-नयन-शरासनें संध इव । प्रिय-प्रगुण-गुणेहिँ निवध इव ।
यश-कर्दमें जनु जग लेप इव । हँसियेउ प्रवाहे सीप इव ।
विद्या इव करतल-पल्लवेहिँ । अर्चें इव नखकुसुमेंहिँ नवेहिँ ।
प्रतिसर इव हियइ हलायुधहँ । कर इव उज्जोतु निशा-मुखहँ ।
घत्ता । मेहरिहिँ मिलंते रघुपतिहिँ, सुख उत्पन्नउ जेत्तनऊ ।
इन्द्रहँ इन्द्रत्व-प्राप्ति समये, हुयउ न होइहि तेत्तनऊ ॥७॥
स-कलत्रउ लक्ष्मण प्रणत-शिरा । प्रभनै जलधर-गंभीर-गिरा ।
"जो किउ खर-दूषण-त्रिशिर-वधा । जो हंसद्वीपें जितु हंसरथा ।
जो शक्ति प्रतीच्छेउ समर-मुखे । जो लाग विशल्य करबुरुहे ।
जो रणें उत्पन्न चक्ररतना । जो निधिउ बलुद्धर दशवदना ।
सो देवि ! प्रसादें तवतनऊ[1] । कुल धवलेंउ जाइ सतित्वनऊ" ।
अभिवादन किउ लक्ष्मणेंहिँ यथा । सुग्रीव प्रमुख-नरवरेहिँ तथा ।
सकलेंहिँ निज-निज वाहनें थितउ । पर-पुर-प्रवेश-सामग्रि[2] कियउ ।
जयमंगल-तूर्या ताड़िया । रिपु-घरिणिहिँ चित्ता पाडिया ।
—रामायण ७८।६-८

(७) नारी-अधिकार

(क) रावणको सीताका जवाब—

रावण—"हले हले[3] सीते सीते ! का मूढि । रहहि दुःख-महार्णवें छूटि ।
हले हले सीते सीते ! महि भोगहु । मानुष-जन्महँ फल अनु-भोगहु ।
घत्ता । प्रिय इच्छहिँ पट्ट प्रतीच्छहु, यदि सद्भावें हसिउ तैं ।
तो लेहु मम एहु प्रसाधन, अभ्यर्थेउँ एत्तना मैं" ॥१३॥
सो सुनिया वैदेह-सुता । प्रभणइ पुलक-विसृष्टभुजा ।

---

[1] तवकेरहु [2] जमावड़ा [3] रे रे

सीता—"सच्चउ इच्छमि दहवयणु।............
इच्छमि जइ महु मुहु ण णिहालइ।............
जइ पुणु णयणानंदणहों, ण समप्पिय रहुणंदणहों।
ता हउँ इच्छमि एउ हले, पुरि खिप्पंती उयहि-जले।....
इच्छमि णंदण-वणु मज्जंतउ। इच्छमि पट्टणु पयलहों जंतउ।
इच्छमि दहमुह-तरु छिज्जंतउ। तिलु तिलु राम-सरेंहि भिज्जंतउ।
इच्छमि दस'वि सिरइ णिवडंतइँ। सरें हंसाहय इव सयवत्तइँ।
इच्छमि अंतेउरु रोवंतउ। केस-विसंथुलु धाह मुअंतउ।
इच्छमि छिज्जंतिय धय-चिंधइँ। इच्छमि णच्चंताइँ कवंधइँ।
इच्छमि धूमं धारिज्जंतइँ। चउदिसु सुहड चियाइँ बलंतइँ।
जं जं इच्छमि तं तं सच्चउ। णं तो करमिज्जइ हलें पच्चउ"।
—रामायण ४९।१५

(ख) **अग्नि-परीक्षाके समय सीता**—

कोसल-णयरें पराइय जावेहिँ। दिणमणि गउ अत्थवणहों तावेहिँ।
जत्थहों पिययमेण णिव्वासिय। तहों उववणहों मज्झें आवासिय।
कहवि विहाणु भाणु णहि उग्गउ। अहिमुहु सज्जण-लोउ समागउ।
कंतहितणिय कंति पेंक्खेप्पिणु। पभणइ पोमणाहु विहसेप्पिणु।
"जइ वि कुलग्गयाउ णिरवज्जउ। महिलउ होंति सुट्ठु णिल्लज्जउ।
दरदाविय कडक्ख-विक्खेवउ। कुडिलमइउ बड्ढिय अवलेवउ।
बाहिर धिट्ठउ गुण-परिहीणउ। किह सयखंडु ण जंति तिहीणउ।
णउ गणंति णिय-कुलु मइलंतउ। तिहुयणें अयस-पडहु वज्जंतउ।
अंगु समोडें[1]वि धिद्धिक्कारहों। वयणु णिएंति केम भत्तारहों"।
सीय ण भीय सइत्तण गब्बें। बलेंवि पबोल्लिय मच्छर गब्बें।
"पुरिस-णिहीण होंति गुणवंत'वि। तियहें ण पत्तिज्जंति मरंति'वि।

---

[1] समेदें

सीता—साँचे इच्छउँ दशवदनू ।.... ।
इच्छउँ यदि मम मुख न निहारै ।
यदि पुनि नयनानंदनहिँ, न समर्पे ँउ रघुनंदनहिँ ।
तो हौँ इच्छउँ एहु हले, पुरि फेँकंती उदधि-जले ।......
इच्छउँ नन्दन-वन मज्जंता । इच्छउँ पट्टन पातल जंता ।
इच्छउँ दशमुख-तरु छिद्यंता । तिल-तिल राम-शरेँहिँ भिद्यन्ता ।
इच्छउँ दसहु शिरा निपतंता । सरेँ हंसाहत इव शतपत्रा ।
इच्छउँ अन्तःपुर रोवंती । केश-विसंस्थुल ढाह भरंती ।
इच्छउँ छिद्यंता ध्वज-चिन्हा । इच्छउँ नाचंता काबंधा ।
इच्छउँ धूमा धारिज्जंता । चौदिशि सुहडी चिता बलंता ।
जो जो इच्छउँ सो सो साँचय । जनु तो करऊँ मैँ फलेँ प्रत्यय ।
—रामायण ४९।१५

(ख) अग्नि-परीक्षाके समय सीता—

कोसलनगरे पहुँचेउ जब्बहिँ । दिनमणि गउ अस्तमनउ तब्बहिँ ।
जहँवा प्रियतमेहिँ निर्वासिय । तँहि उपवनहि माँझ आवासिय ।
कहब विहान भानु ना उग्गउ । अभिमुख सज्जन लोग समागउ ।
कांतहि-केरि कांति पेखियबी । प्रभणै पद्मनाभ विहसियबी ।
"यदपि कुलग्रताउ निरवद्या । महिलउ होहिँ सुधू[1] निर्लज्जा ।
तनिकं दाबेँ कटाक्ष-विक्षेपउ । कुटिलमयिउ बाढिय अवलेपउ ।
बाहर ढीठउ गुण-परिहीना । किमि शतखंड न जांति त्रिहीनउ ।
नहि गणहीं निजकुल मइलंता । त्रिभुवनेँ अयश-पटह बाजंता ।
अंग समोडेँहु धिक्धिक्कारहँ । वदन नियंति केम भर्तारहँ" ।
सीय न भीत सतीत्वहिं गर्वेँ । बलेँहु प्रबोल्लेँउ मत्सर-गर्वेँ ।
"पुरुषा हीन होहिँ गुणवंतउ । तियहिँ न पतियायहीँ मरंतिउ ।

---

[1] केवल

घत्ता । खडुलक्-कडु सलिलु वहंतेंयहों, पउराणियहें कुलग्गयहें ।
रयणायरु खारइ देंतउ, तो वि ण थक्कइ णं णेम्मयहें ॥८॥
साणु ण केणवि जणेण गणिज्जइ । गंगा णइहें तंजें ण्हाइज्जइ ।
ससि स-कलंकु तहि जें पह णिम्मल । कालउ मेहु तहि जें तडि[1] उज्जल ।
उवलु अपुज्ज ण केणवि छिप्पइ । ताहि पडिम चदणेंण विलिप्पइ ।
धुज्जइ पाउ पंकुजइ लग्गइ । कमल-माल पुणु जिणहों वलग्गइ ।
दीवउ होइ सहावें कालउ । वट्टि सिहएँ मंडिज्जइ आलउ ।
णर-णारिहि एवड्डउ अंतरु । मरणें वि वेल्लि ण मेल्लइ तरुवर ।
एह पइ कवण बोल्ल पारंभिय । सइ बडाय मइ अज्जु समुब्भिय ।
तुहु पेक्खंतु अच्छु वीसत्थउ । डहउ जलणु जइ डहिवि समत्थउ ।
घत्ता । कि किज्जइ अण्णइ दिव्वें, जेण विसुज्झहों महु मणहों ।
जिह कणय-लोलि डाहुत्तर, अच्छमि मज्झें उ आसणहों" ॥९॥
—रामायण ८३।७-९

५—सामन्त और युद्ध

(१) सामन्त (राम)-वेष—

परबलें दिट्ठएँ राहव-वीरु पयट्टउ । रइ रण-रहसेण उरे सण्णाहु विसट्टउ ।
सो राहव पहरण-हत्थाएँ । दणुवइ णिद्दलण-समत्थाएँ ।
दीहर-मेहल-गुप्पंताए । चंदण-कद्दमें खुप्पंताए ।
विच्छोइय मणहर कंताए । किय-माया सुग्गीवें ताए ।
रण-रहसुद्धूसिय-गत्ताए । अप्फालिय वज्जावत्ताए ।
आवीलिय तोणा-जुयलाए । किंकिणि ललंत बल-मुहलाए ।
कंकण-णिवद्ध करकमलाए । वित्थिण्णुण्णय बच्छयलाए ।
कुंडल-मंडिय-गंडयलाए । चूडामणि-चुंविय-भालाए ।
भासुल-पुलिआरुल-वयणाए । रत्तुप्पल-सण्णिह-णयणाए ।
जं सेंन - सण्णद्धएँ दिट्ठाए । तं लक्खणे वि आलुद्धाए ।
—रामायण ६०।१

---

[1] तडित्, बिजली

घत्ता । खडखड सलिल वहंतियहु, पटरानियह कुलग्रयहु ।
रतनाकर खारइ देंतउ, तोपि न थाकै जनु निर्मथे ॥८॥
सोउ न कोइहँ जनेहिँ गणीजै । गंगानदिहिँ सोउ नहईजै ।
शशि सकलंक ताह प्रभाँ निर्मल । कालउ मेघ ताह तडि उज्वल ।
उपल अपूज्य न कोउँ छूवई । तेहि प्रतिमा चंदन लेपइ ।
धोइये पाव पंक यदि लागै । कमल-माल पुनि जिनहु समपैं ।
दीपउ होहि स्वभावे कालउ । बाति शिखहिँ मंडिज्जै आलउ ।
नर-नारिहीं एवडउ[१] अंतर । मरतेंउ बेलि न मेलै[२] तरुवर ।
एहु तैं कवन बोलि प्रारंभिउ । सति बड़ाइ मैं आज समुज्झिउ ।
तुह देखत होहु विश्वस्ता । दहउ ज्वलन यदि दहन-समर्था ।
घत्ता । का कीजै दूसर दिव्येहिँ[३], जातें विशुद्धइ मम मना ।
जिमि कणक-लोलें दाहुत्तर, रहहुँ माँझेहू आसना ॥९॥
—रामायण ८३।१-९

५—सामन्त और युद्ध

(१) सामन्त (राम)-वेष—

पर बले दीख राघववीर । रवि रण लसेहिँ उर सन्नाह निबद्धउ ।
सो राघव प्रहरण-हस्ताऊ । दनुपति-निर्दलन-समर्थाऊ ।
दीरघ-मेखल गोप्यंताऊ । चंदन-कर्दमें लेप्यंताऊ ।
वीछोहिउ मनहर-कान्ताहीं । कृत-माया सुग्रीवें ताहीं ।
रण-रभसेंहि धूसित गात्राए । आस्फालिय वैयावर्त्याए ।
आ-धारेंउ तूणी-जुगलाए । किंकिणि-ललंत बल-मुखराए ।
कंकण-निबद्ध-करकमलाए । विस्तीर्णु-'न्नत-वक्षतलाए ।
कुंडल - मंडित - गंडतलाए । चूडामणि - चुंवित - भालाए ।
भासुर - पुलकाकुल - वदनाए । रक्तोत्पल - सन्निभ - नयनाए ।
जो सेन-सनद्धा-दीखाए । सो लक्ष्मणेंहू आलुब्धाए ।
—रामायण ६०।१

---

[१] एतना [२] छाड़े [३] आगके गोले आदिसे सतीत्व परीक्षा

(२) देश-विजय

(देशोंके नाम)

पइजारूढु णराहिउ जावेंहिं । साहणु[1] मिलिउ असेसु'वि तावेहिं ।
'लेहु लिहेप्पिणु जग-विक्खायहों । तुरिउ विसज्जिउ महिहर-रायहो ।
अग्गएँ घित्तु बद्धलं पिक्खुव । हरिणक्खरहिँ लीण णं डिक्खुव ।
सुंदरु पत्तु वत्तु वरसाहु'व । णाव वहुल सरि गंगपवाहु'व ।
दिट्ठु राय तहिँ आय अणंतवि । सल्ल-विसल्ल-सीह-विक्कंतवि ।
दुज्जय-अजय-विजय-जय-जय मुहुँ । णर-सद्दूल-विउल गय-गय मुहुँ ।
रुद्दवच्छ-महिवच्छ-महद्धय । चंदण-चंदोयर-गरु(ड)द्धय ।
केसर-मारि-चंड-जमहंटा । कोंकण-मलएँ-पंडिया-'णट्टा ।
गुज्जर-गंग-वंग-भंगाला । पइविग्र-पारियत्त-पंचाला ।
सिंधव-कामरूव-गंभीरा । तज्जिय-पारसीय-परतीरा ।
मरु-कण्णाड-लाड-जालंधर । टक्क-हीर-कीर-खस-बब्बर ।
अवरवि जे ऍक्केक्क-पहाणा । ....

—रामायण ३०।२

घत्ता । जे अल मलवल पबल-बले, हरि-बल-बलेंहि साहिया ।
ते णरवइ लवणंकुसेहिँ, सवसि करेप्पिणु साहिय ॥५॥
खस-सब्बर-बब्बर-ढक्क-कीर । कउवेर-कुरव-सोंडीर-वीर ।
तुंगं-'ग-वंग-कन्होज्ज-भोट्ट । जालंधर-जवणा-जाण-जट्ट ।
कंमीरो-'सीणर-कामरुव । ताइय-पारस-काहार-सूव ।
णेपाल-धट्ट-हिंडीव-'तिसर । केरल-काहल-कइलास-वसिर ।
गंधार-मगह-मद्दा-हिवावि । सक-सु सेण-मरु-पत्थिवावि ।
एयवि अवरवि किय वस-विहेय । पल्लट्ट पडीवासेहि लेय ।

—रामायण ८२।६

---

[1] साधन=सेना

(२) देश-विजय

(देशोंके नाम)

परि-आरूढ नराधिप जब्बहिँ। साधन[1] मिलें'उ अशेषउ तब्बहिँ।
लेख लिएवउ जग-विख्यातहु। तुरत विसजउ महिधर-रायहु।
आगे लियउ वद्धलं पेखु'व। हरिणाक्षरहिँ लीन जनु डिक्खु'व।
सुंदर पात्रवंत वर साधु'व। नाव-बहुल सरि गंग-प्रवाहु'व।
दीख राय तहँ आय अनंतउ। सल्ल-विसल्ल-सिंह-विक्रांतउ।
दुर्जय-अजय-विजय-जय-जय मुख। नर-शार्दूल-विपुलगज-गजमुख।
रुद्रवत्स-महिवत्स-महाध्वज। चंदन-चंदोदर-गरुडध्वज।
केसर-मारि-चंड-यमघंटा। कोंकण-मलय-पंडिया-'नट्टा।
गुर्जर-गंग-वंग-भंगाला। पइविय-पारियात्र-पंचाला।
सिंधव-कामरूप-गंभीरा। ताजिक-पारसीक-परतीरा।
मरु-कर्नाट-लाट-जालंधर। टक्क-अहीर-कीर-खस-बर्बर।
अवरहु जे ऍक-एक प्रधाना। ....।

—रामायण ३०।२

घत्ता। जे अलमत बल प्रवलबलें, हरिवल बलेहिँ साधिया।
ते नरपति(हूँ) लव-कुशेहिँ, स्ववश करीय प्रसाधिया ॥५॥
खस-सर्वर-वर्बर-ढक्क-कीर। कौबेर-कुरव-शौडीर-वीर।
तुंग-'ङ्ग-वंग-कंबोज-भोट्ट। जालंधर-यवना-जान-जट्ट।
कश्मीर-उशीनर-कामरूप। ताजिक-पारस-काहार-सूव।
नेपाल-धट्ट-हिंदिव तिसरा। केरल-कोहल-कैलाश-वशिर।
गंधार-मगह-मद्र-आहिवाउ। शक-शूरसेन-मरु-पार्थिवाउ।
एतउ अवरउ किउ वश-विधेय। पलटें'उ प्रतीवासेहिँ लेय।

—रामायण ८२।६

---

[1] रण-साधन, सेना

(३) योधाओंकी उमंगें

अण्णेक्क सुहड सण्णद्ध केवि । णिय कंतहु आलिंगणु करेवि ।
अण्णेकहु धण तंबोलु देइ । अण्णेक्क समप्पिउ पिउ ण लेइ ।
मइ कन्तें समाणें चउदलेहिं । हयपण्णेंहि रहवर-पोप्फलेहिं ।
णर-वर संचूरिय-चुण्णएण । रिउ-जयसिरि-बहुअएँ दिण्णएण ।
अण्णेकहों जाइँ सुकंत देइ । ऊहुल्लइँ फुल्लइँ नतरु लेइ[1] ।
ण समिच्छमि हउँ तुहु लेहि भज्जें । एत्तिउ सिरु णिवडइ सामि-कज्जें ।
अण्णेक्कहों धण-भूसणइँ देइ । अण्णेक्कु तंपि तिण-समु गणेइ ।
किं गंधें किं चंदण-रसेण । मइ अंगु पसाहेव्वउ जसेण ।

घत्ता । अण्णेक्कहों धण अप्पाहइ, हिम-ससिकंत-समुज्जलइँ ।
करिकुंभइ णाह दलेप्पिणु, आणेज्जहि मोत्ताहलइँ ॥३॥

—रामायण ५६।२-३

केवि जस-लुद्ध । सण्णद्ध-कोह । केवि सुमित्त-पुत्त । सुकलत्त-चत्त-मोह ।
केवि णीसरंति वीर[2] । भूधर'व्व तुंगधीर ।
सायर'व्व अप्पमाण । कुंजर'व्व दिण्णदाण ।
केसरि'व्व उद्धकेस । चत्त-सव्व-जीवियास ।
केवि सामि-भत्ति-वंत । मच्छिरग्गि-पज्जलंत ।
केवि आहवे अभंग । कुंकुमं पसाहि-अंग ।
केवि सूर साहिमाणि । सत्ति-सूल-चक्कपाणि ।
केवि गीढ वारुणत्थ । तोण-वाण-चाव-हत्थ ।
कुद्ध लुद्ध-जुद्ध केवि । णिग्गयासु सण्णहेवि ।

—रामायण ५९।२

---

[1] नरु नलेइ—पूना [2] हेलादुवई-छंद

(३) योधाओँकी उमंगें

अन्नेक[1] सुभट सन्नद्ध कोइ। निज कंतहँ आलिगन करेइ।
अन्नेकहु धनि तांबूल देहिँ। अन्नेक समर्पेँउ पिय न लेहिँ।
मैँ कंत समाने चउदलेहिँ। हय पर्णेहिँ रथवर-श्रीफलेहिँ।
नरवर संचूरित-चूर्णकेहिँ। रिपु-जयश्री-वधुअइ दिन्नकेहिँ।
अन्नेकहु जाइँ सुकंत देइ। ऊहुल्लैँ फुल्लैँ नर न लेइँ।
नहि इच्छउँ हउँ तुहु लेइ भाज्येँ। ईहउ शिर निपतै स्वामिकार्येँ।
अन्नेकहँ धन-भूषणैँ देइ। अन्नेक सोउ तृणसम गनेइ।
का गंधहिँ का चंदन-रसहीँ। मैँ अंग प्रसाधेवउँ यशेहिँ।

घत्ता। अन्नेकहु धन आपानहीं, हिम-शशिकांत-समुज्वलईँ
करिकुंभइँ नाथ ! दलेविय, आनीजै मुक्ताफलईँ॥३॥

—रामायण ५६।२-३

कोइ यशलुब्ध। सन्नद्ध-क्रोध। कोइ सुमित्र-पुत्र। सुकलत्र त्यक्तमोह।
कोइ निःसरंति वीर। भूधर इव तुंगधीर।
सागर इव अप्रमाण। कुजर इव दिन्न-दान।
केसरि इव ऊर्ध्व-केश। त्यक्त-सर्व-जिविताश।
कोइ स्वामि-भक्तिमंत। मत्सराग्नि-प्रज्वलंत।
कोइ आहवे अभंग। कुंकुमे प्रसाधित-आंग।
कोइ शूर साभिमानि। शक्ति-शूल-चक्र-पाणि।
कोइ गीढ-वारुणास्त्र। तूण-वाण-चाप-हस्त।
क्रुद्ध लुब्ध-युद्ध कोइ। निर्गत-असु सन्नहेइ।

—रामायण ५९।२

[1] अनेक

(४) पत्नीसे विदाई (रावण-सैनिककी)

घत्ता[१] । कोइ पधाइउ हणु हणु सद्दे̃, परिहइ कोइ कवउ आणंदे̃ ।
रण-रसियहों̃ रोमचुब्भिण्णहों̃, उरे̃ सण्णाहु ण माइउ अण्णहों̃ ॥२॥
पभणइ कावि "कंत ! करि-कुंभे जेत्तडाइँ । मुत्ताहलाइँ लेवि महु आणेज्जहि तेत्तडाइँ" ।
कावि कंत-चिंधइ अप्पाहइँ । कावि कंत णिय-कंतु पसाहइँ ।
कावि कंत-मुह यंति करावइँ । कावि कंत दप्पणु दरिसावइँ ।
कावि कंत पिय-णयणइ अंजइँ । कावि कंत रण-तिलउ पउंजइ ।
कावि कंत स-वियारउ जंपइ । कावि कंत तंबोलु समप्पइ ।
कावि कंत-बिंबाहर लग्गइ । कावि कंत आलिंगणु मग्गइ ।
कावि कंत ण गणेइ णिवारिउ । सुरयारंभु करेइ णिरारिउ ।
कावि कंत-सिरे̃ बंधइ फुल्लइँ । वत्थइ परिहावई अमुल्लइ ।
कावि कंत आहरणइ ढोयइँ । कावि कंत परमुहइ पजोयइँ ।
घत्ता । कहवि अंगे रोसहु ण माइय, पिय रण-वहुअएँ सहुँई सगइया[२] ।
जइ तुहु तहे̃ अणुराइउ वट्टइ, तो महुँ ण हवय देबि पयट्टइ ॥३॥
पभणइ कोवि "वीरु जइ चवहि एव भज्जे । तो वरे̃ तहे̃ जे̃ देमि जा जुत्त सामिकज्जे ।"
कोवि भणइ "गयगंडवलग्गइ । आणबि मुत्ताहलइँ धयग्गइँ ।"
कोवि भणइ "णउ लेमि पसाहणु । जाव ण भंजमि राहव-साहणु ।"
कोवि भणइ "मुहविलि ण इच्छमि । जाव ण सुहड छडक्क पडिच्छमि ।
कोवि भणइ "ण णिहालमि दप्पणु । जाव ण रणि विणिवाइउ लक्खणु ।"
कोवि भणइ "णउ अंक्खिउ अंजमि । जाव ण सुरवहु-जण-मण-रंजमि ।". . . .
कोवि भणइ "णउ सुरउ समाणमि । जाव ण भडहु कुलक्खउ आणमि ।"
कोवि भणइ "धणि फुल्ल ण वंधवि । जाव ण रणे̃ सर धोरणि संधवि" ।
घत्ता । कोवि भणइ "धणे̃ णउ आलिंगमि, जाव ण दंति-दंत आलिंगमि" ।
कोवि करवि ण वित्ति आहारहों̃, जाव ण दिण्ण सीय दहवयणहों̃ ॥४॥

---

[१] तोमर-छंद [२] सट्टइ-चाहिये

(४) पत्नीसे विदाई (रावण-सैनिककी)

घत्ता । कोइ प्रधायउ हन-हन शब्दें, परिहरि कोउ कवहुँ आनंदे ।
रणरसिया रोमांचु-छिन्नहँ । उरें सन्नाह न आयउ अन्यहँ ।।२।।
प्रभणै कोइ "कंत ! करिकुंभें जेत्तनाइँ । मुक्ताफलाइँ लेबि आनीजै तेत्तनाइँ ।"
कोइ कंत चिन्हाईं पूजै । कोइ कंत निज-कंत प्रसाधै ।
कोइ कंत-मुख धोंवन करावै । कोइ कंत दर्पण दरसावै ।
कोइ कंत-प्रिय-नयनहिं अंजै । कोइ कंत रणतिलक प्रयोगै ।
कोइ कंत सविकारउ जल्पै । कोइ कंत तांबूल समर्पै ।
कोइ कंत-विंबाधर लागै । कोइ कंत आलिंगन माँगै ।
कोइ कंत न गनेइ निवारिउ । सुरतारंभ करेइ निरारिउ[1] ।
कोइ कंत शिरें बाँधै फूलहिँ । वस्त्रहिँ पहिरावै अनमोलहिँ ।
कोइ कंत आभरणहिं योजै । कोइ कंत परमुखहिँ प्रयोगै ।
घत्ता । "कहवि अंगें रोसहु न भाइय, प्रिय रण-वधु-संग ईर्ष्याइय ।
यदि तुहुँ तहँ अनुरागिय वट्टै[2], तो मम न हवै[3] देवि प्र-वट्टै ।।३।।
प्रभनै कोइ "वीर ! यदि वोलु एव भार्य । तो वरु तेहिहि देउँ जो युक्त स्वामि-कार्ये।"
कोइ भनै "गजगंड विलग्नहिँ । आनबि मुक्ताफलहिँ ध्वजाग्रहिँ ।"
कोइ भनै "ना लेहुँ प्रसाधन । जौ लों न भंजउँ राघव-साधन ।"
कोइ भनै "मुखवृत्ति न इच्छउँ । जौ लौं न सुभट-छडक्क प्रतीच्छउँ।
कोइ भनै "न निहारौं दर्पण । जौ लौं न रण विनिपातौं लक्ष्मण ।"
कोइ भनै "ना आँखिहुँ अंजौं । जौ लौं न सुर-वधुजन-मन रंजौं ।
कोइ भनै "न सुरति सम्मानौं । जौ लों न भटहँ कुल-क्षय आनौं ।
कोइ भनै "धनि ! फूल न बाँधव । जौ लों न रणें सर पाँती साँधब ।"
घत्ता । कोइ भनै "धनि ! ना आलिंगौं, जौ लों न दंति-दंत आलिंगौं ।"
कोइ "करवि न वृत्ति आहारहु, जौ लों न दीन सीय दशवदनहुँ ।।४।।

---

[1] अत्यंत [2] बाटै (काशी) =है [3] हौवे (काशी) =है

गरुअ पउ-हरीए अच्चंत णेहिणीए। रणें पइसंतु कोवि सिक्खविउ गेहिणीए।
णाह णाह ! समरंगणें काले। तूर भेरि-दडि-संख-रव-भाले।
उत्थरंत वर वीर समुद्दे। सीह-णाय णर-णाय-रउद्दे।
मत्त-हत्थि गल-गज्जिय सद्दे। अब्भिडिज्ज पर राहवचंदे।
कावि णारि परिहासइ एमं। तेम जुज्भु णवि लज्जमि जेवं।
कावि णारि पडिवोहइ णाहं। भग्गमाणें पइँ जीवमि णाहं।
कावि णारि पडिच्चुवणु देइ। कोवि वीरु अवहेरि[1] करेइ।
कतें कतें मइ मंदु लएबी। कित्ति-वहुय रणें परिचुंवेबी।
कावि णाहि णवकारु करेइ। कोवि वीरु रणें-दिक्ख लएइ।

—रामायण ५९।३-५

थोवंतरु जाव परिभमइ। सहुँ कंतएँ कोवि वीरु चवइ।
सुंदरि ! मृगणयणे ! मरालगइ ! तं पहु पसाउ किं वीसरइ।
तं पेसणु तऊ लग्गियउँ। तंजीविउ दाणु अमग्गियउँ।
तं उच्चासणु मणें वेयडिउ। तं मत्तगइंदें-खंधें चडिउ।
तं मेहलु तं कंठाहरणु। तं चेलिउँ तं जें समालहणु।
तं फुल्लु सहत्थें तं तंबोलु। तं असणु स-परियलु कच्चोलु।
तं चीरु भारु चामीयरहो। अवरवि पसाय लंकेसरहो।
एयहुँ जसु एक्कइ णावडइ। सो सत्तमि णरयण्णवें पडइ।

—रामायण ६२।५

(५) रण-यात्रा

पेक्खु पेक्खु आवंतउ साहणु। गलगज्जंत महग्गय-वाहणु।
पेक्खु पेक्खु हिंसंत तुरंगम। णहयलें विउलें भवंति विहंगम।
पेक्खु पेक्खु चिंधइ धूयंतइँ। रह-चक्कइँ महियलें खुप्पंतइँ।
पेक्खु पेक्खु कड्ढिय असिवत्तइँ। धाणुक्किय फारक्किय पत्तइँ।

---

[1] तिरस्कार

गरुअ पदधरियि अत्यन्त स्नेहनियहिँ । रणेँ पइसंत कोइ सिखायउ गेहिनियहिँ ।
"नाथ नाथ ! समरंगण काले । तूर्य-भेरि-दँडि-शँख-रव-माले ।
उत्तरंत वरवीर समुद्रे । सिहनाद नरनाद रउद्रे ।
मत्त-हस्ति-गलगर्जित शब्दे । आभिडिया पर राघवचंदे ।"
कोइ नारि परिहासै एवं । "तिमि जूझौ नहि लज्जउँ येवं ।"
कोइ नारि प्रतिवोधै नाथहूँ । "भागंते तोहि जीवउँ ना हउँ ।
कोइ नारि प्रतिचुंवन देई । कोई भी अवधीर[1] करेई ।
"कंत कंत ! मैं मृदू लपेवी । कीर्त्ति-बधुअ रणेँ परिचुंवेबी ।"
कोइ नाहिँ नमकार करेई । कोइ वीर रण-दीक्ष लएई ।

—रामायण ५९।३-५

थोडंतर यावत् परिभ्रमई । कांतासोँ कोइ वीरा कहई ।
"सुंदरि ! मृगनयने ! मरालगति । सो प्रभु-प्रसाद का बीसरइ ।
सो प्रेषण[2] तऊ लागेऊँ । सो जीवित-दान अमाँगेऊँ ।
सो उच्चासन मन बीजडऊ । तेंहि मत्तगयंद-स्कन्धेँ चढिऊँ ।
सो मेहरि सो कंठाभरणू । सो चोलिउ सोँउ संम-लभनू ।
सो फूल स्वहत्थेँ सो तमूल । सो अशन स-परिदल[3] कट्टोर ।
सो चीर भार चामीकरहू । अवरौ प्रसाद लंकेश्वरहू ।
एतहुँ यश एकइ ना वडई । सो सतवेँ नरकार्णव पडई ।

—रामायण ६२।५

(५) रण-यात्रा

पेखु पेखु आवंतउ साधन[4] । गलगर्जत महागज-वाहन ।
पेखु पेखु हिनहिनत तुरंगम । नभतलेँ विपुल भवंति विहंगम ।
पेखु पेखु चिन्हा कंपंता । रथचक्का महितलहिँ खनंता ।
पेखु पेखु काढ़िय असिपत्रा । धानुष्केँहिँ फरकायो पत्रा ।

---

[1] तिरस्कार [2] आज्ञा [3] थाली [4] सेना

पेक्खु पेक्खु वज्जतइ तूरइँ। णाणा-विह निनाय-गंभीरइँ।
गलगज्जंत धणुह-टंकारउँ। सुहड विमोक्क पोक्कहक्कारउँ।
पेक्खु पेक्खु सय-संख रसंता। णाइ स दुक्खउ सयणँ रुअंता।
पेक्खु पेक्खु पचलंतउ णरवइ। गह चक्कहहों मज्झें सणि णावइ।
दसउर-[1]णाहु णिहालइँ जावेंहिँ। सयलु' वि सेण्णु पराइउ तावेंहिँ।

—रामायण २५।४

घंटा-टंकार-मणोहराइँ। उड्डंत मत्त-महुयर-सराइँ।
ससि-सूर-कंत-कर-णिब्भराइँ। बहु-इंद-णील-किय-सेहराइँ।
पवलय-माला रंखोलिराइ। मरगय-रिछोलिएँ सोहिराइँ।
मणि-पोमराय-वण्णुज्जलाइँ। वेडुज्ज-वज्ज-पह-णिम्मलाइँ।
मुत्ता-हल-माला धवलियाइँ। किंकिण-घग्घर-सर-मुहलियाइँ।
धूवंत धवल-धुय-धय-बडाइँ। वज्जंत संख-सय-संघडाइँ।
सुग्गीवें रयणुज्जोइयाइँ। विहि विण्णि विमाणइ ढोइयाइँ।

—रामायण ५६।४

(६) सैनिक बाजे

पडु-पडह-संख-भेरी-रवेण। कंसाल-ताल-दडिरउ रवेण।
कोलाहल काहल-णीसणेण। वड्ढीअ मुउंदा मीसणेण।
घंमुक्क करउ-टिविला-रवेण। झल्लरि-रुंजा-डमरुअ-करेण।
पडिढक्क-हुडुक्का-वज्जिरेण। घुम्मंत-मत्त-गय-गज्जिरेण।
तंडविय-कण्ण-विहुणिय-सिरेण। गुमु-गुमु-गुमंत इंदीवरेण।
पक्खरिय तुरय पवणुज्झडेण। धूवंत-धवल-धय-धूवडेण।
मण-गमणा मेल्लिय संदणेण। जम-वरुण-कुवेर-विमद्दणेण।
वंदिण जयकारु'ग्घोसिरेण। सुर-वहुअ-सत्थ-परितोसणेण।

घत्ता। सहु सेण्णें सहइ दसाणणु णीसरिउ।
छण-चंदु'व तारा णियरें परियरिउ ॥१॥

—रामायण ६३।१

---

[1] मालवा का दशपुर

पेखु पेखु वाजंता तूरइँ। नानाविध निनाद-गंभीरइँ।
गलगर्जत धनुष-टंकारा। सुभट विमोचु पुक्क हंकारा।
पेखु पेखु शतशंख रसंता। न्याइँ स्वदुःखउ स्वजन रुदंता।
पेखु पेखु प्रचलंतउ नरपति। ग्रह-चक्कहु माँझे स निशापति।
दशपुर-नाथ निहारेँउ जब्बैँ। सकलहु सैन्य पराइउ तब्बैँ।

—रामायण २५।४

घंटा-टंकार मनोहराइँ। उड्डंत मत्त-मधुकर-स्वराइँ।
शशि-सूर-कांत-कर-निर्भराइँ। बहु-इन्द्रनील-कृत-शेखराइँ।
प्रवलय-माला रंखोलिराइ[१]। मरकत-पक्तीहीँ सोहराइँ।
मणि-पद्मराग-वर्णोज्ज्वलाइँ। वैदूर्य-वज्र-प्रभ-निर्मलाइँ।
मुक्ता-फल-माला-धवलिताइँ। किंकिणि घर्घर स्वर मुखरिताइँ।
कंपंत धवल-धुत-ध्वज-बडाइँ। बाजंत शंख-शत-संघटाइँ।
सुग्रीवेँ रतनोद्योतिताइँ। विधि दोउ विमानइँ ढोइयाइँ।

—रामायण ५६।४

(६) सैनिक बाजे

पटु पटह-शंख-भेरी-रवेहिँ। कंसाल-ताल-दडिरव-रवेहिँ।
कोलाहल काहल-निःस्वनेहिँ। बड्ढीय मृदंगा मिश्रणेहिँ।
धंमुक्क-करड-टिबिला-रवेहिँ। झल्लरि-रुंजा-डमरू-करेहिँ।
प्रतिढक्क-हुडुक्का बाजिरेहिँ। घूमंत मत्तगज-गर्जिरेहिँ।
तांडविय कर्ण-विधुनित-शिरेहिँ। गुम-गुम-गुमंत इंदीवरेहिँ।
पाखरिय तुरग-पवनोज्झटेहिँ। धुन्वंत-धवल-ध्वज-धूवटेहिँ।
मनगमना छोडी स्यंदनेहिँ। यम-वरुण-कुबेर-विमर्दनेहिँ।
वंदिन जयकारु-द्घोषणेहिँ। सुर-ग्रधुम्र-सार्थ-परितोषणेहिँ।

घत्ता। सबसेनहिँ सह दशानन नीसरिऊ।
क्षण-चंदिँव तारा-निकरे परिचरिऊ॥१॥

—रामायण ६३।१

---

[१] सांकल

(७) युद्ध-वर्णन

(क) मेघवाहन[1] का युद्ध--

पच्छइ मेहवाहणो गहिय-पहरणे णिग्गउ तुरंतो ।
णं जुग-खय-सणिच्छरो भरिय-मच्छरो अहर-विप्फुरंतो ।
सो'वि पधाइउ रहवरें चडियउ । णं केसरि-किसोरु णिव्वडियउ ।
संचल्लइए तोयदवाहणें । तूरइ हयइ असेस'वि साहणे ।
संणज्झंति केवि रयणीयर । वर-तोणीर-वाण-धणु-वर-कर ।
केंवि तिक्खर-खग्गु-'क्खय-हत्था । केवि गुरुहु ऊणमिया-मत्था ।
केवि चडिय हिंसंत-तुरंगेंहिँ । केवि रसंत-मत्त-मायंगेंहिँ ।
केवि रहेंहि केंवि सिविया-जाणेहिँ । केवि परिट्ठिय-पवर-विमाणेंहिँ ।
पुच्छिउ णियय-सारही, "अहो महारही ।
दिढइँ जाइँ जाइँ, कहि कित्तियहँ ।
अत्थइ रणहों समत्थइ, रहिहें चडावियइँ ।"

(हथियारोंकी शक्तिकी तुलना--)

तो एत्थंतरि पभणइ सारहिँ । "अत्थइँ अत्थि देव ! जइ पहरहिँ ।
चक्कइ पंच सत्त वर-वायइँ । दस असिवरइँ अणिट्ठिय गावइँ ।
वारह झस पण्णारह मोग्गर । सोलह लउडि दंड रणें दुद्धर ।
वीस फरसु चउबीस तिसूलइँ । कोंतइ तीस सत्तु-पडिकूलइँ ।
घण पणतीस चाउ वसुणंदा । चाल पंचास तीरा अद्धंदा ।
सेल्लइ सट्ठि खुरुप्पइँ सत्तरि । अण्णइँ कणय-चडिय चउहत्तरि ।
असीति सत्तिउ णवइ भुसंढउ । जाउ दिवे दिवें रण-रसि-यट्ठिउ ।
सउ णारायहुँ जं परिमाणमि । अण्णहि पुणु परिमाणु ण जाणमि ।
घत्ता । वारह णियलइँ सोलह, विज्जउ रह चडिअउ ।
जेहि धरिज्जइ समरंगणि, इंदु' वि भिडिअउ ॥५॥

--रामायण ५३।४-५

---

[1] मेघनाद

(७) युद्ध-वर्णन

(क) मेघवाहनका युद्ध—

पाछेइँ मेघवाहन गहिय-प्रहरणा निर्गतउ तुरंता।
जनु युग-क्षय शनिश्चर, भरिय-मत्सर अधर-विस्फुरंता।
सोउ प्रधायउ रथवर चढियउ। जनु केसरि-किशोर नीवड़ियउ।
संचलतेई तोयदवाहनें। तूर्यहिँ हयहिँ अशेषहु साधनें।
सन्नाहंति कोँइ रजनीचर। वरतूणीर-बाण-धनु-वर-कर।
कोँइ तीखर-खड्गु-'द्यत-हत्था। कोइ गुरुहिँ अवनामिय-मत्था।
कोइ चढिय हिनहिनत तुरंगेहिँ। कोइ रसंत मत्त-मातंगेहिँ।
कोइ रथेहिँ कोँइ शिविका-यानेहिँ। कोइ बैठे प्रवर-विमानेहिँ।
पूछेँउ निजय-सारथी, "अहो महारथी !
दृढै जाइँ जाइँ, कहु केत्तियइँ।
अर्थइ रणहु समर्थैं, रथिहिँ चढावियईँ।

हथियारोंकी शक्तिकी तुलना

तो एहीँ बिच प्रभणेँ सारथी। "अर्थैँ अहै देव ! यदि प्रहरहिँ।
चक्रैँ पाँच सात वर-वायहिँ[१]। दश असि-वरहिँ अनिष्टित गावैँ।
वारह झष पन्नारह मुद्गर। सोलह लउरि-दंड रणेँ दुर्धर।
बीस परशु चौबीस त्रिशूलहिं। कुंतहिँ तीस शत्रु-प्रतिकूलहिँ।
घन पैंतीस चाप वसुनेद्रा। चाल पचास तीस अर्धंदा।
सेलहि साठ क्षुरप्रहिँ सत्तर। अन्यहिँ कनक-चढ़िय चौहत्तरि।
अस्सी शक्तिहि नबे भुसुंडिउ। जाउ दिने दिन रण-रसिकस्थिउ।
सौ नाराचौं जो परिमाणौँ। अन्येहिँ पुनि परिमाण न जानऊँ।
घत्ता। वारह निगडहिँ सोरह विद्या रथ चढियउ।
जेँहि धरिये समरंगणे, इन्द्रहुँ भिडियउ ॥५॥

—रामायण ५३।४-५

---

[१] हथियार

(ख) मेघवाहन और हनूमान्‌का युद्ध—

एक्कल्लउ सुहडु अणंत-बलु। पप्फुल्लु तोवि तहों मुह-कमलु।
परि-सक्कइ थक्कइ उल्ललइ। हक्कारइ पहरइ दणु दलइ।
आरोक्कइ ढुक्कइ उत्थरइ। परिउंभइ[1] रुंभइ वित्थरइ।
णवि छिज्जइ भिज्जइ पहरणेहिँ। जिह जिणु संसारहों कारणेहिँ।
हणुयहों पासेंहि परिभमइ बलु। णं मंदल-कोडिहि उयहि-जलु।
घत्ता। धरेंवि ण सक्कइ बलु सयलु 'वि उक्खय-पहरणु।
मारुहें पासेंहि परिभमइ मंदरहों णाइ तारायणु ॥६॥
धाइउ पवणणंदणो दणु-विमद्दणो वलहों पुलइ-अंगो।
हउ-रहु रह-वरेण गउ गय-वेरण, तुरएण वर-तुरंगो ॥
सुहडें सुहडु कवंध कवंधें। छत्तें छत्तु चिंधुहउ चिंधें।
वाणें वाणु चाउ वर-चावें। खग्गें खग्गु अणिट्ठिय-गव्वें।
चक्कइँ चक्कु तिसूल तिसूलें। मोग्गर मोग्गरेण हुलिहूलें।
कणएँण कणउ मुसलु वर-मुसलें। कोंते कोंतु रणंगणें कुसलें।
सेल्लें सेल्लु खुरुप्पु खुरुप्पें। फलिहि फलिहु गयावि गय-रुप्पें।
जंतें जंतु एंतु पडिखलियउ। बलु उज्जाणु जेण दरमलियउ।
णासइ सयलु'ण्णाविय मत्थउ। णिग्गइ दुण्णि तुरंगु णिरुत्थउ।
विवरामूहुउ हल्लिय-वयणउ। भग्गमडप्फरु मउलिय-णयणउ।
घत्ता। वियलिय-पहरणु णासंतु णिए' वि णिय-साहणु।
रह-वरु वाहेंवि थिउ अग्गएँ, तोयदवाहणु ॥७॥
रावण-राम-किंकरा रणे भयंकरा, भिडिय विप्फुरंता।
विउ सुग्गीव-राहवा विजय-लाह-वाणाइँ हणु भणंता ॥
वेवि पयंड वेवि विज्जा-हर। वेंण्णि'वि अक्खय-तोण-धणुह-कर।
वेंण्णि'वि वियउ-वच्छ पुलइय-भुअ। वेण्णि'वि अंजण-मंदोयरि-सुअ।

---

[1] परिअंभइ

(ख) मेघवाहन और हनूमान्का युद्ध––

एकल्लउ सुभट अनंतबलू। प्रफ्फुल्ल तोउ तसु मुख-कमलू।
परि-शक्कै थाकै उल्ललई। हक्कारै प्रहरै दन्-दलई।
आ-रोकै ढूकै उल्ललई। परि-रुंधै रुंधै विस्तरई।
नहि छिद्यै भिद्यै प्रहरणेहिँ। जिमि जिन संसारह कारणेहिँ।
हनुमत्-पासेँहिँ परिभ्रमै बलू। जनु मंदर-कोटिहिँ उदधि-जलू।
घत्ता। धरेँव न सक्कै बल सकलहु उक्खाड-प्रहरण।
मारुति-पासेँहिँ परिभमै मंदर-कोटि'व तारागण ॥६॥
धायेँउ पवननंदनो दनु-विमर्दनो। वलवत् पुलकित-अंगो।
हय-रथ रथवरेहिँ गयेँउ गजवरेहिँ तुरगेहिँ वरतुरंगा।
सुभटेहिँ सुभट कवंध कवंधेहिँ। छत्रेँ छत्र चिन्हहऊँ चिन्हा[1]।
वाणेँ वाण चाप वर-चापेँ। खड्गेँ खड्ग अनिष्ठित[2]-गर्वें।
चक्रहिँ चक्र त्रिशूल त्रिशूलेँ। मुद्गर मुद्गरेहिँ हुलिहूलेँ।
कनकेहिँ कनक मुसल वर-मुसलेँ। कुंतेँ कुंत रणंगण कुसलेँ।
सेलेँ सेल क्षुरप्र क्षुरप्रेँ। फरिहिँ फरिहु गजाहु गज-रूपेँ।
यंत्रेँ यंत्र आवत प्रतिस्खलियेँउ। बल उद्यान येन दरमलियेँउ।
नाशै सकल नवाइया मत्थउ। निर्गत दोउ तुरंग-निरर्थउ।
विवर-मुखाहू हालिय-वदनहु। भग्न-'भिमान मुकुलिया-नयनहु।
घत्ता। विचलिउ प्रहरण नाशंत निजहु निज-साधन।
रथवर वाहहु रहु आगे, तोयदवाहन ॥७॥
रावण-राम-किंकरा रण-भयंकरा, भिडेँउ विस्फुरंता।
सुग्रीव-राघव-विजल लाभवाणा हन भनंता ॥
दोउ प्रचंड दोउ विद्याधर। दोऊ अक्षय-तूण-धनुष-कर।
दोऊ विकट-वक्ष पुलकित-भुज। दोऊ अंजन-मंदोदरि-सुत।

---

[1] ध्वज [2] अनंत, असमाप्त

वेंण्णि'वि पवण-दसाणण-णंदण । वेण्णि'वि दुद्दम-दाणव-मद्दण ।
वेण्णि'वि पहरण-परवल-चड्डिय । वेण्णि'वि जय-सिरि-वहुअवरुंडिय ।
वेण्णि'वि राहव-रावण पक्खिय । वेण्णि'वि सुर-वहु-णयण-कडक्खिय ।
वेण्णि'वि समर-सएँहिँ जसवंता । वेण्णि'वि पहु-सम्माण-सरंता ।
वेण्णि'वि वीर-धीर भय-चत्ता । वेण्णि'वि परम-जिणिंदहों भत्ता ।
वेण्णि'वि अतुल-मल्ल रण-दुद्धर । वेण्णि'वि रत्त-णेत्त-फुरिया-हर ।

घत्ता । विहिमि महाहउ जो असुर-सुरेंदहि दीसइ ।
राहव-रावणहों से तेहउ दुक्खरु होसइ ।।८।।

—रामायण ५३।६-८

भिडिअइ वें'वि सेण्णइँ आउ जुज्भु घोरु ।
कुंडल-कडय-मउडणिवडंत कणय-डोरु ।
हण-हण-हणंकारु महारउद्दु । छण-छण-छणंतु गुण-पिंछ-सद्द ।
कर-कर-करंतु कोयंड-पवरु । थर-थर-थरंतु णाराय-णियरु ।
खण-खण-खणंतु तिक्खग्ग खग्गु । हिलि-हिलि-हिलंतु हय-चंचलग्गु ।
गुलु-गुलु-गुलंत गयवर विसालु । "हणु-हणु" भणंतु णर-वर-विसालु[1] ।
पोप्फस-वसणे गत्तत्त-मालु । धावंत कलेवर सव-करालु ।
भल-भल-भलंतु सोणिय-पवाहु । छिज्जंत चलण तुट्टंत वाहु ।
णिवडंत सीसु णच्चंत रुंड । ऊणल्ल तुरय-धय-छत्त-दंड ।
तँहि तेहएँ रणें रण-भर-समत्थु । राहव-किंकरु वर-वारणत्थु ।

घत्ता । सीहद्धउ चवल सीह-संदणे चडियउ ।
संतावणु सुहुमारिव्वें अब्भिडिउ ।।३।।

वेण्णि'वि सीह-संदणा वेण्णि'वि सीह-चिंधा ।
वेण्णि'वि चाव-करमला वें'वि जगें पसिद्धा ।

---

[1] णरवर वमालु

दोऊ पवन-दशानन-नंदन । दोऊ दुर्दम-दानव-मर्दन ।
दोऊ प्रहरण परबल-चढ़िया । दोऊ जयश्री-वधु ऑलिगिया ।
दोऊ राघव-रावण-पक्षिय । दोऊ सुरबधु-नयन-कटाक्षिय ।
दोऊ समर-शतेहिँ यशवंता । दोऊ प्रभु-सम्मान स्मरंता ।
दोऊ वीर-धीर भय-त्यक्ता । दोऊ परम-जिनेंद्रह भक्ता ।
दोऊ अतुल-मल्ल रण-दुर्धर । दोऊ रक्तनेत्र स्फुरिताधर ।

घत्ता । दोंउहि महाहव जो असुर-सुरेंद्रहिँ दीसै ।
राघव-रावणँह सो, वैसे दुष्कर होषै[१] ।।८।।

—रामायण ५३।६-८

भिडिया दोऊ सेन आव युद्ध घोर ।
कुंडल-कटक मुकुट निपतंत कणक-डोर ।।

हन-हन-हनंकार महा-रउद्र । छन-छन-छनंत गुण-पिच्छ-शब्द ।
कर-कर-करंत कोदंड-प्रवर । थर-थर-थरंत नाराच-निकर ।
खन-खन-खनंत तीक्ष्णाग्र खड्ग । हिलि-हिलि-हिलंत हय-चंचलाग्र ।
गुलु-गुलु-गुलंत गजवर-विशाल । "हन हन" भनंत नरवर-विशाल ।
फुप्फुस वसने गात्रात्त-माल । धावंत कलेवर शव-कराल ।
झल-झल-झलंत शोणित-प्रवाह । छिद्यंत चरण तुट्यंत बाँह ।
निपतंत शीश नाचंत रुंड । फिक्कंत तुरग-ध्वज-छत्र-दंड ।
तँह तेहि रणे रणधर-समर्थ । राघव-किंकर वर-वारणास्त्र ।

घत्ता । सिंहध्वज चपल सिंह-स्यंदन चढियउ ।
संतापन सुखमारी इव भिडियउ ।
दोऊ सिंहस्यंदना दोऊ सिंहचिन्हा ।
दोऊ चाप-करतला दोऊ जग-प्रसिद्धा ।

---

[१] होखै (काशी)

वेण्णि'वि[1] जस-लुद्ध विरुद्ध कुद्ध । वेण्णि'वि वंसुज्जल कुल-विसुद्ध ।
वेण्णि'वि सुर-वहु-आणंद-जणण । वेण्णि'वि सत्तुत्तम सत्तु-हणण ।
वेण्णि'वि रण-धुर-धोरिय महंत । वेण्णि'वि जिण-सासण-भत्तिवंत ।
वेण्णि'वि दुज्जय जय-सिरि-णिवास । वेण्णि'वि पणई-यण-पूरियास ।
वेण्णि'वि निसियर-णर-वर-वरिट्ठ । वेण्णि'वि रावण-राहवहँ इट्ठ ।
वेण्णि'वि जुज्झंत सिलीमुहेहि । णं गिरि अवरोप्परु सरि मुहेहिँ ।
मारिच्चहों भय भीसावणेण । धणु जीउच्छिणु संतावणेण ।
तेण'वि तहों चिर-पेसिय-सरेहिँ । संसारु'व परम-जिणेसरेहि ।
—रामायण ६३।३-४

(ग) हनूमान्‌का युद्ध

हणुवंत-रणे परिवेढिज्जइ णिसियरेहिँ ।
णं गयण-यले वाल-दिवायरु जलहरेहिँ ।
पर-बलु अणंतु हणुवंतु एक्कु । गय-जूहहों णाइ इंदु थक्कु ।
आरोक्कइ कोक्कइ समुहुँ धाइ । जहि जहि जे थट्ट तहि तहि जे थाइ ।
गय-घड भड-थड भंजंतु जाइ । वंसत्थले लग्गु दवग्गि णाइ ।
एक्कू रहु महाँहवे रस-विसट्टु । परिभमइ णाइँ वले भइय वट्ट ।
सो णवि, भडु जासु ण मलिउ माणु । सो ण धयउ जासु ण लग्गु वाणु ।. . . .
सो णवि तुरंगु जस गोंडु ण तुट्टु । सो विण रहु जासु ण रहंगु फुट्ट ।
सो णवि भडु जासु ण छिण्णु गत्तु । तं णवि विमाणु जहि सरु ण पत्तु ।
घत्ता । जगडंतु बलु मारुइ हिंडइ जहिँ जे जहिँ ।
संगाम-महिहे रुंड णिरंतर तहि जे तहिँ ॥१॥
जं जिणेवि ण सक्किउ वर-भडेहि । बेढाविउ मारुइ गय-घडेहि ।
गिरि-सिहिर-गहिर कुंभत्थलेहिँ । अणवरय-गलिय- गंडत्थलेहिँ ।
छप्पए-झंकार-मणोहरेहिँ । घंटा-टंकार-भयंकरेहिँ ।
तंडविय कण्ण उद्ध करेहिँ । मुक्क हुसेहि मय-णिब्भरेहिँ ।. . .

---

[1] बे=दो (गुजराती)

दोऊ यशलुब्ध विरुद्ध क्रुद्ध । दोऊ वंशोज्वल कुल-विशुद्ध ।
दोऊ सुरबधु-आनंद-जनन । दोऊ सत्त्वोत्तम शत्रु-हनन ।
दोऊ रण-धुर-धौरेय महंत । दोऊ जिन-शासन-भक्तिवंत ।
दोऊ दुर्जय जयश्री निवास । दोऊ प्रणयीजन-पूरिताश ।
दोऊ निशिचर-नरवर-वीरष्ट । दोऊ रावण-राघवहँ इष्ट ।
दोऊ युध्यंत शिलीमुखेहिँ । जनु गिरि अपरोपर सरि-मुखेहिँ ।
मारीचहु भय-भीषावणेहिँ । धनुज्या उछिन्दु संतापनेहिँ ।
सोऊ तेहि चिर-प्रेषित-शरेहिँ । संसारि'व परम जिनेवरेहिँ ।
—रामायण ६३।३-४

(ग) हनूमान्‌का युद्ध

हनुमंत-रणे परिवेठिज्जै निशिचरेहिँ ।
जनु गगनतले वालदिवाकर जलधरेहिँ ।
पर-बल अनंत हनुमंत एक । गज-यूथहिँ न्याइँ इंदु थाक[1]
आरोकइ कोकइ समुँहेँ धाइ । जहँ जहीँ ठट्ट तहँ तहीँ थाय[2] ।
गज-घट भट-ठट भंजंत जाइ । वंश-स्थलेँ लागि दवाग्नि न्याइँ ।
एको रथ महाहवे रस-विसट्ट । परिभ्रमै न्याइँ वलेँ भयावर्त्त ।
सो नहिँ भट जासु न मलेँउ मान । सो नहिँ ध्वज जासु न लागु वाण ।....
सो नहिँ तुरंग जसु गोँड न टूट । सो नहिँ रथ जसु न रथंग फूट ।
सो नहिँ भट जासु न छिन्नु गत्त । सो नहिँ विमान जेहि शर न प्राप्त ।
घत्ता । भगडंत वल मारुति हिंडइ जहँहि जहँ ।
संग्राम-महिहिँ रुंड निरंतर तहँहि तहँ ॥१॥
जो जितन न सक्केउ वर-भटेहिँ । वेष्ठाविउ मारुति गजघटेहिँ ।
गिरि-शिखर-गहिर-कुंभस्थलेहिँ । अनवरत-गलित-गंडस्थलेहिँ ।
षट्पद-झंकार-मनोहरेहिँ । घंटाटंकार-भयंकरेहिँ ।
तांडविय कर्ण ऊर्ध्व-करेहिँ । मुक्त-आंकुशेहिँ मद-निर्भरेहिँ ।...

[1] ठहरै (बंगला) [2] रहै (गुजराती)

रण-रसिएँहि वैहाविद्धएहि । पेल्लिउ पडिवक्खु कइद्धएहि ।
णासइ विहडप्फउ गलिय-खग्गु । चूरंतु परप्फरु चलण-मग्गु ।

(घ) **कुंभकर्णका युद्ध**

भज्जतउ पेक्खे'वि णियय-सेण्णु । रावणु जयकारेवि कुंभयण्णु ।
धाइउ भय-भीसणु भीम-काउ । ण राम-बलहों खय-कालु आउ ।
परिसक्कइ रण-भूमिहि ण माइ । गिरि-मंदरु-थाणहों चलिउ णाइ ।
जउ जउ जि समच्छरु देइ दिट्ठि । तउ तउ जें पडइ णं पलय-विट्ठि ।
कोंवि वाएँ कोवि भिउडिएँ पणट्ठु । कोंवि ठिउ अवठंभेवि धरणि विट्ठु ।
कोंवि कहवि कडच्छए णरु णिलुक्कु । कोंवि दूरहोज्जें पाणेहि मुक्कु ।

घत्ता । सुग्गीव वले गरुअउ हुअउ हल्लोहलउ ।
णं अंगरे[1] हत्थि पइट्ठव राउलउ ।।३।। . . .

इत्थंतरे किक्किधाहिवेण । पडिबोहणत्थु आमुक्क तेण ।
उम्मोहिउ उट्ठिउ वलु तुरंतु । कहि कुंभयण्णु वलु वलु भणंतु ।

घत्ता । सयडम्मुहु पुणुवि पडीवउ धावियउ ।
णं उयहि-जलु महि रेल्लंतु पराइयउ ।।५।।

पर-बलु णियेवि समुत्थरंतु । लंकाहिवेण थरहर-थरंतु ।
करि कड्ढिउ णिम्मल चंदहासु । उग्गामिउ णइ दिणयर-सहासु ।
रिउ-साहणें भिडइ ण भिडइ जावँ । सोंडीर-वीर-णर तिण्णि तावँ ।
इंदइ घणवाहण वज्जणक्क । सिर णमिय कियंजलि-हत्थ थक्क ।
"अम्हेंहि जीवंतेंहि किंकरेहिँ । तुहु अप्पणु पहरहि किं करेहिँ" ।
सामिउ सम्माणेवि वद्ध-कोह । तिण्णेंवि समरंगणें भिडिउ जोह ।
चंदोयर-तणयहु वज्जणक्कु । घणवाहणु भामंडलहों थक्कु ।
इंदइ सुग्गीवहों समुहु चलिउ । णं मेरु महोयहि पहहुँ चलिउ ।

घत्ता । णरु णरवरहों तुरयहों तुरय समावडिउ ।
रहु रहवरहों गयहों महग्गउ आविडिउ ।।६।।

---

[1] **अग्गहरे**

रणरसिकेँहिँ वेधा-विद्धएहि । पेल्लेँउ प्रतिपक्ष कपिध्वजेहि ।
नाशइ बिहडप्फल गलित-खड्ग । चूरंत परस्पर-चरण-मार्ग ।

(घ) कुंभकर्णका युद्ध

भज्जंतउ पेखिय निजय-सैन्य । रावण जयकारहु कुंभकर्ण ।
धायउ भयभीषण भीमकाय । जनु रामवलह क्षयकाल आय ।
परि-सकै न रण-भूमिहि अमाइ । गिरि-मदर-थानहु चलेउ न्याइँ ।
जेँहि जेहि समक्षहु देइ दृष्टि । सोइ सोइ पडै जनु प्रलय-वृष्टि ।
कोइ वाचेँ कोइ भृकुटिहिँ प्रणष्ट । कोइ ठिउ अवथंभेहि धराविष्ट ।
कोँइ कोइ कटाक्षहिँ नरउ लूकु । कोइ दूरहीँहि प्राणेहिँ मोचु ।

घत्ता । सुग्रीवहु गरुओ हुयो हल्लाहलउ ।
जनु अग्रहारे पइठउ हस्ति राजुलउ ॥३॥. .

एहि अन्तर किष्किधाधिपेहिँ । प्रतिबोधनार्थ आमोचु तेहिँ ।
उन्मोहेँउ उठेँऊ बल तुरंत । कहँ कुम्भकर्ण-वलवल भनंत ।

घत्ता । शकट-मुँह पुनि हि प्रतीपउ धावियउ ।
जनु उदधि-जल मही रेल्लंत[१] परायउ ॥५॥

परवल निजेँहु समुत्थरंत । लंकाधिपेहिँ थर-थर-थरत ।
करेँ काढेँउ निर्मल चंद्रहास । उग्गियउ जनू दिनकर-सहस्र ।
रिपु-सेना भिडइ न भिडइ याव । शौडीर-वीर-नर तीन ताव ।
इंद्रजि-घनवाहन-वज्रनाक । शिर नमिय कृतांजलि-हस्त थाक ।
"हम सव जीवंतेहिँ किंकरेहिँ । तुहु अपने प्रहरै किं करेहि ।"
स्वामिय सम्मानेहु वद्ध-क्रोध । तीनौ समरंगणेँ भिडेँउ योध ।
चंद्रोदर-तनयहु वज्रनाक । घनवाहन भामंडलहुँ थाक ।
इन्द्रजि सुगीवहि समुह चलिउ । जनु मेरु महोदधि-मथन चलिउ ।

घत्ता । नर नरवरहुँ तुरयहु तुरय समापडिऊ ।
रथ रथवरहुँ गजहुँ महागज आभिडिऊ ॥६॥

---

[१] रेल-पेल

(ङ) सुग्रीव और मेघवाहनका युद्ध—

किक्किंध-णराहिउ धरिउ जाव। घण-वाहण भामंडलहँ ताव।
अब्भिट्ट परोप्परु जुज्झ घोर। सरि सोत्त स-उत्तरें पहर थोर।
छिज्जंत महग्गय गरुअ-गत्तु। णिवडंत समुद्धुय-धवल-छत्तु।
लोट्टंत महारह-हय-रहंगु। घुम्मंत-पडंत महातुरंगु।
तुट्टंत कवड तुट्टंत खग्गु। णच्चत कवंधउ असि-कर-ग्गु।
आयामेंवि रणें रोसिय-मणेण। अग्गेउ मुक्कु घणवाहणेण।
आमेल्लिउ आयउ धगधगंतु। अंगार वरिसु णहें दक्खवंतु।
वारुणु विमुक्कु भामंडलेण। णं गिरिहि वज्जु आखंडलेण।
उल्हाविउ जलणु जलेण जं जें। सरु णागवासु पम्मुक्क तं जें।
घत्ता। पुप्फवइ-सुउ दीहर-पवर-महासरेहिँ।
परिवेंढियउ मलयिदु'व विसहरेहि ॥६॥

—रामायण ६५।१-६

तार मारिच्च साहण सुसेणाहिवा। सुअपचंडालि संमुच्छ दहिमुह-णिवा।
घत्ता। अण्णेकहु मि भवणेक्केक्क पहाणहु।
किं सक्कियउ णाउँ गणेप्पिणु दाणहु ॥८॥
केणवि कोवि दोच्छिउ "मरु सवडम्मुहु थाहि थाहि।
केणवि कोवि वुत्तु "समरंगणें रहवरु वाहि वाहि॥"
केणवि कोवि महासर-जालें। छाइउ जिह सुक्कालु दुकालें।
केणवि कोवि भिण्णु वच्छत्थलें। पडिउ घुलंतु णवरि महि-मंडलें।
केणवि कहोंवि सरासणु ताडिउ। णं हेट्ठामुहु हिअव उपाडिउ।
केणवि कहोंवि कवउ णिव्वाट्टिउ। वलि जिह दस-दिसेहि आवट्टिउ।
केणवि कहोंवि महद्धउ पाडिउ। णं मउ माणु मडप्फरु साडिउ।
केणवि दंति-दंतु उप्पाडिउ। णावइ जसु अप्पणउ भमाडिउ।
केणवि झंप दिण्णु रिउ-रहवरें। गरुडें जिह भुयंग-भुअणंतरें।
केणवि कहिंवि सीसु अच्छोडिउ। णं अवराह-रुक्खु-फल तोडिउ।

(ङ) **सुग्रीव और मेघवाहनका युद्ध—**

किष्किंध-नराधिप धरेँउ याव। घनवाहण भामंडलहँ ताव।
आभिडेँउ परस्पर युद्ध-घोर। शरस्रोत स्व-उत्तरेँ प्रहर थोर।
छिद्यंत महागज गरुअ-गात्र। निपतंत समुद्धत-धवल-छत्र।
लोटंत महारथ-हय-रथांग। घूमंत पडंत महातुरंग।
टूटत कवच टूटंत खड्ग। नाचंत कवंधउ असि-कराग्र।
आयामेहु रणेँ रोषितमनेहिँ। आग्नेय मोचु घनवाहनेहिँ।
आमेलेँउ आतप धगधगंत। अंगार वरिसु नभेँ दग्धवंत।
वारुण विमोचु भामंडलेहिँ। जनु गिरिहिँ वज्र आखंडलेहिँ।
बूझायउ ज्वलन जलेहिँ जो हि। शर नागफास प्रम्मोचु सो हि।

घत्ता। पुष्पवती-सुत दीरघ-प्रवर-महाशरेहिँ।
परिवेठेँउ मलयद्रुम'ब विषधरेहिँ ॥९॥

—रामायण ६५।१-९

तार मारीच साधन सुसेनाधिपा। सुत प्रचंडालि संमूर्छ दधिमुखनृपा।

घत्ता। अन्नेकहुहि भवने एक एक प्रधानहँ।
का सक्किय नाम गनाइव राजहँ।

केहु सँग कोउ दर्शिउ "मर शकटमुँह स्थाहि स्थाहि।
केहु सँग कोउ कह "समरंगणे रथवर वाहि वाहि।"
केहु कहँ कोउ महाशर जालेँ। छापेउ जिमि सुक्काल दुकालेँ।
केहु कहँ कोउ भिन्दु वक्षस्थले। पडेँउ घुरंत केँवल महिमंडले।
केहु कहँ कोउ शरासन ताडेँउ। जनु हेठामुँह हृदय उपाडेँउ।
केहु कहँ कोउ कवच निर्वट्टिउ। वलि जिमि दशदिशेहिँ आवट्टिउ।
केहु कहँ कोउ महाध्वज पातेँउ। जनु मृदु मान'हँकारा साटेँउ।
कोऊ दंति-दंत उप्पाडेउ। मानोँ यश आपनो भ्रमाडेँउ।
कोउ झंप दियेँउ रिपु-रथवरेँ। गरुडेँ जिमि भुजंग भुवनंतरे।
कोऊ काहुहि शीश आछोडिउ। जनु अपराध वृक्ष फल तोडिउ।

घत्ता। केणवि समरे दिण्णु विबक्खहो हिअउ थिरु।
जीविउ जमहीं गुरु पहरहों सामियहँ सरु ॥९॥
—रामायण ६६।९

(च) रावणका शरीर

दसहिँ कंठेहि दसजे कंठाइँ दस भालहिँ तिलय दस।
दस सिरेहिँ दस मउड पज्जलिय।
दहहिमि कुडल-ज्जुएहि कण्ण-जुयल-सुकउल मुहलिय।
फुरिउ रयण-संघाउ दसाणण रोसुव। अह थिउ स-तारायणु वहल पऊसु'व।
पढम वयणु खय-सूर समप्पहु। सिंदुरारुणु सुरहंमि दूराहु।
वीयउ वयणु धवल-धवलच्छउ। पुण्णिम-यंद-बिंब-सारिच्छउ।
तइयउ वयणु भुयण-भय-गारउ। अगारारुणु मुवकंगारउ।
वयणु चउत्थउ बुह-मुह भासुरु। पंचमएण सइजे णं सुर-गुरु।
छट्ठउ सुक्क सुक्क-संकासउ। दाणव-वक्खिउ सुर-संतासउ।
सत्तमु कसणु सणिच्छरु भीसणु। दंतुरु वियडु दाढु दुद्दरिसणु।
अट्ठमु राहु-वयणु विकरालउ। णवमउ धूमकेउ धूमालउ।
दसमउ वयणु दसाणणकेरउ। सव्व-जणहों भय-दुक्ख-जणेरउ।

घत्ता। वहु-रूवउ वहु-सिरु वहु-वयणु, वहु-विह-कवोलु वहु-विह-णयणु।
वहु-कंठउ वहु-करु वि वहु-पउ, णं णट्ट-पुरिसु रसभाव गउ ॥८॥

ते णिएप्पिणु णिसियरिंदस्स सीसइ णयणइ मुहइँ पहरणाइँ रयणीयर भीसणु।
आहरणइ वच्छयलु राहवेण पुच्छिउ विहीसणु।
"किं तिकूड सेलोवरि दीसइ णव-घणु। देव देव! एँहु रहे थिउ रावण।
किं गिरि-सिहरइँ, णहि दीसराइँ। णं णं आयइँ दससिर-सिराइँ।
किं पलय-दिवायर-मंडलाइँ। णं णं आयइँ मणि-कुंडलाइँ।
किं कुवलयाइँ माणस-सरहों। णं णं णयणइँ लंकेसरहों।
किं गिरि-कंदरइँ भयाणणाइ। णं णं दह-वयणें दसाणणाइँ।
किं सुर-चावइ चाउत्तिमाइ। णं णं कंठाहरणइँ इमाइँ।
किं तारा-यणइँ तणुज्जलाइँ। णं णं धवलइँ मुत्ताहलाइँ।

घत्ता । काहुहिँ समरे दीन विपक्षहँ हृदय थिर ।
जीवित जमहु पुर प्रहरहु स्वामियहँ शिर ॥६॥

—रामायण ७८।६

(च) रावणका शरीर

दसहिँ कंठे॑ दसहु कंठा दस भालहिँ तिलक दस ।
दस सिरेहिँ दस मुकुट प्रज्वलिय ।
दसहि॑पि कुंडल-युगेहिँ कर्ण-युगल-शुक-कुल-मुखरिय ।
स्फुरे॑उ रतनसंघात दशानन रोषि॑व ।
अथ थिउ स-तारागण वहल प्रदोषि॑व ।
प्रथम वदन क्षय-शूर समपँहु । सिंदुर-अरुण सुरथउ दुस्सहु ।
दूसर वदन धवल-धवलाक्षउ । पूर्णिम-चंद्रबिंब-सारिक्खउ ।
तीसर वदन भुवन-भयकारउ । अंगारारुण मोचु अँगारउ ।
वदन चतुर्थउ वुध-मुख-भासुर । पंचम स्वयं एव जनु सुरगुरु ।
छट्ठउ शुक्ल-शुक्र-संकाशक । दानव-पक्षिक सुर-संत्रासक ।
सत्तम कृष्ण शनिश्चर भीषण । दंतुर विकट-दाढ दुर्दर्शन ।
अष्टम राहु-वदन विकरालउ । नवमउ धूमकेतु धूमालउ ।
दसमउ वदन दसाननकेरउ । सर्वजनन्ह भय-दुःख-जनेरउ ।
घत्ता । वहु-रूपउ वहु-शिर वहु-वदन, वहु-विध कपोल वहु-विध नयन ।
वहु-कंठउ वहु-करहु वहु-पद, जनु नट्ट-पुरुष रसभाव गयउ ॥८॥
सो निजेही निश्चरेन्द्र कर सीसैं॑ नयनैं॑ मुखैं॑ प्रहरणें॑ रजनीचर भीषण ।
आभरणैं॑ वक्षतल राघवेहिँ पूछे॑उ विभीषण ॥
"का त्रिकूट शैलोपरि दीसै नवघन ?" "देव देव ! एहु रथें॑ हौ रावण ।"
"का गिरि-शिखरा नहि दीसराइँ ?" "ना ना अहँ दससिर-सिराइँ ।"
"का प्रलय-दिवाकर-मंडलाइँ । ?" "नाना अहैं॑ मणि-कुंडलाइँ ।"
"का कुवलयाइँ मानससरहू ?" "ना ना दशवदने दस आननहू ।"
"का सुर-चापा चापोत्तमहू ?" "नाना कंठाभरणा एहू ।"
"का तारा-गणइँ तनुज्वलाइँ ?" "ना ना धवलइँ मुक्ता-फलाइँ ।"

किं कसणु विहीसण गंयण-पलु । णं णं लंकाहिव वच्छ-यलु ।
किं दिसवे यंड-सोंड-पयरो । णं णं दहकंधर-कर-णियरो ।
घत्ता । तं वयणु सुणेप्पिणु लक्खणेण, लोयणइँ विरिल्लें वि तक्खणेण ।
अवलोइउ रावणु मच्छरेण, णं रासि-गयेण सणिच्छरेण ॥९॥

(छ) **लक्षमण-रावण युद्ध—**

करें केरप्पिणु सायरावत्तु थिउ लक्खणु ।
गरुड-रहे गारुडत्थु गारुड-मद्धउ ।
वलु वज्जावत्तु धरु सीह चिधु वर-सीह-संदणु ।
गयवि हत्थु गय-रह-वरु पमय महद्धउ ।
विप्फुरंतु किक्किधा-हिउ सण्णद्धउ । . . . .
घत्ता । सण्णहेंवि पासु ढुक्कइ वलहों, अक्खोहणि वीससयइँ वलहों ।
विरएवि वूहु संचल्लियइँ, णं उयहि-मुहइ उत्थाल्लियइ ॥१०॥
घुट्टु कलयलु दिण्ण रणभेरि चिधाइ समुब्भियइँ,
लइय कवय-किय-हेइ-संगहे ।
गय-घडउ पचोइयउ मुक्क-तुरय-वाहिय-महारहा,
राम-सेण्णु रण-रहसियउ ।
कहिमि ण माइउ जगु गिलेवि,
णं परवलु गिलइ पधाइयउ ।
अब्भिट्टु जुज्झु रोसिय-मणाहुँ । रयणीयर-वाणर-लंछणाहुँ ।
उसरिय संख-सय-संघडाहुँ । रण-वहु फेडाविय मुह-वडाहु ।
उद्धंकुस-धाइय गय-घडाहुँ । खर-पवणंदोलिय धय-वडाहुँ ।
कंपाविय सयल-वसुंधराहुँ । रोसाविय आसीविसहराहुँ ।
मेल्लाविय णयणहु वासणाहुँ । संजलिय दिसामुह इंधणाहुँ ।
जय-लच्छि-वहुअ-गेण्हण-मणाहु । जूराविय सुर-कामिणि-जणाहु ।
उग्गामिय भामिय असि-वराहु । णिव्वट्टिय लोट्टिय हय-वराहु ।
णिद्दलिय कुंभ कुंभत्थलाहु । उच्छलिय धवल-मुत्ताहलाहु ।

"का कृष्ण विभीषण गगन-तला ?" "ना ना लंकाधिप वक्षतला।"
"का दीसइ चंड शौड प्रकरो ?" "ना ना दसकंधर कर-निकरो।"

घत्ता। सो वचन सुनीयउ लक्ष्मणेहिँ, लोचनहिँ विरक्तेँउ तत्क्षणेहिँ।
अवलोकेँउ रावण मत्सरेहिँ, जनु राशिगतेहिँ शनिश्चरेहिँ ॥९॥

(छ) लक्ष्मण-रावण युद्ध—

करे करवाल सागरावर्त्त ठाढो लक्ष्मणु।
गरुड-रथै गरुडास्त्र गारुडा-मूर्धउ।
वल वज्रावर्त्त धरु सिंहचिन्ह वरसिंह-स्यंदनु।
गजहि हस्त गज-रथ-वर प्रमद महाध्वज।
विस्फुरत किष्किधाधिप सन्नद्धउ।...

घत्ता। सन्नाहिंव पार्श्व ढूकै वलहु, अक्षोहिणि वीस-सौ वलहु।
विरचि व्यूह संचल्लिय, जनु उदधिमुखइ उच्छल्लिय ॥१०॥

घुष्टु कलकल दीनु रणभेरि चिन्हैँ उठियाइँ,
लेइ कवच किय-हेति-संग्रहा।
गज-घटउ प्रप्ररियउ मोचु तुरग वाहेँउ महारथा,
रामसैन्य रण-रहसियऊ।
कहिँहु न अमायउ जगेँ निगलि,
जनु परवल निगलै धाइयऊ ॥
आरब्धु युद्ध रोषितमनाहँ। रजनीचर-वानर-लांछनाहँ।
अपसरिय शंख-शत-संघटाहँ। रण-वधु फेँराविय मुख-पटाह।
ऊर्ध्वकुश धाइय गजघटाह। खर-पवनांदोलिय ध्वजपटाह।
कंपाविय सकल वसुंधराह। रोषाविय आशीविषधराह।
मेलाविय नयनहुँ वासनाह। संज्वलिय दिङ्गामुख इंधनाह।
जय लक्ष्मि-वधुअ-ग्रहणन-मनाह। भूराविय सुरकामिनि-जनाह।
उद्गाविय भ्रामिय असिवराह। नीवत्तिय लोट्टिय हयवराह।
निर्दलिय कुभ कुंभस्थलाह। उच्छलिय धवल-मुक्ताफलाह।

घत्ता । भड-थड गय-घडेहिँ भिडंतएहिँ, रह-तुरयहिँ तुरिउ भिडंतएहिँ ।
रयणियरु समुट्ठिउ भत्तिकिह, णिय- कुलु मइलतु दुपुत्तु जिह ॥११॥
—रामायण ७४।८-११

(८) रण-क्षेत्र

जाउ सुट्ठु समरंगणु दूसंचारउँ । तहिं मि केवि पहरंति स-साहुक्कारउँ ।
केहिमि करि-कुंभइ परमट्ठइ । णं संगम-सिरिहें थण वट्टइँ ।...
केहिमि लइयइ पर-वल-छत्तइँ । ण जयसिरि-लीला-सयवत्तइँ ।
केहिमि चक्खु पसरु अलहंतेहिं । पहरिउ वाला लुंचिकरंतेहिं ।
केण' वि खग्ग-लट्ठि-परियट्टिय । रण-रक्खसहों जीह णं कड्ढिय ।
केण'वि करि-कुंभत्थलु पाडिउ । णं रण-भवण-वारु उग्घाडिउ ।
कत्थइ सुसुमूरिय असि-धारेहिं । मोत्तिय-दंतुरु हसियउ अहरेहिं ।
कत्थइ रुहिर-पवाहिणि धावइ । जाउ महाहउ-पाउसु णावइ ।
घत्ता । सोणिय-जल-पहरणग्गिरेहिं'व, सुहंतराल णह-यल-गएहिं ।
पज्जलइ वलइ धूमाइ रयणु, णं जुग-खय-काले कालवयणु ॥१२॥
—रामायण ७४।१२

हे णरणाह ! णेह अच्छरियउ । पर-बलु पेक्खु केम जज्जरियउ ।
रुंड-णिरंतरु सोणिय चच्चिउ । णाणा विह-विहंग-परिअंचिउ ।
कोवि पयंड-वीरु बलवंतउ । भमइ कियंतु वरिउ जगडंतउ ।
गय-घड भड-थड सुहड वहंतउ । करि-सिर कमल-संडु तोडंतउ ।
रोक्कइ कोक्कइ ढुक्कइ थक्कइ । णं खय-कालु समरें परिसक्कइ ।
—रामायण २५।१८

घत्ता । तेहएँ समरें सूरहँमि भज्जंति मइ ।
गय-गिरिवरेंहि ताव समुट्ठिय रुहिर-णइ ॥२॥
गय-वर-गंडसेल-सिहर'ग्ग-विणिग्गय णइ तुरंतिया ।
उद्धुव धवल छत्त-डिंडीरु समुव्वहंतिया ।
पवरोज्झर-सोणिय-जल-पवाहु । करि-मयर-तुरंगम-णक्क-गाहु ।
चक्कोहर संदण संसुमार । करवाल मच्छ परिहच्छ चार ।

घत्ता। भटठट-गजघटेहिँ भिडंतएहि, रथ-तुरंगहिँ तुरिय भिडंतएहिँ।
रजनिचर समुट्ठेउ भट्ट किमि, निजकुल मैलंत दु-पुत्र जिमि ॥११॥
—रामायण ७४।८-११

(८) रण-क्षेत्र

जाव सुण्टु समरंगण दुःसचारा। तहँहि कोइ प्रहरंति स-साधुक्कारा।
कोऊहि करिकुभैँ परिमीँजै। जनु संग्राम-श्री स्तन-वट्टै।
कोऊ लेइय पार-बल छत्रहिँ। जनु जयश्री-लीला शतपत्रहिँ।
कोऊ चक्षु-प्रसर अलभंता। प्रहरेउ वाला-लुंचि करंता।
कोऊ खड्ग यष्टि परि-काढिय। रण-राक्षसहँ जीभ जनु काढिय।
कोऊ करिकुम्भस्थल पाटेँउ। जनु रण-भवन-द्वार उग्घाटेउ।
कहिं कहिं सुठि काटिय असिधारेहिँ। मौक्तिक-दंतुरु हसियउ अधरेहिँ।
कहिँ कहिँ रुधिर प्रवाहिणि धावै। याव महाहव-पावस आवै।
घत्ता। शोणित जल-प्रहरणाग्रेहि इव, सुखंतराल नभतल गतेहिँ।
प्रज्वलै बलै धूमै रतन, जनु युगक्षयकाले कालवदन ॥१२॥
—रामायण

हे नरनाथ ! नेह आश्चर्यउ। पर-बल पेखु केम् जर्जरियउ।
रुंड निरंतर शोणित-चर्चित। नानाविध विहंग परि-अर्चित।
कोइ प्रचंड वीर-वलवंता। भ्रमै कृतांत-वरेँउ झगडता।
गज-घट भट-ठट सुभट वहंता। करि-शिर-कमलषंड-तोडंता।
रोकै कोकै ढूकै थाकै। जनु क्षयकाल समरेँ परिसक्कै।............
—रामायण २५।१८

घत्ता। तेही समरे सूरहुँहि भज्जंत।
गज-गिरिवरेहिँ तव अमुट्ठिय रुधिरनदी ॥२॥
गजवर-गंड शैल शिखराग्र-विनिर्गत नदी तुरंतिया।
उद्धुत-धवल-छत्र-डिंडीर-समुद्-वहंतिया।
प्रवरोज्झर-शोणित-जलप्रवाह। करि, मकर, तुरंगम नाक-ग्राह।
चक्कोधर स्यंदन शिशुमार। करवाल, मच्छ-परिहस्त चार।

मत्तेभ-कुंभ-भीसण-सिलोह । सिय-चमर-वलाया-पंति सोह ।

तंण्णइ[1]तरेवि कें वि वावरंति । वुड्डंति केवि कें वि उव्वरंति ।

कें वि रय-धूसर केवि रुहिर-लित्त । कें वि-हत्थ हुडएँ-विहुणे विघित्त ।

कें वि लग्ग पडीवादंत-मुसलें । णं धत्तु विलासिणि-सिहिण-जुअलें ।

कें वि णियय विमाणहों झंप देंति । णहें णिवडें वि वइरिहि सिरइ लेंति ।

तहिँ तेहए रणें सोणिय-जलेण । रउ सोसिउ सज्जणु जिह खलेण ।

—रामायण ६६।३

(९) विजयोत्साह

जं राम-सेण्णु णिम्मल-जलेण । संजीवें उ संजीवणि-वलेण ।

तं वीरेहि वीर-रसाहिएहि । वग्गंतें हि पुलय-पसाहिएहि ।

वज्जंतें हि पडहें हि मद्दलेहि । गिज्जंतें हि धवलें हि मंगलेहि ।

णच्चंतेहि खुज्जय-वावणेहि । जज्जरिय पढंते वंभणेहि ।

गायंतें हि अहिणव-गायणेहि । वायतें हि वीणा-वायणेहि ।

—रामायण ६९।२०

तो खर-णहर-पहर-धुव-केसर केसरि-जुत्त-संदणो ।

धवल-महद्धउ समुद्धायउ दसरह-जेट्ठ-णंदणो ॥

जस-धवल-धूरि-धूसरिय-अंगु । धवलंवरु धवला वर-तुरंगु ।

धवलाणणु धवल-पलंब-वाहु । धवलामल-कोमल-कमल-णाहु ।

धवलउ जें सहावें धवल-वंसु । धवलच्छि-मरालिहें राय-हंसु ।

धवलाहँ लवलु धवलायवत्तु । रहु-णंदणु दणु-पहरंतु पत्तु ।

—रामायण ७५।७

(१०) लक्ष्मणके हाथों रावणकी मृत्यु

तो गहिय चंद-हासाउहेण । हक्कारिउ लक्खणु दह-मुहेण ।

लइ पहरु पहरु किं करहि खेउ । तुहु एक्कें चक्कें सावलेउ ।

---

[1] वं नइ

मत्तेभ-कुंभ-भीषण-शिलोघ । सितचमर बलाकापंक्ति सोह ।
सो नदी तरन कोउ व्यापरंति । बूडंति कोइ कोँइ ऊवरंति ।
कोँइ रजधूसर कोँइ रुधिर-लिप्त । कोँउ हाथहरे विहुणेउ-चित्त ।
कोँइ लाग प्रतीपा दँत-मुसले । जनु धूर्त्त विलासिनि-स्तन-युगले ।
कोँइ निजह विमानहँ झंप देंति । नभे निपतिय वैरिहि शिरहिँ लेंति ।
तहँ तेहि रणे शोणित-जलेहिँ । रज सोखेँउ सज्जन जिमि खलेहिँ ।
—रामायण ६६।३

(९) विजयोत्साह

जो राम-सैन्य निर्मल-जलेहिँ । संजीवेँउ संजीवनि-बलेहिँ ।
सो वीरेहिँ वीररसाधिकेहि । वल्गंतेँहि पुलक प्रसाधितेहिँ ।
वाजंते पटहेँहिँ माँदलेहिँ । गीयंतेँहि धवलेँहिँ मंगलेहिँ ।
नाचंते कुब्जक-वामनेहिँ । चर्चरी पढंतेहिँ ब्राह्मणेहिँ ।
गायंते अभिनव-गायनेहिँ । वाजंतेहिँ वीणावादनेहिँ ।
—रामायण ६९।२०

तो खर-नखर-प्रहर धुत केसर केसरियुक्त-स्यंदनेहिँ ।
धवल-महाध्वज फहरायेउ दशरथ-ज्येष्ठ-नंदनेहिँ ।
यश-धवल-धूरि-धूसरित अंग । धवलावर धवला वरतुरंग ।
धवलानन धवल-प्रलंब-वाह । धवलामल-कोमल-कमल-नाभ ।
धवलहुह्नि स्वभावे धवल-वंश । धवलाक्ष-मरालिहेँ राजहंस ।
धवला लवण्य धवलातपत्र । रघुनंदन दनु-प्रहरंत प्रप्त ।
—रामायण ७५।७

(१०) लक्ष्मणके हाथों रावणकी मृत्यु

तो गहिय चंद्रहासायुधेहिँ । हक्कारेउ[1] लक्ष्मण दशमुखेहिँ ।
ले प्रहरु प्रहरु का करहि क्षेप । तुह एको चक्को सावलेप ।

---

[1] पुकारेउ (मैथिली, भोजपुरी, मगही)

महु पइ पुणु आयं कवणु गण्णु । किं सीह(हि) होइ सहाउ अण्णु ।
तं णिसुणेंवि विप्फुरियाहरेण । मेल्लिउ रहंगु लच्छीहरेण ।
घत्ता । उग्गयइरिहें णं अत्थइरि गउ, सूर-बिंबु कर-मंडियउ ।
सइँ मुएँहि हणंतहों दहमुहहों, मंड-उरत्थलु खंडिअउ ॥२२॥
—रामायण ७५।२२

६. विजय

(१) विजयिनी (राम-)सेनाका लंकामें प्रवेश

पइसंतें वल-णारायणेण । ववचालिय णायरिया-णणेण ।
एँहु सुदरि ! सोक्खुप्पायणहो । अहिरामु रामु रामायणहो ।
एँहु लक्खणु लक्खण-लक्ख-धरु । जो रावण-रावण-पलयकरु ।
एँहु भामंडलु भाभूसभुउ । वइदेहि-सहोयरु जणय-सुउ ।
एँहु किंक्किधाहिउ दुद्दरिसू । तारा-वइ तारावइ-सरिसू ।
एँहु अंगउ जेण मणोहरिहे । केसग्गहु किउ मंदोयरिहे ।
एँहु सुर-वर-करि-कर-पवर-भुउ । णंदण-वण-मद्दण पवण-सुउ ।
—रामायण ७८।६

(२) विभीषणद्वारा लंकामें रामका स्वागत—

दहि-दोव-जल-क्खय-गहिअ-करा । गय तहिँ जहिँ हलहर-चक्कहरा ।
आसीसेंहि सेसहि पणवणेहिँ । जय णंद बद्ध वद्धावणेहिँ ।
उच्छाहेंहिँ धवलेंहिँ मगलेहिँ । पडु-पडहहिँ संखेंहिँ मंदलेहिँ ।
कइ-कहएँहिँ णउ-णट्टावएहिँ । गायण-वायण-फंफावएहिँ ।
णर-णायर-वंभण-घोसणेंहि । अवरेंहिँमि चित्त-परिऊसणेहिँ ।
—रामायण ७८।१२

(३) भरत द्वारा अयोध्यामें रामका स्वागत—

रामागमणें भरहु णीसरियउ । हय-गय-रह-णरिंद-परियरिउ ।
अण्णे तहि सत्तुहणु स-वाहणु । स-रह सु-सालंकारु सु-साहणु ।

मम तैं पुनि आहि कवन गण्य । का सिंहह होइ स्वभाव अन्य ।
सो सुनिया विस्फुरिताधरेहिँ । मेलेँउ रथांग लक्ष्मीधरेहिँ ।
घत्ता । उदयगिरिहिँ जनु अस्तगिरि गउ, सूरबिंब-कर-मंडियऊ ।
स्वयं मृतहि हनंतहु दशमुखहु, मंडउरस्थल खंडियऊ ।।२२।।

—रामायण ७५।२२

६. विजय

(१) विजयिनी (राम) सेनाका लंकामें प्रवेश

पइसंते वल-नारायणेहि । व्यवचालिय नागरिका-ननेहि ।
ऐँहु सुंदरि ! सौख्य-उपायनहू । अभिराम राम रामायणहू ।
एँहु लक्ष्मण लक्षण-लक्ष-धरु । जो रावण रावण प्रलय-करू ।
ऐँहु भामंडल भाभूषभुतू । वैदेहि-सहोदर जनकसुतू ।
ऐँहु किष्किधाधिप दुर्दर्शू । तारा-पति तारापति-सरिसू ।
ऐँहु अंगद जाने मनोहरिहा । केश-ग्रह किउ मंदोदरिहा ।
ऐँहु सुरवर-करि-कर-प्रवर-भुजू । नंदन-वन-मर्दन पवनसुतू ।

—रामायण ७८।६

(२) विभीषण द्वारा लंकामें रामका स्वागत—

दहि-दूबि-जल-आक्षत गहिय-करा । गा तहँ जहँ हलधर-चक्रधरा ।
आशीषेहिँ शेषहिँ प्रनमनहीँ । "जय नंद वर्ध" बद्धावनहीँ ।
ऊछाहेहिँ धवलेहिँ मंगलेहिँ । पटु पटहेँहिँ शंखेँहिँ माँदलेहिँ ।
कवि-कथनेहिँ नट-नट्टावनहीँ । गायन-वादन-फप्फावयहीँ ।
नर-नागर-ब्राह्मण घोषणहीँ । औरेँहिउ चित्त-परितोषणहीँ ।

—रामायण ७८।१२

(३) भरत द्वारा अयोध्यामें रामका स्वागत—

रामागमनेँ भरत नीसरेँऊ । हय-गज-रथ-नरेन्द्र परिचरेँऊ ।
अन्यहु तँह शत्रुहन सवाहना । स-रथ स-स्वालंकार सु-साधना ।

छत्त-विमाण-सहासइ धरियइँ। अंबरें रवि-किरणइ अंतरियइँ।
तूरइ हयइँ कोडि-परिमाणेंहिँ। दुदुहि दिण्ण गयणें गिव्वाणेंहिँ।
जणवउ णिरवसेसु संखुब्भइ। रह-गय-तुरयहिँ मग्गु ण लब्भइ।
णिवडिय एक्कमेक्क भिडमाणेहिँ। पेल्ला-वेल्लि जाय जंपाणहि।..
घत्ता। केक्कय-सुएण णमंतएण, सिरुरुहु चलणंतरें कियउ।
दीसइ विहि रत्तुप्पलहँ, णीलुप्पल-मज्झे णाइ थिअउ ॥१॥
जिह रामहों तिह णमिउ कुमारहों। अंतेउरहों पहोलिर हारहो ँ।
वलेंण वलुद्धरेण हक्कारेंवि। सरहस णिय-भुय-दंड पसारेंवि।
अवरुंडिउ मायरु वहु-वारउ। मत्थएँ चुंविउ पुणु सयवारउ।
सय-वारउ उच्छंगें चडाविउ। सय-वारउ भिच्चुहु दरिसाविउ।
सय-वारउ दिण्णउ आसीसउ। वरिस सरिस हरिसंसु विमीसउ ॥

—रामायण ७९।१-२

जयजयकारु करंतेंहि लोएँहिँ। मंगल-धवलु-'च्छाह पऊएँहिँ।
अइहव सेसासीस सहासेहिँ। तारय-णिवह-छडा-विण्णासेहिँ।
दहि-दोबा-दप्पण-जल-कलसेंहिँ। मोत्तिय-रंगावलि णव-कणिसेंहिँ।
बंभण-वयणु'ग्घोसिय वेएँहिँ। कंडिअ जज्जरिव्व' सम-भेएहिँ।
णड-कइ-कहय छत्त-फंफावेंहि। लक्खिय तारारोंहणु विहावेंहि।
भट्टेंहिँ वयणु'च्छाह पढंतेंहि। वायाली स-विसर सुमरंतेंहि।
मल्ल-प्फोडण-सरेंहि विचित्तेंहि। इंदयाल-उप्पाइय चित्तेंहिँ।
मंद फंद वंदेंहिँ कुदंतेंहि। डोम्वेंहि बंसारोंहण करंतेंहि।
घत्ता। पुरें पइसंतहों राहवहों, णट्ट-कला-विण्णाणइ केवलइँ।
दुंदुहि ताडिय सुरेंहि णहों, अच्छरेहि'मि गीयइ मंगलइँ ॥४॥

—रामायण ७९।४

(४) शत्रु-वीरकी प्रशंसा

वीर रावण—

सयल सुरासुर दिण्ण पसंसहों। अज्ज अमंगलु रक्खस-वंसहों।
खल-खुद्दहुँ पिसुणहुँ दुवियड्ढहु। अज्ज मणोरह सुरवर सड्ढहु।

छत्र-विमान-सहस्रै धरिया । अंबरें रविकिरणहॅ अन्तरिया ।
तूर्य हनैं (हिं)कोटि परिमाणा । दुंदुभि दियेंउ गगनें गीर्वाणा ।
जनपद निर्विशेष संक्षुब्धा । रथ-गज-तुरगहिं मार्ग न लब्धा ।
निपतेंउ एकमेक भिडमाना । पेलापेलि जायें झम्पाणा ।
घत्ता । केकयि-सुतहिं नमंतएहिं, शिररुह चरणंतरें कियउ ।
दीसै विधि-रक्तोत्पलहॅं, न्याइँ नीलोत्पल माँझे ठियउ ॥१॥
जिमि रामहॅं तिमि नमेंउ कुमारहु । अंतःपुरहु प्रभोलिर हारहु ।
वलेंहि वलुद्धरेहिँ हक्कारिय । स-रभस निज-भुजदंड पसारिय ।
अवलिंगिउ माता वहु वारा । माथे चुवेंउ पुनि शतवारा ।
शतवारउ उत्संगें चढाइउ । शतवारउ भृत्यहॅं दरसाइउ ।
शतवारउ दीनेंउ आशीषा । वरिस-सरिस हरि सं सुविभीषा ।

—रामायण ७९।१-२

जयजयकार करंतेहिं लोगेंहिं । मंगल-धवल-उछाह प्रयोगेंहिं ।
अतिभव शेषाशीष-सहस्रेंहिं । तारक-निवह-छटा-विन्यासेंहिं ।
दधि-दूर्वा-दर्पण-जलकलशेंहिं । मौक्तिक रंगावलि नवमँजरिहिँ ।
ब्राह्मण-वदन-उद्घोषिय वेदहिँ । कंडिक चर्चरि इव समभेदहिँ ।
नट-कवि कथैं छत्र फहरावैं । लखियत तारारुहण विभावेंहिं ।
भाँटेंहिं वचन-उछाह पढंतेंहिँ । वैतालिक विसार सुमरंतेंहिं ।
मल्लस्फोटन-शरेहिँ विचित्रेंहिँ । इंद्रजाल-उत्पादित चित्तेंहिँ ।
मंद फंद वंदेंहि कूदंतेंहि । डोमेंहिँ वंशारोह करंतेंहि ।
घत्ता । पुरि पइसंतहॅं राघवहॅं, नाटचकला विज्ञानइँ केंवलइँ ।
दुंदुभि ताडित सुरेंहिँ नभहु, अप्सरेहि उ गाइय मंगलाइँ ।

—रामायण ७९।४

(४) शत्रु-वीरकी प्रशंसा

वीर रावण—

सकल-सुरासुर दीनु प्रशंहि । आज अमंगल राक्षस-वंशहिँ ।
खल-क्षुद्रहु पिशुनहु दुर्विदग्धहु । आज मनोरथ सुरवर सिद्धहु ।

दुद्दुहीँ वज्जहु गज्जइ सायरु । अज्ज तवउ मच्छदु दिवायरु ।
अज्जु मियकु होउ पहवतउ । वाउ वाउ जगि अज्जु सइत्तउ ।
अज्ज धणउ धणरिद्धि णियच्छउ । अज्जु जलंतु जलणु जगेँ अच्छउ ।
अज्जु जमहोँ णिव्वहउ जमत्तणु । अज्जु करेउ इंदु इंदत्तणु ।
अज्जु धणहु पूरंतु मणोरह । अज्जु णिरग्गलु होंतु महागह ।
अज्जु पफुल्लउ फलउ वणासइ । अज्जु गाउ मोक्कलउ सरासइ ।
—रामायण ७६।४

जो भुवणा-हिंदोलणा, वइरि-समुद्द-विरोलणा ।
सुर-सिंधुर-कर-वंधुरा, परिअट्ठिय रणभरधुरा ॥
जे थिर थोर पलंव-पईहर । सुहि मंभीस वीस-पहरण-धर ।
जे वालत्तणेँ वालक्कीलइ । पण्णय-मुहेँहि छुहंतउ लीलइ ।
जे गंधव्व-वावि-आडंभण । सुर-सुदरि-वुह-कणय-णिरुंभण ।
जे वइ सवण-रिद्धि-विब्भाडण । तिजग-विहूसण गय-मय-साडण ।
जे जम-दंड-चंड-उद्दालण । स-वसुधर कइलासु'च्चालण ।
जे सहास-यर मडफर-भंजण । णलकुव्वर[1]-गेहिणि-मण-रंजण ।
जे अमरिंद-दप्प-ऊहट्टण । वरुण-णराहिव-वल-दल-वट्टण ।
—रामायण ७७।१०

७. विलाप

(१) नारी-विलाप

(क) अयोध्याके अन्तःपुरका लक्ष्मणके लिये

रोवंतेँहेँ दसरह-णंदणेण । धाहाविउ सव्वे परियणेण ।
दुक्खाउरु रोवइ सयलु लोउ । णं चप्पिवि चप्पेँवि भरिउ सोउ ।

[1] कुबेर (वैश्रवण)-पुत्र

दुंदुभि वाजै गरजै सागर। आज तपउ स्वच्छद दिवाकर।
आज मृगांक होउ प्रभवंता। वायू वाहु जग आज स्वतंत्रा।
आज धनप धन-ऋद्धि नियच्छउ[1]। आज ज्वलंतु ज्वलन जग अच्छउ।
आज यमहु निर्वहउ यमत्त्वा। आज करेउ इंद्र इंद्रत्वा।
आज धनहु पूरंतु मनोरथ। आज निरर्गल होतु महाग्रह।
आज प्रफुल्लउ फलउ वनस्पति। आज गाउ परिमुक्त सरस्वति।
—रामायण ७६।४

जो भुवना हिंदोलना, वैरिसमुद्र-विरोलना।
सुरसिंधुर करवंधुर, परिआ-ठिउ रणभरधुरा॥
जो थिर थोर प्रलंवपती-हर। सुखि भीडत बीस-प्रहरणधर।
जो वालत्वेहिं वालक्रीडइ। पन्नग-मुखेहिँ छवंता लीलइ।
जो गंधर्व-वापिया-गाहन। सुर-सुदरि बुधकनक निरूपण।
जो वैश्रवण-ऋद्धि-विभ्राटन। त्रिजग-विभूषण गज-मद-शाटन।
जो यमदंड-चंड-उद्दारण। स-वसुंधर कैलाश-उच्चारन।
जो सहस्रकर-गर्व-विभंजन। नलकूवर-गोहिनि-मनरंजन।
जो अमरेंद्र-दर्प-अवघट्टन। वरुण-नराधिप-वल-दल-वंटन।
—रामायण ७७।१०

७. विलाप

(१) नारी-विलाप

(क) अयोध्याके अन्तःपुरका लक्ष्मणके लिए

रोवंते दशरथ-नंदनहीँ। धाहावेउ[1] सर्व परिजनहीँ।
दुःखाकुल रोवैं सकल लोक। जनु चप्पे चप्पे भरेँउ शोक।

---

[1] देउ

रोवइ भिच्च-यणु समुद्द-हत्थु । णं कमल-संडु हिम-पवण-घत्थु ।
रोवइ अंतेउरु सोयवुण्णु । ण(म)ज्जमाणु संख-उलु चुण्णु ।
रोवइ अवरा इव रामजणणि । केक्कय दाइय तरु-मूल-खणणि ।
रोवइ सुप्पह विच्छाय जाय । रोवइ सुमित्त सोमित्ति-माय ।
हा पुत्त पुत्त ! केत्तहि गउसि । किह सत्तिएँ वच्छत्थले हउसि ।
हा पुत्त ! मरंतु म जो हउसि । दइवेण केण विच्छो इउसि ।
घत्ता । रोवतिएँ लक्खण-मायरिएँ, सयल लोउ रोवावियउ ।
कारुण्णइ कव्व कहाएँ जिह, कोव ण अंसु मुआवियउ ॥१३॥
—रामायण ६६।१३

(ख) रावण-परिजन-विलाप

घत्ता । ताव दसाणणु आहयणें पडिउ सुणेवि सदोरु[1] सणेउरु ।
धाइउ मंदोयरि-पमुह, धाहावंतु सयलु अंतेउरु ॥४॥
दुम्मणु दुक्ख-महण्णवें घित्तउ । पिउ-विऊय जालोलिय-लित्तउ ।
मोक्कल-केस विसंठुल-गत्तउ । विहडप्फडु णिवडंतु'द्धंतउ ।
उद्ध-हत्थु उद्धहावंतउ । अंसु-जलेण वसुह सिंचंतउ ।
णेउर-हार-डोर गुप्पंतउ । चंदण-छड-कद्दमें खुप्पंतउ ।
पीण-पऊहर-भारक्कंतउ । कज्जल-जल-मल मइलिज्जंतउ ।
णं कोइल-कुलु कहिमि पंयट्टउ । णं गणियारि-जूहु विच्छुट्टउ ।
णं कमिलिणि वणु थाणहो चुक्कउ । णं हंसि-उलु महासर मुक्कउ ।
कलुण-सरेण रसंत पधाइउ । णिविसें रण-धरित्ति संपाइउ ।
घत्ता । हय-गय-भड-रुहिरारुणिय, समर-वसुंधर सोह ण पावइ ।
रत्तउ परिहवेवि पंगुरेवि, थिय रावणु अणुमरणें णावइ ॥५॥. . .
तहि दहवयणु दिट्ठु वहुवाहउ । कप्पतरु'व्व पलोट्टिय साहउ ।
रज्ज-गय-गलण-खंभु' च्छिण्णउ । . . . .

---

[1] कटि-आभूषण सुवर्ण डोरी

रोवै भृत्यगण उठाइ हाथ। जनु कमल-षड हिमपवन-प्राप्त।
रोवै अन्तःपुर शोकपूर्ण। जनु सज्जमान शंख-कुल-चूर्ण।
रोवै औरहिँ इव रामजननि। केकयि दापित तरुमूल-खननि।
रोवै सुप्रभ विच्छाय जाय। रोवै सुमित्राँ सौमित्र-माय।
हा पुत्र पुत्र ! कहँवा गओसि। किमि शक्तिहिँ वक्षस्थलेँ हतोसि।
हा पुत्र ! मरंत न जोयोसी। दैवेंहिँ किमि विच्छोहेओसी।
घत्ता। रोवंती लक्ष्मण-महतारी, सकल लोक रोवावियऊ।
कारुण्यइ काव्यकथाइ जिमि, को ना अश्रु मुचावियऊ ॥१३॥

—रामायण ६९।१३

(ख) रावण-परिजन-विलाप

घत्ता। तब्ब दशानन आहवेँ पडेँउ, सुनिय स-डोर स-नूपुर।
धाइउ मंदोदरिप्रमुखा, धाहावंत सकल-अंतःपुर ॥४॥
दुर्मन दुःख महार्णव क्षिप्तउ। प्रिय-वियोग-ज्वालोलिय-लिप्तउ।
मुक्तहु केश विसंस्थुल[1]-गात्रउ। हडवडंत निपतंत उद्भ्रांतउ।
ऊर्ध्वहस्त उद्-धाहावंतउ[2]। अश्रुजलेँहिँ वसुधा सिंचतउ।
नूपुर-हार डोर गोप्यतउ। चंदन-छट-कर्दम मेटंतउ।
पीन-पयोधर-भाराक्रान्तउ। कज्जल-जल-मल मइलिज्जंतउ।
जनु कोकिल-कुल कथा-प्रवृत्तउ। जनु गजियार-यूथ-विच्छुट्टउ।
जनु कमलिनि-वन थानहँ चूकउ। जनु हंसीकुल महसर मुंचउ।
करुण-स्वरेहिँ रसंत प्रधायेँउ। निमिषेँ रणधरित्रि संप्रापेँउ।
घत्ता। हय-गज-भट-रुधिरारुणित, समर-वसुधर सोइ न पावै।
रक्तउ परिभवेहु अंकुरेँउ, ठिउ रावण अनुमरणेँ न आवै ॥५॥ . . .
तहँ दशवदन दीस वहुवाँहा। कलपतरू इव लोटिय शाखा।
राज्यगज-ग्लान-खंभ[3]च्छिन्नउ। . . . .

---

[1] अस्तव्यस्त [2] धाड मारतीं [3] हाथी बांधने का खंभा

घत्ता। दह दियहाइं स-रत्तियइँ, ज़ जुज्झतु ण णिद्दएँ मुत्तउ ।
तेण चक्कु सेज्जहि चडेँवि, रण-वहुअएँ समाणु ण सुत्तउ ॥६॥...
घत्ता। णिएँवि अवत्थ दसाणणहों, हा हा सामि भणंतु सवेयणु ।
अंतेउरु मुच्छाविहलु, णिवडिउ महिहि झत्ति णिच्चेयणु ॥७॥

(ग) मंदोदरि-विलाप—

नारा-चक्कु'व थाणहों चुक्कउ । 'दुक्खु दुक्खु' मुच्छएँ आमुक्कउ ।
लग्ग रुएँव्वएँ तहि मंदोयरि । उव्वसि-रंभ-तिलोतिम-सुदरि ।
चंदवयण-सिरिकं-तणुद्ध(द्द?)रि । कमलाणण-गंधारि'व सुदरि ।
मालइ-चंपय-माल-मणोहरि । जय-सिरि-चंदण-लेह-तणूध(द?)रि ।
लच्छि-वसंत-लेह्-मिग-लोयण । जोयण-गंध गोरि-गोरोयण ।
रयणावलि मयणावलि सुप्पह । काम-लेह काम-लय सइंपह ।
सुहय वसत-तिलय मलयावइ । कुंकुम-लेह-पउम-पउमावइ ।
उप्पल-माल-गुणावलि णिरुवम । कित्ति-बुद्धि-जय-लच्छि-मणोरम ।
घत्ता। आएहिँ सोआरियहि, अट्ठारह हि'व जुवइ-सहासेँहि ।
णव-घण-मालाडंवरेँहिँ, छाइउ विज्जु[1] जेम चउपासेँहि ॥८॥
रोवइ लंकापुर-परमेसरि । हा रावण ! तिहुयण-जण-केसरि ।
पइ विणु समर तूरु-कहों वज्जइ । पइ विणु बालकील कहों छज्जइ ।
पइ विणु णवगह-एक्कीकरणउ । को परिहेसइ कंठाहरणउ ।
पइ विणु को विज्जा आराहइ । पइँ विणु चंद-हासु को साहइ ।
को गंधव्व-वापि आडोहइ । कण्णहों छवि-सहासु संखोहइ ।
पइ विणु को कुवेरु भंजेसइ । तिजग-विहुसणु कहों वसेँ होसइ ।
पइ विणु को जमु विणिवारेसइ । को कइलासु'द्धरणु करेसइ ।
सहस-किरणु णलकुव्वर-सक्कहु । को अरि होसइ ससि-वरुणक्कहु ।
को णिहाण रयणइ पालेसइ । को वहुरूविणि विज्जाॅ लएँसइ ।

---

[1] विच्छु(?)

घत्ता। दश दिवसाइँ स-रात्रियहिं, जनु युध्यंत न निद्रा प्राप्तउ।
सो चक्र-शय्यहिँ चढिया, रण-वधुयेहिँ सँग सुत्तउ ॥६॥
घत्ता। पेखि अवस्थ दशाननहोँ "हा हा स्वामि" भनत मवेदन।
अंतःपुर मूर्छाविकल, निपतेउ महिहिँ झट्ट निश्चेतन ॥७॥

(ग) मंदोदरि-विलाप—

तार-चक्र इव थानहिँ चूकउ। दुःख दुःख मूर्छहिँ आमुचउ।
लागु रोइबा तहँ मन्दोदरि। उर्ब्बशि-रंभ-तिलोत्तम-सुंदरि।
चंद्रवदनि श्रीकांत तनूदरी। कमलानन गंधारिं 'व सुंदरी।
मालति-चंपक-माल-मनोहरी। जयश्री-चंदन-लेख तनूदरी।
लक्ष्मि-वसंत-लेख मृगलोचन। योजन-गंधाँ गोरि गोरोचन।
रतनावलि मदनावलि सुप्रभ। कामलेख कमलता स्वयंप्रभ।
सुखद-वसंत-तिलक मलयावति। कुंकुम-लेख पद्म-पद्मावति।
उत्पल-माल-गुणावलि निरुपम। कीर्त्ति बुद्धि जय लक्ष्मि मनोरम।
घत्ता। आएँहि शोकार्त्तेहिँ, अट्ठारहहिँ वरयुवति-सहस्रेँहिँ।
नव घनमालाडंबरेहिँ, छाइ विज्जु जेम चौपासेँहिँ ॥८॥
रोवै लंकापुर-परमेश्वरि। "हा रावण! त्रिभुवन-जन-केसरि।
तुम विनु समर-तूर्य कहँ वाजै। तुम विनु वालक्रीड कहँ छाजै।
तुम विनु नवग्रह एकीकरणउ। को पहिरावै कंठाभरणउ।
तुम विनु को विद्या[1] आराधै। तुम विनु चंद्रहास[2] को साधै।
को गंधर्व-वापि आडोभै। कर्णहु छवि-सहस्र संखोभै।
तुम विनु को कुवेर भजीहै। त्रिजगविभूष केहि वश होइहै।
तुम विनु को यम विनिवारीहै। को कैलाशोद्धरण करीहै।
सहसकिरण-नलकूवर-शक्रहु। को अरि होइहै शशि-वरुणउ कहँ।
को निधान रतनहि पालीहै। को वहुरूपिन विद्या लीहै।

---

[1] मंत्रशक्ति [2] तलवार

घत्ता । सामिय पइँ भविएण विणु, पुप्फविमाणे चडेँवि गुरुभत्तिएँ ।
मेरु-सिहरेँ जिण-मंदिरइँ, को मइ णेसइ वंदण-हत्तिए ।।९।।

पुणुवि पुणुवि गयणंगण-गोयरि । कलुणाकंदु करइ मंदोयरि ।
· णंदण-वणेँ दिज्जंति मणोहरि । सुमरमि पारियाय-तरु-मंजरि ।

बुंड्डुण वाविहेँ थण-परिवट्टणु । सुमरमि ईसि ईसि अवरुंडणु ।
सयण-भवणेँ णहणियर-वियारणु । सुमरमि लीला-पंकय-ताडणु ।

पणय-रोस-समए मएँ बंधणु । सुमरिम रसणा-दाम-णिबंधणु ।
सुमरमि दिज्जमाण दणु-दावणि । धरणेंदहोँ केरउ चूडामणि ।

सुमरमि सामि कुमारहोँ केरउ । वरहिण पेहुण कण्णेँ ऊरउ ।
.सुमरमि सुर-करि-मय-मलु सामलु । हारेँठविज्जमाणु मुत्ताहलु ।

घत्ता । सुमरमि सइ सुरयारुहणु, णेउर-वर-झंकार-विलासु ।
तोइ महारउ वज्जमउ, हिअउ ण वेदलु होइ णिरासु ।।१०।।

पुणुवि पुणुवि मंदोयरि जंपइ । उट्ठेँ भडारा कित्तिउ सुप्पइ ।
जइ'वि णिरारिउ णिद्दएँ भुत्तउ । तो'वि ण सोहहि महियलेँ सुत्तउ ।

सामिय ! को अवराहु महारउ । सीयहेँ दूई गय-सय-वारउ ।
तँहि अकारणिज्जेँ आरुड्ढउ । जेण परिट्ठिउ पाराउट्ठउ ।

तहिँ अवसरेँ पिउ पेँक्खेवि धाइउ । कावि करेइ अलीअइ-साइउ ।
आलिंगेवि ण सव्वायामेँ । कावि णिबंधइ रसणा दामेँ ।

कावि वरंसुएण कवि हारेँ । कावि सुअंध-कुसुम-पब्भारेँ ।
कवि उरेँ ताडिवि लीला-कमलेँ । पभणइ मउलिएण मुहकमलेँ ।

—रामायण ७६।४-११

(२) बंधु-विलाप

(क) राम-वनवासपर दशरथका विलाप

केणवि कहिउ ताम भरहेसहोँ । गय सोमित्ति राम वण-वासहोँ ।
तं णिसुणेवि वयणु धुयवाहउ । पडिउ महीहरो'व्व वज्जाहउ ।

घत्ता । स्वामी ! तुमहि भये विनु, पुष्पविमान चढबि गुरु-भक्तिय ।
मेरु शिखरें जिनमंदिरैं, को मोहिं लेइसै बंदन हाथिय" ॥९॥

पुनि पुनि गगनंगण-गोचरी । करुणाक्रंदन कर मंदोदरी ।
"नंदनवनें दीयंत मनोहरि । सुमिरौं पारियात्र-तरु-मजरि ।
डुब्बन-वापिहिं स्तन-परिवर्त्तन । सुमिरौं तनिक तनिक आलिगन ।
शयन-भवनें नख-निकर-विदारन । सुमिरौं लीलापंकज-ताडन ।
प्रणय-रोष-समये मम बंधन । सुमिरौं रसनादाम-निबंधन ।
सुमिरौं दीयमान दनु-दानव । धरणीद्रहु केरहु चूडामणि ।
सुमिरौं स्वामि-कुमारहु केरउ । वर्हिन पिच्छहु कर्णपूरउ ।
सुमिरौं सुर-करि-मदमल श्यामल । हारें ठपीयमान मुक्ताफल ।

घत्ता । सुमिरौं सकृत-सुरत-आरोहण, नूपुर-वरझंकार-विलास ।
तौंउ हमारौ वज्र-मय, हृदय न दो-दल होइ निराश" ॥१०॥

पुनिहु पुनिहु मंदोदरि जल्पै । "उठु भट्टारक केतक सुत्तै ।
यदिउ अवश्यहि निद्रा भुक्तउ । तऊ न सोहै महितल-सुत्तउ ।
स्वामी ! को अपराध हमारउ । सीतहिं दूति गई शतवारउ ।
तहँ अकारणीय आरूढउ । जातें परि-स्थित-पारा-उढ्ढउ" ।
तेंहि अवसरें प्रिय पेखब धाइउ । कोइ करेइ अलीकै साइउ ।
आलिंगेबि न सर्वायामे । कोइ निबंधै रसना-दामे ।
कोइ वरंशुकेहिं कोइ हारें । कोंइ सुगंध कुसुम-प्राग्भारें ।
कोइ उर ताडबि लीलाकमलेहिं । अभनै मुकुलितेहिं मुखकमलेहिं ।

—रामायण ७६।४-११

(२) बंधु-विलाप

(क) राम-वनवासपर दशरथका विलाप

काहुहिं कहेउ तबहिं दशरथ सहँ । गयें सौमित्रि राम वनवासहँ ।
सो सुनि केहिं वदन कँपवाँहिउ । पडेंउ महीधर इव वज्राहतु ।

घत्ता। जं मुच्छाविउ राउ, सयलु'वि जणु मुह-कायरु।
पलयाणिल-सतत्तु, रसेवि लग्गु ण सायरु ॥६॥
चंदणेण पव्वालिज्जतउ। चमरुक्खेविहिँ विज्जिज्जंतउ।
"दुक्खु दुक्खु" आसासिउ राणउँ। जरठ-मियंकु'व थिउ उद्धाणउ।
अविरल अंसु-जलोल्लिय-णयणउँ। एम पजंपिउ गग्गिर-वयणउ।
णिवडिय असणि अज्ज आयासहोँ। अज्ज अमगलु दसरह-वंसहोँ।
अज्ज जाउँ हउँ सूडिय-वक्खउ। दुह भायणु पर-मुँह हउँ वेक्खउ।
अज्ज णयरु सिय-सपय-मेँल्लिउ। अज्जु रज्जु परचक्कें पेल्लिउ।
एव पलाउ करोवि सहग्गएँ। राहव-जणणिएँ गउऊ लग्गएँ।
केस-विसंठुल दिट्ठ रुअंती। अंसु-पवाह धाह मेल्लंती।
——रामायण २४।६-७

(ख) लक्ष्मणके लिये रामका विलाप

घत्ता। सोमित्ति-सोय-परिमाणेण, रहुवइ-णंदणु मुच्छिअउ।
जलु चंदणु चमरुक्खेवएँहिँ, दुक्खु दुक्खु उम्मुच्छिअउ ॥२॥
हा लक्खण-कुमार ! एक्कोयर[1]। हा भद्दिय उविंद दामोदर।
हा माहव ! महुमह महुसूयण। हा हरि-कण्ह-विण्हु-णारायण।
हा केसव ! अनंत-लच्छी-हर। हा गोविंद ! जणद्दण-महिहर !
हा गंभीर-महाणइ-थंभण। हा सीहोयर-दप्पणिसुंभण।....
हा हा रुद्द-भुत्ति-विणिवारण। हा हा वालिखिल्ल-संहारण !
हा हा कविल-मरट्ट-विमद्दण। हा वणमाली-णयणाणंदण।
हा अरि-दमण ! मडप्फर-भंजण। हा जिय-पोम सोम-मण-रंजण।
हा महरिसि-उवसग्ग-विणासण। हा आरण्ण-हत्थि-संतावण !
हा करवाल-रयण-उद्दालण ! संव-कुमार-विलास-णिहालण !
हा खर-दूसण-वलमुसुमूरण ! हा सुग्गीव-मणोरह-पूरण !
हा हा कोडिसिला-संचालण ! हा हा मयर-हरो उत्तारण !

---

[1] **सहोदर, भाई**

घत्ता। जो मूर्छियेँउ राव, सकलहु जन मुँह-कातर।
प्रलयानल-संतप्त, बोँलन लागु जनु सागर ।।६।।
चंदनेहिँ लेप्पाइज्जंतउ। चमर्-उत्क्षेपेहिँ बीजायंतउ।
"दुःख दुःख" आश्वासै राणा। जरठ मृगांकि 'व ठिउ उद्धाना।
अविरल-अश्रु-जलोलित-नयना। इमि प्रजल्पेउ गद्गद-वयना।
"निपतिय अशनि आज आकाशहँ। आज अमंगल दशरथ-वंशहँ।
आज जाउँ हौँ पीटिय वक्षहु। दोँउ भाइन परमुँह हौँ पेखउँ।
आज नगर सिय-संपति मेलेँउ[1]। आज राज्य परचक्रेँ पेलेँउ"।
इमि प्रलाप करेब सहाग्रइ। राघव-जननिएँ आयउ लग्गेँइ।
केश-विसंस्थुल दीस रोँवंती। अश्रुप्रवाह धाह मेलंती[2]।
—रामायण २४।६-७

(ख) लक्ष्मणके लिए रामका विलाप

घत्ता। सौमित्र शोकपरितापेँहिँ, रघुपतिनंदन मूर्छियउ।
जल-चंदन-चमर डुलावनहूँ, दुःख-दुःखउ मूर्छियउ ।।२।।
"हा लक्ष्मण कुमार एकोदर ! हा भद्रिय उपेन्द्र दामोदर !
हा माधव मधुमथ मधुसूदन ! हा हरि कृष्ण विष्णु नारायण !
हा केशव अनंत लक्ष्मीधर ! हा गोविंद जनार्दन महिधर !
हा गंभीर-महानदि-रुंधन ! हा सिंहोदर-दर्प-निनाशन !
हा हा रुद्र भुक्ति विनिवारण ! हा हा वालिखिल्य-संहारण !
हा हा कपिल-(कु)दर्प-विमर्दन ! हा वनमाली नयनानंदन !
हा अरिदमन-गर्व-वी-भंजन ! हा जितपद्म सोम-मन-रंजन !
हा महाँ ऋषि-उपसर्ग विनाशन ! हा आरण्य-हस्ति-संतापन !
हा करवाल-रतन-उद्दारण ! शांवकुमार-विलास-निहारण !
हा खर-दूषण-बल-मुसमूरण ! हा सुग्रीव-मनोरथ-पूरण !
हा हा कोटिशिला-संचालन ! हा हा मकरधरो उत्तारन !

---

[1] त्यागेउ [2] शत्रु शासन

घत्ता । कहि तुहुँ कहि हउँ कह पिअय, कहि जणेरि कहि जणणु गउ ।
हय-विहि विछोउ करेप्पिणु, कवण मणोरह पुण्ण तउ ।।३।।

हरि-गुण संभरंतु विद्दाणउ । रुवइ स-दुक्खउ राहव-राणउ ।
वरि पहिरउँ पर-णरवर-चक्कएँ । वरि खय-कालु ढुक्कु अत्थक्कएँ ।
वरि तं कालकुट्टु विसु भक्खिउ । वरि जम-सासणु णयण-कडक्खिउ ।
वरि असिपंजरे थिउ थोवंतरु । वरि सेविउ कियत-दंततरु ।
झंप दिण्ण वरि जलण जलंतएँ । वरि वगला-मुहे भमिउ भमंतएँ ।
वरि वज्जासणे सिरेण पडिच्छिय । वरि ढुक्कंति भवित्ति-समिच्छिय ।
वरि विसहिउँ जम-महिस-फडिक्किउ । भीसण-काल-दिट्ठि अहिडंकिउँ ।
वरि विसहिउ केसरि णह-पंजरु । वरि[1] जोयउ कलि-कालु सणिच्छरु ।

घत्ता । वरि दंति-दंते मुसलग्गेंहि, विणिभिंदाविउ अप्पणउ ।
वरि णरय-दुक्खु आयामिउ, णउ विऊउ भाइहिँ तणउ ।।४।।

—रामायण ६७।२-४

(ग) आहत लक्ष्मणके लिये भरतका विलाप

हँउ भामंडलु[2] हणुवंत एहु । एँहु अंगद रहसुच्छलिय देहु ।
तिण्णिवि आइय कज्जेण जेण । सुणु अक्खमि किं वहु वित्थरेण ।
सीयहि कारणें रोसिय-मणाहँ । रणु वट्टइ राहव-रावणाहँ ।
लक्खणु सत्तिएँ विणिभिण्णु तत्थु । दुक्करु जीवइ तें आय इत्थु ।
तं वयणु सुणिवि परियालयेलु । णं कुलिस-समाहउ पडिउ सेलु ।
णं चवण-काले सग्गहों सुरेंदु । उम्मुच्छिउ कहवि कहवि णरेंदु ।
दुक्खा उरु धाहा वणह लग्गु । पुण्णक्खइ हरि'व मुयंतु सग्गु ।

घत्ता । हा पइ सोमित्ति ! मरंतएण, मरइ णिरुत्तउ दासरहि ।
भत्तार-विहूणिय णारि जिह, अज्जु अणाहीहूय महि ।।१०।।

---

[1] वलि [2] सीताका भाई

घत्ता । कहँ तुहुँ कहिहौं का पियहिँ, कहँ जनेरि कहँ जनक गउ ।
हत-विधि ! विछोह कराइय, कवन मनोरथ पूर्ण तव" ॥३॥

हरि-गुण संवदंत विद्राणउ । रोँवइ सदुःखउ राघव-राणउ ।
वरु प्रहरौ पर-नरवर-चक्रउ[1] । वरु क्षयकाल ढुक्कु अत्थक्कउ ।
वरु सो कालकूट विष भक्षिउ । वरु यमशासन-नयनकटाक्षउ ।
वरु असिपंजरेँ ठिउ थोडंतर । वरु सेउव कृतांत-दंतान्तर ।
झंप देँउब वरु ज्वलन जलंते । वरु वगलामुखेँ भ्रमिव भ्रमंते ।
वरु वज्रासनेँ शिरेँहिँ प्रतीच्छिब । वरु ढुक्कंत भवित्रि समीच्छिब ।
वरु विसहब यम-महिष-झड़क्कउ । भीषण-काल-दृष्टि अभिडकउ ।
वरु विसहब केसरि-नख पंजर । वरु जोयब कलिकाल-शनिश्चर ।
घत्ता । वरु दंतिदंतेँ मुसलग्रेँहि. विनि-भिदाविउ आपनहुँ ।
वरु नरक-दुःख आगामिउ, नहिँ वियोग भाइहिँतनउ ॥४॥

—रामायण ६७।२-४

(ग) आहत लक्ष्मणके लिये भरतका विलाप

हौँ भामंडल हनुमंत एहु । एहु अंगद रभसोच्छलिय-देह ।
तीनहुँ आयउँ कार्येहिँ जेहि । सुनु भाखौँ का वहु विस्तरेहि ।
सीतहिँ कारणेँ रोषितमनाहँ । रण चल्लै राघव-रावणाहँ ।
लक्ष्मण शक्तिहिं विनि-भिन्नु तत्र । दुष्कर जीवै सो आय अत्र" ।
सो वचन सुनिय परिपातयेल । जनु कुलिश-समाहत पडेउ शैल ।
जनु च्यवन-काल स्वर्गहँ सुरेन्द्र । उन्मूर्छिउ कहब कहब नरेन्द्र ।
दुःखाकुल धाहा वनह लग्ग । पुण्य-क्षय हरि इव मरत सर्ग ।
घत्ता । हा तव सौमित्रि ! मरंतई, मरै अवश्यहिँ दाशरथी ।
भर्त्तार-विहूनी नारि जिमि, आज अनाथा भइ मही ॥१०॥

---

[1] शत्रुराज शासन

हा भायर ! एँक्कसि देहि वाय । हा पइ विणु जइसिरि-विहव जाय ।
हा भायर ! महु सिरि पडिय गयणु । हा हियउ फुट्टु दक्खहि वयणु ।
हा भायर ! महुयर-महुर-वाणि । महु णिवडिऊ-सि दाहिणउ पाणि ।
हा ! कि समुद्दु जल-णिवहु खुट्टु । हा ! किह दिढु कुम्भकडाहु फुट्टु ।
हा ! किह सुरवइ[1] लच्छिएँ विमुक्कु । हा ! किह जमरायहों मरणु ढुक्कु ।
हा ! किह दिणयरु कर-णियरु चत्तु । हा ! किह अणगु दोहग्गु पत्तु ।
हा ! चंचल हूयउ केम मेरु । हा ! केम जाउ णिद्धणु कुबेरु ।

घत्ता । हा ! णिव्विसु किह धरणेंदु[2] थिउ, णिप्पहु ससि-सिहि-सीयलउ ।
टलटलि हूई केम महि, केम समीरणु णिब्बलउ ॥११॥

लब्भइ रयणायरें रयण-खाणि । लब्भइ कोइल-कुलें महुर-वाणि ।
लब्भइ चंदणु-सिरि मलय-सिंगें । लब्भइ सुहवत्तणु जुवइ-अंगें ।
लब्भइ धणुधणएँ धरापवण्णु । लब्भइ कंचणें परवएँ सवण्णु ।
लब्भइ पेसें ण सामिएँ पसाउ । लब्भइ किएँ-विणएँ जणाणुराउ ।
लब्भइ सज्जणें गुण दाणें कित्ति । सिय असिवरें गुरु-उलें परम-तित्ति ।
लब्भइ वसियरणें कलत्त-रयणु । महकव्वें सुहासिउ सुकइ-वयणु ।
लब्भइउ वयार-मइहि सुमित्तु । मद्दवें हि विलासिणि चारु चित्तु ।
लब्भइ परतीरि महग्घु भंडु । वरवेणु-मूलें वेलुज्ज-खंडु[3] ।

घत्ता । गय- मोत्तिउ सिंघलदीवें मणि, वइरागरहो वज्ज पउरु ।
आयइ सव्वइ लब्भंति जइ, णवर ण लब्भइ भाइवरु ॥१२॥

—रामायण ६९।१०-१२

(घ) कुंभकर्णके लिये रावणका विलाप

तं णिसुणेवि दसाणण हल्लिउ । णं वच्छत्थलें सूलें सल्लिउ ।
थिउ हेट्ठामुँहु रावण-राणउ । हिम-हय-सयवत्तु'व विद्दाणउ ।
रुवइ सदुक्खउ गग्गर-वयणउ । वाह भरंतु णिरंतर वयणउ ।
हा हा कुंभयण्ण ! एक्कोयर । हा हा मय-मारिच्च-सहोयर ।

---

[1] इन्द्र [2] शेषनाग [3] हरितकांति वैडूर्यमणिका टुकड़ा

हा भायर ! एकहि देँहि वाच । हा तैँ विनु जयश्री विभव जाय ।
हा भ्रातर ! मम श्री पडिय गगन । हा हियहु फूटु डाहै वदन ।
हा भायर ! मधुकर मधुर-वाणि । मम निपतेँउ तुम दाहिनउ पाणि ।
हा ! का समुद्र-जल-निवह खट्ट । हा ! का दृढ कुंभकडाह फुट्ट ।
हा ! किमु सुरपति लक्ष्मियेहि मुञ्चु । हा ! किमु यमराजहँ मरन ढुक्कु ।
हा ! किमु दिनकर-कर-निकर-त्यक्त । हा ! किमु अनंग दौर्भाग्य-प्राप्त ।
हा ! चंचल होयउ केम मेरु । हा ! केम वनेँउ निर्धन कुवेरु ।
घत्ता । हा ! निर्विष किमु धरणींद्र ठिउ, निंष्प्रभ शशि शिखि शीतलउ ।
टलटलि हूइ केम महि, केम समीरण निर्बलउ ॥११॥
लब्भै रतनाकरेँ रतनखानि । लब्भै कोकिल-कुलेँ मधुरवाणि ।
लब्भै चंदन श्रीमलयश्रृंगेँ । लब्भै सुखवत्त्वउ युवति-अंगेँ ।
लब्भै धन-धान्य-धरा प्रपन्न । लब्भै कंचन-पर्वतेँ सुवर्ण ।
लब्भै दासेहिँ[1] स्वामिय प्रसाद । लब्भै कृतविनये जन'नुराग ।
लब्भै सज्जनेँ गुण, दानेँ कीर्त्ति । सित असिवरेँ, गुरुकुलेँ परम तृप्ति ।
लब्भै वशिकरणेँ कलत्र-रतन । महकव्येँ सुभाषित सुकवि-वचन ।
लब्भै उपकार-मइहि सुमित्त । मार्दवेँहिँ विलासिनि चारुचित्त ।
लब्भै परतीरेँ महार्घ भांड । वर-वेणु-मूलेँ वेलुज्ज[2]-खंड ।
घत्ता । गजमोतिउ सिंहलद्वीपेँ मणि, वैरागरहु वज्र ।
आगतेँ सर्वइ लब्भंति यदि, पर नहिँ लब्भै भाइवरु" ॥१२॥
—रामायण ६९।१०-१२

(घ) कुंभकर्णके लिये रावणका विलाप

सो सुनिय दशानन हिल्लेउ । जनु वक्षस्थल मूलेहि सालेउ ।
ठिउ हेट्ठामुँह रावण राणा । हिम-हत-शतपत्रि 'व विद्राणा ।
रोव सदुःखउ गद्गद-वदना । वाह भरंत निरंतर वचना ।
"हा हा कुंभकर्ण एकोदर ! हा हा मम मारीच-सहोदर !

---

[1] **पेस=प्रेष्य (दूत, संदेशवाहक)** [2] **वंश-रत्न**

हा इंदइ हा तोयदवाहण । हा जमहंट अणिद्विय-साहण[1] ।
हा केसरि-णियंव-दणु-दारण । जंबुमालि हा सुअ हा सारण ।
दुक्खु दुक्खु पुणु मणु विणिवारिउ । सोय-समुद्दहों अप्प उतारिउ ।
—रामायण ६७।६

(ङ) रावणके लिये विभीषणका विलाप

अप्पणु हणइ विहीसणु जावेंहिं । मुच्छइँ णाइ णिवारिउ तावेंहिं ।
णिवडिउ धरणि वट्टि णिव्वेयणु । दुक्खु समुट्ठिउ पसरिय वेयणु ।
चरण धरेवि रोएँवएँ लग्गउ । हा भायर महँ मुएँवि कहिं गउ ।
हा हा भायर ! ण किउ णिवारिउ । जण-विरुद्धु ववहरिउ णिरारिउ[2] ।
हा भायर ! सरीरें सुकुमारएँ । केम विआरिउ चक्कएँ धारएँ ।
हा भायर ! दुण्णिद्दएँ मुत्तउ । सिज्जें मुएँवि किं महियलें सुत्तउ ।
घत्ता । किं अवहेरि करेवि थिउ , सीसें चडाविय चलण तुहारा ।
अच्छमि सुट्ठुम्माहियउ, हिअउ फुट्ट आलिंगि भडारा ।।२।।
रुअइ विहीसणु सोयक्कमियउ । तुहु ण'त्थमिउ वंसु अत्थमियउ ।
तुहु ण जिऊसि सयलु जिउ तिहुयणु । तुहु ण मुऊसि मुयउ वंदिज्जणु ।
तुहु पडिऊसि ण पडिउ पुरंदरु । मउडु ण भग्गु भग्गु गिरि-कंदरु ।
दिट्ठि ण णट्ठ णट्ठ लंकाउरि । वयण ण णट्ठ णट्ठ मंदोयरि ।
हारु ण तुट्टु तुट्टु तारायणु । हियय ण भिण्णु भिण्णु गयणंगणु ।
चक्कु ण ढुक्कु ढुक्कु एक्कंतरु । आउ ण खुट्टु खुट्टु रयणायरु ।
जीउ ण गउ गउ आसापोट्टल । तुहु ण सुत्तु सुत्तउ महिमंडल ।
सीय ण आणिय आणिय जमउरि । हरि-वल कुद्ध कुद्ध णं केसरि ।
—रामायण ७६।२-३

---

[1] अपार रण साधन वाले　　[2] निरेही

हा इंद्रजि(त्) हा तोयदवाहन ! हा यमघंट अनिष्ठित-साधन !
हा केसरि-नितंव-दनु-दारण । जवुमालि हा शुक हा सारण" ।
"दुःख दुःख" पुनि मन विनिवारिउ । शोक-समुद्रहों आय उतारिउ ।
—रामायण ६७।६

(ङ) रावणके लिये विभीषणका विलाप

आपुहिँ हनै विभीषण जब्बे । मूर्छैं जनुक निहारिउ तब्बैं ।
निपतेँउ धरणि घूमि निर्वेदन । दुःख समुट्ठिउ पसरिउ वेदन ।
चरण धरिय रोअवै लागउ । "हा भायर ! मम मुइय कहाँ गउ ।
हा हा भायर ! न किउ निवारेँउ । जनविरुद्ध व्यवहरिउ निरारिउ ।
हा भायर ! शरीर सुकुमारा । केम विगारेउ चक्रहिँ धारा ।
हा भायर ! दुर्निद्रे मुक्तउ । शय्य मुएँउ का महितलेँ सुत्तउ ।
घत्ता । का अवहेल करेबि ठिय, सीस चढाइव चरण तुहारा ।
रहौँ सुठि उन्माथियउ हृदय फूटु आलिगु भट्टारा[1]" ॥२॥
रोँवै विभीषण शोक-क्रमियउ । तुहुं न अस्तमिउ वश'स्तमियउ ।
तुहु न जीवसि सकल जिउ त्रिभुवन । तुहुं न मुयउ मुयेँउ वँदनिय-जन ।
तुहुँ पडियेउ न पडेँउ पुरंदर । मुकुट न भगु भंगु गिरिकंदर ।
दृष्टि न नष्ट नष्ट लंकापुरि । वचन न नष्ट नष्ट मंदोदरि ।
हार न टूटु टूटु तारागण । हृदय न भिदु भिदु गगनांगण ।
चक्र न ढुक्कु[2] ढुक्कु एकतर । आयु न खुट्टु[3] खुट्ट रतनाकर ।
जीव न गउ गउ आशा-पोट्टल । तुहुँ न सुत्तु सुत्तु महिमंडल ।
सीय न आनेँउ आनेँउ यमपुरि । हरि-बल क्रुद्ध क्रुद्ध जनु केसरि ।
—रामायण ७६।२-३

---

[1] महाराजा [2] चीर कर भीतर घुसा [3] खतम हुई

८. कविका संदेश

(१) काया नरक

माणुसु देहु होइ घिणि-विट्टलु। सिरेँहि णिवद्धउ हड्डुह पोट्टलु।
चलु कुंजंतु माय-मउ कुहेँडउ। मलहोँ पुंजु किमि-कीडहु सूडउ।
पूइगंध[1] रुहिरामिस-भंडउ। चम्म-रुक्खु दुग्गंध-करंडउ।
अंतहोँ पोट्टलु पक्खिहिँ भोयणु। बाहिहि भवणु मसाणहोँ भायणु।
आयहु कलुसियऊ जहि अंगउ। कवण पएसु सरीरहोँ चंगउ।
अण्णुइ सुण्णरूव दुप्पेच्छउ। कडियलु पच्छाहर-सारिच्छउ।
जोव्वणु गंडहोँ अणुहरमाणउ। सिरु णालियर-करंक-समाणउ।

—रामायण ५४।११

एण सरीरेँ अविणय-थाणे। दिट्ठ णट्ठ जलविंदु-समाणे।
सुर-चावेण'व अथिर सहावेँ। तडि फुरणेँण'व तक्खण-भावेँ।
रंभा-गब्भेण'व णीसारेँ। पक्क-फलेण'व सउणाहारेँ।
सुण्णहरेण'व विहडिय-वंधेँ। पच्छहरेण'व अइदुग्गंधेँ।
उक्करुडेण'व कीलावासेँ। अकुलीणेण'व सुकिय-विणासे।
परिवाहेण'व किमि-कोट्ठारेँ। असुइहि भवणं भूमिहि भारेँ।
अट्ठिय-पोट्टलेण वस-कुंडे। पूय-तलाये आमिस-उंडे।
मलकूडेण रुहिर-जलघरणेँ। लसि-विवरेण पेम्म-णिज्झरणे।
कुहिय-करंडएण घिणिवतेँ। चम्ममएण इमेँण कूजंतेँ।

—रामायण ७७।४

तं चलणु जुअलु गय-मंथरउ। सउणहि खज्जंतु भयंकरउ।
तं सुरय-णियंव सुहावणउँ। किमि बुडबुडंति चिलसावणउँ।

---

[1] दुर्गंधि

८. कविका संदेश

(१) काया नरक

मानुष देह होइ घृण-विट्टल[1]। शिराइँ वाँधेउ हाडह पोट्टल।
चलु सडंत मायामय-कचरउ। मलहँ पुज कृमि-कीटहु सूडउ।
पूतिगंध रुधिरामिष-भंडा। चर्मवृक्ष दुर्गंध-करंडा।
आँतह पोटल पक्षिहिँ भोजन। काढहिँ भवन मसानेहु भायन।
आयहु कलुषीयहु जहि अंगउ। कवन प्रदेश शरीरह चंगउ।
अन्यइँ शून्य-रूप दुप्प्रेक्ष्यउ। कटितल पच्छाघर सादृश्यउ।
जोबन गंडहु[2] अनुहरमानउ। शिर नारियर-करंक-समानउ।

—रामायण ५४।११

एहि शरीरे अविनय-थाने। दृष्ट-नष्ट जलविंदु-समाने।
सुर-चापा इव अथिर-स्वभावा। तडि-स्फुरणि' इव तत्क्षण भावा।
रंभागर्भ इवा निस्सारा। पक्वफल इव शकुनाहारा।
शून्यघर इव विघटित-बधा। पच्छा घर[3] इव अतिदुर्गंधा।
कूडापुंजि' इव कीटावासा। अकुलीना इव सुकृत-विनाशा।
परिवाधा इव कृमि-कोट्ठारा। अशुची-भवना भूमिहि भारा।
अस्थिय पोट्टलका वसकुडा। पूति-तलावा आमिष-कुडा।
मल-कूटऊ रुधिर-जल छरना। लसि-विवरा पीव-निर्झरणा।
कुथित करंडा[4]ऊ घृणवंता। चर्ममया एते कूजता।

—रामायण ७७।४

सो चरण-युगल गजमंथरउ। शकुनेहिँ खाद्यंत भयंकरउ।
सो सुरत-नितंव-सोँहावनऊ। कृमि बुजबुजंति चिरसाइनऊ।

[1] गंदा विटलाहा (मल्लिका)　[2] फोड़ा　[3] पाखाना　[4] पेटी

तं णाहि-पयेसु किसोयरउ। खज्जंतमाणु थिउ भासुरउ।
तं जोव्वणु अवरुंडणमणउ। सुज्जंत नवर भीसावणउ।
तं सुंदरुवयणु जियंताहुँ। किमि कप्पिउ णवर मरंताहुँ।
तं अहर-बिंबु वण्णुज्जलउ। लुचंतु सिवेंहिं घिणि-विट्टलउ।
तं णयणु-जुअलु विब्भम-भरिउ। विच्छायउ कायहिँ कप्परिउ।
सो चिहुर-भारु कोडावणउ। उड्डंतु णवर भीसावणउ।
घत्ता। तं माणुसु तं मुह-कमलु, ते थण तं गाढालिंगणउ।
णवरि धरेविणु णा सउडु, बोलिज्जइ धिधि चिलिसावणउ ॥७॥

(२) गर्भवास दुःख

तहिँ तेहइ रस-वस-भूय-भरे। णव मास वसेंव्वउ देहघरे।
णव णाहिकमलु उत्थल्लु जहिँ। पहिलउ जें पिंडु संबंधु तहिँ।
दस-दिवसु परिट्ठिउ रुहिर-जलु। कणु जेम पईयउ धरणियलु।
विहि दस-रत्तिहि समुट्ठिअउ। णं जलें डिंडीर समुट्ठिअउ।
तिहि दस-रत्तिहिँ बुव्वुड घडिउ। णं सिसिर-विंदु कंकुम पडिउ।
दस-रत्ति चउत्थहें वित्थरिउ। णावइ पवलंकुरु णीसरिउ।
पंचमें दस-रत्ति जाउ वलिउ। णं सूरण-कंदु चउप्पलिउ।
दस-दस-रत्तेंहि कर-चरण-सिरु। वीसहि णिप्पण्णु सरीर थिरु।
णव-मासिउ देहहों णीसरिउ। वट्टंतु पडीवउ वीसरिउ।
घत्ता। जेण दुवारें आइयउ, जो तं परिहरे ण सक्कइ।
पंतिहि जुत्तु वइल्लु जिह, भव-संसारें भमंतु ण थक्कइ ॥८॥

(३) आवागमन दुःख

इउ जणेंवि धीरहि अप्पणउँ। करें कंकणु जोवहि दप्पणउ।
चउगइ[1] संसार भमंतऍण। आवंता जंत मरंतऍण।

---

[1] देव, मानुष, तिर्यक् (पशु पंछी), नरक

सो नाभिप्रदेश कृशोदरऊ। खाद्यतमान ठिउ भासुरऊ।
सो यौवन अवरुंडन[1]-मनऊ। सुज्जंत अती-भीषावणऊ।
सो सुंदर वदन जियंतेही। कृमि-काटिय तुरत मरतेही।
सो अधर-बिंब वर्णोज्वलऊ। नोचंत शिवे`हिँ[2] घृण-विट्ठलऊ।
सो नयन-युगल विभ्रमभरिऊ। विच्छायउ[3] कायहँ खप्परिऊ।
सो चिकुर-भार हर्षावणऊ। उड्डंत तुरत भीषावणऊ।

घत्ता। सो मानुष सो मुखकमल, सो स्तन सो गाढालिंगनऊ।
तुरत धरंते नासकुटू, बोलिय धिक् चिरसाइनऊ ॥७॥

(२) गर्भवास दुःख

तहँ तेहिहि रस-वस-भूत-भरे। नव मास वसेयउ देहघरे।
नव नाभिकमल उच्छल्ल जहाँ। पहिलहिहि पिंड संबंध तहाँ।
दस दिवस परिट्-ठिउ[4] रुधिर-जलू। कण जेम पडेऊ धरणितलू।
दोउ दशरात्रे`हिँ सम्-उट्ठियऊ। जनु जले`[5] डिंडीर सुमुट्ठियऊ।
ते`हिदश रात्रे बुद्बुद गडे`ऊ। जनु शिशिरबिंदु कुकुम पडे`ऊ।
दशरात्रि चउत्थेहिँ विस्तरिऊ। न्याईं प्रवलांकुर निस्सरिऊ।
पँचये` दशरात्रे जायों` वली। जनु सूरन-कंद चऊपहली।
दश दशरात्रेहिँ कर-चरण-शिरू। बीसहिँ निष्पन्न शरीर थिरू।
नवमासे देहा नीसरिऊ। वर्त्तन्त प्रतीउ वीसरिऊ।

घत्ता। जेहि दुवारे` आयऊ, जो तेहि परि-धारयउ न सक्कै।
पाँतिहि जुतो बइल्ल जिमि, भव-संसार भ्रमंत न थाकै ॥८॥

(३) आवागमन दुःख

एँहु जानबि धीरेहि आपनऊ। कर-कंकण जोवै दर्पणऊ।
चउगति संसार भ्रमंतएहि। आवंत-जांत-मरतएहिँ।

---

[1] अवरुंडन=आलिंगन [2] सियारों से [3] कुरूप [4] रहेउ [5] कमलनाल

जगेँ जीवेँ कोण रुवाविअउ । को गरुय धाह ण मुआवियउ ।
को कहिमि णाहि संताविअउ । को कहिमि ण आवइ पावियउ ।
को कहि ण ढुक्कु[1] को कहि न मुउ । को कहि ण भमिउ को कहिँ ण गउ ।
कहि णवि मोयणु कहि णवि सुरऊ । जगेँ जीवहोँ किंपि ण वाहिरऊ ।
तइलोउ विअसिउ असंतएण । महि सयल डज्भद'डूढंतएण ।

घत्ता । सायरु पीयउ पियंतएण, अँसुएँहि रुयंतेहि भरिउ ।
हड्डु-कलेवर-संचएँण, गिरि-मेरु सोवि अंतरिउ ॥६॥

अह पइ किं वहु चविएण राम । भवेँ भमिउ भयंकरेँ तुहुमि ताम ।
णडु जिहँ तिहँ वहु रूवतरेहिँ । जर-जम्मण-मरण-परंपरेहिँ ।
सा सीय'वि जो णिसएहिँ आय । तुहुँ कहिमि बप्पु सा कहिँमि माय ।
तुहु कहिमि भाउ सा कहिमि वहिणि । तुहु कहिमि दइउ सा कहिमि घरिणि ।
तुहु कहिमि णरएँ सा कहिमि सग्गेँ । तुहु कहिमि महिहिँ सा गयण-मग्गेँ ।
तुहु कहिमि णारि सा कहिमि जोहु । किं सुइणा-रिद्धिहि करहि मोहु ।
उम्मेट्टु विऊअ गइंदएसु । जगडतु भमइँ जगु णिरवसेसु ।
जइ ण धरिउ जिण-वयणंकुसेण । तो खज्जइ माणुस-माणुसेण ।

घत्ता । एम भणेप्पिणु वेवि मुणि, गय कहिमि णह-गण-पंथेँ ।
रामु परिट्ठिउ किंविणु जिह, धणु इक्कु लएवि सहत्थेँ ॥१०॥

—रामायण ३६।६-१०

(४) संसार तुच्छ

को काल-भुयंगहोँ उव्वरइ । जो जगु जेँ सव्वु उवसंहरइ ।
तहोँ जहि जहि कहिमि दिट्ठि रमइ । तहि तहि णं भइय वट्टु भमइ ।
केँवि गिलइ गिलइ केँवि उग्गिलइ । काहिमि जम्मावसाणि मिलइ ।
केँवि णरय-विलेहि पइसे विगसइ । काहिविँ अणुलग्गउ जे वसइ ।

---

[1] ढूकना=प्रवेश करना

जगे ँ जीवहि को न रोँवाइयऊ । कोँ गरुअ धाह न मुवाइयऊ ।
को काहिहिँ ना संतावियऊ । को काँहि न आवइ पाबियऊ ।
को कहँ न ढुक्कु को कहँ न मुऊ । को कहँ न भ्रमेँउ को कहँ न गऊ ।
कहँ नहिँ मोदन कह नहि सुग्तू । जगेँ जीवहँ ना किय बाहिरऊ ।
तिहु लोक विकसेँउ अशांतएहिँ । महि सकल दग्ध दड्ढंतएहि ।
घत्ता । सागर पियेउ पियतएहि, अँसुएहि रोवतेहि भरेँऊ ।
हाड-कलेवर-सचयेहि, गिरि-मेरु सोउ अंतरिऊ[१] ॥९॥

अथ तोहिँ का वहु वचनेहिँ राम ! भवेँ भ्रमिउ भयंकरेँ तुहुज नाम[२] ।
नट जहँ तहँ वहु-रूपांतरेहिँ । जर-जन्म-मरण-परंपरेहिँ ।
सो सौतउ योनिशतेहिँ आय । तुहुँ कतहुँ बाप ऊ कतहुँ माय ।
तुहुँ कतहुँ भाय ऊ कतहुँ बहिनि । तुहुँ कतहुँ दयित ऊ कतहुँ घरिनि ।
तुहुँ कतहुँ नरकेँ ऊ कतहुँ सरगेँ । तुहुँ कतहु महिहिँ ऊ गगन-मगे ।
तुहुँ कतहु नारि ऊ कतहु जोध । का स्वपन-ऋद्धिहीँ करहि मोह ।
उन्मेँठ[३]-वियुक्त गजेंद्रएस । झगडंत भ्रमैँ जगेँ निरवशेष ।
यदि न धरिय जिन-वचनांकुशहीँ । तो खाइय मानुष मानुषहीँ ।
घत्ता । इमि भनिया दोऊ मुनि, गयउ कतहुँ नभगण-पथे ।
राम वईठेउ कृपण जिमि, धनु एकलहू स्वहत्थे ॥१०॥

—रामायण ३९।९-१०

(४) संसार तुच्छ

को काल-भुजंगतेँ ऊबरई । जो जग सर्वइँ उपसंहरई ।
तहँ जहँ जहँ कतहुँ दृष्टि रमई । तहँ तहँ जनु भयावर्त्त भ्रमई ।
कोइँ गिलइ गिलइ कोइ ऊगिलई । कतहूँ जन्मावसान मिलई ।
कोइ नरक-विलेहिँ पइसै निकसै । केतहँ अनुलग्न एव बसई ।

---

[१] ढाँक दिया [२] तहाँ [३] महावत

केँवि कड्ढइ सग्गहोँ वरि चडेवि । केँवि खय होणेँइ उप्परेँ चडेवि ।
केवि धारइ थोरइ पाव विसेण । केवि भक्खइ णाणाविह्मसेँण ।
घत्ता । तहो कोवि ण चुक्कइ भुक्खियहोँ, काल-भुयंगहोँ दूसहहो ।
जिण-वयण-रसायणु लहु पियहोँ, जिं अजरामर-पउ लइहो ॥२॥
जइ काल-भुअंगु णउब डसइ । तो किं सुर-वइ सग्गहोँ खसइ ।
—रामायण ७८।२,३

विरहाणल-जाल-पलित्त-तणु । चिंतेवएँ लग्गु विसण्ण-मणु ।
सच्चउ संसारि ण अत्थि सुहु । सच्चउ गिरि-मेरु-समाण दुहु ।
सच्चउ जर-जम्मण-मरण-भउ । सच्चउ जीविउ जलबिंद-सउ ।
कहोँ घरु कहो परियणु बंधु जणु । कहोँ माय-वप्पु कहोँ सुहि-सयणु ।
कहोँ पुत्तु-मित्तु कहोँ किर घरिणि । कहोँ भाय-सहोयरु कहोँ बहिणि ।
फलु जाव ताव बंधव-सयण । आवासिय पायवि जिह सउण ।
वलु एम भणेप्पिणु णीसरिउ । रोवंतु पडीवउ बीसरिउ ।
घत्ता । णिद्धणु लक्खण-वज्जिअउ, अण्णुँवि वहु असणेँहिँ भुत्तउ ।
राहउ भमइ भुअंगु जिह, वणेँ "हा हा सीय" भणंतउ ॥११॥
हिंडंतेँ मग्ग मडप्फरेँण । वणदेवय पुच्छिय हलहरेँण ।
"खणेँ खणेँ वेयारहिँ काइँ मइँ । कहिँ कहिमि दिट्ठ जइ कंतयइँ" ।
वलु एम भणेप्पिणु संचलिउ । ता वग्गएँ वण-गयंदु मिलिउ ।
"हे कुंजर-कामिणि-गइ-गमणा । कहेँ कहिमि दिट्ठ जइ मिगणयणा" ।
णिय-पडिरवेण वेआरियउ । जाणइ सीयएँ हक्कारिअउ ।
कत्थइ दिट्ठइँ इंदीवरइँ । जाणइ-धण-णयणइँ दीहरइँ[1] ।

---

[1] दीरघ

कोँइ निकसि सर्ग ऊपर चढई । कोँइ क्षय-होवन ऊपर चढई ।

कोइ धारै थूरै पाप विषहिँ । कोइ भक्खै नानाविध मंसहिँ ।

घत्ता । तहँ कोइ न वाँचै भूखियहीँ, काल-भुजंगह दुस्सहहीँ ।

जिन-वचन-रसायन लघु पियहू, जिमि अजरामर-पद लहहू ।।२।।

यदि काल-भुजंग नहीँ डँसई । तो किमि सुरपति स्वर्गहँ खसई ।

——रामायण ७८।२, ३

विरहानल ज्वाल-प्रलिप्त तनू । चिता इव लागु विषण्ण-मनू ।

साँचै संसारेँ न अहै सुखू । साँचै गिरि-मेरु-समान दुखू ।

साँचै जर-जन्मा-मरण-भवा । साँचै जीवित जलबिंदु-समा ।

कहँ घर कहँ परिजन बंधुजना । कहँ माय-बाप कहँ हित-सजना ।

कहँ पुत्र-मित्र कहँ पुनि घरिनी । कहँ भाय-सहोदर कहँ बहिनी ।

फल जबै तबै बांधव-स्वजना । आवासैँ पादपेँ जिमि शकुना ।

बल[1] ऐसेँहि भनिया नीसरेऊ । रोवंत पडीयउ बीसरिउ ।

घत्ता । निर्धनु लक्ष्मण वर्जितउ, अन्यहु वहुत सनेहि त्यक्तऊ ।

राघव भ्रमै भुजंग जिमि, वने "हा हा सीय" भनतऊ ।।११।।

हिडतो भग्न गर्वएहिँ । वनदेवत पूछिय हलधरेहिँ[2] ।

"क्षण-क्षण विकारा काह भई । कहिँ कतहुँ दीस यदि कांतौँ तईँ ।"

बल[2] भनिया ऐसे संचलेऊ । तव आगेँइ वन-गयंद मिलेऊ ।

"हे कुंजर कामिनि-गति-गमना ! कहिँ कतहुँ दीस यदि मृगनयना ।"

निज प्रतिरवेहिँ वीचारियऊ । जानै सीता हक्कारियऊ[3] ।

कतहूँ दीसैँ इंदीवरहीँ । जानै धनि-नयनि-'दीवरहीँ' ।

---

[1] **राम पिछला** [2] **राम** [3] **पुकारा**

कत्थइँ असोय-दलु हल्लियउ। जाणइ धण-वाहा डोल्लिअउ।
वणु सयलु गवेसवि सयल महिँ। पल्लट्टु पडीवउ दासरहि।
—रामायण ३९।७-१२

(५) कोई किसीका नहीं

जगे जीवहो णाहिँ सहाउ कोवि। रइ वंधइ मोह-वसेण तोवि।
इय घरु इउ परियणु इउ कलत्तु। णउ वुज्झइ जिह सयलेहिँ चित्तु।
एक्केण कणुव्वउ विहुरकाले। एक्केण सुयेव्वउ जरपयाले।
एक्केण वसेव्वउँ तहि णिगोएँ। एक्केण रुइव्वउ पिय-विऊएँ।
एक्केण भमेव्वउ भवसमुद्दे। कंमोह मोह जलयर-रउद्दे।
एक्कहोँ जे दुक्खु एक्कहोँ जे मुक्खु। एक्कहोँ जे वंधु एक्कहोँ जे मोक्खु।
एक्कहोँ जे पाउ एक्कहोँ जे धम्मु। एक्कहोँ जे मरणु एक्कहोँ जे जम्म।
—रामायण ५४।७

(६) सामाजिक भेदभाव धर्म-अधर्मके कारण

मुणिवर कहिवि लग्गु विउलाइँ। किं जणेण णियहि धम्मे फलाइँ।
धम्मे भड-थड-हय-गय-संदण। पावेँ मरण-विऊय-क्कंदण।
धम्मे सग्गु भोग्गु सोहग्गु। पावेँ रोगु सोगु दोहग्गु।
धम्मेँ रिद्धि-विद्धि सिय-संपय। पावेँ अत्थहीण णर-विद्दय।
धम्मेँ कडय-मउड-कडिसुत्ता। पावेँ णर-दालिद्दे मुत्ता।
धम्मेँ रज्जु करंति णिरुत्ता। पावेँ परपेंसण-संजुत्ता।
धम्मेँ वर-पल्लंकेँ सुत्ता। पावेँ तिण-संथारेँ विभुत्ता।
धम्मेँ णर देवत्तणु पत्ता। पावेँ णरय-घोरेँ संकंता।
धम्मेँ णर रमंति वर-निलयउ। पावेँ दुह-विऊय दुह-णिलयउ।
धम्मेँ सुंदरु अंगु णिवद्धउ। पावेँ 'पंगुलउ'वि वहिर'धउ।
—रामायण २८।९

कतहूँ अशोक-दल हिल्लियऊ। जानै धनि-बाहहँ डोलियऊ।
वन सकल गवेषेँउ सकल मही। पलटेउ पाछ्हूँ दाशरथी।
—रामायण ३६।७-१२

(५) कोई किसीका नहीं

जगेँ जीवहँ नाहिँ सहाय कोँऊ। रति बाँधै मोहवशेहिँ तऊ।
ऍहु घर ऍहु परिजन ऍहु कलत्र। ना बूझै जिमि सकलेहिँ चित्र।
ऍकलेहि कानिबउ विधुर-कालेँ। ऍकलेहि सोँईबउ जरठ-कालेँ।
ऍकलेहि बसीवउ तहँ वियोगेँ। ऍकलेहि रोँइब्बउ प्रिय-वियोगेँ।
ऍकलेहि भ्रमेबउ भव-समुद्रेँ। कर्मोघ-मोह-जलचर-रउद्रेँ।
ऍकलेहिहि दुख एकलेहिहि सुक्ख। एकलेहिहि बँध एकलेहिहि मोक्ष।
एकलेहिहि पाप्-एकलेहि धर्म। एकलेहिहि मरन एकलेहि जन्म।
—रामायण ५४।७

(६) सामाजिक भेदभाव धर्म-अधर्मके कारण

मुनिवर कहन लागु विपुलाइँ। का जनेहिँ निज-धर्म-फलाइँ।
धर्मेँ भट-ठट-हय-गज-स्यंदन। पापेँ मरन-वियोग-क्रंदन।
धर्मेँ स्वर्ग-भोग-सौभाग्य। पापेँ रोग-शोक-दौर्भाग्य।
धर्मेँ ऋद्धि-वृद्धि सित-संपत। पापेँ अर्थहीन नर-विद्रय।
धर्मेँ कटक-मुकुट-कटि-सूत्रा। पापेँ नर दारिद्रचे क्षिप्ता।
धर्मेँ राज्य करंति निश्चिता। पापेँ पर-प्रेषण-संयुक्ता।
धर्मेँ वर-पर्यंके सुप्ता। पापेँ तृण-साथरेँ विमुक्ता।
धर्मेँ नर देवत्त्वहिँ प्राप्ता। पापेँ नरक-घोर-संक्रांता।
धर्मेँ नर रमंति वर-निलये। पापेँ दुख-वियोग-दुख-निलये।
धर्मेँ सुंदर अंग निबंधा। पापेँ पंगुल अरु वहिरंधा।
—रामायण २८।६

§ ४. भूसुकुपा (शांतिदेव)

काल—८०० ई० (धर्मपाल-देवपाल ७७०-८०६-४६) । देश—नालंदा ।

(रहस्यवाद)

(६—राग पटमंजरी)

काहेरि घेणि मेलि अच्छहू कीस । वेठिल हाक पडअ चउदीस ।
अप्पण मांसे हरिणा बइरी । खणह ण छाडअ भूसुकु अहेरी ।
तिण ण छूपइ पिबइ ण पाणी । हरिणा हरिणीर णिलअ ण जाणी ।
हरिणी बोलअ सुण हरिणा तों । ए वन छाडि होहु भान्तो ।।
तरसँत हरिनार खुर न दीसइ । भूसुकु भणइ मुढ ! हिअहिँ ण पइसइ ।।६।।

(२१—राग वराडी)

णिशि अंधारी मूसा करअ अचारा । अमिअ-भखअ मूसा करअ अहारा ।।
मार रे जोइया ! मूसा-पवना । जेण तूटइ अवणा-गवणा ।।
भव विदारअ मूसा खणअ गाती । चंचल मूसा कलिआँ णासअ थाती ।।
काला मूसा उह ण वाण । गअणे उठि करअ अमिअ पाण ।।
तब्बे मूसा अंचल चचल । सद्‌गुरु बाहे करह सो निच्चल ।।
जब्बे मूसा अचार तूटअ । भूसुकु भणइ तब्बे बंधण फिट्टइ ।।२१।।

(२३—राग बडारी)

जइ तुम्ह भूसुकु अहेरी जाइब मरिहसि पंच जना ।
णलिणीवन पइसन्ते होहिसि एवकु मणा ।।
जीवँत मा विहणि मएल ण अणिहिलि ।
णउ विणु मांसे भूसुकु पउमवण पइसहिलि ।।
माआजाल पसारी बाँधेलि माआ हरिणी ।
सदगुरु बोहें बूझि रे कासु (काहिणी ।।)

§ ४. भूसुकुपा (शांतिदेव)

कुल--राजपुत्र (राउत) भिक्षु, सिद्ध (४९)। कृतियाँ (हिन्दी)--सहज-गीति

(रहस्यवाद)

(६--राग पटमंजरी)

काहेर भक्ष्य मेलि रहों कईस। बेठिल हाक पडै चौदीस॥
अपने माँसे हरिना वैरी। क्षणहुं न छाडै **भूसुक** अहेरी॥
तृण न छुवै पियै न पानी। हरिना हरिनी-निलय न जानी॥
हरिनी बोलै सुनु हरिना तों। ई बन छाड़ि होवहू भ्रमन्तो॥
तृषित धावत हरिना खुर ना दीसै। **भूसुक** भनै मुढ! हियहिँ न पइसै॥६॥

(२१--राग बराडी)

निशि अँधियारी मूसा करै सँचारा। अमृत-भक्ष्य मूसा करै अहारा॥
मारु रे जोंगिया! मूसा पवना। जासे टूटै अवना-गवना॥
भव विदारै मूसा खनै गाती। चंचल मूसा खाइ नाशै थाती॥
काला मूसा रोम न वर्ण। गगने उठि करै अमिय पान॥
तब्बै मूसा अंचल-चंचल। सद्गुरु-बोधे करहु सो निश्चल॥
जब्बै मूस-सँचारा टूटै। **भूसुक** भनै तब्बै बंधन छूटै॥२१॥

(२३--राग बराडी)

यदि तुम भूसुकु अहेरे जइबा, मरिहो पाँच जना।
नलिनीवन पइठन्ते, होइहा एकमना।
जीवत न हनिहा मरल न अनिहा।
न विनु मांस भूसुक पदुमवन पइठिहा॥
माया-जाल पसारी बधिहा माया-हरिनी।
सद्गुरु-बोधें बुझि रे कासु (एहु) कहनी॥

(अप्पण काये छड्डवि णउ मइलि खाअइ कालाकालें लेइ।
पाणी-बेणी णाहि हरिणा पाणि अवेक्खउ ॥
चंचल चचल चलिआ सुण्ण माँझे अत्थगऊ ॥)२३॥

(२७—राग कामोद)

अध राति भर कमल विकसिउ, बतिस जोइणी तासु अँग उल्हसिउ।
चालिअउ ससहर मग्ग अवधूई। रअणइ सहज कहेमि ॥
चालिअ ससहर-गउ णिब्बाणे। कमलिनि कमल बहइ पणालें ॥
विरमानंद विलक्खण सुद्ध। जो एथु बुज्झइ सो एथु बुद्ध।
भूसुकु भणइ मइँ बूझिय मेलें। सहजाणंद महासुह लीले ॥२७॥

(३०—राग मल्लारी)

करुणामेह निरन्तर फारिआ। भावाभाव द्वंदल दालिआ।
उइउ गअण माज्झ अदभूआ। पेख रे भूसुकु! सहज सरूआ ॥
जासु सुणन्ते तुट्टइ इँदआल। णिहुए णिज मण देइउ उल्लाल।
विसअ विसुज्झे मइँ बुज्झिउ आणंदे। गअणहँ जिम उजोली चन्दे ॥
ए निलोए एत वि सारा। जोइ **भूसुकु** फडइ अँधआरा ॥३०॥

(४१—राग कण्हू-गुंजरी)

आइएँ अनुअनाएँ जग रे भन्तिएँ सो पडिहाइ।
रज्जु-सप्प देखि जो चमकिउ, साँचे जिम लोअ खाइउ[1] ॥
अकट जोइआ रे मा कर हाथ लोण्हा। अइस सहावें जइज बुज्झसि तूटइ वासना तोरा ॥
मरु-मरीचि गंधब-नअरी दापण-पडिबिबु जइसा।
वातावत्तें सो दिढ भइआ, आयें पाथर जइसा ॥
बांझिसुआ-जिम केलि करई खेलइ वहुविह खेला।
बालुअ-तेले सस-सिंगे आकाश फूलिला ॥
राउतु भणइ बढ **भूसुकु** भणइ बढ सअला अइस सहावा।
जइ तो मूढा अच्छसि भान्ती पुच्छहु सदगुरु पावा ॥४१॥

---

[1] साँचे कित बोड़ो खाई J.D.L.

(आपन काये छडिहा ना मैली। खाय कालाकाले लेई।
पानी-वेणी नहिँ हरिना पानी चाहेउ।
चंचल- चंचल चलि शून्य-मध्ये अथयेउ)[1] ॥२३॥

(२७—राग कामोद)

आधीराति भर कमल विकसेँउ। वतिस जोगिनी तासु अँग हुलसेँउ॥
चालहु शशधर मग अवधूती। रतने सहज कहौँ मैँ॥
चालिय शशधर गयेँउ निर्वाणे। कमलिनि कमलहिँ बहै प्रणाले॥
विरमानंद विलक्षण शुद्ध। जो एहु जानै सो एहिँ बुद्ध।
भूसुक भनै मैं बूझयों मेला। सहजानंद महासुख-लीला॥२७॥

(३०—राग मल्लारी)

करुणा-मेघ निरन्तर फारी। भावाभाव द्वन्दहीँ दारी॥
उयेँउ गगनमाँझ अदभूता। पेखु रे **भूसुकु** सहज-स्वरूपा॥
जासु सुनत टूटै इन्द्रजाल। नि-धुए निजमन देइ उलास॥
विषय विशुद्धे मैँ बूझेँउँ आनंदा। गगनहिँ जिमि उजाला चंदा॥
एहि तिलोके एहुहि सारा। जोइ **भूसुकु** फटै अँधियारा॥३०॥

(४१—राग कण्हू गुजरी)

आदिहिँ अजन्मते जग ई भ्रान्ति सोँ प्रतिभाइ।
रज्जु-सर्प देखि चमकेँउ साँचै जिमि लोग खाइ॥
अहह जोगिया ! न कर हाथ लोना। ऐस स्वभाव यदि बूझसि टुटइ वासना तोरा॥
मरु-मरीचि गंधर्व-नगरी दर्पण—प्रतिबिंब जैसा।
वानावर्त्ते सो दृढ होई, पानिहिँ पाथर जैसा॥
बाँझसुता जिमि केली करै, खेलै बहुविध खेला।
बालू-तेले शश-शृंगे आकाश फुलेला॥
राउतु भनै मूढ **भूसुकु** भनै मूढ सकल ऐस स्वभावा।
यदि तैँ मूढा हवै भ्रान्त पूछहु सद्गुरुपावा॥४१॥

---

[1] अस्त हो गया

(४३—राग बंगाल)

सहज महातरु फरिअइ तिलोए। खसम सहावे वाणते मुक्क कोइ।
जिम जले पाणिअ टलिआ भेउ न जाअ। तिम मण-रअणा समरसे गअण समाअ॥
यासु णाहि अप्पा तासु परेला काहि। आइ-अन्तअ ण, जाममरण भव नाहि।
भूसुकु भणइ बढ ! **राउतु** भणइ बढ ! सअला एह सहाव।
जाइ ण आवइ रे ण तहिं भावाभाव॥४३॥

(४६—राग मल्लारी)

राअ-नावडी पँउअखँडे बाहिउ। अदअ वँगाल देसह लूटेँउ।
आजि **भूसुक** बंगाली भइली। णिअ घरिणी चंडाली लेली॥
डहिउ जे पँच पाटन इन्दि-विसआ णठा। ण जानमि चिअ मोर कँहि गइ पइठा॥
सोण-रूअ मोर किंपि ण थाकिउ[1]। णिअ परिवारे महासुह थाकिउ।
चउकोडि भँडार मोर लइउ असेस। जीवँते मइले णाहि विसेस॥४६॥

—चर्यापद

२ : नवीं सदी

§ ५. लुईपा

काल—८३० ई० (धर्मपाल-देवपाल ७७०-८०६-४६)
देश—मगध। कुल—कायस्थ, सिद्ध (१)

रहस्यवाद

(१—राग पटमंजरी)

काआ तरुवर पंच' बि डाल। चंचल चीए पइट्ठा काल॥
दिढ करिअ महासुह परिमाण। लुई भणइ गुरु पुच्छिअ जाण॥

---

[1] रहा

(४३—राग बंगाल)

सहज महातरु स्फुरै (फड़ै?) त्रिलोके । ख-सम स्वभावे बँध-मुक्त कोइ ॥
जिमि जले पानी डाले भेद न जान । तिमि मन रतन समरस गगन-समान ॥
जासु न आपा तासु पराया काह । आदि-अन्त न जन्म-मरण भव नाहि ॥
भूसुकु भनै मूढ ! **राउतु** भनै मूढ ! सकल एह स्वभाव ।
जाइ न आवै रे ना तहँ भावाभाव ॥४३॥

(४९—राग मल्लारी)

राजनावडी पदुमखंडे चलायेँउ । अ-दय बँगल-देश लूटेउ ।
आज **भूसुकु** बंगाली भइली[1] । निज घरनी चंडाली लेलीं ॥
डहेँउ पाँच पाटन इन्द्रि-विषया नष्टा । न जानोँ चित्त मोर कँह जाइ पइठा ॥
सोना-रूपा मोर किछुअ न रहेँऊ । निज-परिवारे महासुख रहेऊ ॥
चौकोटि भँडार मोर लियउ अशेष । जियले मुअले नाहि विशेष ॥४९॥

—चर्यापद

२ : नवीँ सदी

§ ५. लुईपा

कृतियाँ—अभिसमय-विभंग, तत्व स्वभाव-दोहा कोष । बुद्धोदय भगवद्-अभिसमय, गीतिका ।

रहस्यवाद

(१—राग पटमंजरी)

काया तरुवर पाँचउ डाल । चंचल चित्ते पइठा काल ॥
दृढ करि महासुख परिमान । लुई भनै गुरु पूछिय जान ॥

---

[1] आज भूसुक युद्ध में हरली—भाटे

सअल-समाहिहि काह करिअइ । सुख-दुखेतें निचित मरिअइ ।।
छडिअउ छंद वांधकरण कपटेर आस । सुण्ण-पवख भिडि लेहु रे पास ।।
भणइ **लुई** आम्हे झाणे दिट्ठा । धमण-चमण वेणि उपरि बइट्ठा ।।१।।

(२९—राग पटमंजरी)

भाव ण होइ अभाव ण जाइ । अइस सँबोहें को पतिआइ ।।
लुई भणइ बढ ! दुलख विणाणा । तिधातुए विलइ ऊह लागेना ।
जाहिर वण्ण-चिन्ह-रूअ ण जाणी । सो कइसे आगम-वेएँ वखाणी ।।
काहे रे किस भणि मइँ दिबि पिच्छा । उदक-चंद जिम सांच न मिच्छा ।
लुई भणइ मइँ भावइँ कीस । जा लेइ अच्छम ताहेर ऊह न दीस ।।२९।।

—चर्यापद[1]

§ ६. विरूपा

काल ८३० ई० (देवपाल ८०६-४९) देश—त्रिउर (मगध ?) । कुल—भिक्षु, सिद्ध (३) । कृतियाँ—अमृतसिद्धि, दोहा-कोष, कर्मचंडालिका-

रहस्यवाद

(३—राग गवडा)

एक से शोंडिनि दुइ घरे साँधअ । चीअ न वाकलअ वारुणी बाँधअ ।।
सहजे थिर करि वारुणि सांधअ । जें अजरामर होइ दिढ़ काँधअ ।।
दसमी दुआरते चिन्ह देखइआ । आइल गराहक अपने बहिआ ।।
चउशटि घडिये देल पसारा । पइठल गराहक नाहि निसारा ।।
एक घडुल्ली सरुइ नाल । भणइ **विरूआ** थिर कर चाल ।।३।।

—चर्यापद

---

[1] J.S.L. Cal. XXX

सकल समाधिहिँ काह करिज्जै । सुख-दुःखनतेँ निचित मरिज्जै ॥
छाडि छंद-बंध कर ना कपटकी आश । शून्य-पक्ष भीडि लेहु रे पाश ॥
भनै लुई मैँ ध्याने दीठा । धमन-चमन दोँउहि ऊपर बैठा ॥१॥

(२९—राग पटमंजरी)

भाव न होइ अभाव न होइ । ऐस सँबोधिहिँ को पतियाइ ।
लूइ भनै मूढ ! दुःलंख विज्ञाना । त्रिधातुहिँ विलसै ऊह लागै ना ॥
जाहि वर्ण-चिन्ह-रूप न जानी । से कैसे आगम-वेद बखानी ।
काहे रे कैसे भनि मैँ देबोँ पूछा । उदक-चंद जिमि साँच न मिथ्या ॥
लूई भनै मैं भावौँ कैसे । जे लेइ रहौ तेहि ऊह न दीसै ॥२९॥

—चर्यापद

§ ६. विरूपा

दोहाकोष, विरूप-गीतिका, विरूप-वज्र-गीतिका, विरूप-पद-चतुरशीति, मार्ग-फलान्विता ववादक, सुनिष्प्रपंचतत्त्वोपदेश ।

रहस्यवाद

(३—राग गवडा)

एक से सूँडिन[1] दुइ घरे साँधै । चीअ न बाकल वारुणी बाँधै ॥
सहजे थिर करि वारुणि साँधा । जे अजरामर होइ (न) दृढ स्कंधा ॥
दशम दुवारे चिन्ह देखि कहँ । आयउ ग्राहक अपन लेन कहँ ॥
चौँसठ-घडिया देल पसारा । पइठु ग्राहक नाहिँ निसारा ॥
एक घडुल्ली स्वरूपी नाल । भनै विरूपा थिर करु चाल ॥३॥

—चर्यापद

---

[1] शराब बेँचने वाली

§ ७. डोम्बिपा

काल—८४० ई० (देवपाल ८०६-४६ ई०)। देश—मगध कुल—क्षत्रिय,

रहस्यवाद

(राग धनसी)

गंगा-जउँना-माँझे वहइ नाई। तँह बुडिली मातंगी पोइआ लीलें पार करेइ।
बाहतु **डोम्बी** बाहलो डोम्बी, वाट भइल उछारा।
सदगुरु-पाअ-प(सा)ए जाइव पुनु जिनउरा॥
पाँच केडुआल पडन्ते माँगे पीठत काच्छी बाँधी।
गअण-दुखोलें सिञ्चहू पाणी न पइसइ साँधी॥
चंद-सूज्ज दुइ चक्का सिठि-संहार-पुलिन्दा।
वाम दहिन दुइ भाग न चेवइ वाहतु छन्दा॥
कवड़ी न लेइ बोडी न लेइ सुच्छडे पार करई।
जो एथे चड़िया बाहब न जा(न)इ कूलें कूल बुड़ाई॥१४॥
—चर्यापद

§ ८. दारिकपा

काल—८४० ई० (देवपाल ८०६-४६ ई०)। देश—सालिपुत्र (उड़ीसा)

रहस्यवाद

(३४—राग बराडी)

सुन-करुण अभिन्ने चारें काअवाअचीअें।
विलसइ **दारिक** गअणत पारिमकूले॥
अलक्ख लक्खइ चिए महासुहे।
विलसइ **दारिअ** गअणत पारिम कूलें॥

§ ७. डोम्बिपा

सिद्ध (४)। कृतियाँ—अक्षरद्विकोपदेश, गीतिका, नाड़ी-विंदु-द्वारे योग-चर्या।

रहस्यवाद

(राग धनसी)

गंगा-यमुना-माँझे चलै नाई। तँह बूडल मातंगी पुतिया लीलें पार करेइ॥
ले चल डोम्बी ले चल डोम्बी-वाट सोझारा।
सद्गुरु-पाद-प्रसादे जायेब पुनि जिन-पूरा॥
पाँच केडुआल पडत माँगेमें पीठसे कच्छी बंधी।
गगन-दुखोलेहिँ सींचहु पानी न पइठै संधी॥
चंद्र-सूर्य दुइ चक्रा सृष्टिसहार-पुलिन्दा।
वाम-दहिन दोँउ मार्ग न दीसइ (नाव) चलाव स्वछंदा॥
कौडी न लेइ वौडी न लेइ छूछै पार करेइ।
जो एहिँ चढि चलावन न जानै कूलहिँ कूल बुडेइ॥१४॥
—चर्यापद

§ ८. दारिकपा

कुल—राजा, सिद्ध (७७)। कृतियाँ—महागुह्य तत्त्वोपदेश, तथताद्दृष्टि, सप्तम सिद्धांत

रहस्यवाद

(३४—राग बराडी)

शून्य करुणा अभिन्न काय-वाक्-चित्ते।
विलसै **दारिक** गगनतें पारिमकूले॥
अलख लखै चित्त महासुखे।
विलसै **दारिक** गगनतें पारिमकूले॥

किन्तो मन्तो किन्तो तन्ते किन्तो झाण-बखाणे ।
अप्प पइट्ठा महासुह लीलेँ दुलक्ख परम-निवाणे ॥
दुःखेँ सुखेँ एकू करिआ भुञ्जइ इन्दी जानी ।
स्वपरापर न चेवइ **दारिक** सअलानुत्तर मानी ।
राआ राआ राआ रे अवर राअ मोहे बाधा ।
लुइपाअ-पए दारिक द्वादश भुअणे लाधा ॥३४॥
—चर्यापद

§ ९. गुंडरीपा

काल—८४० ई० (देवपाल ८०९-४९) । देश—डिसुनगर ।

रहस्यवाद

(४—राग अरुण)

तिअड्डा चापि जोइनि दे अँकवाली । कमल-कुलिश घोँटि करहु विआली ॥
जोइनि तइँ विनु खनहि न जीवमि । तो मुह चुम्बि कमल-रस पीवमि ।
खेपहुँ जोइनि लेप न जाअ । मणि-कुले बहिआ उडिआने समाअ ॥
सासु घरेँ घालि कोंचा-ताल । चाँद-सूज बेण्णि पखा फाल ।
भणइ **गुन्डरी** अम्हे कुन्दुरे वीरा । नर अ नारी माझे उभिल चीरा ॥४॥
—चर्यागीति

§ १०. कुक्कुरीपा

काल—८४० ई० (देवपाल ८०९-४९) । देश—कपिलवस्तु । कुल—ब्राह्मण

रहस्यवाद

(२—राग गबडा)

दूलि दूहि पिटा धरण न जाइ । रूखेर तेँतुलि कुँभीरे खाइ ।
आँगन घर पण सुन हे भोविआती । कानेट चोरी निल अधराती ॥

की तोर मंत्रे की तोर तंत्रे की तोर ध्यान बखाने ।
आप पईठा महसुख लीले दुर्लख परम-निवाणे ॥
दुःख-सुख एक करी भक्षै इन्द्रजाली ।
स्व-परापर न चीन्है दारिक सकल अनुत्तर मानी ॥
राजा राजा राजा अवर राजा मोह बँधाया ।
लूईपाद-पद्मे दारिक द्वादश भुवनहिँ पाया ॥३४॥
—चर्यापद

§ ९. गुंडरीपा

कुल—लोहार, सिद्ध (४)। कृतियाँ—गीति।

रहस्यवाद

(४—राग अरुण)

तियड़ा चाँपि जोगिनि दे अँकवारी। कमल-कुलिश घोँटि करहु बियाली ॥
जोगिनि तोहि विनु क्षणहुँ न जीयौँ। तव-मुख चूमि कमल-रस पीयौँ ॥
फेकेहु जोगिनि लेप न जाय। मणि-कुंडल बहि उडचानेँ समाय ॥
सासु घरे डाली कुंजी-ताल। चाँद-सूर्य दोउँ पाखहिँ फाल ॥
भनै गुंडरी मैँ कुन्दुरे वीरा। नर-नारी-भाँझे दीनेँउँ चीरा ॥४॥
—चर्यागीत

§ १०. कुक्कुरीपा

सिद्ध (३४)। कृतियाँ—योगभावनोपदेश, स्रवपरिच्छेदन।

रहस्यवाद

(२—राग गवडा)

कूर्म दूहि पात्र धरन न जाय। वृक्षेर इम्ली कुंभीर खाय।
आँगन घर पुनि सुनु कुविज्ञाती। कानेट चोरि लियेँउ अधराती ॥

ससुरा निँद गेल बहुड़ी जागअ । कानेट चोरे निल का गइ मागअ ।।
दिवसइ बहुडी काग-डरे भाअ । राति भइले कामरू जाअ ।
अइसन चर्या कुक्कुरिपाए गाइउ । कोड़ि माझे एकु हिअहिँ समाइउ ।।२।।

(२०—राग पटमंजरी)

हँउ निरासी खमन भतारी । मोँहोर विगोआ कहण न जाई ।
फिटल गो माए ! अन्तउडि चाहि । जा एथु बाहम सो एथु नाहि ।।
पहिल विआण मोर वासना पूडा । नाडि विआरन्ते सेव वापुडा ।
जाण जौवण मोर भइले से पूरा । मूलन खलि बाप संघारा ।।
भणथि कुक्कुरीपाए भवथिरा । जो एथु बूझइ सो एथु वीरा ।।२०।।

—चर्यापद

§ ११. कमरि(कंबल)पा

काल ८४० ई० (देवपाल ८०९-४९ ई०) । देश—उडीसा । कुल—राजकुमार

रहस्यवाद

(८—राग देवश्री)

सोने भरिती करुणा नावी ।
रूपा थोइ नाहिक ठावी ।।
वाहतु कामलि गअण-उवेसेँ ।
गेला जाम बाहुइइ कइसेँ ।।
खुंटि उपाड़ी मेलिलि काच्छि ।
वाहतु कामलि सद्गुरु पुच्छि ।।
माँगत चढ़िले चउदिस चाहअ ।
(नाव-पीठ चढि विलहिँ पडअ) ।
केडुआल नाहि केँ कि (नाविक) बाहब के पारअ ।।
वाम दाहिण चाँपि मिलि मिलि (चढ़ि) माँगा ।
बाटत मिलिल महासुह साँगा ।।८।।

—चर्यापद

सासु नींदि गइल बहुवा जागै । कानेट चोरि लिय कागहिँ माँगै ॥
दिवसहिँ वहू काग डर खाय । राति भइले कामरूप जाय ॥
ऐसन चर्या **कुक्कुरि** गाये । कोटि माँझ एक हियहिँ समाये ॥२॥

(२०—**राग पटमंजरी**)

हौँ निराशी ख-मन भतारी । मोर विज्ञान कहल न जाई ।
फूटल रे माई ! अन्त मैँ देखौँ । जो एहिँ गिरेँउ सो ऐँहि नाहीँ ॥
प्रथम विज्ञाने मोरि वासना टूटी । नाडी विचारते सोइ बापुड़ी ॥
नवयौवन मोर भइल से पूरा । मूल निखूटि पाप संहारा ॥
भनै **कुक्कुरीपा** भव थिरा । जो एहि बूझे सो एहिँ वीरा ॥

—चर्यापद

§ ११. कमरि(कंबल)पा

भिक्षु, सिद्ध (३०)। कृतियाँ—असंबंध-दृष्टि, असंबंध-सर्गदृष्टि, गीतिका।

रहस्यवाद

(८—**राग देवश्री**)

सोनेँहिँ भरती करुणा नावी ।
रूपा थापै नाहिक ठाँवी ॥
ले चल **कामलि** गगन-उदेसे ।
गैला जन्म बहुरिहै कैसे ।
खूँटी उपाडि फेँकल काछी ।
ले चल **कामलि** सद्गुरु पूछी ॥
माँगे चढल चतुर्दिश देखै ।
(नाव-पीठ चढि बलहीँ पड़ई) ।
केडुआल नाहीँ कैसे चलायब पारै ॥
वाम-दहिन चाँपि मिलि (चढ़ि) माँगा ।
वाटेहिँ मिलल महासुख-संगा ॥८॥

—चर्यापद

§ १२. कण्हपा

(कृष्णपाद, चर्यापाद, कृष्णवज्रपाद), काल—८४० (देवपाल ८०६-४९ ई०)। देश—कर्नाटक : निवास—विहार और बंगाल (सोमपुरी)।

(१) पंथ-पंडित-निंदा

लोअह गव्व समुव्वहइ, हुँउ परमत्थें पवीण।
कोडिअ-मज्झे एक्कु जइ, होइ णिरंजण-लीण ॥१॥
आगम-वेअ-पुराणें (ही), पण्डिअ माण वहन्ति।
पक्क-सिरीफलें अलिअ जिम, बाहेरीअ भमन्ति ॥२॥
खिति-जल-जलण-पवण-गअण बि माणह।
मण्डल-चक्क विसअ-बुद्धि लइ परिमाणह ॥६॥

(२) सहज-मार्ग

णित्तरंग-सम सहज-रूअ सअल-कलुस-विरहिए।
पाप-पुण्य-रहिए कुच्छ णाहि **काण्ह** फुट कहिए ॥१०॥
वहिण्णिक्कालिआ सुण्णासुण्ण पइट्ठ।
सुण्णासुण्ण-वेणि मज्झें रे बढ़! किम्पि ण दिट्ठ ॥११॥
सहज एक्कु पर अत्थि तहि फुड़ **काण्ह** परिजाणइ।
सत्थागम बहु पढइ सुणइ बढ़! किम्पि ण जाणइ ॥१२॥
अह ण गमइ ऊह ण जाइ। वेण्णि-रहिअ तसु णिच्चल ठाइ।
भणइ **काण्ह** मण कहबि ण फुट्टइ। णिचल पवण घरिणि-घर वट्टइ ॥१३॥
वरगिरिकन्दर गुहिरे जगु तहिँ सअल[1] बि तुट्टइ।
विमल सलिल सोँस जाइ, कालग्गि पइट्ठइ ॥१४॥
पह वहन्ते णिअ-मणा, बन्धण किअऊ जेण।
तिहुअण सअल[1] बि फारिआ, पुणु सांरिअ तेण ॥१७॥

---

[1]The Journal of the Department of Letters, Cal. Uni.

§ १२. कण्हपा

कुल—ब्राह्मण-भिक्षु, सिद्ध (१७)। कृतियाँ—गीतिका, महादुँढन, वसंत तिलक, असंबंध-दृष्टि, वज्रगीति, दोहाकोष[1]।

(१) पंथ-पंडित-निंदा

लोगा गर्व समुद्वहै, हौं परमार्थ-प्रवीण।
कोटी-मध्ये एक यदि, होइ निरंजन-लीन ॥१॥
आगम-वेद-पुराणहीं, पण्डित मान वहंति।
पक्व-सिरीफल अलिय जिमि, बाहरहीं हि भ्रमन्ति ॥२॥
क्षिति-जल-ज्वलन-पवन, गगनहु मानहु।
मंडल-चक्र विषय-बुद्धि लेइ परिमाणहु ॥६॥

(२) सहज-मार्ग

निस्तरंग सम सहज रूप, सकल-कलुष-विरहिए।
पाप-पुण्य-रहित किछु नाहि, **काण्हे** फुर कहिये ॥१०॥
बाहर निकालिय शून्याशून्य प्रविष्ट।
शून्याशून्य दोउ मध्ये, मूढ़ा ! किछुअ न दृष्ट ॥११॥
महज एक **पर** अहै तहँ फुर **काण्ह** परि-जानै।
शास्त्रागम बहु पढै सुनै मूढ ! किछुउ न जानै ॥१२॥
अधो न जाइ ऊर्ध्व न जाइ। द्वैत-रहित तासु निश्चल ठाइ।
भनै **काण्ह** मन कैसहु न फूटै। निश्चल पवन घरनी-घरे बाटै ॥१३॥
वर-गिरि-कन्दर-कुहरे, जग तँह सकलउ टूटै।
विमल-सलिल सुखि जाइ, काल-अगिन पइट्ठै ॥१४॥
प्रभा वहन्ता निज मन, बंधन कियेऊ जेहिं।
त्रिभुवन सकलउ फारिया, पुनि संहारिय तेहिं ॥१७॥

---

[1] Vol. XXVIII, pp. 24-27

सहजे णिच्चल जेण किअ, समरसें णिअ-मण-राअ ।
सिद्धो सो पुण तक्खणे, णउ जरामरणह भाअ ।।१९।।

(३) निर्वाण-साधना

णिच्चल णिव्विअप्प णिव्विआर । उअअ-अत्थमण-रहिअ सुसार ।
अइसो सो णिब्बाण भणिज्जइ । जहिँ मण माणस किम्पि ण किज्जइ ।।२०।।
जइ पवण-गमण-दुआरे, दिढ तालाबि दिज्जइ ।
जइ तसु घोरान्धारें, मण दिवहो किज्जइ ।।
जिण-रअण उअरें जइ, सो वरु अम्वरु छुप्पइ ।
भणइ काण्ह भव भुञ्जन्ते, णिब्बाणो'बि सिज्झइ ।।२२।।
वर-गिरि-सिहर उतुंग मुणि, सबरें जहिँ किअ वास ।
णउ सो लंघिअ पँचाणणेहि, करि-वर दुरिआ आस ।।२५।।
एहु सो गिरिवर कहिअ मँइ, एहु सो महसुह ठाव ।
एक्कु रअणी सहज-खण, लब्भइ महसुह जाव ।।२६।।
सब जगु काअ-वाअ-मण मिलि विफुरइ तहि सो दूरे ।
सो एहु भंगे महासुह णिब्बाण एक्कु रे ।।२७।।
एक्कु ण किज्जइ मन्त ण तन्त । णिअ-घरणी लइ केलि करन्त ।।
णिअ-घरे घरणी जाव ण मज्जइ । ताव कि पञ्च वण्ण विहरिज्जइ ।।२८।।
एसो जप-होमे मण्डल कम्मे । अणुदिण अच्छसि काहिउ धम्मे ।।
तो विणु तरुणि णिरन्तर णेहें । बोहि कि लब्भइ एण'बि देहें ।।२९।।
जें किअ णिच्चल मण-रअण, णिअ-घरणी लइ एत्थ ।
सोह वाजिरा-णाहु रे, मयिँ वुत्तो परमत्थ ।।३१।।
जिमि लोण विलिज्जइ पाणिएँहि, तिम घरिणी लइ चित्त ।
समरस जाई तक्खणे, जइ पुणु ते सम णित्त ।।३२।।
—दोहाकोष[1]

---

[1] J.D.L. Cal. vol. XXVIII, pp. 24-27

सहजे निश्चल जेँहिँ किय, सम-रस निज-मन राग।
सिद्धा सो पुनि तत्क्षणे, न जरामरणहँ भाग ॥१९॥

(३) निर्वाण-साधना

निश्चल निर्विकल्प निर्विकार। उदय-अस्तमन-रहित सु-सार।
ऐसो सो निर्वाण भनिज्जै। जँह मन-मानस कछुउ न किज्जै ॥२०॥
यदि पवन-गमन-दुआरे, दृढ तालाहू दीजै।
यदि तँह घोर अन्हारे, मन-दीपहु कीजै ॥
जिन-रतन उये यदि, सो वर-अंबर छूवै।
भनै काण्ह भव भोगतहिँ, निर्वाणहु सीझै ॥२२॥
वर-गिरि-शिखर-उतुग मुनि, शबरा[1] जँह किउ वास।
ना सो लाँघेँउ पांच मुख, करिवर दूरेँउ आस ॥२५॥
एहु सो गिरि-वर कहेँउँ मैँ, एहु सो महसुख-ठाँव।
एक रजनि सहज क्षणे, लभै महासुख जाव ॥२६॥
सब जग काय-वाक्-मन मिलि, स्फुरै नाहि सो दूरे।
सो एहि भंगेँ महासुख निर्वाण एक रे ॥२७॥
एक न कीजै मन्त्र न तन्त्र। निज घरनी लेइ केलि करन्त।
निज घरे घरनी जौ न मज्जै। तौ की पंच वर्ण विहरीजै ॥२८॥
एँहु जप-होमे मंडल कर्मे। अनुदिन रहौ काहे धर्मे।
तो विनु तरुणि निरन्तर स्नेहे। बोधि कि लब्भै अन्यहिँ देहे ॥२९॥
जो किउ निश्चल मन-रतन, निज घरनी लेइ एत्थ।
सोँई बज्जरनाथ रे, मैँ बोलेँउँ परमार्थ ॥३१॥
जिमि नोन विलाय पानियहिँ, तिमि घरनी लेइँ चित्त।
सम-रस जाये तत्क्षण, यदि पुनि सो सम नित्त्य ॥३२॥
—दोहाकोष

---

[1] वज्रधर=निरंजन=परमतत्व

(४) रहस्य-गीत

(२) गीतेँ[1]

(९—राग पटमंजरी)

एवंकार दिढ़ वाखोँड़ मोड्डिउ । विविह विआपक बाँधन तोडिउ ॥
काण्ह विलसिआ आसव-माता । सहज-नलिनि-वन पइसि निवाता ॥
जिम जिम करिणा करिणिरेँ रीझअ । तिम तिम तथता-मअगल वरिसअ ॥
छड गइ सअल सहावे सुद्ध । भावाभाव वलाग न छुद्ध ॥
दशबल रअण हरिअ दश दीसेँ । अविद्यकरिकूँ दम अकिलेसेँ ॥९॥

(१०—राग देशारव)

नगर वाहिरे डोम्वि तोहोरि कुडिआ । छाइ छोँइ जाइँ सो बाम्हण नाडिया ।
आलो डोम्बि तोए सम करिब म संग । निघिण काण्ह कपालि जोई लाँग ॥
एक सो पदुम चौषठि पाखुड़ी । तहिँ चडि णाचअ डोम्वि वापुड़ी ॥
हालो डोम्बि तो पूछमि सद्भावे । आइससि जासि डोम्बि काहरि नावेँ ॥
ताँति विकणअ डोम्बी अवर न चँगेडा । तोहोर अन्तरे छड़ि नड़ पेड़ा ॥
तूँ लो डोम्बी हाँउ कपाली । तोहोर अन्तरे मोए घेणिलि हाडेरि माली ॥
सरवर भाँजिअ डोम्बी खाअ मोँलाण । मारमि डोम्बी लेमि पराण ॥१०॥

(११—राग पटमंजरी)

नाडि शक्ति दिढ धरिआ खाटे । अनहा डमरु बजइ विरनाटे ॥
काण्ह कपाली जोइ पइठ अचारे । देह न अरि विहरइ एककारेँ ॥
अलि-कलि घंटा नेउर चरणे । रवि-शशि-कुंडल किउ आभरणे ॥
राग-दोष-मोहे लाइअ छार । परम मोख लवएँ मुत्ताहार ॥
मारिअ सासु नणँद घरेँ शाली । मा मरिअ काण्ह भइल कपाली ॥११॥

---

[1] J.D.L XXX (115—56)

(४) रहस्य-गीत

(२) गीतें

(९—राग पटमंजरी)

एँहि विधि दोउ खम्भा मोडी । विविध-व्यापक बंधन तोडी ।
काण्ह विलासै आसव-माता । सहज नलिन-वन पइठि नि-वाता ।।
जिमि जिमि करिणा करिणिहिँ रीझै । तिमि तिमि तथता मद-कण वरसै ।।
षड्गति सकल स्वभावे शुद्ध । भावाभाव बालाग्र न शुद्ध ।।
दशबल-रतन-भरित दश दीसा । अविद्या-करिहिँ दम अक्लेशा ।।९।।

(१०—राग देशारव)

नगर-बाहिरे डोम्बी[1] तोहर कुटिका । छुइ छुइ जाइ सो बाभन-लडिका ।
अरे डोम्बी तोरे साथ करब न संग । निर्घृण काण्ह कपाल-जोगि नंग ।
एकउ पदुम चौंसठ पाँखुरी । तँह चढि नाचै डोम्बि बापुरी ।
हे रे डोम्बी ! तोहिँ पूँछौं सद्भावे । आवै जाय डोम्बी ! केकरि नावें ।।
तन्त्री विकिनै डोम्बी और चंगेरा । तोहर कारण छाडी नल पेरा ।
तैं रे डोम्बी मैं कपाली । तोहों र कारण मैं लेलों हाडकै माली ।।
सरवर भाँगि डोम्बी खाइ मृणाल । मारहुं डोम्बि लेई पार ।।१०।।

(११—राग पटमंजरी)

नारी शक्ति दृढ धरिके खाटे । अनहद डमरू बजै वीर-नादे ।।
काण्ह कपाली जोगी पइठो आचारे । देह-नगरी विहरै एकाकारे ।।
आली-काली-घंटा-नूपुर चरणे । रवि-शशि-कुडल कियउ आभरणे ।।
राग-द्वेष-मोहे लाई छार । परम-मोक्ष लिये मुक्ताहार ।।
मारें उसासु-ननद घरें साली । मातु मारि काण्ह भइल कपाली ।।११।।

---

[1] सुरति=चित-एकाग्रता

(१८—राग गउडा)

तीन-भुअण मइँ बाहिअ हेलें। हँउ सूतेलि महासुह लीलें ॥
कइसनि डोम्बि तोहोंरि भाभरि आली। अन्तें कुलिण जण माँझें कवाली ॥
तँइ लो डोम्बी सअल बिटालिउ। काज ण कारण ससहर टालिउ।
केहों केहों तोंहोंरे विरुआ बोलइ। विदु जन लोअ तोरें कण्ठ न मेलइ ॥
काण्हे गाइ तू कामचँडाली। डोम्बि तआगलि नाहि छिनाली ॥१८॥

(१९—राग भैरवी)

भव-णिब्बाणें पड़इ मॉदला। मण-पवण-वेण्णि करँउ कशाला ॥
जअ जअ दुन्दुहि सद्द उछलिला। काण्हे डोम्बि-विवाहे चलिला ॥
डोम्बि विबाहिअ अहारिउ जाम। जउतुके किअ आणूतू धाम ॥
अहणिसि सुरअ-पसंगे जाअ। जोइणि जाले रअणि पोंहाअ ॥
डोंबिएँ संगे जोई रत्तो। खणह ण छाडअ सहज-उमत्तो ॥१९॥

(३६—राग पटमंजरी)

सुण्ण वाह तथता पहारी। मोह-भँडार लइ सअल अहारी ॥
घुमइ न चेवइ स-पर-विभागा। सहज-निदालु **काण्हिला** लाँगा ॥
चेअण ण वेअण भर निद गेला। सअल मुकल करि सुहे सुतेला ॥
सुअने मइँ देखिल तिहुअण सुण्ण। घोलिअ अवनागवण विहूण ॥
साखि करिब **जालंधरि**-पाए। पाखि न चहइ मोंरि पँडिआचाए ॥३६॥

(४२—राग कामोद)

चिअ सहजे सुण्ण सँपुण्णा। काँधवियोएँ मा होहि विसन्ना ॥
भण कइसे **काण्हा** नाही। फरइ अणुदिण तिलोएँ समाई ॥

(१८—राग गउडा)

तीन भुवन मैं गयरूँ हेलैं। मैं सूतलि महासुखें लीलैं॥
कैसन डोम्बि! तोर भाभर आली। अन्त कुलीन जन-मध्ये कपाली॥
तैं रे डोम्बी! सकल बिटालेंउ। कार्य न कारण शशधर टालेंउ॥
केंहु केंहु तोकहँ बरुआ बोलै। बड जन तोंके कठ न मेलै॥
काण्हा गावै तू काम-चडाली। डोम्बी त आगे नाहिं छिनाली॥

(१९—राग भैरवी)

भव - निर्वाणे पटह माँदला। मन-पवन दोऊ करौं कशाला॥
'जय' 'जय' दुंदुभि शब्द उचरिला। **काण्हे** डोम्बि-विवाहे चलिला॥
डोम्बि वियाहि अहारेंउ जन्म। जौतुक कियउ अनुत्तर-धर्म॥
अहनिशि सुरत-प्रसंगे जाय़। जोगिनि-जाले रजनि विताय॥
डोम्बी-संग जोउ रक्त। क्षण ना छाडै सहजुन्मत्त॥१९॥

(३६—राग पटमंजरी)

शून्य वाहे तथता प्रहारिय। मोह-भंडार लेंइ सकल अहारी॥
सुतै न चिन्तै स्व-पर-विभगा। सहज-निद्रालु **काण्हिला** नंगा॥
चेतन न वेदन भर-नींदि गेला। सकल मुक्त करि सुखे सुतेला॥
स्वप्ने मैं देखल त्रिभुवन शून्य। घोरि के अवनागवन - विहून॥
साखि करब **जालंधरपाद**। पास न देखौं मोंर पंडिताचार॥३६॥

(४२—राग कामोद)

चित्त सहजेहिं शून्य - सँपूर्णा। स्कंध-वियोगे ना होहु विषण्णा॥
भनु कैसे **काण्हा** नाहीं। फिरै अनुदिन तिलोक-समाई॥

मूढा दिठ नाट देखि काअर। भाँग तरंग कि सोषइ साअर ।।
मूढ ! अछन्ते लोअण पेक्खइ। दूध माँझें लउ अच्छन्ते ण देक्खइ ।।
भव जाई ण आवइ ण एथु कोई। अइस भावे विलसइ **काण्हिल** जोई ।।४२।।

(४५--राग मल्लारी)

मण-तरु पाँच इन्दि तसु साहा। आसा-बहल पात फल बाहा ।।
वर-गुरु-वअणें कुठारें छिज्जअ। **काण्ह** भणइ तरु पुण ण उइजअ ।।
बढइ सो तरू सुभासुभ पाणी। छेवइ विदु-जन गुरु-परिमाणी ।।
जो तरु छेवइ भेउ ण जाणइ। सड़ि पडिआँ मुढ ! ना भव माणइ ।।
सुण्णा तरुवर गअण-कुठार। छेवइ सो तरु-मूल ण डाल ।।४५।।

—चर्यापद[1]

(५) वज्रगीति[1]

कोल्लयि रे ठिअ बोला, मुम्मुणि रे कक्कोला।
घणे किपिट्टहों वज्जइ, करुणेकि अई न रोला ।।
तहि बल खज्जइ गाढ़े, मअ णा पिज्जिअई।
हले कलिञ्जल पणिअइ दुद्दुरु बज्जिअई ।।
चउसम कस्तुरि सिहला कप्पुर लाइअई ।।
मालइ-इंधन सलील तहि भरु खाइअई ।।
पेंखण खेट करन्ते सुद्धासुद्ध ण माणिअइ ।।
निरँ सुह अङ्ग चडाविअइ जस नावि पणिअइ ।।
मलअज कुन्दुरु बट्टइ, डिंडिम तहिँ णा वज्जिअइ ।।

—चर्यापद[2]

---

[1] J.D.L. Cal. XXX, p. 36 [2] J.D.L. Cal. XXVIII, p. 36

मूढ ! दृष्ट नष्ट देखि कातर। भांग तरंग कि सोखै सागर ॥
मूढ ! अछतै लोग न पेखै। दूध माँझ घृत अछत न देखै ॥
भव जाइ न आवै न एँहिँ कोई। ऐस भावहिँ विलसै **काण्हिल** योगी ॥२४॥

(४५—राग मल्लारी)

मन तरु पाँच इन्द्रि तसु साखा। आशा-वहुल पत्र-फल-वाहा ॥
वरगुरु-वचन कुठारेँहिँ छीजै। **काण्ह** भनै तरु पुनि न उपजै ॥
बढै सो तरू शुभाशुभ पानी। छेवै विदु-जन गुरु-परिमाणी ॥
जो तरु छेवै भेद न जानै। सड पड़ेँउघो मुढ ! न भव मानै ॥
शून्या तरुवर गगन-कुठार। छेवै सो तरु-मूल न डार ॥

—चर्यापद

(५) वज्रगीति[1]

कोल्लयि रे ठिअ बोला, मुम्मुणि रे कक्कोला।
घणे किपिट्टहोँ वज्जइ, करुणेकि अई न रोला ॥
तहि वल खज्जइ गाढ़े, मअ णा पिज्जिअई।
हले कलिञ्जल पणिअइ दुद्दुर बज्जिअई ॥
चउसम कस्तुरि सिहला कप्पुर लाइअई।
मालइ-इँधन सलील तहि भरु खाइअई ॥
पेंखण खेट करन्ते सुद्धासुद्ध ण माणिअइ।
निरँ सुह अङ्ग चडाविअइ जस नावि पणिअइ ॥
मलअज कुन्दुरु बट्टइ, डिंडिम तहिँ णा वज्जिअइ ॥

—चर्यापद

---

[1] J.D.L. Cal XXVIII, p. 36

§१३. गोरखनाथ (गोरक्षपा)

काल—८४५ (देवपाल ८०९-४९)। देश—गोरखपुर(?)। कुल···
कृतियाँ—(१) गोरखवानी[1], (२) वायुतत्त्वोपदेश[2]

१. आत्म-परिचय[3]

(१) मछेन्द्र (मत्स्येन्द्र)के शिष्य—

प्यंडे होइ तो मरै न कोई। ब्रह्मंडै देषै[4] सब लोई।
प्यंड ब्रह्मंड निरंतर वास। भणंत गोरष मछचंद्रका दास॥ (२५।७०)
गुदडी जुग च्यारि तैं आई। गुदडी सिध-साधिकां चलाई।
गुदडीमें अतीतका वासा। भणंत गोरख मछचंद्रका दासा॥ (६६।१९७)[5]

(२) चौरासी सिद्धोंसे संबंध

मन मछिंद्रनाथ पवन ईस्वरनाथ चेतना चौरंगीनाथ।
ग्यान श्रीगोरखनाथ। (पृष्ठ २०४)
नाद हमारै वाहै कवन। नाद बजाया तूटै पवन।
अनहद सबद बाजत रहै। सिध-संकेत श्रीगोरख कहै॥ (३७।१०६)
नौ नाथा नै चौरासी सिधा, आसणधारी हूव॥ (१३३।५)
आदिनाथ[6] नाती मछिंद्रनाथ पूता। व्यंद तोलै राषीले गोरष अवधूता॥ (पृ० ९१)

---

[1] डाक्टर पीतांवरदत्त बडथ्वाल सम्पादित—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (संवत् १९९९) [2] भोट-भाषानुवाद (तनजुर ४८।१५१)
[3] सब उद्धरण गोरखवाणी से पृष्ठ और पद्यांक
[4] ष का उच्चार ख और श दोनों होता है, यहां ख है।
[5] गोरखवानीकी भाषा ९वीं सदी नही पंद्रहवीं-सोलहवीं की है।
[6] जलंधरपाद (दे० पुरातत्त्व-निबंधावली, पृ० १६३)

२. दर्शन (चौरासी सिद्धोंका)

(१) सहजयान

हबकि न बोलिबा ठबकि न चालिबा धीरै धोखा पाँव।
गरब न करिबा सहजै रहिबा भणत गोरषराव ॥ (११।२७)
गिरही सो जो गिरहै काया। अभि-अंतरकी त्यागै माया।
सहज-सीलका धरै सरीर। सो गिरही गंगाका नीर ॥ (१७।४५)
निद्रा सुपनैं बिन्दु कूं हरै। पंथ चलंतां आतमाँ मरै।
बैठा षटपट ऊभां उपाधि। गोरख कहै पूता सहज-समाधि॥ (७०।२१२)
जिहि घर चंद-सूर नहिँ ऊगै, तिहि घरि होसी उजियारा।
तिहां जे आसण पूरौ तौ सहजका भरौ पियाला मेरे ज्ञानी ॥ (९०।४)
सहज-पलांण पवन करि घोड़ा, लै लगाम चित चबका।
चेतनि असवार ग्यान गुरू करि, और तजौ सब ढबका॥ (१०३।३)
सहज गोरखनाथ वणिजे कराई, पच बलद नौ गाई।
सहज सुभावै बाषर ल्याई, मोरे मन उड़ियानी आई॥ (१०४।१)
भणंत गोरखनाथ मछिंद्रका पूता, एढ्ढा वणिज ना अरथी।
करणी अपणी पार उतरणां, वचने लेणां साथी। (१०४।३)
काया गढ़ लेबा जुगे-जुग जीवा ॥टेक॥
काया गढ़ं भीतरि नौ लष खाई, जंत्र फिरै गढ़ लिया न जाई।१।
ऊचे नींचे परबत झिलमिल षाई, कोठड़ीका पाणी पूरण गढ़ जाई।
इहां नही उहां नहीं त्रिकुटी-मंझारी, सहज-सुनि मैं रहनि हमारी।३।
आदिनाथ नाती मछिन्द्रनाथ पूता, कायागढ़ जीति ले गोरष अवधूता।४। (१४३।३९)
त्रिभुवन डसती गोरखनाथ डीठी ॥टेक॥
मारौ स्रपणीं जगाई ल्यौ भौरा,
जिनि मारी स्रपणी ताकौ कहा करै जौंरा।१।
स्रपणीं कहै मैं अबला बलिया,
ब्रह्मा बिस्न महादेव छलिया।२।

माती माती म्रपनीं दसौ दिसि धावै,
गोरखनाथ गारुड़ी पवन वेगि ल्यावै । (१३९।३)
अवधू सहज हंसका षेल भणीजै, सुंनि हंसका बास ।
सहजै ही आकार निराकार होइसी, परम-ज्योति हंसका निवास । (१९१।४०)
अवधू सहज-सुनि उतपना आइ । समि सुनि सतगुरु बुझाइ ।
अतीत सुनिमैं रह्या समाइ । परम-तत्व मैं कहू समझाइ । (१९३।६२)
बांफ न निकसै बूद न ढलके, सहजि अंगीठी भरि भरि रांधै ।
सिध-समाधि योग-अभ्यासी, तब गुरु परचै साधै । (२१८।४४)

(२) मध्य-मार्ग

षांयें भी मरिये अणषांये भी मरिये । गोरख कहै पूता संजमि ही तरिये ।
मधि निरंतर कीजै बास । निहचल मनुवां थिर होइ सांस । (५१।१४६)

(३) अलख और निरंजन-तत्त्व—

घरबारी सो घरकी जाणै । बाहरि जाता भीतरि आणै ।
सरब निरंतरि काटै माया । सो घरबारी कहिये निरंजनकी काया । (१६।४४)
पंच तत्त ले सिधां मुडाया, तब भेंटि ले निरंजन-निराकारं ।
मन मस्त हस्ती मिलाइ अवधू, तब लूटि ले अषै भंडार । (२७।७७)
अलेष लेषंत अदेष देषंत, अरस-परस ते दरस जाणी ।
सुनि गरजंत वाजंत नाद, अलेष लेषंत ते निज प्रवाणी । (३२।९१)
उदय न अस्त राति न दिन, सरबे सचराचर भाव न भिन्न ।
सोई निरंजन डाल न मूल, सर्वव्यापिक सुषम न अस्थूल । (३९।१११)
माता हमारी मनसा बोलिये, पिता बोलिये निरजन-निराकारं ।
गुरु हमारै अतीत बोलिये, जिन किया पिण्डका उधारं । (६७।२०२)
नाद-विन्द गांठि प्रवानां । कवण घटि जोति कवण अस्थानां ।
कहा निरंजन बासा करही । कहाँ काली नागनी मीडक धरही ।। (१६६।१०)
कहाँ जलधर पवना मेला । उंद्र कहाँ बिलइया घेरा ।
सींगी नाद कहाँ जोगी पूरा । जीत्या संग्राम पुरिष भया सूरा ।। (१६६।११)

(४) शून्य और आकाशतत्त्व

आकाश-तत सदा-सिव जांण। तसि अभिअंतरि पद-निरवाण।
प्यंडे परचानैं गुरमुषि जोइ। बाहुडि आवागवन न होइ। (५७।१६८)
जोगी सो जो राषै जोग। जिभ्या यन्द्री न करै भोग।
अंजन छोड़ि, निरंजन रहै। ताकू गोरख योगी कहै॥ (७३।२३०)
सुनि ज माई सुनि ज बाप। सुनि निरजन आपै आप।
सुनिकै परचै भया सथीर। निहचल जोगी गहर-गंभीर॥ (७३।२३१)
अवधू मनका सुंनि रूप, पवनका निरालभ आकार।
दमकी अलेख दसा, साधिबा दसवैं द्वार॥ (१८७।८)
अवधू हिरदा न होता तब सुनि रहिता मन।
नाभी न होती तब निराकार रहिता पवन॥
रूप न होता तब अकुलान रहिता सबद।
गगन न होता तब अंतरष रहिता चंद॥ (१८६।२८)
स्वामी कौण तेज थैं जोति पलटै। कौण सुनि थे बाबा फुरै।
कौण सुंनि थैं त्रिभुवन सार। कौण सुंनि थैं उतरिबा पार॥ (१६८।६६)
अवधू सुंने आवै सुंने जाइ। सुने चीया रहे समाइ।
सहज-सुंनि मन-तन थिर रहै। ऐसा विचार मछिंद्र कहै॥ (१६५।७८)
अवधू सबद अनाहद सुरति सोचित। निरति निरालंभ लागै बध।
दुबध्या मेटि सहजमे रहै। ऐसा विचार मछिंद्र कहै। (१६६।८४)

(५) रहस्यवाद

सिष्टि-उतपती बेली प्रकास, मूल न थी, चढी आकास।
उरध गोढ़ कियौ विसतार, जाणनै जोसी करै विचार। (११६।१)
भणत गोरखनाथ मछिंद्रना पूता, मार्‍यौ मृघ भया अवधूता।
याहि हियाली जे कोई बूझै, ता जोगीको त्रिभुवन सूझै। (११६।५)

गुरु जी ऐसा करम न कीजै, ताथैं अमी-महारस छीजै ।। टेक ।।
दिवसै बाघणि मन मोहै राति सरोवर सोषै ।
जाणि बूझि रे मूरिष लोया घरि-घरि बाघणि पोषै ।।
नदी तीरै विरषा नारी संगै पुरषा अलप-जीवनकी आशा ।
मनथैं उपज मेर षिसि पड़ई ताथैं कंध विनासा ।।
गोड़ भये डगमग पेट भया डीला, सिर बगुलाकी पँखियाँ ।
अमी-महारस वाघणी सोष्या घोर मथन जैसी अंखिया ।।
बाँघिनीको निदिलै बाघनीको विदिलै बाघनी हमारी काया ।
बाघनी घोषि घोषि सुंदर षाये भणत गोरखराया ।३।
(१३७।४३)

बांधौ बांधौ वछरा पीओ पीओ षीर । कलि अजरावर होइ सरीर । टेक ।
आकासकी धेन वछा जाया । ता धेनकै पूछ न पाया ।१।
बारह वछा सोलह गाई । धेन दुहावत रैन बिहाई ।२।
अचरा न चरै धेन कटरा न षाई । पंच ग्वालियाँको गारण धाई ।
याही धेनक दूध जु मीठा । पीवै गोरखनाथ गगन बईठा ।। (१४७।५१)
साँभलि राजा बोल्या रे अवधू । सुणै अनोपम वाणी जी ।
निरगुण नारी सूं नेह करंता । झबकै रैणि बिहाणी जी । टेक ।
डाल न मूल पत्र नहि छाया । बिण जल पिंगुला सीचै जी ।
बिणही मढ़ीयां मंदला बाजै । यण विधि लोका रीझै जी ।१।
चीट्यां परबत ढोल्या रे अवधू । गायां बाघ बिडारचा जी ।
सुसलै समदा लहरि मनाई । मृघा चीता मारचा जी ।।
ऊझड़ि मारगि जाता रे अवधू । गुर विन नहीं प्रकासा जी ।
जीत्या गोरष अब नहीं हारै । समझि ररालै पासा जी । (१५३।५७)
गोरष बालड़ा बोलै सतगुरु वाणी रे ।

जीवता न पररायाँ तेन्हैं अगनि न पांणी' रे ॥ टेक ॥
षीलौ दूझै भैंसि बिरोलै, सासूड़ी पालनड़ै बहुड़ी हिंडोलै ।१।
कोयल मोरी आंबौ वास्यौ, गगन मछलड़ी बगलौ ग्रास्यौ ।२।
करसन पाकू रषवालू षाधू, चरि गया मृघला पारधी बांधू ।३।
सींगी नादै जोगी पूरा, गोरखनाथ परन्या तिहाँ चंद न सूरा । (१५५।६०)

३–साधना और उलटवाँसी

(१) साधना

बैठा अवधू लोकी षूँटी, चलता अवधू पवनकी मूठी ।
मोवता अवधू जीवता मूवा, बोलता अवधू प्यंजरै सूवा । (२५।७१)
दृष्टि अग्रे दृष्टि लुकाइबा सुरति लुकाइबा कानं ।
नासिका अग्रे पवन लुकाइवा, तब रहि गया पद निर्वान । (२७।७५)
उलटया पवना गगन समोइ, तब बालरूप परतषि होइ ।
उदै ग्रहि अस्त हेम ग्रहि पवन मेला, बँधिलै हस्तिया निज साल भेला ॥ (३१।८८)
अहंकार तूटिबा निराकार फूटिबा, सोषीला गंग-जमनका पानी ।
चंद-सूरज दोऊ सनमुषि राखीला, कहो हो अवधू तहाँकी सहिनाणी ॥
(३६।११३)
अवधू रवि अमावस चंद सु पड़िवा । अरधका महारस ऊरध ले चढ़िवा ॥
गगन अस्थाने मन उनमन रहै । ऐसा विचार मछिंद्र कहै ॥ (१८८।१८)
षरतर पवना रहै निरंतरि । महारस सीझै काया अभिअंतरि ।
गोरख कहै अम्हे चंचल ग्रहिया । सिव-सक्ती ले निज घर रहिया ॥ (४५।१३०)

(२) उलटवाँसी

गगनि-मंडलि मै गाय बियाई कागद दही जमाया ।
छाछि छाँड़ि पिंडता पीनी सिधा माषण खाया ॥ (६६।१९६)

नाथ बोले अमृत वाणी वरिषैगी, कंबली भीजैगा पाणी । टेक ।

गड़ि पड़रवा बाँधिलै षूंटा, चलै दमामा बाजि ले ऊँटा ।१।

कउवाकी डाली पीपल बासै, मूसाकै सबद बिलइया नासै ।२।

चले बटावा थाकी बाट, सोवे डुकरिया ठौरे षाट ।३।

ढूकि ले कूकुर भूकि ले चोर, काढै धणी पुकारै ढोर ।४।

ऊजड षेड़ा नगर-मझारी, तलि गागरि ऊपर पनिहारी ।५।

मगरी परि चूँल्हा धूंधाइ, पोवणहाराकौ रोटी खाइ ।६।

कामिनि जलै अँगीठी तापै, बिच वैसंदर थरहर काँपै ।७।

एक जु रढिया रढती आई, बहू बिबाई सासू जाई ।८।

नगरीकौ पाणी कई आवै, उलटी चरचा गोरख गावै । (१४१।४७)

४—गोरखका संदेश

(१) रुढि-खण्डन

अबूझि बूझि लै हो पंडिता, अकथ कथिलै कहाणी ।

सीसनवावत सतगुरु मिलिया, जागत रैण विहाणी । (७२।२२२)

मेरा गुरु तीनि छंद गावै,

ना जाणौं गुर कहाँ गैला, मुझ नींदड़ी न आवै ॥ टेक ॥

कुम्हराकै घरि हाँडी आछै, अहीराके घरि साँडी ।

बमनाकै घरि राड़ी आछै, राड़ी, साँडी हाँड़ी ।१।

राजाकै घरि सेल आछै, जंगल-मधे बेल ।

तेलीके घरि तेल आछै, तेल-बेल-सेल ।२।

अहीरकै घरि महकी आछै, देवल-मध्ये ल्यंग ।

हाटी-मधे हींग आछै, हींग, ल्यंग, स्यंग ।३।

एकै सुत्रैं नाना वणियाँ, वहु भांति दिखलावै ।

भणंत गोरष त्रिगुणी माया, सतगुर होइ लषावै ।

(१३६।४२)

सयम चितवो जुगत अहार। न्यंद्रा तजौ जीवनका काल।
छाड़ौ तंत-मंत वेदंत। जंत्रं गुटिका धात पषंड।
(१७०।४)

जड़ी-बूटीका नाव जिनि लेहु। राज-दुवार पाव जिनि देहु।
थंभन मोहन वसिकरन छाड़ौ औचाट। सुणौ हो जोगेसरो जोगारंभकी वाट।
(१७०।५)

नैण महारस फिरौ जिनि देस। जटा भार बँधौ जिनि केस।
रुष-विरष-बाड़ी जिनि करो। कूवा-निवाण षोदि जिनि मरौ। (१७६।७)
छोड़ौ वैद-वणज-व्यौपार। पढ़िवा गुणिवा लोकाचार। (१७०।६)
पूजा-पाठ जपौ जिनि जाप। जोग मांहि विटंबौ आप।
जड़ी-बूटी भूलै मति कोइ। पहली राँड वैदकी होइ।
जड़ी-बूटी अमर जे करे। तौ वैद धनंतर काहे को मरै। (१७७।१७)
सोनै रूपै सीझै काज। तौ कत राजा छोड़ै राज।
पसुवा होइ जपै नहिं जाप। सो पसुवा भोंपि क्यों जात। (१७७।१८)

(२) राजा-प्रजाको समान देखना—

निसपती जोगी जानिबा कैसा। अगनी पाणी लोहा माने जैसा।
राजा-परजा सम करि देष। तब जानिबा जोगी निसपतिका भेष। (४८।१३९)

(३) भोगमें योग

भग-मुषि व्यंद अगनि-मुष पारा। जो राखै सो गुरू हमारा। (४९।१४२)
षायें भी मरिये अणषायें भी मरिये। गोरख कहै पूता संजमि ही तरियै।
मधि निरंतर कीजै बास। निहचल मनुवा थिर होइ साँस। (५१।१४६)
आओ देबी बैसो। द्वादिस अंगुल पैसो
पैसत पैसत होइ सुष। तब जनम-मरनका जाइ दुष। (५३।१५५)
स्वामी काचीं बाई काचा जिंद। काची काया काचा विंद।
क्यूँ करि पाकै क्यूँ करि सीझै। काची अगनी नीर न षीजै॥ (५४।१५६)

§ १४. टेंडण(तंति)पा

काल—८४५ (देवपाल-विग्रहपाल ८०९–४९–५४)। देश—अवंतिनगर

(३३—राग पटमंजरी)

टालत (नगरत) मोर घर नाहि पडिवेशी।
हाँडीत भात नाहि निति आवेशी॥
वेङ्गस साप बड्हिल जाअ।
दुहिल दुधु कि वेन्टे समाअ॥
बलद बिआअल गविआ बाँझे।
पिटहु दुहिअइ ए तिनो साँझे॥
जो सो बुधी सोध नि-बुधी।
जो सो चोर सोई साधी।
निति सिआला सिंहे सम जूझअ।
टेण्टण पाएर गीत बिरले बूझअ॥३३॥

§ १५. मही(महीधर)पा

काल—८७५ (विग्रहपाल-नारायणपाल ८५०–५४–९०८)। देश—मगध।

(१६—राग भैरवी)

तीनिए पाटें लागेलि अणहअ सन घण गाजइ।
ता सुनि मार भयंकर विसअ-मंडल सअल भाजइ॥
मातेल चीअ-गएन्दा धावइ। निरँतर गअणँत तुसे (रवि-ससि) घोलइ॥
पाप-पुण्ण वेण्णि तोडिअ सिँकल मोडिअ खम्भा ठाणा।
गअण-टाकली लागेलि रे चित्त पइट्ठ णिबाणा॥
महरस पाने मातेल रे तिहुअन सअल उएखी।
पंच विसअ-नायक रे विपख कोबि न देखी॥
खर रवि-किरण सँतापें रे गअणङ्गण जइ पइठा।
भणन्ति **महिआ** मइ एथु बुडन्ते किम्पि न दिठ॥१६॥

—चर्यापद

§ १४. टेंडण(तंति)पा

(उज्जैन)।, कुल—तँतवा (कोरी), सिद्ध (१३)। कृति—चतुर्योग-भावना।

(३३—राग पटमंजरी)

नगर-माँझ मोर घर, नाहि पडोसी।
हाँडीते भात नाहीं नित्य आवेशी॥
बेंगेहिं साँप बधिल जाय।
कच्छू दूध कि मेंटे समाय॥
बरध बियाइल गैया बाँझी।
मेंटहि दूहिय तीनों साँझी॥
जो सो बुद्धी सोइ निर्बुद्धी।
जो सो चोर सोई साहु॥
नित्य सियारा सिंह से जूझै।
टेंटणपा कै गीति बिरलै बूझै॥३३॥

§ १५. मही(महीधर)पा

कुल—शूद्र। कृतियाँ—वायुतत्त्व-दोहागीतिका।

(१६—राग भैरवी)

तीन पाटे लागल अनहद-स्वन घन गाजै।
तेहि सुनि मार भयंकर विषय-मंडल सकल भाजै॥
मातल चित्त-गयन्दा धावै, निरंतर गगनते तुष (रवि-शशि) घोलै।
पाप-पुण्य द्वैत तोडि साँकल मरोडी खम्भा-थान।
गगन टकटकी लागलि रे चित्त पइठ निर्वाण॥
महारस पाने मातल रे त्रिभुवन सकल उपेक्षी।
पंच विषय-नायकरे विपख काहु न देखी॥
खर-रवि किरण संतापेहिं गगनांगण जाइ पइठा।
भणै **महीआ** मैं एहिँ बूडत किछू न दीठा॥१६॥
—चर्यापद

§ १६. भादे(भद्र)पा

काल---८७५ (विग्रहपाल-नारायणपाल ८५०-५४-९०८)। देश---श्रावस्ती।

(३५---राग मल्लारी)

एत काल हाँउ अच्छिल स्वमांहें।
एवें मइ बूझिल सद्गुरु-बोहें॥
एवें चिअ-राअ मोकू णठा।
गअण-समुद्दे टलिआ, पइठा॥
पेखमि दह दिह सर्वइ सुन्न।
चिअविहुन्ने पाप न पुन्न॥
बाजुले दिल मो लक्ख भणिआ।
मइ अहारिल गअणत पणिआ॥
भादे भणइ अभागे लइला।
चिअ-राअ मइ अहार कइला॥३५॥

---चर्यापद

§ १७. धाम(धर्म)पा

काल---८७५ ई० (विग्रहपाल - नारायणपाल ८५०-५४-६०)। देश---विक्रमशिला (भागलपुर)। कुल---ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (१६)।

(४७---राग गुर्जरी)

कम-कुलिश माँझे भमई लेली।
समता-जोएँ जलिल चण्डाली॥
डाह डोम्बिघरे लागेलि आग्गी।
ससहर लइ सिंचहु पाणी॥

§ १६. भादे(भद्र)पा

कुल—चित्रकार, सिद्ध (३२)। कृतियाँ—चर्यापद (गीति)

(३५—**राग मल्लारी**)

एतन काल हौं रलों स्वमोहे।
　　　　अब मैं बुझलों सद्गुरु-बोधे॥
अब चित्त-राग मोरा नष्टा।
　　　　गगन-समुद्रे टलिके पइठा॥
पेखौं दश-दिशि सर्वहि शून्य।
　　　　चित्त-विहूने पाप न पुण्य॥
बाजुल ने दीलो मोहिँ लक्ष्य भानी।
　　　　मैं आहारिल गगनसें पानी॥
भादे भनै अभागे लियेँउ।
　　　　चित्त-राग मैं आहार कियेँउ॥३५॥

—चर्यापद

§ १७. धाम(धर्म)पा

कृतियाँ—कालि-भावना-मार्ग, सुगतदृष्टि-गीतिका, हुँकार-चित्त-विंदु-भावना-क्रम।

(४७—**राग गुर्जरी**)

कमल-कुलिश माँझे भ्रमई लेली।
　　　　समता-योगेहि ज्वलिल चँडाली॥
डाह डोम्बि-घरे लागलि आगी।
　　　　शशधर लेइ सीँचहु पानी॥

णउ खरे जाला धूम ण दीसइ।
मेरु-सिहर लइ गअण पईसइ ॥
दाढ़इ हरि-हर-ब्रह्मण नाडा (भट्टा)।
दाढ़इ नव-गुण-शासन पाडा (पट्टा) ॥
भणइ धाम फुड़ लेहु रे जाणी।
पञ्चनालें उठे (ऊध) गेल पाणी ॥
—चर्यापद

३ : दसवीं सदी

§ १८. देवसेन

काल—९३३ ई०। देश—धारा (मालवा)में रहे। कुल—जैन साधु।

(१) सदाचार-उपदेश

दुज्जणु सुहियउ होउ जगि, सुयणु पयासिउ जेण।
अमिउ विसे वासस तमिण, जिम मरगउ कच्चेण ॥२॥
महु आसायउ थोडउबि, णासइ पुण्णु बहुत्तु।
बइसाणरहँ तिडिक्कडँइ, काणणु डहइ महन्तु ॥२३॥
जूँए धणहु ण हाणि पर, वयहँ मि होइ विणासु।
लग्गउ कट्ठु ण डहइ पर, इयरहँ डहइ हुयासु ॥३८॥
बेसहि लग्गइ धनिय धणु, तुट्टइ बंधउ मित्तु।
मुच्चइ णरु सब्बइँ गुणहँ, बेसाघरि पइसन्तु ॥४४॥
मुक्कइँ कूड-तुलाइयइँ, चोरी मुक्की होइ।
अह न वणिज्जइँ छाडियइँ, दाणु ण भग्गइ कोइ ॥४९॥
मण-वय-कामहि दय करहिँ, जेम ण ढुक्कइ पाउ।
उरि सण्णाहि वद्धइण, अवसि न लग्गइ धाउ ॥६०॥

नहिँ खरे ँ ज्वाल धूम न दीसै।
मेरु-शिखर लेइ गगन पईसै ॥
डाहै हरि-हर-ब्रह्म भट्टा।
डाहै नव-गुण-शासन पट्टा ॥
भनै धाम फुर लेहु रे जानी।
पच नालेहिँ उठि गइल पानी ॥४७॥

—चर्यापद

३ : दसवीँ सदी

§ १८. देवसेन

कृतियाँ—सावयधम्म-दोहा।

(१) सदाचार-उपदेश

दुर्जन सुखियहु होहु जग, सुजन पकासेँउ जेहि।
अमृत विषे वासर तमसि, जिमि मर्कत कांचेन ॥२॥
मद-आस्वादन थोडहू, नाशइ पुण्य वहुत्त।
वैश्वानर चिगारियउ, कानन डहै महन्त ॥२३॥
जूएँहि धनको हानि पुनि, धर्महु होत विनाश।
लागो काठ न डहइ वरु, अन्यहु डहइ हुताश ॥३८॥
वेश्यहि लागहिँ धनिक-धन, छूटइ बांधव-मित्र।
मुंचइ नर सर्वहि गुणहि, वेश्या-घर पइसन्त ॥४०॥
मुँचै कूट-तुलादिते, चोरी-मुक्ती होइ।
अथन वणिज्जहि छाँड तो, दान न माँगइ कोइ ॥४२॥
मन-वच-कर्महि दया करु, जिमिना ढुक्कइ पाप।
उर सन्नाहे बाँधतो, अवशि न लागइ घाव ॥६०॥

भोगहँ करहि पमाणु जिय, इंदिय म करिसि दप्प ।
हुंति ण भल्ला पोसिया, दुद्धें काला सप्प ॥६५॥

लोह् लक्ख विसु सणु मयणु, दुट्ठ-भरणु पमु-भार ।
कंडि अणत्थइं पिडि-पडिइ, किमि तरइहि संसार ॥६७॥

एहु धम्मु जो आयरइ, बभणु सुद्दु'वि कोइ ।
सो सावउ कि सावयहँ, अण्णु कि सिरिमणि होइ ॥७६॥

(२) दान-महिमा

जइ गिहत्थ दाणेण विणु, जगिव भणिज्जइ कोइ ।
ता गिहत्थ पंखि वि इवइ, जें घरु ताइवि होइ ॥८७॥

धम्म करउँ जइ होइ धणु, इहु दुव्वयणु म बोल्लि ।
हक्कारउ जमभटतणउ, आवइ अज्जु कि कल्लि ॥८८॥

काइँ बहुत्तइ संपयइँ, जइ किविणहँ घर होइ ।
उयहि-णीरु खारें भरिउ, पाणिउ पियइ न कोइ ॥८९॥

(३) धर्माचरण-महिमा

धम्मे सुहु पावेण दुहु, एक पसिद्धउ लोइ ।
तम्हा धम्मु समायरहि, जेहिय इंछिउ होइ ॥१०१॥

काइँ बहुत्तइँ जंपियइँ, जं अप्पह पडिकूल ।
काइँ मि परदु ण तं करहि, एहजि धम्महु मूल ॥१०४॥

(४) धर्माचरण

धम्मु विसुद्धउ तं जि पर, जं किज्जइ काएण ।
अहवा तं धणु उज्जलह, जं आवइ णाएण ॥११३॥

रूवहु उप्परि रइ म करि, णयण णिवारइ जंत ।
रूवासत्त पयंगडा, पेक्खइ दीवि पडंत ॥१२६॥

गुणवन्तह सइ संगु करि, भल्लिम पावहि जेम ।
सुमण सुपत्त विवज्जियउ, वरतरु वुच्चइ केम ॥१४१॥

भोगहिँ मात्रा करहु जिय, इन्द्रिय ना करु दर्प ।
　　होत भला नहिं पोसिया, दूधें काला सर्प ॥६५॥
लोह, लाख, विष-सन, मयन, दुष्ट-भरण पशु-भार ।
　　छांडि अनर्थहि पिड पडि, किमि तरिहै संसार ॥६७॥
एहि धर्महि जो आचरइ, ब्राह्मण, शूद्रहु कोइ ।
　　सो श्रावक किं श्रावकहिँ, अन्य कि सिर-मणि होइ ॥७६॥

(२) दान-महिमा

यदि गृहस्थ दानहि विना, जगमें भणियत कोइ ।
　　तो गृहस्थ पछिहु इवै, जे घर ताहउ होइ ॥८७॥
धर्म करौ यदि होइ धन, एँहु दुर्वचन न बोल ।
　　हंकारउ जम-भटनते, आवइ आज कि कालि ॥८८॥
काह बहूतहिँ संपदहि, यदि कृपणहिँ घर होइ ।
　　उदधि-नीर खारे भरें उ, पानिउ पियै न कोइ ॥८९॥

(३) धर्माचरण-महिमा

धर्महि सुख पापहि दुख, एह प्रसिद्धउ लोक ।
　　ताते धर्म समाचरहु, जे हिय-वांछित होइ ॥१०१॥
काइ बहूते जल्पने, जो अपने प्रतिकूल ।
　　काहू दुख सो ना करइ, एँहु जे धर्मकों मूल ॥१०४॥

(४) धर्माचरण

धर्म विशुद्ध सोइ पर, जो कीजइ कामेन ।
　　अथवा सो धन उज्ज्वल, जो आवइ न्यायेन ॥११६॥
रूपहि ऊपर रति न करु, नयन निवारहु जांत ।
　　रूपासक्त पतंगडा, पेखहु दीप पडन्त ॥१२६॥
गुणवानैं सह संग करु, भल्लो पावइ जेमु ।
　　सुमन-सुपत्रन-वर्जितउ,, वरतरु कहियतु केमु ॥१४१॥

अण्णाएँ आवंति जिय, आवइ धरण ण जाइ।
उम्मग्गें चल्लंत यहँ, कंटइँ मज्जइ पाउ ॥१४५॥
कूड-तुला-माणाइयहं, हरि-करि-खर-विस-मेस।
जो णच्चइ णट्टु पेखणउ, सो गिण्हइ बहु-वेस ॥१६२॥
दुल्लहु लहि मणुयत्तणउ, भोयह पेरिउ जेण।
लोह कंजि दुत्तर तरणि, णाव विदारिय तेण ॥२२१॥

§ १९. तिलोपा[1]

काल—९६० ई० (राज्यपाल-गोपाल द्वि०-विग्रहपाल द्वि० ९०८-४०-६०-८०)। देश—भिगुनगर (मगध)। कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (२२)

(१) सहज-मार्ग

सहजें भावाभाव ण पुच्छह। सुण्ण करुण तहि समरस इच्छअ ॥२॥
मारह चित्त णिबाणें हणिआ। तिहुअण सुण्ण णिरंजन पलिआ ॥३॥
आइ-रहिअ एहु अन्तर-हिअ। वर-गुरु-पाअ अद्दअ कहिअ ॥६॥
बढ़! अणँ लोअ-अगोअर तत्त, पंडिअ लोअ अगम्म।
जो गुरु पाअ पसण्ण..,तहिँ की चित्त अगम्म ॥८॥

(२) निर्वाण-साधना

सअ-संवेअण तत्त-फल, **तीलोपाअ** भणन्ति।
जो मण-गोअर पइठई, सो परमत्थ ण होन्ति ॥९॥
सहजें चित्त विसोहहु चङ्गा। इह जम्महि सिधि मोक्खा भंगा ॥१०॥
अद्दअ-चित्त तरुअरा, गउ तिहुअण वित्थार।
करुणा फुल्लिअ फलधरा, णउ परता उआर ॥१२॥

---

[1] J.D.L. XXVIII, pp. 1—4

अन्याये आवइ यदि, आवइ धरें उ न जाइ ।
उन्मार्गें चल्लन्त कहं, कंटक भंजइ पाउ ॥१४५॥
कूट-तुला-मानादि कहं, हरि-करि-खर-विष-मेष ।
जो नाचइ नट प्रेक्षणउ, सो गृण्हइ बहु-वेष ॥१६२॥
दुर्लभ लहि मनुजत्व कहं, भोगेहि प्रेरें उ येन ।
लोह-लाइं दुस्तर तरणि, नाव विगाडें उ तेन ॥२२१॥

§ १६. तिलोपा

कृतियाँ—निवृत्तिभावनाक्रम, करुणाभावनाधिष्ठान, दोहा-कोष, महामुद्रोपदेश।

(१) सहज-मार्ग

सहजे भावाभाव न पूछिय। शून्य-करुण तँह सम-रस इच्छिय ॥२॥
मारहु चित निर्वाणे हनिया। त्रिभुवन शून्य निरंजन पेलिया ॥३॥
आदि-रहित एहु अन्त-रहित। वर-गुरु-पाद अद्वय कथित ॥६॥
मूढ-जन-लोग-अगोचर तत्त्व, पंडित लोग-अगम्य।
जो गुरुपाद प्रसन्न (हो), तेहि की चित्त-अगम्य ॥८॥

(२) निर्वाण-साधना

स्वक-संवेदन[1] तत्त्व-फल, **तीलोपाद** भणन्ति ।
जो मन-गोचर पइठै, सो परमार्थ न होन्ति ॥६॥
सहजे चित्त विशोधहु चंगा। इहँ जन्महि सिद्धि मोक्षा भंगा ॥१०॥
अद्वय-चित्त तरुवरा, गउ त्रिभुवन विस्तार।
करुणा फूली फलधरा, नहि परतो उपकार ॥१२॥

---

[1] **स्वकीय अनुभव**

पर अप्पाण म भन्ति करु, सअल णिरन्तर बुद्ध ।
तिहुअण णिम्मल परम-पउ, चित्त सहावें सुद्ध ॥१३॥

(३) निरंजन-तत्त्व

सचल णिचल जो सअलाचार । सुण्ण णिरंजन म करु विआर ॥१४॥
एहु से अप्पा एहु जगु जो परिभावइ । णिम्मल चित्त सहाव सो कि बुज्झइ ॥१५॥
हँउ जग हँउ बुद्ध हँउ णिरंजण । हँउ अमणसिआर भव-भंजण ॥१६॥
मणह भअवा खसम म अवई । दिवाराति सहजे राहीअइ ॥१७॥
जम्म-मरण मा करहु रे भन्ति । णिअ-चिअ तहीँ णिरन्तर होन्ति ॥१८॥

(४) तीर्थ-देव-सेवा बेकार

तित्थ तपोवण म करहु सेवा । देह सुचीहि ण सन्ति पावा ॥१९॥
बम्हा-विहणु-महेसुर देवा । बोहिसत्त्व मा करहू सेवा ॥२०॥
देव म पूजहु तित्थ ण जावा । देवपुजाही मोक्ख ण पावा ॥२१॥
बुद्ध अराहहु अविकल-चित्तें । भव णिब्बाणे म करहु थित्तें ॥२२॥

(५) भोग छोड़ना बुरा

जिम विस भक्खइ, विसहि पलुत्ता ।
तिम भव भुञ्जइ भवहि ण जुत्ता ॥२४॥
खण आणंद भेउ जो जाणइ । सो इह जम्महि जोइ भणिज्जइ ॥२८॥
हँउ सुण्ण जगु सुण्ण तिहुअण सुण्ण । णिम्मल सहजें ण पाप ण पुण्ण ॥३४॥
जहि इच्छइ तहि जाउ मण, एत्थु ण किज्जइ भन्ति ।
अध उघाडि आलोअणें, झाणें होइ रे थित्ति ॥३५॥
—दोहाकोष[1]

---

[1] J.D.L. Cal. XXVIII, pp. 1—4

पर-आपा न भ्रान्ति करु, सकल निरन्तर बुद्ध ।
त्रिभुवन निर्मल परम-पद, चित्त स्वभावे शुद्ध ।।१३।।

(३) निरंजन-तत्त्व

सचल निचल जो सकलाचार । शून्य-निरंजन न करु विचार ।।१४।।
ऍहु सो आपा ऍहु जग जो परिभावे । निर्मल चित्त-स्वभाव सो का बूझै ।।१५।।
हौं जग हौं बुद्ध हौं निरंजन । हौं अ-मनसिकार भव-भंजन ।।१६।।
मन भगवान् ख-सम[1] भगवती । दिवा-रात्रे सहजे रहई ।।१७।।
जन्म-मरण न करहु रे भ्रान्ति । निज चित्त महा निरन्तर होन्ति ।।१८।।

(४) तीर्थ-देव-सेवा बेकार

तीर्थ-तपोवन न करहु सेवा । देह शुची ना होव पापा ।।१९।।
ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर-देवा । बोधिसत्त्व ना करहु रे सेवा ।।२०।।
देव न पूजहु तीर्थ न जावा । देवपूजतें मोक्ष न पावा ।।२१।।
बुद्ध अराधहु अ-विकल चित्ते । भव-निर्वाणे न करहु स्थित्वे ।।२२।।

(५) भोग छोड़ना बुरा

जिमि विष भक्षै विषहिं प्रलुप्ता ।
तिमि भव भोगे भवहिं न युक्ता ।।२४।।
क्षण-आनंद भेद जो जानै । सो एहि जन्महि जोगि भनीजै ।।२८।।
हौं शून्य जग शून्य त्रिभुवन शून्य । निर्मल-सहजे न पाप न पुण्य ।।३४।।
जँह इच्छै तँह जाउ मन, एहिं न कीजै भ्रान्ति ।
अधो उघारि अवलोकने ध्याने होउ रे स्थिति ।।३५।।

—दोहाकोष

---

[1] शून्य समान

§ २०. पुष्पदंत (पुप्फयंत)

काल—९५९-७२ (राष्ट्रकूट कृष्ण[1] तृतीय खोट्टिग[2] के समकालीन)। देश—अज या यौधेय (दिल्ली) में जन्म, मान्यखेट[3] (मालखेड़, हैदराबाद-दक्खिन) में रचना।

१–आत्म-परिचय

(१) कृष्णराजके स्कंधावार (सेना-केम्प) में

उव्वद्ध-जूडु भू-भंग-भीसु। तोडेप्पिणु चोडहों तणउ सीसु।
भुवणेक्कराम रायाहिराउ। जहिँ अच्छहि तुडिगु[4] महाणुभाव।
तं दीण दिण्ण-धण-कणय-पयरु। महि परिभमंतु मेपाडि[5]-णयरु।
अवहेरिय-खल-यणु गुण-महंतु। दियहेहिँ पराइयु पुप्फयंतु।
दुग्गम दीहर-पंथेण रीणु। णव-यंदु जेम देहेण खीणु।
तरु कुसुम-रेणु-रंजिय-समीरि। मायंद-गोंछ-गोंदलिय-कीरि।
णंदण-वणि किर वीसमइ जाम। तहिँ विण्णि पुरिस संपत्त ताम।
पणवेप्पिणु तेहिँ पवुत्तु एँव। "भो खंड-गलिय-पावावलेव।
परिभमिर-भमर-रव-गुमगुमंति। किंकर णिवसहि णिज्जण-वणंति।
करि सर वहिरिय-दिच्चक्कवाल। पइसरहि ण किं पुरवरि विसालि?"

---

[1] ९३९ में गद्दी पर बैठा। चोल-युवराज राजादित्यको ९४९ ई० में मार कर कुमारी तक सारे दक्षिण पर प्रभाव। इसके परमार श्रीहर्ष (मालव-राज सीयक), और कलचूरी भी आधीन सामन्त। ९६८ (?) में मृत्यु। अपने समयका सबसे बड़ा भारतीय राजा।

[2] खोट्टिग, कृष्णका पुत्र, शासनकाल ९६८-७२। ९७२में मालवराज श्रीहर्ष (सीयक ९४९-७२, वाक्पतिराज मुंजका पिता) ने मान्यखेटको ध्वस्त किया। राष्ट्रकूट-शक्ति (५७०-७२) समाप्त।

[3] राष्ट्रकूट-राजधानी ८१५-९७२ ई०

[4] राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय

[5] मेलपाटी (उत्तरी-अर्काट)

§ २०. पुष्पदंत (पुप्फयंत)

कुल—ब्राह्मण, दर्बारी कवि। कृतियाँ[1]—महापुराण[2] (तिसट्ठि-महापुरिसगुणालंकार), जसहर चरिउ[3] (यशोधर-चरित), नायकुमार-चरिउ[4] (नागकुमार-चरित)।

१—आत्म-परिचय

(१) कृष्णराजके स्कंधावार (सेना-केम्प)में

उद्-बद्ध-जूट भ्रूभंग-भीष। तोडें वियउ चोलहिंकेर शीर्ष।
भुवन्-एकराम राजाधिराज। जहँ आछैं तुडिग महानुभाव।
सो दीन दत्त-धन-कनक-प्रवर। महि परिभ्रमंत मेपाडि नगर।
अवधीरिय खल-जन गुण-महंत। दिवसें हिँ तहँ आयेँउ पुष्पदन्त।
दुर्गम-दीरघ-पंथे 'वतीर्ण। नव-चंद्र जिमी देहेंहिं क्षीण।
तरु-कुसुम-रेणु-रंजित समीर। माकंद-गुच्छ गोंदलिय[5] कीर।
नंदनवन फुरि विश्रमै जहाँ। तब दोउ पुरुष आयेउ तहाँ।
प्रणमीया तेहीं कहेँउ एम। "हे खंड-गलित-पापावलेप।
परिभ्रमत भ्रमर-रव-गुगगुमंत। क्यों कर निवसहु निर्जन-वनांत?
करि सर वाहिर-दिक् चक्रवाल। पइसहु न क्यों पुर-वर-विशाल?"

---

[1] भरत और नल दोनों पिता पुत्र (राजमंत्री) पुष्पदन्तके आश्रयदाता।

[2] डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैन-ग्रंथ-माला (बंबई)में संपादित (१९३७, १९४०, १९४१) तीन जिल्द।

[3] डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा करंजा-जैन-ग्रंथ-माला (करंजा, बरार) में संपादित १९३१ ई०

[4] प्रो० हीरालाल जैन द्वारा देवेन्द्र-जैन-ग्रंथ-माला (करंजा, बरार) में सम्पादित १९३३ ई०

[5] चबाया

तं सुणिवि भणइ अहिमाण-मेरु । "वरि खज्जइ गिरि-कंदरि-कसेरु ।
णउ दुज्जण-भउँहा-वंकियाइँ । दीसंतु कलुस-भावंकियाइँ ।
घत्ता । वर णरवरु धवलच्छिहे होउ, मा कुच्छिहे मरउ सोणि मुहणिग्गमे ।
खल-कुच्छिय-पहु-वयणइँ भिउडिय णयणइँ म णिहालउ सूरुग्गमे ॥३॥
चमराणिल उड्डाविय-गुणाइ । अहिसेय-धोय-सुयणत्तणाइ ।
अविवेयइ दप्पुत्तालियाइ । मोहंधइ मारण-सीलियाइ ।
विससह जम्मइ जड रत्तियाइ । किं लच्छिइ विउस-विरत्तियाइ ।
संपइ जणु णीरसु णिव्विसेसु । गुणवंतउ जहिं सुरगुरु[1] वि वेसु ।
तहिँ अम्हइ काणणु जि सरणु । अहिमाणे सहुँव वरि होउ मरण ।"
... .पडिवयणु दिण्णु णायर-णरेहिँ ।

(२) आश्रयदाता मंत्री भरतकी प्रशंसा

घत्ता । "जण-मण-तिमिरोसारण मय-तरु वारण, णिय-कुल-गअण-दिवायर ।
भो भो केसव-तणुरुह ! णव-सररुहु-मुह कव्व-रयण-रयणाअर ! ।
बंभंड-मंडवारूढ-कित्ति । अणवरय-रइय-जिणणाह-भत्ति ।
सुहतुंग-देव-कम-कमल-भसलु । णीसेस-सकल-विण्णाण-कुसलु ॥
पायय-कइ-कव्व-रसाव उद्धु । संपीय सरासइ-सुरहि-दुद्धु ।
कमलच्छ अमच्छरु सच्च-संधु । रण-भर-धुर-धरणुग्घुट्ठ-खंधु ॥
सविलास-विलासिणि-हियय-थेणु । सुपसिद्ध-महाकइ-कामधेणु ।
काणीण-दीण-परिपूरियासु । जस-पसर-पसाहिय-दस-दिसासु ॥
पर-रमणि-परंमुहु सुद्ध-सीलु । उण्णय-मइ सुयणुद्धरण-लीलु ।
गुरु-यण-पय-पणविय-उत्तमंगु । सिरिदेवि-यंव-गब्भुब्भवंगु ॥
अण्णइय-तणय-तणुरुहु पसत्थु । हत्थि'व दाणोल्लिय-दीह-हत्थु ॥
दुव्वसण-सीह-संघाय-सरहु । ण वियाणहि किं णामेण भरहु ॥

---

[1] पुष्पदंतका उपनाम भी शायद

सो सुनिय भनै अभिमान-मेरु[१]। "वरु खाइय गिरि-कंदरे कसेरु ।
नहिँ दुर्जन-भौँहाँ-वंकिमाइँ। देखहूँ कलुप-भावांकिताइँ।
घत्ता। वरु नरवर धवलक्षिम होँउ, न कुक्षिहि, मरौ शोणित मुँह निर्गमें।
खल-कुक्षित-प्रभु-वचना भृकुटित-नयना न निहारौँ सूरोद्गमे ॥३॥
चमरानिलही उडेँऊ गुणाइँ। अभिपेक-धोँइ सुजनत्तनाइ[२]।
अविवेकहु दर्पोत्तालियाइँ। मोहांधतोँ-मारण-शीलियाइँ।
विपसँग जनमी जड रक्तियाइ। की लक्ष्मी विदुष-विरक्तियाइ।
संप्रति जन नीरस निर्विशेष। गुणवंतउ[३] जहँ सुरगुरुहु वेष।
तहँ हमरेँहिं काननही शरणा। अभिमान-सहित वरु होँहु मरणा।"
................। प्रतिउत्तर दियेँउ नागर-नरेहिँ।

(२) आश्रयदाता मंत्री भरतकी प्रशंसा

घत्ता। "जन मन-तिमिर-अपसारण मदतरु-वारण, निज-कुल-कमल-दिवाकर।
हे हे केशव-तनुरुह-नव सररुह मुख काव्य रतन-रतनाकर !
ब्रह्मांड-मंडपारूढ-कीर्त्ति। अनवरत-रचित-जिननाथ-भक्ति।
शुभतुंग-देव-क्रम-कमल-भ्रमर। निःशेप-सकल-विज्ञान-कुशल।
प्राकृत-कवि-काव्य-रसावलुब्ध। संपीय सरस्वति-सुरभि-दुग्ध।
कमलाक्ष अमत्सर सत्यसंध। रणभर-धुर-धरण्-उद्घुष्ट-स्कंध।
सविलास-विलासिनि-हृदय-स्तेन। सुप्रसिद्ध-महाकवि-कामधेनु।
कानीन-दीन-परिपूरिताश। यशप्रसर-प्रसाधित-दश-दिशास।
पररमणि-पराङ्मुख शुद्धशील। उन्नत-मति सुजनोद्धरण-लील।
गुरुजन-पद-प्रणमित-उत्तमांग। **श्रीदेवि**-अंब-गर्भोद्भवांग।
अन्नइय-केर-तनुरुह प्रशस्त। हस्ति 'व दानोल्लित-दीर्घहस्त।
दुर्व्यसन-सिंह-संघात-शरभ। न विजानसि का नामही **भरत**।

---

[१] **पुष्पदंत**   [२] **सुजनता**   [३] **गणहीनउ**

(३) भरतके घरमें स्वागत

आवंतु दिट्ठु भरहेण केम । वाई-सरि-सरि-कल्लोल जेम ।
पुणु तासु तेण विरइउ पहाणु । घर आयहों अब्भागय विहाणु ।
संभासणु पिय-वयणेहिँ रम्मु । णिम्मुक्क-डंभु णं परमधम्मु ।
"तुहुँ आयउ णं गुण-मणि-णिहाणु । तुहुँ आयउ णं पंकयहों भाणु ।"
पुण एव भणेप्पिणु मणहराइँ । पहरीण-भीण-तणु-सुहयराइँ ।
वर-ण्हाण-विलेवण-भूसणाइँ । दिण्णइँ देवंगइँ णिवसणाइँ ।
अच्चंत-रसालइँ भोयणाइँ । गलियाइँ जाम कइवय-दिणाइँ ।
देवी-सुएण कइ भणिउ ताम । "भो पुप्फयंत ! ससिलिहिय-णाम !
णिय-सिरि-विसेस-णिज्जिय-सुरिंदु । गिरि-धीरु-वीरु भइरव-णरिंदु ।
पइँ मण्णिउ वण्णिउ वीर-राउ । उप्पण्णउ जो मिच्छत्त-राउ ।
पच्छित्त तासु जइ करहि अज्जु । ता घडइ तुज्भु परलोय-कज्जु ॥" . . . .
. . . . । ता जंपइ वर-वाया-विलासु ।
"भो देवी-णंदण जयसिरीह ! किं किज्जइ कव्वु सुपुरुस-सीह ।
घत्ता । "णउ महु बुद्धि-परिग्गहु णउ सय-संगहु णउ कासुवि करेउ बलु ।
भणु किह करमि कइत्तणु ण लहमि कित्तणु जगु जि पिसुण-सय-संकुलु ।"
—आदिपुराण (महापुराण, पृ० ५-६)

कोंडिण्ण-गोत्त-णह-दिणयरासु । **वल्लह**-णरिंद-घर-महयरासु ।
णण्णेहो मंदिरि णिवसंतु संतु । अहिमाण-मेरु कइ पुप्फ-यंतु ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३)

भणु भणु सिरिपंचमि-फलु गहीरु । आयण्णहिँ णायकुमार-बीरु ।
ता **वल्लह**-राय-महंतएण । कलि-विलरिय-दुरिय-कयंतएण ।
कोंडिण्ण-गोत्त-णह-ससहरेण । दालिद्द-कंद-कंदल-हरेण ।
वर-कव्व-रयण-रयणायरेण । लच्छी-पोमिणि-माणस-सरेण ।
कुंदव्व-भरह-दिय-तणुरुहेण । . . . .
णण्णेण पवुत्तु महाणुभाव । . . . .
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४)

(३) भरतके घरमें स्वागत

आवंत दीस भरतेहिँ किमी। वापी-ससि-सर-कल्लोल जिमी।
पुनि तासु तेहिँ विरचे प्रधान। घर आयेँहु अभ्यागत विहान।
संभाषण प्रिय-वचनेहिँ रम्य। निर्मुक्त-दंभ जनु परमधर्म।
"तुहुँ आयउ जनु गुण-मणि-निधान। तुहँ आयउ जनु पंकजहु भानु।"
पुनि ऐस भनियई मनहराइँ। प्रहरीण भीन-तनु-सुखकराइँ।
वर-स्नान-विलेपन-भूषणाइँ। दीनी देवांगहिँ निवसनाइँ।
अत्यंत-रसालइँ भोजनाइँ। बीतेहु जिमि कतिपय-दिनाइँ।
देवी-सुत कविहिँ भनेउ तब्ब। "भो पुष्पदत! शशि-लिखित नाम।
निज-श्री-विशेष-निर्जित-सुरेन्द्र। गिरि-धीर वीर **भैरव-नरेन्द्र**।
तैँ मानेँउ वर्णेउ वीर-राज। उत्पादेँउ जो मिथ्यात्व-राग।
प्रा'श्चित्त तासु यदि करसि आज। तो घटै तोर परलोक-कार्य।.."
......................। तो जल्पै वरवाचा-विलास।
"हे देवीनंदन जय-सिरीह! का कीजै काव्य सुपुरुष-सीँह।
घत्ता। ना मम बुद्धि-परिग्रह न सत-संग्रह ना काहु केरेँउ बल।
भनु किमि करौँ कवित्वन न लहौँ कीर्त्तन, जगहु पिशुन-शत-सकुल॥"
—आदिपुराण (महापुराण, पृ० ५-६)

कौंडिन्य-गोत्र-नभ-दिनकरास। **वल्लभ**-नरेन्द्र-गृह-मख-करास।
नान्यहु मंदिरेँ निवसंत संत। अभिमान-मेरु कवि **पुष्पदंत**।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३)

भनु भनु श्री-पंचमि-फल गँभीर। आकर्णहिँ नागकुमार-वीर।
तो वल्लभराय-महंतकेहिँ। कलि-विरलिय-दुरित-कृतांत केहिँ।
कौंडिन्य-गोत्र-नभ-शशधरेहिँ। दारिद्रय-कंद-कंदल-धरेहिँ।
वर-काव्य-रतन-रतनाकरेहिँ। लक्ष्मी-पद्मिनि-मानससरेहिँ।
कुंदँ इव भरत द्विज-तनुरुहेहिँ। ....
नान्येहिँ प्रवृत्तु महानुभाव। ....
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४)

२—काल-और ऋतु-वर्णन

(१) संध्या-वर्णन

अत्थमिइ दिणेसरि जिह सउणा । तिह पंथिय थिय माणिय-सउणा ।
जिह फुरियउ दीवय-दित्तियउ । तिह कंताहरणह-दित्तियउ ।
जिह संझा-राएँ रंजियउ । तिह वेसा-राएँ रंजियउ ।
जिह भुवणुल्लउ संतावियउ । तिहँ चक्कुल्लुवि[1] संतावियउ ।
जिह दिसि-दिसि तिमिरइँ मिलियाइँ । तिह दिसि-दिसि जारइ मिलियाइँ ।
जिह रयणिहि कमलइँ मउलियाइँ । तिह विरहिणि-वयणइँ मउलियाइँ ।
जिह घरहँ कवाडइँ दिण्णाइँ । तिह वल्लह-संवइँ दिण्णाइँ ।
जिह चंदे णिय-कर पसरु किउ । तिह पिय-केसहिँ कर-पसरु किउ ।
जिह कुवलय-कुसुमइँ वियसियइँ । तिह कीलय-मिहुणइँ वियसियइँ ।
जिह पीयइँ पाणइँ महुराइँ । तिह अहरहँ महु-रस-महुराइँ ।
जिह जिह गलंति जामिणि-पहर । तिह तिह विइण्ण मउरइ पहर ।
जिह णहि सुक्कुग्गमु दरिसियउ । तिह चिडि सुक्कुग्गमु दरिसियउ ।
घत्ता । ता चक्क-उलहँ पंकयहँ तंव-किरण-पूरिय-भुवणोयरु ।
विरयहँ णर-णारी-यणहँ जीविउ देंतु समुग्गउ दिणयरु ।।८।।
—आदिपुराण (पृ० २२८-२९)

(२) पावस-ऋतु-वर्णन

विस-कालिंदि-काल-णव-जलहर-पिहिय-णहंतरालओ ।
धुय-गय-गंड-मंडलुड्डाविय-चल-मत्तालि-मेलओ ।
अविरल-मुसल-सरिस-थिरधारा-वरिस-भरंत-भूयलो ।
हय-रवियर-पयाव-पसरुग्गय-तरु तण-णील-सद्दलो ।
पडु-तडि[2]-वडण-पडिय-वियडायल-रुंजिय-सीह-दारुणो ।
णच्चिय-मत्त-मोर-गलकल-रव-पूरिय-सयल-काणणो ।

---

[1] चकवा-चकई [2] तडित्

२—काल-और ऋतु-वर्णन

(१) संध्या-वर्णन

अस्तमे दिनेश्वरें जिमि शकुना। तिमि पंथिक ठिउ माणिक शकुना।
जिमि फुरियेउ दीपक-दीप्तियऊ। तिमि कांताभरणहिँ दीप्तियऊ।
जिमि संध्या-रागें रंजियऊ। तिमि वेशा-रागें रंजियऊ।
जिमि भुवनल्लउ संतापियऊ। तिमि चक्कुल्लौ संतापियऊ।
जिमि दिशि-दिशि तिमरहिँ मिलियाईं। तिमि दिशि-दिशि जारहि मिलियाईं।
जिमि रजनिहिँ कमलिनि मुकुलिताइँ। तिमि विरहिनि-वदनइँ मुकुलिताइँ।
जिमि घरह कपाटउ दिन्नाइँ। तिमि वल्लभ-सपति दिन्नाइँ।
जिमि चंदेंहि निज-कर-प्रसर-कियेंउ। तिमि पिय-केशहिँ कर-प्रसर कियेंउ।
जिमि कुवलय-कुसुमा विकसियऊ। तिमि कीरय-मिथुना विकसियऊ !
जिमि पीयैं पानहिँ मधुराईं। तिमि अधरह मधुरस-मधुराईं।
जिमि जिमि बीतैं यामिनि-प्रहरा। तिमि तिमि विकीर्ण मृदु-रति-प्रहरा।
जिमि नहिँ शुक्रोदय दरसियऊ। तिमि चिड़ि शुक्रोद्गम दरसियऊ।
घत्ता। तो चक्रकुलहँ पंकजहँ ताम्रकिरण-पूरित-भुवनोदर।
विरही नर-नारीजनह जीवन देंत सम्-ऊगेउ दिनकर॥८॥

——आदिपुराण (पृ० २२८-२९)

(२) पावस-ऋतु-वर्णन

विश-कालिंदि-काल-नवजलधर-छादित नभंतरालआ।
धुत-गज-गंड-मंडल-उड्डाविय चल-मत्ता-लि-मेलआ।
अविरल-मुसल-सदृश थिर धारा वर्ष भरंत-भूतला।
हत-रविकर-प्रताप-प्रसर-उद्गत-तरु कँह नील शाद्वला।
पटु तडि[1]-पतन-पतित-विकट-ाचल कुपित सिह-दारुणा।
नाचत मत्त-मोर-कलकल-रव-पूरित-सकल-कानना।

---

[1] बिजली

गिरि-सरि-दरि-सरंत-सरसर-भय-वाणर-मुक्क-णीसणो ।
महियल-घुलिय-मिलिय-दुदुह-सयवय-सालूर[1]-पोसणो ।
घण-चिक्खल्ल-खोल्ल-खणि-खेइय-हरिण-सिलिंव-कय-वहो ।
वियसिय-णव-कलंब-कुसुमुग्गय-रय-पिंजरिय-दिसिवहो ।
सुर-वइ-चाव-तोरणालंकिय-धण-करि-भरिय-णहरुहो ।
विवर-मुहोयरत-जल-पवहारोसिय-सविस-विसहरो ।।
"पिय-पिय-पिय"-लवंत-बप्पीहय-मग्गिय-तोय-विदुओ ।
सर-तीरुल्ललंत-हंसावलि-भुणि-हल-बोल-संजुओ ।।
चंपय-चूय-चार-चव-चंदण-चिंचिणि-पीणियाउसो ।
वुट्ठो झत्ति जस्स कालम्मि जएँ सुहयारि पाउसो ।।
मुग्ग-कुलत्थ-कंगु-जव-कलव-तिलेसी-वीहि-मासया ।
फलभर-णविय-कणिस-कण-लंपड-णिवडिय-सुय-सहासया ।।
ववगय-भोय-भूमि-भव-भूरुह-सिरि-णरवइ-रमा सही ।
जाया विविह-धण्ण-दुम-वेल्ली-गुम्म-पसाहणा मही ।
—आदिपुराण (२९-३०)

खंधावारहु उप्परि अहणिसु । ता णायहिँ वेउव्विउ पाउसु ।
मय-उलु तसइ रसइ वरिसइ घणु । पीयलु सामलु विरसइ सुरधणु ।
महि-णीहरिउ हरिउ बड्ढइ तणु । पवसिय-पियहि पियहि तप्पइ मणु ।
फुल्ल-कलंब-तंबु दीसइ वणु । तिम्मइ तम्मइ मणि जूरइ जणु ।
तडि तडयडइ पडइ रुंजइ हरि । तरु कडयडइ फुडइ विहडइ गिरि ।
जलु परियलइ घुलइ घुम्मइ दरि । अइरय सरइ भरइ पूरेँ सरि ।
जलु थलु सयलु जलुजि संजायउ । मग्गु अमग्गु ण किंपि वि णायउ ।
सरु कूसुम-सरु णिररिउ संधइ । विरहेँ पंथिय पंथिय विंधइ ।
—आदिपुराण (पृ० २४०)

---

[1] एक प्रकारका कंद

गिरि-सरि-दरि सरंत सरसर-भय-वानर मोचु निःस्वना ।
महियल घुलेउ-मिलेँउ दुंदुभि शतपत्र-शालूर-पोषणा ।
घन-कीचड़-खोल-खन-खेदित हरिन-गिलिब-कदंव-वहा ।
विकसित-नवकदंब-कुसुम-ोद्गत-रज-पिजरेउ दिशि-पथा ।
सुर-पति-चाप-तोरणालंकृत घन-करि-भरित नभ-थला ।
विवर-मुख-ोदरांत-जलप्रवह-ारोसेँउ सविष-विषधरा ।
"पिय पिय पिय" लपंत पपीहा मॉगेँउ तोय-विदुआ ।
सरतीर-ोल्ललंत-हंसावलि-ध्वनि-हलहल-संयुना ।
चंपक-चूत-चार-चव-चंदन-चिंचिनि-प्रीणितायुषा ।
उट्ठेँउ झट जासु कालेँहिँ जो सुखकारि पावसा ।
मूँग-कुल्थि-कॉगुन-जौ-करॉय-तिल-तीसी-धान-माषआ ।
फल-भर नमेँउ मॅजरि कण लंपट निवडेँउ शुक सहस्रआ ।
व्यपगत-भोग भूमि-भव-भूरुह-श्री-नरपति-रमा-सखी ।
हुई विविध-धान्यद्रुम-बेली-गुल्म-प्रसाधना मही ।
—आदिपुराण (२९-३०)

स्कंधावारँह[1] ऊपर अहनिश । तो नादहिँ विकारिया पावस ।
मृगकुल त्रसै-रसै वरसै घन । पीयल श्यामल विलसै सुर-धनु ।
महि नीखरिउ हरित बाढे तनु । प्रवसित-प्रियहि पियहिँ तप्पै मन ।
फुल्लु कदंब ताम्र दीसै बन । तीमै तामै मणि झूरै जनु ।
तड़ि तड़तड़ै पडै रागै हरि । तरु कड़कड़ै फुटै विहरै गिरि ।
जल परिचलै घुरै घूमै दरि । अतिरय सरै भरै पूरै सरि ।
जल-थल सकल जलहि सं-जायेँउ ।। मार्ग-अमार्ग न कछुअहु जानेँउ ।।
शर-कूसुम-सर नितांत साँधै । विरहे पंथिक पंथिय बिधै ।।
—आदिपुराण (पृ० २४०)

---

[1] फौजी पड़ाव

३—भौगोलिक वर्णन

(१) हिमालय-वर्णन

सीयल्ल-बेल्लि-तरुवर-गहणि । हिमवंतहों दाहिण-गिरि-गहणि ।
जहिं वग्घ-सीह-गय-गंडयाइं । गय-दुग्गह-करि-भल्लू-सयाइं ।
संबर-बेउल्लइं रोहियाइं । एणइं जहिं पुल्लिहिं छोहियाइं ।
जहिं संचरंति बहु-मुग्गसाइं । गत्ताइं जाँह णिरु घग्घुसाइं ।
जहिं परडा कोक्कंता भमंति । झिल्लिरि खच्चेल्लइं गुमगुमंति ।
जहिं भिल्ल-पुलिंदइं णाहलाइं । वीणंतइं तरु-वेल्ली-हलाइं ।
जहिं कुक्कुरंति साहामयाइं[1] । झुल्लंतइं तरु-साहा-गयाइं ।
उड्डुणसीला तंबोल-लग्ग । जहिं हरि खज्जंता कहिं 'मि भग्ग ।
जहिं घुरुहरंत दाढा-कराल । सूलच्छहिं सहुं जुज्झंसि कोल ।
कंदुल्ल-गहर-गद्दब्भु जेत्थु । हरि-हुल्लिहिं जहिं दूसियउ पंथ ।
पंचासहिं थूणइ दारियाइं । जहिं भिल्ली हरिणइं मारियाइं ।
जहिं गहिरइं धारइं परिभमंति । णिरु वायड-उल(ईं) चुमचुमंति ।
जहिं वेल्लिहिं वेढिय तरुवराइं । णं कीलहिं अवरुंडण-पराइं ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ४०-४१)

सेणा-सेणाहिय,परियरिय । हिमवंतु धरेप्पिणु संचलिय ।
सोहइ गच्छंती पुव्वमुह । कुरुवंस-णाह-पत्थिव-पमुह ।
दीसइ सेलत्थलि काणणउं । महिसी-दुद्ध'व साहा-घणउं
णाणा-महिरुह-फल-रस-हरइं । कत्थइ किलिगिलियइं वाणरइं ।
कत्थइ रइरत्तइं सारसइं । कत्थइं तव-तत्तइं तावसइं ।
कत्थइ झरझरियइं णिज्झरइं । कत्थइ जल-भरियइं कंदरइं ।
कत्थइ वीणिय वेल्ली-हलइं । दिट्ठइं भज्जंतइं णाहलइं ।
कत्थइ हरिणइं उल्ललियाइं । पुणु गोरी-गेयहु वलियाइं ।

---

[1] वानर

३—भौगोलिक वर्णन

(१) हिमालय-वर्णन

शीतल्ल-बेलि तरुवर-गहना। हिमवंतहु दक्षिण-गिरि-गहना।
जहँ व्याघ्र-सिंह-गज-गैंड आइँ। मृग दुर्ग्रह करि-भालू-शताइँ।
साँभर वेकुल्ला रोहिताइँ। एणी जहँ पुलकित कूदियाइँ।
जहँ संचरईं बहु मूँगुसाइँ। गत्तहिँ जहाँ निर घर्घसाइँ।
जहँ परडा कोक्कंता भ्रमंति। झिल्ली खच्चेल्लें गुमगुमंति।
जहँ भील-पुलिंदा नाहराइँ। बीनंता तरु-बल्ली-फलाइँ।
जहँ कुक्करंति शाखामृगाइँ। झूलंता तरु-शाखा-गनाइँ।
उड्डन-शीला तांबूल-लागु। जहँ हरि खादंता कतहुँ भागु।
जहँ घुरघुरंति दाठा-कराल। शूलाक्षहिँ सँग जूझंति कोल[1]।
कंदुल्ल-गह्वर गर्दभा जहाँ। हरि हुल्लिहिँ जहँ दूषियेँउ पंथ।
पंचासहु थूनें विदारिताइँ। जहँ भीली हरिनहिँ मारियाइँ।
जहँ गहिरै धारें परिभ्रमंति। नित बादल-कुलहीँ चुमचुमंति।
जहँ बेली-वेष्टित तरुवराइँ। जनु क्रीडै अवगुंटन पराइँ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ४०-४१)

सेना सेनाधिप-परिचरिता। हिमवंत धरा-वन-संचलिता।
सोहै सो जांती पूर्वमुखा। कुरुवंशनाथ-पार्थिव-प्रमुखा।
दीसै शैल-स्थलि-काननऊ। महिषी दुग्ध् इव शाखा-वनऊ।
नाना महिरुह-फल-रस-धरइँ। कतहूँ किलकिलहीँ वानरहीँ।
कतहूँ रसरक्ता सारसईं। कतहूँ तप तप्पैं तापसईं।
कतहूँ झरझरिया निर्झरईं। कतहूँ जल-भरिया कंदरईं।
कतहूँ बीनैं बेली-फलईं। दीसैं भाजंता नाहरईं।
कतहूँ हरिना उल्ललियाइँ। पुनि गौरी-गेहहु वलियाइँ।

---

[1] सूअर

कत्थइ हरि-णह-रुक्कत्तियइँ। करि-कुंभुच्छलियइँ मोत्तियइँ।
कत्थइ सुम्मइ जक्खिणि-भुणिउँ। खयरी-कर-वीणा रणरणिउँ।
कत्थइ भसल-उलहिँ रुणरुणिउँ। कत्थइ सुएण किं किं भणिउँ।
घत्ता। कत्थइ किंणरहिँ गाइज्जइ सवण-पियारउ।
रिसह-णाह-चरिउ फणि-णर-सुर-लोयहु सारउ ॥१॥

—आदिपुराण (पृ० २४४)

(२) देश-विजय

पल्लव-सेंधव-कोंकण-कोसल। टक्क-हीर-कीर-खस-केरल।
अंग-कलिंग-गंग-जालंधर। वच्छ-जवण-कुरु-गुज्जर-बब्बर।
दविड-गउड-कण्णाड-वराड'वि। पारस-पारियाय-पुण्णाडवि।
सूर-सुरट्ठ-विदेहा लाड'वि। कोंग-वंग-मालव-पंचाल'वि।
मागह-जट्ट-भोट्ट-णेवाल'वि। उड्ड-पुंड-हरिकुरु-भंगाल'वि।

—आदिपुराण (पृ० ८८)

सुरसिंधु सरिहिँ देहलिय धरिवि, पइसरणु करिवि।
पुव्वावरेसु परिसंठियाइँ, वइरट्ठियाइँ।
वेयड्ढ गिरिहि ओइल्लयाइँ, सुधणिल्लयाइँ॥
चंडाइँ मेच्छ-खंडाइँ ताइँ, दोसाहियाइँ।
करवाले णिज्जिउ अज्ज-खंडु, पट्ठविवि दंडु।
मालव-मागह-वंग-'गगंग, कालिंग - कोंग।
पारस-बब्बर-गुज्जर-वराड, कण्णाड-लाड।
आहीर-कीर-गंधार-गउड, णेवाल - चोड।
चेईस-चेर-मरु-दद्दुरंडि, पंचाल-पंडि।
कोंकण-केरल-कुरु-कामरूव, सिंहल पहूय।
जालंधर-जायव-पारियाय, णिज्जिणिवि राय।
पच्चंत-वासि णीसेस लेवि, णिय-मुद्द देवि।
हेलाइ तिखंडावणि हरेवि, असि करि करेवि।

—आदिपुराण (पृ० २३०-३१)

कतहूँ हरि-नख-फारियइँ। करि-कुंभ उछरिया मौक्तिकाइँ।
कतहूँ सुनियै यक्षिणि-धुनिऊ। खेचरि-करें वीणा हनहनिऊ।
कतहूँ भ्रमर-कुल रुन-झुनिऊ। कतहूँ शुकेहिँ का का भनिऊ।
घत्ता। कतहुँ किन्नरहिँ गाइऊ, श्रवण-पियारहूँ।
ऋषभनाथ-चरित, फनि-नर-सुर-लोकह सारऊ।

—आदिपुराण (पृ० २४८)

(२) देश-विजय

पल्लव-सैंधव-कोंकण-कोसल। टक्क-अहीर-कीर-खस-केरल।
अंग-कलिंग-गंग-जालंधर। वत्स-यवन-कुरु-गुर्जर-बर्बर।
द्रविड-गौड-कर्नाट-बराडउ। पारस-पारियात्र-पुन्नाडउ।
शुर-सौराष्ट्र-विदेहा लाटउ। कोंग-वंग-मालव-पंचालउ।
मागध-जाट-भोट-नेपालउ। उड्र-पुड्र-हरिकेल-भँगालउ।

——आदिपुराण (पृ० ८८)

सुरसिंधु-सरिहिँ देहलिय धरब, प्रतिसरन करवी।
पूर्वावरेहिँ परिसंस्थिताइँ, वैरस्थिताइँ।
वेताढ़ गिरिहिँ ओइल्लयाइँ, सुधनिल्लयाइँ।
चंडाइँ म्लेच्छ-खंडाइँ ताइँ, दुःसाधियाइँ।
करवाले जीतेँउ आर्यखंड, प्रस्थापि दंड।
मालव-मगध-वंग-'ङ्ग-गंग, कालिंग-कोंग।
पारस-बर्बर-गुर्जर, बराड, कर्नाट-लाट।
आभीर-कीर-गंधार-गौड़, नेपाल-चोल।
चेदीश-चेर-मरु-दर्दुरंडि, पंचाल-पंडि।
कोंकण-केरल-कुरु-कामरूप, सिंहल प्रभूय।
जालंधर-यादव-पारियात्र, जीतेँहू राय।
प्रत्यंतवासि निःशेष लेइ, निज मुद्रा देइ।
हेलहिँ तिरखंडा'वनि हरेइ, असि करें करेइ।

——आदिपुराण (पृ० २३०-३१)

(३) यौधेय-भूमि-वर्णन

विस्थिण्णए जंबुदीवि भरहे । खर-किरण-करावलि-भूरि-भरहे ।
जोहेयउ णामिं अत्थि देसु । णं धरणिएँ धरियउ दिव्व वेसु ।
जहिं चलइँ जलाइँ स-विब्भमाइँ । णं कामिणि-कुलइँ स-विब्भमाइँ ।
भंगालइँ णं कुकइत्तणाइँ । जहिं णील-णेत्त-णिद्धहिँ तणाइँ ।
कुसुमिय-फलियइँ जहिँ उववणाइँ । णं महि-कामिणि-णव-जोव्वणाइँ ।
गोवाल-मुहालुंखिय-फलाइँ । जहिं महुरइँ णं सुकयहों फलाइँ ।
मंथर-रोमंथण[१]-चलिय-गंड । जहिं सुहि णिसिण्ण गो-महिसि-संड ।
जहँ उच्छु-वणइँ रस-दंसिराइँ । णं पवण-वसेउ पणच्चिराइँ ।
जहँ कण-भर-पणविय पक्क-सालि । जहिं दीसइ सयदलु सदलु सालि ।
जहिं कणिसु कीर-रिंछोलि चुणइ । गहवइ-सुयाहि पडिवयणु भणइ ।
छोक्करण-राव-रंजिय-मणेण । पहि पउ ण दिण्ण पंथिय-जणेण ।
जहिँ दिण्णु कण्णु वणि मयउलेण । गोवाल-गेय-रंजिय-मणेण ।
जहिं जण-धण-कण-परिपुण्ण गाम । पुर-णयर-सुसीमाराम साम ।
घत्ता । रायउरु मणोहरु रयणंचिय घरु, तहिँ पुरवरु पवणुद्धयहिं ।
चल-चिंधहि मिलियहिँ णहयलि घुलियहिँ, छिवइ'व सग्गु सयंभुअहिँ ।
जं छण्णउँ सरसहिँ उववणेहिँ । णं विद्धउँ वम्मह-मग्गणेहिँ ।
कय-सद्दहिँ कण्ण-सुहावएहिँ । कणइ'व सुर-हर-पारावएहिँ ।
गय-वर-दाणोल्लिय वाहियालि । जहिँ सोहइ चिरु पवसिय पियालि ।
सर-हंसइँ जहिँ णेउर-रवेण । मउ चिक्कमंति जुवई-पहेण ।
जं णिय-भुयासि-वर-णिम्मलेण । अण्णुवि दुग्गउ परिहा-जलेण ।
पडिखलिय-वइरि-तोमर-झसेण । पंडुर-पायारिं णं जसेण ।
णं वेढिउ वहु-सोहग्ग-भारु । णं पुंजीकय-संसार-सारु ।
जहिँ विलुलिय-मरगय-तोरणाइँ । चउदारइँ णं पउराणणाइँ ।

---

[१] चर्वितचर्वण (जुगाली करना)

(३) यौधेय-भूमि-वर्णन

विस्तीर्णे जंबुद्वीप-भरते। खरकिरण-करावलि भूरि भरित।
यौधेय नाम है (एक) देश। जनु धरणी धारेँउ दिव्य-वेष।
जहँ चलैँ जलाइँ स-विभ्रमाइँ। जनु कामिनि-कुलइँ स्व-विभ्रमाइँ।
भृगालैँ[1] जनु कुकवित्तनाइँ। जहँ नीलनेत्र-स्निगधतनाइँ।
कुसुमित-फलितहँ जहँ उपवनाइँ। जनु महि कामिनि नवयौवनाइँ।
गोपाल-मुखा चुनिया फलाइँ। जहँ मधुरइँ सुकृतहू फलाइँ।
मंथर-रोमंथन-चलित-गंड। जहँ सुख-निषण्ण गोमहिष-संड।
जहँ इक्षु-वनइँ रस-दशिराइँ। जनु पवन बसेउ पनञ्चिराइँ।
जहँ कण[2]-भर-प्रनमी पक्वशालि। जहँ दीसै शतदल-सदल-शालि।
जहँ मंजरि कीर-पंक्ती चुनै। गृहपति-सुताहिँ प्रतिवचन भनै।
छोक्करन-राज-रंजित-मनेहिँ। पथ पद न दीन पंथिक-जनेहिँ।
जहँ दीय कर्ण वनेँ मृगकुलेहिँ। गोपाल-गीत-रजित-मनेहिँ।
जहँ जन-धन-कण-परिपूर्ण ग्राम। पुर-नगर-सुपीमाराम श्याम।
घत्ता। राजपुर मनोहर रत्नांचित घर, तहँ पुरवर पवनोद्धतहिँ।
चल-चिन्हहिँ[3] मिलिया नभतलेँ घुरियहिँ, छुवेँ इव सर्ग स्वयंभुजहिँ ॥३॥
जो छादित सरसेँहिँ उपवनेहिँ। जनु विद्धेँउ मन्मथ-मार्गणेहिँ।
कल-शब्दहिँ कर्ण-सुखावहेहिँ। क्वणेँइव सुरघर-पारावतेहिँ।
गज-वर-दानोल्लित-वाँहिय-ालि। जहँ सोहै चिर-प्रवसित-प्रियालि।
सर-हंसहँ जहँ नूपुर-रवेहिँ। सृग चिक्कमंति युवती-प्रभेहिँ।
जो निज-भुज-ासि-वर-निर्मलेहिँ। अन्यउ दुर्गह परिखा-जलेहिँ।
प्रतिखलित-वैरि-तोमर-झषेहिँ। पांडुर प्राकारा जनु यशेहिँ।
जनु बेठेँउ वहु-सौभाग्य-भार! जनु पुजीकृत संसार-सार।
जहँ विलुलित-मरकत-तोरणाइँ। चौद्वारहिँ जनु पौराननाइँ।

---

[1] भृंग-आलय [2] दाना [3] ध्वजा तीर

जहिँ धवल-मंगलुच्छव-सराइँ। दु-ति-पंच-सत्त-भोमइँ[1] घराइँ।
णव-कुंकुम-रस-छडयारुणाइँ। विक्खित्त-दित्त-मोत्तिय-कणाइँ।
गुरु-देव-पाय-पंकय-वसाइँ। जहिँ सव्वइँ दिव्वइँ माणुसाइँ।
सिरिमंतइँ संतइँ सुत्थियाइँ। जहिँ कहि 'मि ण दीसहि दुत्थियाइँ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ४, ५)

(४) मगधभूमि-वर्णन

खेडाम-गाम-पुरवर-विचित्तु। तहों दाहिणि दिसि थिउ **भरहु** खेत्तु।
तहिँ **मगह**-देसु सुपसिद्ध अत्थि। जहिँ कमल-रेणु-पिंजरिय हत्थि।
जहिँ सुरवर-तरु-णंदण-वणाइँ। जहिँ पक्क-सालि धण्णइँ तणाइँ।
वय-सय-हंसावलि-माणियाइँ। जहिँ खीरसमाणइँ पाणियाइँ।
जहिँ कामधेणु-सम गोहणाइँ। घडदुद्धइँ णेहारोहणाइँ।
जहिँ सयल-जीव-कय-पोसणाइँ। घण-कण-कणि-सालइँ करिसणाइँ
जहिँ दक्खा-मंडवि दुहु मुयंति। थलपोमोवरि पंथिय सुयंति।
जहिँ हालिणि-कलरव-मोहियाइँ। पहि पहियइँ-हरिणा इव थियाइँ।
पुंडुच्छु-वणइँ चउ-दिसु चलंति। जहिँ महिस-सिंग-हय रस गलंति।
जहिँ मणहर-मरगय-हरिय-पिंछ। मायंद-गोंछि गोंदलिय रिंछ।
घत्ता। तहिँ पुरवरु णामें **रायगिहु**, कणय-रयण-कोडिहिँ घडिउ।
वलिवंड धरंतहों सुरवइहिँ, णं सुर-णयरु गयण-पडिउ॥६॥
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ६)

(५) मालव-ग्राम

एत्थत्थि **अवंती** णाम विसउ। महिवहु भुंजाविय जेण'वि सउ।
घत्ता। णंदंतहिँ गामहिँ विउलारामहिँ, सरवरकमलहिँ लच्छि-सही।
गलकलक्केक्कारहिँ हंसहिँ मोरहिँ, मंडिय जेत्थु सुहाइ मही॥२०॥

---

[1] दो-तीन-पाँच-सात तल्लेवाले (मकान)

जहँ धव-मंगल-ोत्सव-सराइँ । दुइ-पंच-सप्त-भूमिक घराइँ ।
नव-कुंकुम-रस-छट-आरुणाइँ । विखरीय-दीप्त-मौक्तिक-कणाइँ ।
गुरु-देव-पादपंकज-वशाइँ । जहँ सव्वै दिव्यै मानुषाइँ ।
श्रीमन्तहिँ सतहिँ सुस्थिताइँ । जहँ कतहुँ न दीसै दुःस्थिताइँ ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ४, ५)

(४) मगध भूमि-वर्णन

खेड़ाउ-ग्राम-पुरवर-विचित्र । तहँ दक्षिणदिशि ठिउ **भरत**-क्षेत्र ।
तहँ **मगध**-देश सुपसिद्ध अस्ति । जहँ कमल-रेणु-पिंजरित हस्ति ।
जहँ सुरवर-तरु-नंदनवनाइँ । जहँ पक्व-शालि धान्यहिँ तनाइँ[1] ।
अज-शत-हंसावलि-माणिकाइँ । जहँ क्षीरसमाना पानियाइँ ।
जहँ कामधेनु-सम गोधनाइँ । घट-दूधी स्नेहारोधनाइँ ।
जहँ सकल-जीव-कृत-पोषणाइँ । धन-कण-कणिशालहँ[2] कर्षणाइँ ।
जहँ द्राक्षामंडपेँ दुध-मुचंति । स्थलपद्मोपरि पथिक मोँवंति ।
जहँ हालिनि[3]-कल-रव-मोहिताइँ । पथेँ पंथिक हरिना इव ठिताइँ ।
पुंड्-इक्षु-वना चौदिशि चलंति । जहँ महिप श्रृंग-हत रस गिरति ।
जहँ मनहर-मरकत-हरित-पिच्छ । माकंद-गुच्छ चर्विता वृक्ष ।

घत्ता । तहँ पुरवर नामे राजगृह, कनक-रतन-कोटिहिँ गढेँऊ ।
बलिवंड-धरंतह सुरपतिहँ, जनु सुर-नगर गगन पड़ेँऊ ॥६॥
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ६)

(५) मालव-ग्राम

इहँ अहै **अवंती** नाम विषय । महि वहु भोगेँउ जेहिहि सबय ।

घत्ता । नंदंतेँहिँ ग्रामेँहिँ विपुलारामेँहिँ, सरवर-कमलेहिँ लक्ष्मि-सखी ।
कलकल-केकारेँहिँ हंसेहिँ मोरेँहिँ, मंडित यत्र सुहाइ मही ॥२०॥

---

[1] **तनाइँ=केरी** [2] **फल-मंजरी** [3] **हलवाहेकी बहू**

जहिँ चुमचुमंति केयार-कीर । वर-कलम-सालि-सुरहिय-समीर ।
जहिँ गोउलाइँ पउ विक्किरंति । पुंडुच्छु[1]-दंड-खंड़इँ चरंति ।
जहिँ वसह-मुक्क-ढेक्कार-धीर । जीहा-विलिहिय-णंदिणि-सरीर ।
जहिँ मथर-गमणइँ माहिसाइँ । दह-रमणुड्डाविय-सारसाइँ ।
काहलिय[2]-वंस-रव-रत्तियाउ । बहुअउ घर कम्मि गुत्तियाउ ।
संकेय-कुडुंगण-पत्तियाउ । जहिँ झीणउ विरहिँ तत्तियाउ ।
जहिँ हालिणि-रूव-णिवद्ध-चक्खु । सीमावडु ण मुअइ कोवि जक्खु ।
जिम्मइ जहिँ ऍवहि पवासिएहिँ । दहि कूरु खीरु घिउ देसिएहिँ ।
पव-पालियाइ जहिँ बालियाइ । पाणिउ भिंगार-पणालियाइ ।
दिंतिऍं मोहिउ णिरु पहिय-विंदु । चंगउ दवखालि'वि वयण-चंदु ।
जहिँ चउपयाइँ तोसिय-मणाइँ । धण्णइ चरंति णहु पुणु तिणाइँ ।
उज्जेणि णाम तहिँ णयरि अत्थि । जहिँ पाणि पसारइ मत्त-हत्थि ।
—जसहर-चरिउ (पृ० १७)

४—सामन्त-समाज

(१) राजतंत्रके दुर्गुण

रज्जहु कारणि पिउ मारिज्जइ । बंधवहू मी संचारिज्जइ ।
जिह अलि-गंधे गउ संघारहु । तिह रज्जेण जीउ तं वारहु ।
भड-सामंत-मंति-कय-भायउ । चिंतिज्जंतउ सव्वु परायउ ।
तंडुल-पसयहु कारणि राणा । णरइ पडंति काइँ अ-वियाणा ।
इज्झउ रज्जु'जि दुक्खु गुरुक्कउ । जइ सुहु किं ताएँ मुक्कउ ।
—आदिपुराण (पृ० २९५)

---

[1] लाल लाल और मोटे गन्ने [2] झांझ (थालीनुमा काँसेका बाजा)

जहँ चुमचुमंति केदार-कीर। वर-कलम-शालि-सुरभित-समीर।
जहँ गोकुलाइँ पय विक्षरंति। पुड्-ईख-दंड खंडहिं चरंति।

जहँ वृषभ मुक्त-होँक्काड-धीर। जीभ-विलिहित-नंदिनि-शरीर।
जहँ मथर गमनै माहिपाइँ। ह्रद-रमण-उड्डायउ सारसाइँ।

काहली वंशि-रव-रक्तियाउ। बधुआ घरकर्मे गुप्तियाउ।
संकेत-कुडच-ंगण-पक्तियाउ। जहँ भीनउ विरहे तप्तियाउ।

जहँ हालिनि-रूप-निवद्ध-चक्षु। सीमावट न मुवै कोइ यक्ष।
जेवैं जहँ ऐस प्रवासिनेहिं। दधि-गूड-क्षीर-घिउ-दुस्सए[१]हिं।

प्रप-पालिकाहिं[२] जहँ बालिकाहिं। पानिय-भृंगार[३]-प्रणालिकाहिं।
देतिअ मोहे उ अति पथिकवृन्द। चंगा द्राक्षालि'व वदनचन्द्र।

जहँ चौपदाइँ तोषित-मनाइँ। धान्यै चरंति नहिं पुनि तृणाइँ।
उज्जेनि नाम तहँ नगरि अस्ति। जहँ पाणि प्रसारै मत्त-हस्ति।

—जसहर-चरिउ (पृ० १७)

४–सामन्त-समाज

(१) राजत्वके दुर्गुण

राज्यहि कारणें पितु मारिज्जै। बांधवहँ (पुनि) संचारिज्जै।
जिमि अलि-गंधे गउ संहारा। तिमि राज्येहि जीवितऊँ वारा।

भट-सामंत-मंत्रि-कृत भायउ। चिंतीयंतउ सब उपरागउ।
तंडुल-पसरहँ कारणें राना। नरक पडति काइँ अ-विजाना।

जारहु राज्यहु दुःख-गुरूकउ। यदी सुक्ख का तेहीं मूकउ।

—आदिपुराण (पृ० २६५)

---

[१] कपड़ा थान [२] पौसरेपर पानी पिलानेवाली [३] जलकी झारी

(२) राज-दर्बार[1]

अत्थाण-भूमि[2] गउ मणि विसण्ण । कणय-मय-रयणैं-विट्ठरि णिसण्णु ।
दो-वासइँ चमरइँ महु पडंति । वहु-दुक्ख-सहासइँ णं घटंति ।
सह-मंडवि खुज्जय-वावणाइ । णच्चंतइ णिरु कोड्डावणाइँ ।
वीणा-वंसइँ गेयइँ झुणंति । वेयालिय फफावय थुणंति ।
एयाइँ जइवि णिरु सुहयराइँ । महु पुणु सुविरत्तहोँ दुहयराइँ ।
पोत्थय-वायणु आढत्त सरसु । मण-सवणहँ जं जणि जणइ हरिसु ।
तहिँ अवसरिँ पडिहारि वरेण । कणय-मय-दंड-मंडिय-करेण ।
पइसारिय भड-सामंत-मंति । अणवरय भमइ जगि जाँह कित्ति ।
पय-जुयलु णविउ महु णरवरेहि । मउडग्ग-कोडि-चुविय-धरेहि ।
अवलोइय णर-वइ मइँ णवंत । पडियावयाइँ णावइ कुमित्त ।
गोविट्ठि-णिविट्ठ णरिंद सव्व । णिविडत्थवंत णं सुकइ-कव्व ।

—जसहर-चरिउ (पृ० ३२)

(३) सामंती भोग

काम-भोय-सुह-रस-वसहोँ । तहु वसुमइहि काइँ वण्णिज्जइ ।
जं जं चितइ किपि मणे । तं तं सयलु' वि खणि संपज्जइ ।।
जक्ख-पंको दढं वल्लहालिगणं । मालई-मालिया कुकुमालेवणं ।
उंचओ मंचओ चारु-सेज्जा-यलं । आवरोहारि सोम्हं थणाणं थलं ।
उण्हयं भोयणं तुप्प-धारा-हरं । रत्तओ कंवलो छण्णरंधं घरं ।
पुव्वपुण्णेण सव्वंपि संजुत्तयं । सीय-यालम्मि तेणेरिसं भुत्तयं ।
चंदणं चंदपाया पिया णेहली । मल्लिया-दामयं तार-हारावली ।
दाहिणो मंथरो मारुओ सीयलो । रुक्ख-कीलाणिओ पल्लवो कोमलो ।
वल्लरी-मंडवो पोमजुत्तो सरो । वीयणं दोलणालीणओ सीयरो ।
थद्ध-थद्धं दहिं सीययं पाणियं । उण्हयालम्मि तेणेरिसं माणियं ।

---

[1] राजकुल [2] राजप्रांगण

(२) राज-दर्बार

आस्थान[1]-भूमि गउ मन-विषण्ण[2]। कनकमय-रतन-विस्तर-निषण्ण ।
दो पासेँहि चमरा मुहु पडति । वहु-दुःख सहसैँ जनु घडंति ।
सभ-मंडपेँ कुब्जा-वामनाइ । नाचतै अतिकोटावनाइ[2] ।
वीणा-वंशिहि गीतहि ध्वनंति । वैतालिक फंफावै स्तुवंति ।
एताइँ यदपि वहु सुख-कराइँ । मुहु पुनि सुविरक्तह दुखकराइँ ।
पुस्तक-वाचन आरभेँउ सरस । मन-श्रवहँ जनु जनेँ जनै हरष ।
तेँहि अवसर प्रतिहारेँहिँ वरेहिँ । कनकमय-दड-मडित-करेहिँ ।
पइसारेउ भट-सामंत-मंत्रि । अनवरत भ्रमै जग जाह कीर्त्ति ।
पद-युगल नमेँउ मुहु नरवराहिँ । मुकुटाग्र-कोटि-चुंवित-धराहिँ ।
अवलोकेँउ नरपति मोहिँ नमंत । आ-पड़िईँ न्याइँ कुमित्र ।
गोष्ठीहिँ निविष्ट नरेन्द्र सर्व । निविडार्थवंत जनु सुकवि-काव्य ।

—जसहर-चरिउ (पृ० ३२)

(३) सामंती भोग

कामभोग-सुख-रस-वसहु, तेँहि वसुमतिहिँ किमि वर्णिज्जै ।
जो जो चितै कछु मने, सो सो सकलहु क्षणेँ संपंज्जै ।।
यक्षपंको(?)दृढं वल्लभालिंगन । मालती-मालिका कुंकुमालेपन ।
ऊँचओ मंचओ चारु-शय्यातल । आवरोहारि सूक्ष्म स्तनाहूँ तलं ।
उष्णओ भोजना तोपि धाराधरं । रक्तओ कंवलो वंद-रंध्रं घरं ।
पूर्वपुण्येहिँ सर्व हि संयुक्तक । शीतकालेहि तेँहि इदृशं भुक्तकं ।
चंदनो चंद्रपादा प्रिया स्नेहिली । मल्लिका-दामक तार-हारावली ।
दाहिने मंथरो मारुतो शीतलो । वृक्षक्रीडानियो पल्लवो कोमलो ।
वल्लरी-मंडपो पद्म-युक्तो सरो । वीजना-दोलना नीरको शीकरो ।
गाढ-गाढं दही शीतलं पानियं । उष्णकाले हि तेँहिँ ईदृशं मानियं ।

---

[1] दर्बार [2] उत्साहनाइँ

फुल्लियासा-कयंबोह-धूलीरओ । मत्त-माऊर-वंदस्स केयारओ ।
णीर-धारा मुयंतंबु-वाहज्झुणी । संगया सूहवा पासि सीमंतिणी ।
णिग्गलं मंदिरं णिक्कियं भूयलं । धावमाणं रयालं पणाली-जलं ।
इट्ठ-गोट्ठी-विसिट्ठेहिं विण्णायमं । दिव्व-गंधव्वयं कव्वयं पाययं ।
विज्जु-माला-फुरंतं णहं दिप्पहं । तस्स मेहागमे तंपि सोक्खावहं ।......
—आदिपुराण (पृ० ४०७)

(क) (वेश्या-बाजार)

वेसा-वाडइँ झत्ति पइट्ठउ । मयरकेउ पुरवेसहिँ दिट्ठउ ।
कावि वेस चितइ गय-मुण्णा । ए थण एयहों णहहिँ ण भिण्णा ।
कावि वेस चिंतइ कि वड्ढिय । णीलालय एएण ण कड्ढिय ।
कावि वेस चिंतइ किं हारें । कंठु ण छिण्णउ एण कुमारें ।
कावि वेस अहरग्गु समप्पइ । झिज्जइ खिज्जइ तप्पइ कंपइ ।
कावि वेस रइ-सलिलें सिंचिय । वेवइ वलइ घुलइ रोमंचिय ।...

घत्ता । ता वीणा-कलरव-भासिणिए देवदत्तए रायविलासिणिए ।
हिय-उल्लए कामदेउ ठविउ कय-पंजलि-हत्थें विण्णविउ ॥१॥

"परमेसर ! कारुण्णु वियप्पहि । जिह मणु तिह घर-पंगणु चप्पहि ।
तं णिसुणिवि उवयरियउ तेत्तहें । तं तहें रमणिहें मंदिरु जेत्तहें ।
आणु दिण्णु णिसण्णउ रयणिहिँ । णिव्वत्तिय-मज्जण-भूसण-विहि ।
भोयणु भुत्तउ मत्ता-जुत्तउ । सरसु कइंदें कव्वु'व उत्तउ ।
कामें कामिणि भणिय हसेप्पिणु । ....
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४८-४९)

(ख) विवाह-वर्णन

समवयस-कुयर-सहुँ चलिउ जाव । पारंभिय थुइ णग्गुडिहिँ ताव ।
णच्चंति विलासिणि गीउ रम्मु । गायण गायंतिहिँ सुकिय-कम्मु ।
गय णंदण-वणि मंडव-दुवारु । वर-तोरण-मंडिउ रयण-फारु ।
तहिँ किउ जं जोग्गु पुरोहिएण । आयारु कुमग्गणि रोहिएण ।

फूलि-आशा कदंब-ोघ-धूली-रजो। मत्त-मायूर-वृन्दों कों केकारवो।
नीरधारा मुचंत्-अंबुवाह्-द्-धुनी। संगता सून्डूवा पास सीमंतिनी।
नि'र्गलं मंदिरं निष्क्रियं भूतलं। धावमानं रजालं प्रणाली-जलं।
इष्ट-गोष्ठी-विशिष्टेहिँ विद्याचयं। दिव्यगंधर्वकं कावियं पाययं।
विज्जुमाला-फुरंतं नभं दिक्प्रभं। तासु मेघागमे सोउ सौख्यावहं।

—आदिपुराण (पृ० ४०७)

(क) (वेश्या-बाजार)

वेश्यावाटहिँ झट्ट पइट्ठें'उ। मकरकेतु-पुरवेषहिँ देखें'उ।
कोइ वेश्य चितै गति-शून्या। ए थन एतहँ नखें'हि न भिन्ना।
कोइ वेश्य चिन्तै का वाढिय। नीलालक एतेहिँ न काढिय।
कोइ वेश्य चिन्ता की हारें। कंठ न छिन्दें'उ एहिँ कुमारें।
कोइ वेश्य अधराग्र समर्पै। झिज्जै-खीझै-तापै-कंपै।
कोइ वेश्य रति-सलिलें सींचिय। वेपै वलै घुरै रोमांचिय।
घत्ता। तो वीणा-कल-रव-भाषिणिया देवदत्तआ राज-विलासिनिया।
ह्रिय-उल्लया कामदेव थापें'उ कृत-प्रांजलि-हाथें विज्ञापिया॥१॥
"परमेश्वर! कारुण्य-वियापै। जें'हि मन तें'हि घर-आँगन प्रापै।"
सो सुनिया उपकरियउ तें'तहिँ। सो तें'हि रमणिहिँ मंदिर जें'तहिँ।
अन्यो दीनु निषण्णउ रजनिहिँ। पूरावें'उ मज्जन-भूषण-विधि।
भोजन भुक्तउ मात्रायुक्तउ। सरस कवीन्द्रें काव्य'व उक्तउ।
कामें कामिनि भनियो हंसिके। ....

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४८-४९)

(ख) विवाह-वर्णन

समवयस-कुमर-सँग ले चलें'उ जब्ब। प्रारंभेउ स्तुति नग्गुडिहिँ तब्ब।
नाचंति विलासिनि गीत रम्य। गायन गायंती सुकृत-कर्म।
गउ नंदनवन-मंडप-दुवार। वरतोरण-मंडित रतन-स्फार।
तहँ किउ जो योग्य पुरोहितहीं। आचार कुमार्ग-निरोधिहहीं।

सुपइट्ठउ मंडव-मज्झि जाम। वरु दिट्ठउ सज्जण-जणहिँ ताम।
चउरिइ[1] णिविट्ठ कंदप्प-मुत्ति। पासेहि णिवेसिय तासु पत्ति।
अग्गइ पयक्खु किउ धूमकेउ। किउ होमु हुणेप्पिणु तिव्व-तेउ।
अम्मय-मइ पाणि करेण गहिउ। सीयारु पमेल्लिउ ताह अहिउ।
तहों दिण्ण कण्ण विरइउ विवाहु। सव्वेहिँ उच्चरिउ "साहु साहु"।
णवयारिवि मायरि कण्ण सहिउ। णिग्गउ वरु एहु विवाहु कहिउ।
—जसहर-चरिउ (पृ० २१)

(ग) रानियोंका जीवन

क'वि अलय-तिलय देविहि करइ। क'वि आदंसणु अग्गइ धरइ।
क'वि अप्पइ वर-रयणाहरणु। क'वि लिप्पइ कुकुमेण चरणु।
क'वि णच्चइ गायइ महुर-सरु। क'वि पारंभइ विणोउ अवरु।
क'वि परिरक्खइ णिसियासि करी। क'वि वारि परिट्ठिय दंडधरी।
अक्खाणउ कावि किंपि कहइ। दिण्णउँ कणइल्लु कावि वहइ।
क'वि वार वार विणएँ णवइ। क'वि सुरसरि-सर-सलिलहिँ ण्हवइ।
क'वि मालउ चेलिउ उज्जलउ। ढोयइ सब-लहणु सुपरिमलउ।
—आदिपुराण (पृ० ३९)

(घ) नारी-सौंदर्य-वर्णन

ताहि घरणि **मरुएवि** भडारी। जाहि रूव-सिरि अइ-गरुयारी।
अमरहँ पंतिइ पय-पणवंतिइ। लंघियाइँ अम्हइँ णहयंतिइ।
कमयलराएँ काइँ गविट्ठउ। एम णाइँ णेउरहिँ पघुट्टउ।
पण्हिहि रत्तउ चित्तु पदंसिउँ। अंगुलियहिँ सरलत्तु पयासिउँ।
अंगुट्ठुण्णईइ जं गूढइँ। गुप्फइँ तं किर पिसुणइँ मूढइँ।
णीरोमउ विसिरिउ वट्टुलियउ। मसिणउ सोहियाउ उज्जलियउ।
जंघउ कमहाणिइ ओहरियउ। दिट्ठउ णं खल-मित्तहँ किरियउ।

---

[1] चबूतरेपर

सु-पईठेउ मंडप-माँझ जब्ब। वर देखें उ मज्जन-जनें हिं तव्व।
चउरें निविष्ट कंदर्प-मूर्त्ति। पासेंहिं निवेसेउ तासु पत्ति।
आगें हिं प्रदक्षणें उ धूमकेतु। किउ होम होंमावन तीव्र-तेज।
अंमृतमय-पाणि करेहिं गहें उ। शीत्कार प्रमेल्लन[1] स ाहि अहिउ।
तहँ दियउ कन्याँ विरचें उ विवाह। सर्वेहिं उच्चरें उ "साधु साधु"।
नवकारिहु मायेर कन्याँ-सहित। निर्-गउ वर एहु विवाह कथित।
—जसहर-चरिउ (पृ० २१)

(ग) रानियोंका जीवन

कों इ मलय-तिलक देविहिं करई। कों इ आरसिहीं आगे धरें ई।
कों इ अर्पै वर-रतनाभरना। कों इ लेपै कुंकुमहीं चरणा।
कों इ नाचै गावै मधुर-स्वरा। कों इ प्रारंभै विनोद अपरा।
कों इ परि-रक्षै निशित-ासि करी। कों इ द्वारें परिट्-ठिउ दंडधरी।
आख्यानहु कों इ किछू कहई। दीनें उ कनइल्लु[2] कों इ वहई।
कों इ बार बार विनये नमई। कों इ सुरसरि-सर-सलिलें हिं स्नपई।
कों इ मालउ चोलिउ उज्ज्वलऊ। धोवै सब लहण[3] सुपरिमलऊ।
—आदिपुराण (पृ० ३९)

(घ) नारी-सौंदर्य-वर्णन

ताहि घरनि मरुदेवि भटारी[4]। जाहि रूपश्री अति गुरुकारी।
अमरन् पंक्तिहिं पद-प्रणमंतिइ। लंघायऊ हमरो नख-पंक्तिइ।
कमतल राये काह गवेषिउ। एँहि न्याईं नूपुरेहि प्रघोषिउ।
पर्ष्णिहिं रक्तउ चित्त प्रदर्शेउ। अंगुलियहिं सरलत्त्व प्रकाशिउ।
अंगुठ-उन्नति ही जिमि गूढा। गुल्फउ सो फुर पिशुना मूढा।
नी-रोमउ विसिरिउ वर्त्तुलियउ। मसृणउ सोहियाउ अंगुलियउ।
जंघउ क्रमहानी अव-धरियऊ। दीसें उ जनु खल-मित्रहँ किरियउ।

---

[1] छोडती   [2] कर्ण-फूल   [3] लहँगा (?)   [4] भट्टारिका=महाराणी

गूढइँ णरवइ-मंता भासइँ। वायरणाइँ व रइय-समासइँ।
णिविड-संधि-बंधइँ णं कव्वइँ। देविहि जण्हुयाइँ[1] अइभव्वइँ।
ऊरुय-खंभ-णराहिव-दमणहु। तोरण खंभाइँ'व रइ-भवणहु।
जेण स-सुर-णरु तिहुयणु जित्तउ। कामतच्चु जं देवहिँ वुत्तउ।
दिण्ण थत्ति तहु सोणी बिंबहु। किं वण्णमि गरुयत्तु नियं बहु।
घत्ता। गंभीर णाहि तहि मज्झु किसु, उयरु स-तुच्छउ दिट्ठु मइँ।
संसग्गवसे गुणु कासु हुउ, जो णवि जायउ जम्मि सइँ ।।१५।।
तिवली-सोवाणेहिँ चडेप्पिणु। रोमावलि-कुहिणी लँघेप्पिणु।
सिहिण-गिरिंदारोहण-दोरइ। लग्गहु वम्महु मोत्तिय-हारइ।
पिय-वसियरणु वसइ भुय-मूलइ। सुइ-सोहग्गु जाहि हत्थयलइ।
णेह-बंधु मणि-बंधि परिट्ठिउ। लायण्णे समुद्दु णं संठिउ।
जाहि तणउँ तं जणिय-वियारउँ। महुरउ इयरउ केरउ खारउ।
कंठलीह णउ कंबु पावइ। पर-सास-ऊरिउ कहँ जीवइ।
णियउ णिविट्ठउ जिय-ससि-कंतिहि। धोयहि धवलहि णाइँ पवालउ।
अहर-बिंबु रेहइ रायालउ। मुक्तावलियहि णाइँ पवालउ।
अम्हहँ ठाइ कयाइ ण संमुहु। उज्जुहु णासावंसु वि दुम्मुहु।
भउँहउँ वकत्तणु' वि ण सहियउ। णयणहिँ जंपि'व कण्णहुँ कहियउ।
णिसि-दिणि ससि रवि गयण विलविय। विण्णि'वि गंडयलइ पडिबिंबिय।
कुंडल-सिरि वहंति धवल-च्छिहि। जिण-जणणियहि सलक्खण-कुच्छिहि।
कुडिलालय भाल-यलि णिरंतर। मुह-कमलहु घुलंति णं महुयर।
अवरु' वि ताहँ भारु विबरेरउ। मुह-ससहर-भएण णं तमरउ।
तरुणिहे पिट्ठि पइट्ठउ दीसइ। कुसुम-रिक्ख-मीसियउ विहासइ।
—आदिपुराण (पृ० ३१-३२)

---

[1] जाह्नवी (गंगा)

गूढा नरपति-मंत्रा भाषा । व्याकरणहिं इव रचित्-समासा ।
निविड-संधि[1]-बंध जनु काव्या । देवि जाह्नवी इव अतिभव्या ।
ऊरू-खंभ नराधिप-दमनहँ । तोरण-खंभा इव रति-भवनहँ ।
जातेँ स-सुर-नर-त्रिभुवन जीतउ । कामतत्त्व जो देवेँहिं उक्तउ ।
दीन थाप तेँहि श्रोणीबिंबहु । का वरनौ गरुअत्त्व नितंबहु ।
घत्ता । गंभीर नाभि तहि माँझ कृश, उदर स-तुच्छउ देखु मईँ ।
संसर्ग वशे गुण कासु हुयेउ, जो नहि जायेउ जन्मतेँईँ ।।१५।।
त्रिवली-सोपानेहि चढेविय । रोमावलि केँहुनी लंघेविय ।
स्तनक-गिरीन्द्रारोहण-डोरा । लागहु मन्मथ मौक्तिकहारा ।
प्रिय-वशिकरण वसै भुज-मूलहिं । शुचि सौभाग्य जाहि हत्थतलहिं ।
स्नेहबंध मणिबंध परिट्-ठिउ । लावण्ये समुद्र ना सं-ठिउ ।
जाहिकेर सो जनित-विकारा । मधुरउ इतरहु-केरउ खारा ।
कंठलीहिं नहिँ कंबू पावै । पर-श्वासा-पूरित किमि जीवै ।
निकट-निविष्टउ जित-शशि-कान्तिहिं । धोवै धवलहि न्याइ प्रवालहिं ।
अधर-बिंब रोचै रागालउ । मुक्तावलियहिं न्याइँ प्रवालउ ।
हमरे ठहर कदाचि न संमुख । ऋज्जुहु नासा-वंशउ दुर्मुख ।
भौँहउँ वंकपनहु नहि सहियउ । नयनहिं जल्पिय कर्णहँ कहियउ ।
निशि-दिन रवि-शशि गगने लंबिउ । दोऊ गंड-तलैँ प्रतिबिंबिउ ।
कुंडल-श्री वहंत धवलाक्षिहिं । जिन-जननियहि स-लक्षण-कुक्षिहिं ।
कुटिलालक भालतले निरंतर । मुखकमलहु घुरंति जनु मधुकर ।
अवरउ ताहँ भार विवरेरउ । मुख-शशधरभरेहिं जन तमसउ[2] ।
तरुणिहिँ पृष्ठ पईठेउ दीसै । कुसम-ऋक्ष-मिश्रितउ विभासै ।
—आदिपुराण (पृ० ३१-३२)

---

[1] सर्ग (अपभ्रंश काव्योंमें संधि और कडवका क्रम होता है) [2] अंधकार

राएँ गउ णिय-सिविरहु तरंतु । . . . । पत्तउ सुरसरि-जल-मज्झ-ठाणु ।
जोयवि गंगहि सारसहँ जुयलु । जोयइ कंतहि थण-कलस-जुयलु ।
जोयवि गंगहि सुललिय-तरग । जोयइ कंतहि तिवली-तरंग ।
जोयवि गंगहि आवत्त-भवँणु । जोयइ कंतहि वर-णाहि-रमणु ।
जोयवि गंगहि पप्फुल्ल-कमलु । जोयइ कंतहि पिउ-वयण-कमलु ।
जोयवि गंगहि वियरंत मच्छ । जोयइ कंतहि चल-दीहरच्छ ।
जोयवि गंगहि मोत्तियहु पंति । जोयइ कंतिहि सिय-दसण-पंति ।
जोयवि गंगहि मत्तालि-माल । जोयइ कंतहि धम्मेल्ल णील ।

घत्ता । णिय-गेहिणि वम्मह-वाहिणि, देवि सुलोयण जेही ।
मंदाइणि जण-सुह-दाइणि, दीसइ राएँ तेही ।।७।।

—आदिपुराण (पृ० ४६)

(क) नारी-नख-शिख—

णिय वणिणा कणय-उरहों मयच्छि । दिट्ठा वरेण णं मयणलच्छि ।
जो कंतह णह-यलि दिट्ठु राउ । मुहु भावइ सो णह-यर-णिहाउ ।
चारत्तु णहहँ एए कहंति । अंगुट्ठय परमुण्णय वहंति ।
गुप्फइँ गूढत्तणु जं धरंति । णं भुअणु जिणहु मंतु'व करंति ।
जंघा-जुयलउ णेउर-दुएण । वण्णिज्जइ णं घोसें हुएण ।
वग्गइ वम्महु वहु-विग्गहेण । जण्हुय संधाएँ परिग्गहेण ।
ऊरू-थंभहिँ रइघरु अणेण । रेहइ मणि-रसणा[१] तोरणेण ।
कडियल-गरुयत्तणु तं पहाणु । जं धरिया मयण-णिहाण-ठाणु ।
मणि चिंतवंतु सय-खंडु जाहि । तुच्छोयरि किह गंभीर-णाहि ।
सो सिय ससि-वयणहे तिवलि-भंग । लायण्ण-जलहों णावइ तरंग ।
थण-थड्ढत्तणु परमाण णासु । भुय-जुयलउ कामुय-कंठ-पासु ।
गीवहे गइवेयउ हियय-हारि । बद्धउ चोरु'व रूवावहारि ।
अहरुल्लउ वम्मह-रस-णिवासु । दंतहि णिज्जिउ मोत्तिय-विलासु ।

---

[१] **कांची (करधनी)—कटिका आभूषण**

राय गऊ निज शिविरेहिँ तुरंत । . . . । . पायउ सुरसरि-जल-माँझ थान ।
जोयउ गंगहिँ सारसहँ युगल । जोवै काता-स्तन-कलश-युगल
जोयउ गंगहिँ सुललित-तरग । जोवै कांता-त्रिवली-तरंग ।
जोयउ गंगहिँ आवर्त्त-भ्रमण । जोवै कांता-वर-नाभि-रमण ।
जोयउ गंगहीँ प्रफुल्ल कमल । जोवै कांता-प्रियवदन-कमल ।
जोयउ गंगहिँ विचरत मच्छ । जोवै कान्ता-चल-दीर्घ-अक्ष ।
जोयउ गंगहिँ मोतियहु पाँति । जोवै कान्ता-सित-दशन-पाँति ।
जोयउ गगहिँ मत्तालिमाल । जोवै कान्ता-धम्मिल्ल[1]-नील ।
घत्ता । निज-गेहिनि मन्मथ-वाहिनि, देवि सुलोचन जैसी ।
मदाकिनि जन-सुख-दायिनि, दीसै राजहिँ तैसी ।।७।।
——आदिपुराण (पृ० २६)

(क) नारी-नख-शिख——

निज वर्ण कनक-उरहो मृगाक्षि । दीसति वरेहि जिमि मदन-लक्ष्मि ।
जो कतह नभ-तल देखु राव । मुहु भावै सो नभचर-निधाव ।
चारुत्व नभहँ ईहै कहंति । अंगुट्ठक-परमुन्नत वहति ।
गुल्फा गूढत्तन जो धरंति । जनु भुवन-विजय मत्र इव करंति ।
जंघा-युगलउ नूपुर-द्वयेहिँ । वर्णिज्जै जनु घोषेँ हुयेहिँ ।
वल्गै मन्मथ वहु - विग्रहेहिँ । जानू संधान - परिग्रहेहिँ ।
ऊरु-थंभहिँ रतिघर एँहीहिँ । राजै मणि-रसना-तोरणेहिँ ।
कटितल गरुत्तन सो प्रधान । जनु धरिय मदन-निधान-थान ।
मणि चितवत शतखंड जाहू । तुच्छोदरि कहँ गंभीर नाभि ।
शेषिय शशिवदनहँ त्रिवलि-भंग । लावण्य जलहँ नदिही तरंग ।
स्तन-कठिनत्वहु परमान-नाश । भुज-जुगलउ कामुक-कंठपाश ।
ग्रीवहेँ गतिवेगउ हृदयहारि । बद्धउ चोर इव रूपापहारि ।
अधरुल्लउ मन्मथ-रस-निवास । दंतेहिँ जीतेँउ मौक्तिक-विलास ।

[1] केशपाश

घत्ता। जइ भउहाँ-कुडिलत्तणेण, णर सुरधणुरुहेण पहयमय।
तो पुणु वि काइँ कुडिलत्तणहों, सुंदरि-सिरि धम्मिल्ल-गय ॥१७॥
—णायकुमार-चरिउ (पृ० १२)

(च) कुपिता नायिका—

'हेट्ठामुह वहु वरेण भणिया। कि हुइ तुहुँ मलिणाणणिया।
घणु सोहइ एक्कइ विज्जुलइ। वणु सोहइ एक्कइ कोइलइ।
इह सोहमि हउँ एक्काइ पइँ। गुरु-वयणु करेवउ तोवि मइँ।
मा रूसहि सज्जण-वच्छलिइ। अलि-णील-कुडिल-भँउँ-कोंतलिइ।
तें वयणें रोस-णियत्तणउँ। जायउँ तहि रम्मु पेम्मु घणउँ।
वप्पिल संपाइउ रमण-वसा। तडि-रय-तडि-वेयहु तणिय ससा।
चल-णयण-जुयल-णिज्जिय-हरिणि। रइकंता मयणवई तरुणि।
—आदिपुराण (पृ० ५६१)

(छ) नारी-विलाप—

ते णव बंधव सहुँ परिवारें। सोउ करंति दुक्ख-वित्थारें।....
सा सिवएवि रुयइ परमेसरि। "हा देवर! पर-भड-गय-केसरि।
हा किं जीविउँ तिणु परिगणियउँ। कोमल-वउ हुय-वहि किं हुणियउँ।
हा पयाइ किं किउँ पेसुण्णउँ। हा किं पुरि-परिभमहुँ ण दिण्णउँ।
हा कुल-धवल केंव विद्धंसिउ। हा जय-सिरि विलासु किं णिरसिउ।
हा पइँ विणु सोहइ ण घरंगणु। चंद-विवज्जिउँ णं गयणंगणु।
हा पइँ विणु दुक्खें पुरु रुण्णउँ। हा पइँ विणु माणिणि-मणु सुण्णउँ।
हा पइँ विणु को हारु थणतरि। को कीलइ सरहंसु'व सरवरि।
पइँ विणु को जण-दिट्ठिउ पीणइ। कंदुय-कील देव को जाणइ।
हा पइँ विणु को एवहिँ सूहउ। पइँ आपेक्खिवि मयणु'वि दूहउ।

---

[1] निम्नमुख, नतमुख

घत्ता । यदि भौहाँ-कुटिलत्तनेहिँ, नर सु-धनु रुहेहिँ प्रभामय ।
तो पुनिहु काइँ कुटिलत्तनहीँ, सुदरि श्री-धम्मिल्ल-गत ॥१७॥
—णायकुमार-चरिउ (पृ० १८)

(च) कुपिता नायिका—

हेट्ठामुँह बधु वरेहिँ भनियाँ । "का हुइ तुहूँ मलिनाननिया ।
घन सोहै एकइ विज्जुलई । वन सोहै एकइ कोइलई ।
एँहिँ सोहौँ मैं एकइ तुहईँ । गुरुवचन करेबउ तोउ मईँ ।
ना रूसहु सज्जन-वत्सलिई । अलि-नील-कुटिल-भौँ-कुन्तलिई ।
तव वदने रोषयित्तनऊ । जायउ तहँ रम्य-प्रेम-घनऊ ।
बप्पिल सं-पायेउ रमण-वशा । तडि-रज-तडि-वेगहँकेर श्वसा ।
चल-नयन-युगल-निर्जित-हरिनी । रतिकंता मदनवती तरुणी ।"
—आदिपुराण (पृ० ५६१)

(छ) नारी-विलाप—

सो नव-बांधव-सँग परिवारेँ । सोउ करंति दुःख विस्तारेँ ।
सा शिवदेवि रोँवै परमेश्वरि । "हा देवर ! परभट-गज-केसरि ।
हा का जीवित तृण परिगणियउ । कोमल-वय हुतवहेँ का होँमियउ ।
हा प्र-जाइ का किउ पैशुन्यउ । हा का पुरि-परिभ्रमउ न दीनेँउ ।
हा कुल-धवल कैस विध्वंसेँउ । हा जयश्री विलास का निरसेँउ ।
हा तैँ विनु सोहै न घरांगन । चंद्र-विवर्जित जनु गगनांगन ।
हा तैँ विनु दुःखे पुर रुन्नउ[1] । हाँ तैँ विनु मानिनि-मन सुन्नउ ।
हा तैँ विनु को हार थनंतरेँ । को क्रीडै सरहंस'व सरवरेँ ।
तैँ विनु को जनदृष्टिहिँ प्रीणै । कंदुक-क्रीड देव ! को जानै ।
हा तैँ विनु को ऐसो सूखउ । तैँ आपेक्षिय मदनउ दूखउ ।

---

[1] रोयेउ

हा पइँ विणु णिय-गोत्त-ससंकहु । को भुय-वलु समुद्द-विजयं-कहु ।
हा पइँ विणु सुण्णउँ हियउल्लउँ । को रक्खइ मेरउ कडउल्लउँ ।
छार-रासि हूयउ पविलोयउ । एंव वंधुवग्गें सो सोइउ ।
पंजलीहिँ मीणावलि-माणिउँ । ण्हाइवि सव्वहिँ दिण्णउँ पाणिउँ ।
—उत्तरपुराण (पृ० ३४)

(५) युद्ध

छुडु गज्जिय गुरु-संगाम-भेरि । णं भुक्खिय तिहु-यण गिलिबि मारि ।
छुडु णिग्गउ भुय-वलि साहिमाणि । छुडु एत्तहि पत्तउ चक्कपाणि ।
छुडु कालें णीणिय दीह-जीह । पसरिय माणुस-मंसासणीह ।
थिय लोयवाल जीविय-णिरीह । डोल्लिय गिरि रुंजिय गहणि सीह ।
छुडु भड-भारें ढलहलिय धरणि । छुडु पहरण-फुरणें हरिउ तरणि ।
छुडु चंदबलाइँ पलोइयाइँ । छुडु उहयवलाइँ पधावियाइँ ।
छुडु मच्छर-चरियइँ बड्ढियाइँ । छुडु कोसहु खग्गहिँ कड्ढियाइँ ।
छुडु चक्कइँ हत्थुग्गमियाइँ । छुडु सेल्लइँ भिच्चहिँ भीमयाइँ ।
छुडु कौंतइँ धरियइँ संमुहाइँ । धूमंधइँ जायइँ दिम्मुहाइँ ।
छुडु मुट्ठि-णिवेसिय लउडि-दंड । छुडु पुखुज्ज-गुणि णिहिय कंड ।
छुडु गय कायर थरहरिय-प्राण । छुडु ढोइय संदण णं विमाण ।
छुडु मेंठ-चरण-चोइय-मयंग । छुडु आसवार-वाहिय-तुरंग ।
घत्ता । छुडु छुडु कारणि वसुमइहि सेण्णइँ जाम हणंति परोप्परु ।
—आदिपुराण (पृ० २८८)

जयसिरि[१]-रामालिंगण-लुद्धहँ । एक्कमेक्क पहरंतहँ कुद्धहँ ।
असि-संघट्टणि उट्ठिउ हुयवहु । कढकढंतु सोसिउ सोणिय-दहु ।
दसवि दिसा सइँ तेण पलित्तइँ । पक्खर-चमरइँ चिंधइँ छत्तइँ ।
ता पडिवक्ख-पहर-भय-तट्ठउँ । महुमहबलु दस-दिसि वह णट्ठउँ ।

---

[१] **कृष्ण-जरासंधका युद्ध**

हा तैँ विनु निजगोत्र-शशांकहु । को भुज-बल-समुद्र-विजयाकहु ।
हा तैँ विनु मुन्नउ हृदयुन्लउ । को राखै मेरो कडयल्लउ ।
क्षार-राशि होयउ प्र-विलोकउ । इमि बंधू-वर्ग सो सोयउ ।
प्राजलीहिँ मीनावलि-मानिउ । स्नाइव सर्वहिँ दिन्नउ पानिउ ।
—उत्तरपुराण (पृ० ३४)

(५) युद्ध

यदि गर्जिय गुरु-संग्राम-भेरि । जनु भुक्खिय त्रिभुवन गिलबि मारि ।
यदि निर्-गउ भुजवलेँ साभिमान । यदि एतहिँ आयउ चक्रपाणि ।
यदि कालेँ लेलिय दीर्घ-जीह । पसरिय मानुष-मांसाशनीह[1] ।
ठिय लोकपाल जीवित-निरीह । डोलिय गिरि गर्जिय गहनेँ सीँह ।
यदि भटभारेँ दलदलिय धरणि । यदि प्रहरणु-फुरणे हरेँउ तरणि ।
यदि चंद्र-बलाइँ प्रलोकिताइँ । यदि उभय-बलाइँ प्रधाविताइँ ।
यदि मत्सर-चरितहँ बढ्ढियाइँ । यदि कोपहँ खड्गहु कड्ढियाइँ ।
यदि चक्रैँ हाथ्-उट्ठाइयाइँ । यदि सेलइँ भृत्येहिँ भ्रमियाइँ ।
यदि कुन्तइँ धरियइँ सँमुखाइँ । धूमंधा जावैँ दिग्मुखाइँ ।
यदि मुष्टि-निवेशिय लउरि-दंड । यदि पुख्-उज्-ज्यागुणेँ निहित-कांड ।
यदि गज कायर थरहरिय प्राण । यदि ढोइय स्यंदन जनु विमान ।
यदि मेंठ[2]-चरण-चोदित-मतंग । यदि आसवार-चालिय-तुरंग ।
घत्ता । यदि यदि कारणे वसुमतिहि, सेनइ जब्ब हनंति परस्पर ।
—आदिपुराण (पृ० २८८)

जय-श्री-रामा-ऽलिंगन-लुब्धहँ । एक-एक प्रहरंतँह क्रुद्धहँ ।
असि-संघट्टनेँ उट्ठेँउ हुतवह । कडकडंत शोषेँउ शोणित-दह ।
दसउ दिशाशइँ तेहिँ प्रलिप्तहँ । पक्खर-चमरैँ चिन्हैँ छत्रहँ ।
सो प्रतिपक्ष-प्रहर-भय-त्रस्तउ । मधुमथ-बल दशदिशि पथ नष्टउ ।

---

[1] **नरमांसभक्षी** [2] **महावत**

पोरिस-गुण-विभाविय-वासउ । "हणु" भणंतु सइँ धाइउ केसउ ।
णरहरि तुरय-रहिण संचूरइ । सारइ दारइ मारइ जूरइ ।
धीरइ हक्कारइ पच्चारइ । हणइ वणइ विहुणइ विणिवारइ ।
दमइ रमइ परिभमइ पयट्टइ । संघट्टइ लोट्टइ आवट्टइ ।
सरइ धरइ अवहरइ ण संचइ । खचइ कुंचइ लुंचइ वंचइ ।
उल्लालइ बालइ अप्फालइ । रूसइ दूसइ पीलइ हूलइ ।
ईहइ संखोहइ आवाहइ । रोहइ मोहइ जोहइ साहइ ।
अत ललंतइँ गाढइँ ताडइ । रुंड-मुंड-खडोहइँ[1] पाडइ ।
वेढइ उव्वेढइ संदाणइ । रक्खइ भुक्खारीणइँ पीणइ ।
वग्गइ रंगइ णिग्गइ पविसइ । दलइ मलइ उल्ललइ ण दीसइ ।
घत्ता । कुस-पास-विलुंचइ हय-वरहँ, गल-गिज्जउँ तोडइ गयवरहँ ।
वर-वीर रणंगणि पडिखलइ । मंडलियहँ रयण-मउड दलइ ।।८।।
—उत्तरपुराण (पृ० १०८)

उद्धवंत वहुमच्छरो भडो । हत्थि-खंभ-हत्थो महाभडो ।
चरण-चार-चालिय-धरायलो । धाइयो भुया-तुलिय-मयगलो ।
ता कयतेहि तेण दारुणं । परियलंत-वण-रुहिर-सारुणं ।
मलिय-दलिय-पडिखलिय-संदणं । णिविड-गय-घडा-वीढ-मद्दणं ।
अरिदमणु पधायउ साहिमाणु । "हणु हणु" भणंतु कड्ढिवि किवाणु ।
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४७-४८)

संगाम-भेरीहिँ, ण पलयमारीहिँ । भुअणं गसंतीहिँ, गहिरं रसंतीहिँ ।
सण्णद्ध-कुद्धाइँ; उद्धुद्ध-चिंधाइँ । उववद्ध-तोणाइँ, गुण-णिहिय-वाणाइँ
करि-चडिय-जोहाइँ, चल-चामरोहाइँ । छत्तंधयाराइँ, पसरिय-वियाराइँ ।
वाहिय-तुरंगाइँ, चोइय-मयंगाइँ । चल-धूलि-कविलाइँ, कप्पूर-धवलाइँ ।
मयणाहि-कसणाइँ, कय-वइरि-वसणाइँ । भड-दुण्णिवाराइँ, रह-दिण्ण-धाराइँ ।
रोसाव उण्णाइँ, चलियाइँ सेण्णाइँ । तिहुअण-रईसस्स, अंतर-णरिन्दस्स ।

[1] टुकड़े-टुकड़े करता है

पौरुष-गुण-वीभावित-वासव । "हन" भनंत स्वं धायेँउ केशव ।
नरहरि तुरग-रथेहिँ सं-चूरै । सारै दारै मारै जूरै ।
धीरै हक्कारै प्रच्-चारै । हनै वनै विधुनै विनिवारै ।
दमै रमै परिभ्रमैं-प्रवर्तै । सघट्टै लोटै आवर्त्तैं ।
सरै धरै अपहरै न संचै । खंचै कुचै नोचै वंचै ।
उल्लालै बालै आस्फालै । रूषै दूषै पीडै हूलै ।
ईहै सक्षोभै आबाधै । रोधै मोहै जोधै साधै ।
अंत ललंनै गाढै ताडै । रुंड-मुड-खडोघैं पाटै ।
बेठै[1] उद्वेठै संदानै[2] । रक्खै भूखापीडिय प्रीणै ।
वल्गै रंगै निर्-गै प्रविशै । दलै मलै उल्ललै न दीसै ।

घत्ता । कुशपाशउ नोचै हयवरहँ, गलगिज्जउँ तोडै गजवरहँ ।
वरवीर-रणंगनें प्रतिस्खलै । मण्डलिकहँ रत्नमुकुट दलै ।।८।।

—उत्तरपुराण (पृ० १०८)

उद्-धाॅवंत वहुमत्सरा भटा । हस्ति-खंभ-हस्ता महाभटा ।
चरन-चार-चालित-धरातला । धायऊ भुजा-तुलित-मदकला ।
तो कृतान्तेंहिँ तेहि दारुणं । परिचलंत-व्रण-रुधिर-सारुणं ।
मलिय दलिय प्रति-स्खलिय स्यंदनं । निविड-गजघटा-पीठ-मर्दनं ।
अरिदमन प्रधायउ साभिमान । "हन हन" भनंत काढे कृपाण ।

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४७-४८)

सग्राम-भेरिहिँ जनु प्रलय-मारीहिँ । भुवनहँ ग्रसतीहिँ, गंभिर-रसंतीहिँ ।
सन्नद्ध-क्रुद्धाइँ उर्ध्वोर्ध्व चिन्हाइँ[3] । उपवद्ध-तूणाइँ, गुण-निहित-वाणाइँ ।
करि-चढिय-योधाइँ चल-चामरोघाइँ । छत्र-धकाराहिँ, प्रसरिय विकाराहिँ ।
चालिय तुरंगाइँ, चोदिय मतंगाइँ । चूल-धूलि-कपिलाइँ, कर्पूर-धवलाइँ ।
मृगनाभि-कृष्णाइँ, कृत-वैरि-वसनाइँ । भट-दुर्विवाराइँ, रथे दीय-धाराइँ ।
रोषावपूर्णाइँ, चलिताइँ सेनाइँ । त्रिभुवन-रतीशाह, अन्तर-नरेन्दाह ।

---

[1] घेरै [2] चढ़ाई करै [3] पताका

दुग्गावहारेण, जण-पाय-भारेण। धरणी'वि संचलइ, मंदरु'वि टलटलइ।
जलणिहि'व झलझलइ, विसहरुवि चलचलइ।
जिगि-जिगिय खग्गाइँ, णिद्दलिय मग्गाइँ।
समरेक्क-चित्ताइँ, गिरि-णयरु-पत्ताइँ। सुकयाइँ फलियाइँ, मित्ताइँ मिलियाइँ।..

घत्ता। आयउ चंडप-पजोउ, अरिवम्मु'वि सण्णज्झइ।
धीय ण देइ महंतु, बलवंतें सह जुज्झइ ॥५॥

सण्णज्झंतु भणइ भडु वच्चमि। अज्जु वइरि-सीसें रणु अच्चमि।
कड्ढिवि अज्जु वइरि-वण-सोणिउ। बड्ढउ असिवरें मेरउ[1] पाणिउ।
कोवि भणइ उज्जुय-पय देप्पिणु। पिसुण-कव्वु पहु-पुरउ लुणेप्पिणु।....
कोवि भणइ लइ सत्थइँ सिक्खिउ। अज्जु वराणणें हउँ रणें दिक्खिउ।..
कोवि भणइ खल वेसावाडउ[2]। खाउ अज्जु सिव हियउ महारउ।
सामिहें केरउ रिणु आवग्गउ। कोवि भणइ महुँ वट्टइ लग्गउ।
खट्टा-मरणे काइँ करेसिमि। कोवि भणइ सर-सयणें मरेसमि।
भड-मुह-मुक्क-हक्क-लल्लक्कइँ। भोसिय-सुक्क-सक्क-चंदक्कहिँ।
वज्ज-मुट्ठि-चूरिय-सीसक्कइँ। उर-यल-भरियं-फुरिय-चल-चक्कइँ।
सुरकामिणि-यण-णयण-णिरिक्कइँ। विजयलच्छि-सुर-गणिय-मिरिक्कइँ।...

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ७४-७५)

(६) हस्ति-युद्ध-क्रीड़ा

दाबंतु दंत करु करि घिवइँ। आलिंगइ सव्वंगइँ छिवइ।
मणु रक्खइ मेलेप्पिणु दमइ। पुणु ढुक्कइ चउपासहिँ भमइ।
स-रयणु-वहु-रयण-विहूसणहु। अणुहरइ हत्थि कामिणि जणहु।
चलु चतु-चरणंतरि पइसरइ। हक्कइ हुंकारइ णीसरइ।
लंघइ आसंघइ कुभयलु। पावइ पुच्छुप्पलु वच्छयलु।
दस-दिसिहिँ 'बि हिंडइ कुंजरहु। पहु विज्जु-पुंजु णं जलहरहु।

---

[1] मेलउ [2] वेशवाट (नगरका प्रधान पथ)

दुर्गा-'पहारेहिँ, जन पाद-भारेहिँ। धरणीउ संचलै, मंदरहु टलटलै।
जलनिधिउ झलझलै, विषधरउ चलचलै।
जिगजिगिय खड्गाइँ, निर्दलिय मार्गाइँ।
समर्-एक-चित्ताइँ गिरि-नगर प्राप्ताइँ। सुकृताइँ फलिताइँ मित्राइँ मिलिताइँ।..

घत्ता। आयउ चडप्रजोत, अरिवर्मउ सन्नद्धई।
धीयाँ न देइ महंत, बलवंनें मँग जुज्झई ॥५॥

"सन्नद्धहहु" भनंत भट वचौं। आज वैरि-शीशे रण अचौं।
काढबि आज वैरि-व्रण-शोणित। वाढहु असिवर मेरहु पाणिउ।
कोइ भनै "ऋज्जुअ पद देइय। पिशुन-काव्य प्रभु-पुरव लुनेविय।"
कोइ भनै "लेइ शस्त्रइँ सीखेउ। आज वराननें हौं रणें देखेंउ।"...
कोइ भनै "खल वेश्या-वाटउ। खाउ आज सोँइ हृदय हमारउ।
स्वामिहिँ केरउ ऋण आवग्गउ"। कोइ भनै "मैं वाटैं लग्गउ।
खाटे मरने काइँ करीहौं"। कोइ भनै "शर-शयन मरीहौं।"....
भट-मुँह मुंच हाँक-ललकारइँ। भीषित शुक्र-शक्र-चंद्रार्कइँ।
वज्र-मुष्टि चूरिय शीशक्कइँ। उर-तल भरिय फुरिय चल-चक्रइँ।
सुर-कामिनि-जन-नयन-निरीक्षैं। विजय-लक्ष्मि सुर गनिय पुलक्कैं।
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ७४-७.)

(६) हस्ति-युद्ध-क्रीड़ा

दाबंत दंत कर करि देवई। आलिंगै सर्वांगहँ छुवई।
मन राखै मेलियई दमई। पुनि ढूकै चौपासे भ्रम.।
स-रचन-वहुरतन-विभूषणहीं। अनुहरै हस्ति कामिनि जनहीं।
चलु चतु-चरणांतर पइसरई। हक्कै हुंकारै नि:सर.।
लंघै आसंघै कुम्भ-तलू। पावै पुच्छोत्पल-वक्षतलू।
दशदिशहिँहु हिडै कुंजरहू। प्रभु-विज्जु-पुंज जनु जलधर.।

[1] मुस्कराये

णिम्महइ गहीर-सरेण सरु। रंगंतु धरेइ करेण करु।
आकुंचिय-तणु वंचण-कुसलु। अक्कमि'वि कमेण दसण-मुसलु।
बलिणा बलेण णिब्बूढ-बलु। जुज्झेप्पिणु सुइरु महंत-बलु।
—आदिपुराण (पृ० ३९)

५—धार्मिक आचार

(१) श्रोत्रिय कौन ?

वणि-वाणिज्जारउ जाणियउँ। किसियरु हलधारउ भाणियउ।....
सो सोत्तिउ जो ण दुट्ठु भणइ। सो सोत्तिउ जो णउ पसु हणइ।
सो सोत्तिउ जो हियएण सुइ। सो सोत्तिउ जो परमत्थ-रुइ।
सो सोत्तिउ जोँ ण मासु गसइ। सो सोत्तिउ जो ण सुयणि भसइ।
सो सोत्तिउ जो जणु पहि थवइ। सो सोत्तिउ जो सुतवेँ तवइ।
सो सोत्तिउ जो संतहुँ णवइ। सो सोत्तिउ जो ण मिच्छु चवइ।
सो सोत्तिउ जो ण मज्जु पियइ। सो सोत्तिउ जो वारइ कुगइ।
सो सोत्तिउ जो जिण-देसियउ। पुण्णा-सतिकिरियहिँ भूसियउ।
घत्ता। जो तिल-कप्पासइँ दव्वविसेसइँ, हुणिवि देव गह पीणइ।
पसु-जीव ण मारइ मारय वारइ, परु अप्पु'वि समु जाणइ॥६॥
—उत्तरपुराण (पृ० ३०९-१०)

(२) कापालिकोंका धर्म-कर्म

तहि जगह भयाउल अलिय-रासि। भइरउ-अहिणामि सव्वगासि।
तहि भमइ भिक्ख अरु देइ सिक्ख। अणुगयहँ जणहँ कुल-मग्ग-दिक्ख।
बहु-सिक्खहिँ सहियउ डंभधारि। घरि घरि हिंडइ हुंकारकारि।
सिरि टोप्पी दिण्णर वण्ण-वण्ण। सा झंपवि संठिय दोण्णि कण्ण।
अंगुल-दुतीस-परिमाणु दंडु। हत्थेँ उप्फालिबि गहइ चंडु।
गलि जोग-वट्टु सज्जिउ विचित्तु। पाउडिय जुम्मु पइँ दिण्णु दित्तु।

निर्मथै गँभीर स्वरेहिँ सरा। रणंत धरेइ करेहिँ करा।
आकुंचित-तनु वंचन-कुशला। आक्रमेउ क्रमेँहिँ दशन-मुसला।
बलिना बलेन निर्व्यूढ-बला। जुज्झेबिउ स्वरै महत-बला।
—आदिपुराण (पृ० ३९)

५—धार्मिक आचार

(१) श्रोत्रिय कौन ?

बनिय-बनिजारउ जानियऊँ। कृषिकर-हलधारउ भानियऊँ।
सो श्रोत्रिय जो न दुष्ट भनई। सो श्रोत्रिय जो ना पशु हनई।
सो श्रोत्रिय जो हृदयेहिँ शुची। सो श्रोत्रिय जो परमार्थ-रुची।
सो श्रोत्रिय जो न मांस ग्रसई। सो श्रोत्रिय जो न सुजनेँ भषई।
सो श्रोत्रिय जो जन पथेँ थपई। सो श्रोत्रिय जो सुतपेँ तपई।
सो श्रोत्रिय जो सन्तहँ नमई। सो श्रोत्रिय जोँ न मिथ्य बोँलइ।
सो श्रोत्रिय जोँ न मद्य पिवइ। सो श्रोत्रिय जो वारै कुगती।
सो श्रोत्रिय जो जिन-देगितऊ। प्रज्ञा-सत्किरियहिँ भूषितऊ।
घत्ता। जो तिल-कप्पासैँ द्रव्य-विशेषैँ, हुतिय देव-ग्रह प्रीणई।
पशु-जीव न मारै मारत वारै, पर-आपन सम जानई ।।६।।
—उत्तरपुराण

(२) कापालिकोंका धर्म-कर्म

तहँ जगहँ भयाकुल अलिक-राशि। भैरव अभि-नामी सर्वग्रासि।
तहँ भ्रमै भिक्ष अरु देइ शिक्ष। अनुगतहँ जनहँ कुल-मार्ग-दीक्ष।
बहु-शिक्षहिँ सहितउ दंभधारि। घर-घर हिंडै हुंकार-कारि।
शिरेँ टोपी दीनेहु वर्ण-वर्ण। तहि झंपेँउ सं-ठिय दोउ कर्ण।
अंगुल-बत्तिस-परिमाण दंड। हाथे उत्फालिबि गहेँउ चंड।
गलेँ योगपट्ट साजेँउ विचित्र। पावडी-युग्म पद दियोँ दीप्त।

तड-तड-तड-तड-तडतडिय सिंगु । सिंगग्गु छेवि किउ तेण चंगु ।
अप्पि अप्पहोँ माहप्पु दप्पु । अण-उंछिउ जंपइ थुणइ अप्पु ।
"महु पुरउ पसप्पिय जुय चयारि । हँउ जरइँ ण घिप्पमि कप्प-धारि ।
णल-णहुस-वेणु-मंधाय जेवि । महि भुंजिबि अवरइँ गयइँ तेवि ।
मइँ दिट्ठ राम-रावण-भिडंत । संगाम-रगि णिसियर पडत ।
मइँ दिट्ठु जुहिट्ठिलु बंधु-सहिउ । दुज्जोहणु ण करइ विण्हु[१]-कहिउ ।
हँउ चिरजीविउ मा करहु भंति । हँउ सयलहँ लोयहँ करमि संति ।
हँउ थंभमि रविहि विमाण जंतु । चदस्स जोण्ह छायमि तुरंत ।
सव्वउ विज्जउ महु विप्फुरति । वहु तंत-मंत अग्गइ सरंति ।'
पेसियउ महल्लउ गुण-वरिट्ठ । गउ तेण **भइरवाणंदु** दिट्ठु ।
"आएसु करेबिणु" भणइ मंति । "तुह दंसणि रायहोँ होइ संति" ।
सिग्घउ गउ जहिँ ठिउ णरवरिंदु । सह-मज्झि परिट्ठिउ णं उविंदु ।
दिट्ठउ जोईसरु णरवरेण । सीहासणु मेल्लिर हासिरेण ।
संमुहु जाएविणु धरणि पडिउ । दंडुव्व दंडपडिवाइ णडिउ ।
आसीसिउ णरवइ भइरवेण । "हँउ भइरव तुट्ठउ णियमणेण ।"
उच्चासणि वइसाविबि तुरतु । सलहणहँ लग्गु तहोँ पइ पडंतु ।
"तुहुँ देव ! सिट्ठि-संहार-कारि । तुहुँ जोईसरु कुल-मग्ग-चारि ।
तुहुँ चिरजीविउ जं हुवउ किंपि । पयउहि जं होसइ कज्जु तंपि ।
तुहुँ महु उप्परि साणंद भाउ । वियरहि हो सामि महापसाउ ।"
घत्ता । जोईसरु मणि तुट्ठउ चिंतइ, "दुट्ठउ इंदिय-सुहु महु पुज्जइ ।
जं जं उद्देसमि तं भुंजेसमि 'आएसहु संपज्जइ ॥६॥
ता चवइ जोइ "महु सयल रिद्धि । विप्फुरइ खणंतरि विज्ज-सिद्धि ।
हउँ हरण-करण-कारण-समत्थु । हउँ पथडु धरायलि गुण--पसत्थु ।
जं जं तुहुँ मग्गहि किंपि वत्थु । तं तं हउँ देमि महापयत्थु ।"
पप्फुल्ल वयणु ता चवइ राउ । "महु खेयरत्त करिवि हिय-छाउ ।"

---

[१] कृष्ण

तड़-तड़-तड़-तड़-तड़तड़िय शृंग । शृंगाग्र छेदि किउ तेन चंग ।
आपुहिँ आपन माहात्म्य-दर्प । अन-पूँछेँउ जल्पै स्तुवै आप
"मम सँमुहाँ बीतेँउ युग चतारि हौँ जरौँ न, ठहरौँ कल्पधारि ।
नल-नहुष-वेणु-मंधात जोउ । महि भुजिय औरेउ गयउ सोउ
मैँ दीखु राम-रावण-भिड़ंत । संग्राम-रंगेँ निशिचर पड़ंत ।
मैँ दीखु युधिष्ठिर बंधु-सहित । दुर्योधन न करै विष्णु-कथित
हौँ चिरजीवी ना करहु भ्रांति । हौँ सकलहँ लोकहँ करौँ शांति ।
हौँ थाम्हौँ रविहि विमान-यंत्र । चंद्रह ज्योत्स्ना छादौँ तुरंत
सर्वा विद्या[1] मम विस्फुरंति । बहु तंत्र-मंत्र आगे सरंति ।" . . . .
प्रेषेँऊ महल्लक गुण-गरिष्ट । गउ सोउ भैरवानंद दृष्ट
"आयसु करेबी" भनै मंत्रि । "तव दर्शनेँ राजह होइ शांति ।"
शीघ्रै गउ जहँ ठिउ नर-वरेन्द्र । सभ-माँझ वईठो जनु उपेन्द्र
दीखेँउ योगीश्वर नरवरहीँ । सिंहासन मेलेँउ[2] रभसरहीँ ।
संमुख जाईय धरणि पडेँउ । दंड 'व दंड-प्रतिपात नटेँउ
आशीषेँउ नरपति भैरवेहिँ । "हौँ भैरव तुष्टउँ निज-मनेहिँ ।"
उच्चासनेँ बैसायो तुरंत । श्लाघहीँ लागु तहँ पद-पडंत
"तुहँ देव ! सृष्टि-संहार-कारि । तुहुँ योगीश्वर कुलमार्ग-चारि ।
तुहुँ चिरजीवी जो हुओ किछुउ । प्रकटहु जो होइहि कार्य सोउ ।
तुहुँ मम ऊपर सानंद भाव । विचरहु होँहु स्वामि-महाप्रसाद ।"
घत्ता । योगीश्वर मनेँ तुष्टउ चितै, दुष्टउ इंद्रियसुख मोँहिँ पूज्यइ ।
जो जोँ उदेसौ सोँ भोगेवौँ, आदेशहु संपद्यइ ।।६।।
तब बंदै योगि "मोहिँ सकल ऋद्धि । विस्फुरै क्षणंतरेँ विद्याँसिद्धि ।
हौँ हरन-करन-कारन-समर्थ । हौँ प्रथित धरातलेँ गुण-प्रशस्त
जो जो तू माँगै कोइ वस्तु । सो सो हौ देउँ महापदार्थ ।"
प्रफ्फुल्ल-वदन तब वदै राव । "मम खेचरत्व करब हिये छाव

---

[1] मंत्र-विद्या　　[2] छोडेँउ

"तुइ खेयरत्तु[१] हउँ करमि वप्प ! परमोवएसु जइ णिव्वियप्प ।
भो भो णिव-कुल-कुवलय-मयंक ! दुव्वार-वइरि-वारण असंक ।
मा णिसुणहि णिय-परिवार-वयणु । णिस्संके लब्भइ गयण-गमणु ।
जइ देवि पुज्ज आगमिण उत्त । जइ जुयल-जुयल जीवेहिँ जुत्त ।
णहयर थलयर जलयर अणेय । पसु-पक्खि-मिहुण वहु-वण्ण-भेय ।
जइ णर-मिहुणुल्लउ अवय-पुण्णु । देवी-मंडउ तुहुँ करहि पुण्णु ।
तुह एम करंतहोँ वलिविहाणु । हउँ तुग्ग मित्तु चंडियसमाणु ।
ता तुज्झ होइ खेयरिय-सत्ति । विज्जाहर सेविहिँ अतुल-सत्ति ।
तुह खग्गि वसइ जयसिरि सछाय । अमरत्तु होइ तह अजर काय ।"......
छेल-मिहुण-सूयरा । रोझ-हरिण-कुजरा ।
वाल-वसह-रामहा । मेस-महिस-रोसहा ।
घोड-करह-भल्लुया । सीह-सरह-गंडया ।
वग्घ-ससय-चित्तया । एवँ वहु-चउप्पया ।
कक-कुरर-मोरया । हस-वलय-चउरया ।
घूय-सरढ-काउला । कोडि - पूस - कोइला
कुम्म-मयर-गोहया । गाझ-झसय-रोहया ।
जीव सयल जाणिया । तीएँ पुरउ आणिया ।..
कडिवद्ध-चल-चीरिया-चिंघ-जालाइँ । कर-धरिय-विप्फुरिय-कत्तिय-कवालाइँ ।
पायडिय-णिय-गुरुकमारूढ-लिंगाइँ । कुल-घोसमय चम्म-पच्छाइ अंगाइँ ।
मुद्दा विसेसेण दूरं णमंताइँ । पय-घग्घरोलीहिँ घव-घव-घवंताइँ ।
कह-कह-कहंताइँ सवियार-वेसाइँ । मुक्कट्ट हाराइँ झंपडिय-केसाइँ ।
जहिँ विविह-भेयाइँ कउलाइँ मिलियाइँ । कीलंति ढड्ढरइँ अट्टंग-वलियाइँ ।
जहिँ करड-पटहाइँ वज्जंति वज्जाइँ । इट्ठाइँ मिट्ठाइँ पिज्जंति मज्जाइँ ।
छिज्जंति सीसाइँ णिवंडंति भीसाइँ । रस-वस-विमीसाइँ खज्जंति माँसाइँ ।
गिज्जंति गेयाइँ चामुंड-चंडाइँ । गहिऊण तुंडेण रुंडस्स खंडाइँ ।

---

[१] आकाशगामिता

तोँहि खेचरत्व हौँ करौँ बाबु। परमोपदेश यदि निर्विकल्प।
हे हे निजकुल-कुवलय-मृगांक। दुर्वार-वैरि-वारन-अशंक।
मति सुनिहौ निज-परिवार-वचन। निःशकेँ लब्भै गगन-गमन।
यदि देवि पूजु आगमे उक्त। यदि युगल-युगल-जीवेहिँ युक्त।
नभचर-थलचर-जलचर अनेक। पशु-पक्षि-मिथुन बहु-वर्णभेद।
यदि नर-मिथुनुल्लौ वयव'-पूर्ण। देवी-मंडप तुहुँ करहि पूर्ण।
तुहुँ ऐस करंतह बलि-विधान। हौ तूष मित्र! चंडी-समान।
तब तोहिँ होइ खेचरी-शक्ति। विद्याधर सेवहिँ अतुल-शक्ति।
तव खड्गेँ बसै जयश्री सछात्। अमरत्व होइ तिमि अजर-काय।"......
छेरि-मिथुन-शूकरा। रोज[१]-हरिन-कुंजरा।
वाल-वृषभ-रासभा। मेष-महिष-रोसहा।
घोड-करभ-भल्लुआ। सिंह-शरभ-मैँडआ।
बाघ-शशक-चित्तआ। एहि विध चतुष्पदा।
कंक-कुरर-मोरआ। हंस-बलक-चतुरका।
घूच-शरट-काउला। कोटि-पूस-कोइला।
कूर्म-मकर-गोहआ। गाभ-झषक-रोहआ।
जीव सकल जानिया। तेहिँ संमुख आनिया।...
कटिबद्ध-चल-चीरिया-चिन्ह-जालाइँ। कर धरिय विस्फुरित-कृत्तिक-कपालाइँ।
प्राकटिय निज गुरु-क्रमारूढ लिंगाइँ। कुल-घोष-मद-चर्म प्रच्छादि अंगाइँ।
मुद्रा-विशेषेहिँ दूरं नमंताइँ। पद-घर्घरोलीहिँ घव-घव-घवंताइँ।
कह-कह-कहंताइँ सविकार-वेपाइँ। मुक्त-'ट्टहासाइँ झंपडिय केशाइँ।
जहँ विविध-भेदाइँ कौलाइँ मिलिताइँ। क्रीडंति ढड्ढरैँ अष्टांग-बलियाइँ।
जहँ करड-पटहाइँ बाजंति वाद्याइँ। इष्टाइँ मिष्टाइँ पीयंति मद्याइँ।
छिद्यन्त शीशाइँ निपतंति भीषाइँ। रस-वश-विमिश्राइँ खाद्यंत मांसाइँ।
गीयंत गीताइँ चामुंड-चंडाइँ। गहियाउ तुंडेहिँ रुंडाइ खंडाइँ।

---

[१] घोडरोज (नीलगाय)

दुप्पेच्छ-रत्तच्छ-विच्छोह-दाइणिउ । णच्चंति जोइणिउ साइणिउ डाइणिउ ।
पसु-रुहिर-जल-सित्त-पंगण-पएसम्मि । पसु-दीह-जीहा-दल'च्चण-विसेसम्मि ।
पसु-अट्ठि-कय-पिट्ठ-रंगावलिल्लम्मि । पसु-तेल्ल-पज्जलिय-दीवय-जुइल्लम्मि ।. . .
—जसहर-चरिउ (पृ० ६-१३)

६—कृष्ण-लीला

(१) गोपियोंके साथ

दुबई । धूलीधूसरेण वर-मुक्क-सरेण तिणा मुरारिणा ।
कीला-रस-वसेण गोवालय-गोवी-हियय-हारिणा ।।
रंगंतेण रमंत-रमंते । मंथउ धरिउ भमंतु अणंते ।
मंदीरउ तोडिबि आ-वट्टिउँ । अद्धविरोलिउँ दहिउँ पलोट्टिउँ ।
काबि गोवि गोविंदहु लग्गी । एण महारी मंथणि भग्गी ।
एयहि मोल्लु देउ आलिंगणु । णं तो मा मेल्लहु मे प्रंगणु ।
काहिंबि गोविहि पंडुरु चेलउँ । हरि-तणु तेएँ जायउँ कालउँ ।
मूढ जलेण काइँ पक्खालइ । णिय-जडत्तु सहियहिँ दक्खालइ ।
थणरसिच्छिरु छायावंतउ । मायहिँ संमुहुँ परिधावंतउ ।
महिस-सिलंबउ हरिणा-धरियउ । णं कर-णिवंधणाउ णीसरियउ ।
दोहउ दोहण-हत्थु समीरइ । मुइ मुइ माहव कीलिउँ पूरइ ।
कत्थइ अंगण-भवणा-लुद्धउ । वालवच्छु वालेण णिरुद्धउ ।
गुंजा-भेंदुय-रइय-पओएँ । मेल्लाविउ दुक्खेहिँ जसोएँ ।
कत्थइ लोणिय-पिंडु[1] णिरिक्खिउ । कण्हें कंसहु णं जसु भक्खिउँ ।
घत्ता । पसरिय-कर-यलेहिँ सहंतिहिँ सुइ-सुहकारिणिहिँ ।
भद्दिइ णियडि थिए धरयम्मु ण लग्गइ णारिहिँ ।।६।।. .
—उत्तरपुराण (पृ० ६४-६५)

---

[1] **नवनीत-पिंड**

दुष्प्रेक्ष्य-रक्ताक्ष-विच्छोभ-दायिनिउ । नाचंति योगिनिउ शाकिनिउ डाइनिउ ।
पशु-रुधिर-जल-सिक्त-प्रांगण-प्रदेशेहिँ । पशु-दीर्घजिह्वा-दलार्चन-विशेषेहिँ ।
पशु-अस्थि-कृत-पिष्ट-रंगावलिल्लहि । पशु-तैल-प्रज्वलित-दीपक-द्युतिल्लंहि ।...

—जसहर-चरिउ (पृ० ६-१३)

६—कृष्ण-लीला

(१) गोपियोंके साथ

द्विपदी । धूली-धूसरेहिँ वर-मुक्त-शरेहिँ तेँहि मुरारिहीँ ।
क्रीडा-रस-वशेहिँ गोपालक-गोपी-हृदय-हारिहीँ ॥
रंगंतेहिँ रमंत-रमंते । पंथअ धरिउ भ्रमंत अनंते ।
मंदीरउ[1] तोडिय आ-वट्टिउँ । अर्ध-विलोनिय दधिय पलोट्टिउँ ।
कोइ गोपि गोविंदहँ लागी । "इनहिँ हमारी मंथनि भाँगी ।
एतहँ मोल देउ आलिंगन । ना तो न आवहु मम आँगन ।"
कोइहु गोपिहि पांडुर चोली । हरि तनु तेँही जायउ काली ।
मूढ जलेहिँ काइँ प्रक्षालै । निज-जडत्व सखियन देक्खावै ।
स्तन्य-रसि-त्थिर छायावंतउ । मातहिँ संमुख परिधावंतउ ।
महिष-शृंगहू हरिहीँ धरियउ । न कर-निवंधनाउ नीसरियउ ।
दोहहु दोहन-हाथ समीरै । मुदि मुदि माधव क्रीडिउ पूरै ।
कतहूँ आँगन-भवन-ललुब्धउ । बाल-वत्स वालेहिँ निरुद्धउ ।
गुंजा-गुच्छक-रचित प्रयोगेँ । मेल्लाविउ दुःखेहिँ यशोदेँ ।
कतहूँ नैनू-पिंड निरेखेँउ । कृष्णेँ कंसहु जनु यश भक्षेउ ।
घत्ता । प्रसरित करतलेहिँ शब्दंतिहिँ शुचि-सुखकारिणिहीँ ।
भद्रिइ निकट स्त्री धरइ न लागै नारिहीँ ॥६॥

—उत्तरपुराण (पृ० ६४-६५)

---

[1] मथानी

(२) पूतना-लीला

जाणिइ अरिवरि, ता तहिँ अवसरि । कसाएसें, माया-वेसें ।
वल मायाविणि, धाइय जोइणि । वच्छर-वाउलु, गय तं गोउलु ।
जयसिरि-तण्हहु, णव-महु कण्हहु । पासि पवण्णी, झत्ति णिसण्णी ।
पभणइ **पूयण**, "हे महुसूयण । पिय-गरुडद्धय, आउ थणद्धय ।
दुद्ध-रसिल्लउ, पियहि थणुल्लउ ।" तं आयण्णिवि[1], चगउ मण्णिवि ।
चुय-पय-पंडुरि, वयणु पयोहरि । हरिणा णिहियउँ, राहुं गहियउँ ।
ण ससि-मंडलु, सोहइ थणयलु । सुरहिय परिमलु, ण णीलुप्पलु ।
सिय-कलसुप्परि, विंभिउ मणि हरि । कडुएँ खीरें, जाणिय वीरें ।
"जणणि ण मेरी, विप्पियगारी । जीविय-हारिणि, रक्खसि वइरिणि ।
अज्जु'जि मारमि, पलउ समारमि ।" इय चिंतंतें, रोसु वहंतें ।
माण महंतें, भिउडि करंते । लच्छीकंतें, देवि अणंतें ।
दंतहिँ पीडिय मुट्ठिइ ताडिय । दिट्ठिइ तज्जिय, थामें णिज्जिय ।
अणुवि ण मुक्की, णहहिँ विलुक्की । खलहि रसंतहि, सुण्णु हसंतहि ।
भीमें वालें, कयकल्लोलें । लोहिउँ सोसिउँ, पलु आकरिसिउँ ।
दाणव-सारी, भणइ भडारी । "हिय-रुहिरासव, मुइ मुइ केसव ।
णदाणंदण, मेल्लि जणद्दण । कंसु ण सेवमि, रोसुण दावमि ।
जहिँ तुहुँ अच्छहि, कील-समिच्छहि । तहिँ णउ पइसमि, छलु ण गवेसमि ।"
घत्ता । इय रुयंति कलुणु कह , कहव गोविंदें मुक्की ।
गय देवय कहिँमि, पणु णंद-णिवासि ण ढुक्की ॥९॥

(३) ओखल-बंधन

दुवइ । वर-काहलिय-वंस-रव-वहिरए, गाइय गेय-रस-सए ।
रोमंथंत - थक्क - गो - महिसि - उल - सोहिय - पएसए ॥

---

[1] सुन कर

(२) पूतना-लीला

जानिय अरिवर, सो तेहि अवसर। कसादेशे, मायावेषें।
　　　　वल-मायाविनि, धाइय जोगिनि। वत्सर बावल, गउ सो गोकुल।
जयश्री-तृष्णहँ, नवमधु कृष्णहँ। पास प्रवर्णी, झट्ट निषण्णी।
　　　　प्रभनै पूतन, "हे मधुसूदन ! प्रिय गरुडध्वज, आउ थनध्वज।
दूध-रसिल्लउ, पियहु स्तनुल्लउ।".. सो आकर्णिय, चगा मानिय।
　　　　चुव-पय-पांडुर, वदन-पयोधर। हरिहीं निहिनउ, राहुँहि गहियउ।
जनु शशि-मंडल, सोहै स्तनतल। सुरभित परिमल, जनु नीलोत्पल।
　　　　सित-कलशोपरि, विस्मेउ मनें हरि। कडुये क्षीरें, जानिय वीरें।
जननि न मेरी, विप्रियकारी। जीवित-हारिणि, राक्षसि वैरिणि।
　　　　आजुहि मारौं, प्रलय समारौं।" इमि चितंता, रोष वहंता।
मान महंता, भृकुटि करंता। लक्ष्मीकंता, देव अनंता।
　　　　दाँतहिँ पीडिय, मुट्ठिहिँ ताडिय। दृष्टिइँ तर्जिय, स्थामें[1] जीतिय।
भनहु न मुक्की[2], नभहिँ वि-लुक्की। खलहिँ रसतहिँ, शून्य हसतहिँ।
　　　　भीमा बाला, किउ कल्लोला। लोहिउ शोषेंउ, बल आकर्षेंउ।
दानव सारी, भनै भटारी। "हिय-रुधिरासव, मुइ मुइ केशव।
　　　　नंदानंदन, छोडु जनार्दन। कंस न सेवौं, रोष न देवौं।
जहँ तुहँ आछहि[3], क्रीडा-इच्छहि। तहँ ना पइसौं, छल न गवेषौं।"
　　घत्ता। इमि रोवंति करुण कथ, कहव गोविंदें मुक्की[4]।
　　　　गइ देवत कहँहि, पुनि नंद-निवास न ढुक्की ॥६॥

(३) ओखल-बंधन

　　द्विपदी। वर-काहलिय-वंशि-रव-बधिरए, गाइय गीत-रस-सए।
　　　　रोमथंत थाक[5] गो-माहिषि-कुल-शोभित-प्रदेशए ॥

---

[1] बलसे　[2] छूटी　[3] रहो　[4] छोड़ी　[5] रहे

अण्णहिँ पुणु दिणि, तहिँ णिय-पंगणि । जण-मणहारी, रमइ मुरारी ।
घोट्टइ खीरं, लोट्टइ णीरं । भंजइ कुंभं, पेल्लइ डिंभं ।
छंडइ महियं, चक्खइ दहियं । कड्ढइ चिञ्चि, धरइ चलञ्चि ।
इच्छइ केलिं, करइ दुवालिं । तहिँ अवसरए, कीलाणिरए । . . . .
दुवइ । मरु-हय-महीरुहेहिँ पहि चप्पिउ गद्दह-तुरय चूरिओ ।
अवरु उइहलम्मि पइँ बद्धउ जाणहुँ वालु मारिओ ॥
धाइय तासु जसोय विसंठुल । कर-यल-जुयल-पिहिय-चल-थण-यल ।
बद्धउ उक्खलु मेल्लिवि घल्लिउ । महु जीविएण जियहि सिसु वोल्लिउ ।
फणि-णर-सुरहँमि अइ सइयउ । हरि-मुहि चुविवि कडियल लइयउ ।
किं खरेण किं तुरएँ दट्ठउ । मायइ सयलु अंगु परिमट्ठउँ । . . . .

(४) देवकी पुत्र देखने नंद घर गईं

महुरापुरि घरि घरि वण्णिज्जइ । णंद-गोट्ठि पत्थिवहु कहिज्जइ ।
तहु **देवइ** मायरि उक्कंठिय । पुत्तसिणेहेँ खणु विणु सठिय ।
गो मुह-कूवउ सहउ चउत्थी । लोयहु मिसु मंडिवि वीसत्थी ।
चलिय णंद-गोँउलि सहुँ णाहेँ । सहुँ रोहिणि-सुएण चंदाहेँ ।
घत्ता । मायइ महु-महणु वहु गोवहँ मज्झि णिरिक्खिउ ।
वय-परिवेठियउ कलहंसु जेम ओलक्खिउ ॥१३॥ . . . .
भायउ सिसु कीला-रय-रंगिउ । हलहरेण दिट्ठिइ आलिंगिउ ।
भुय-जुयलउँ पसरंतु णिरुद्धउँ । जायउँ हरिसे अंगु सिणिद्धउँ ।
चिंतिवि तेण कंस-पेसुण्णउँ । आलिंगणु देंतेण ण दिण्णउँ ।
गाढ़-सिणेह-वसेण णवंतइ । आणाविय रसोइ गुणवंतइ ।
गंध-फुल्ल-दीवउँ संजोइउ । भोयणु मिट्ठउँ मायइ ढोइउँ ।
अल्लय-दल-दहि-ओल्लिय-कूरहिँ । मंडय-पूरणेहिँ घियपूर[1]हिँ ।
णाणा-भक्ख-विसेसहिँ जुत्तउँ । सरसु भावि भूणाहेँ भुत्तउँ । . . . .

---

[1] घेवर

अन्यहि पुनि दिन, तहँ निज प्रांगने । जन-मन-हारी, रमै मुरारी ।
घोट्टै क्षीरं, लोट्टै नीरं । भंगै कुभं, पेल्लै डिंभं ।
छाडै महियं, चाखै दहियं । काढै चीँचीँ, धरै चल-र्चि ।
इच्छै केलि, करै दुवारि । तेँहि अवसरए, क्रीडा निरते । ...

द्विपदी । मरुहत-महिरुहेहिँ पथि चाँपेउ गद्दह तुग्ग चूरिया ।
अवर ओखलिहिँ तैँ बाँधेउ, जानहु बाल मारिया ॥
धाइय ताहँ यशोद विसंस्थुल[1] । करतल-युगल-ढाँकि चल-स्तनतल ।
"बाँधेँउ ओखलि मेल्लिय घालेँउ । मम जीवनहिँ जियै शिशु" बोलेउ ।
फणि-नर-सुरहँहु अतिशय यउ । हरि-मुख चुबी कटितल लइयउ ।
की खरेँहिँ की तुरगेँ देखेउ । मातड सकल-अंग परिमर्षेँउ । ...

(४) देवकी पुत्र देखने नंद घर गई

मथुरापुरि घर घर वर्णिज्जै । नंद-गोष्ठेँ पार्थिवहँ कहिज्जै ।
तहँ देवकि माता उत्कंठिय । पुत्र सिनेहेँ क्षण विनु सं-ठिय ।
गोमुख-कूप उत्सवइ चतुर्थी । लोकहँ मिस मंडिय विश्वस्ती ।
चलिय नंद-गोकुल-सँग नाथे । सँग रोहिणि-सुतेहिँ चद्राभेँ ।

घत्ता । मायइ मधुमथन वहु गोपहँ माँझ निरेखियऊ ।
वत परिवेठियउ, कलहंस-जिमि ओलख्-खियऊ ॥१३॥

भाइय शिशु क्रीडा-रज-रंगिउ । हलधरेहिँ देखिय आलिंगउ ।
भुज-युगलउ पसरंत निरुद्धउ । जायउ हर्षे अंग सिनिग्धउ ।
चिंतिय सोइ कंस-पैशुन्यउँ । आलिंगन देतऊ न दिन्नउँ ।
गाढ - सिनेह - वशेहिँ नमंतै । ले आइय रसोइ गुणवंतै ।
गंध-फूल-दीपउँ संजोयउ । भोजन मिट्ठउँ मायेँ देयउ ।
अल्लयदल-दधि ओल्लिय गूडहिँ । मंडा-पूरणेहिँ धृतपूरहिँ ।
नाना भक्ष्य-विशेषेहिँ युक्तउ । सरस भावेँ भू-नाथेँ भुक्तउ ।

---

[1] अस्तव्यस्त

(५) गोवर्धन-धारण

जलु गलइ, झलझलइ। दरि भरइ, सरि सरइ।
तडयडइ, तडि पडइ। गिरि फुडइ, सिहि णडइ।
मरु चलइ, तरु घुलइ। जलु थलु'वि, गोउलु'वि।
णिरु रसिउ, भय-तसिउ। थरहरइ, किरमरइ।
जाव ताव, थिर भाव—। धीरेण, वीरेण।
सर - लच्छि - जयलच्छि - तण्हेण, कण्हेण।
सुर थुइण, भुय-जुइण। वित्थरिउ, उद्धरिउ।
महिहरउ, दिहियरुउ। तम जडिउँ, पायडिउँ।
महि-विवरु, फणि-णियरु। फुप्फुवइ, विसु मुयइ।
परिघुलइ, चलवलइ। तरुणाँइ, हरिणाइँ।
तट्ठाइँ, णट्ठाइँ। कायरइँ, वणयरइँ।
हिंसाल - चंडाल - चंडाइँ, कंडाइँ।
तावसइँ, परवसइँ। दरियाइँ जरियाइँ।
घत्ता। गो-बद्धण-परेण गो-गोमि-णिभारु व जोइउ।
गिरि गोवद्धणउ गोवद्धणेण उच्चाइयउ ॥१६॥ . . .

(६) कालिय-दमन

वइरि जसोयहि पुत्तु, इय कंसें मणि परिछिण्णउ।
कमलाहरणु रउद्दु तें, णंदहु पेसणु दिण्णउँ ॥ ध्रुवकं ॥
सिहि-चुरुलि-भूउ, गउ राय-दूउ। तें भणिउ णंदु, मा होहि मंदु।
जहिँ गरल-गाहि, णिवसइ महाहि। जउणा सरंतु, तं तुहुँ तुरंतु।
जायवि जपेण, कय-जण-रवेण। आणहि वराइँ, इन्दीवराइँ।
ता णंदु कणइ, सिर-कमलु धुणइ। जहिँ दीण-सरणु, तहिँ ढुक्कु[1] मरणु।

---

[1] प्रविष्ट हुआ

(५) गोबर्धन-धारण

जल गलै झलझलै। दरि भरै, सरि सरै।
तड़तड़ै तड़ि पड़ै। गिरि फुटे शिखि नटै।
मरु चलै तरु घुरै। जल-थलहु, गोकुलहु।
अतिरसित भय-त्रसित। थरथरै किलमिलै।
जाव ताव स्थिर भाव, धीरेहिँ वीरेहिँ।
सर - लक्ष्मि - जयलक्ष्मि - तृष्णेहिँ कृष्णेहिँ।
सुर-स्तुतिहिँ भुजयुगहिँ, विस्तारेउ उद्धारेउ।
महिधरउ दिगिचरउ, तम जडेँउ प्राकटेँउ।
महि-विवर फणि-निकर, फुफ्फुवैं विष मुचै।
परि-घुरैँ चलवलैँ, तरुणाइँ हरिनाइँ।
तत्-स्थाइँ नष्टाइँ, कातरइँ वनचरइँ।
पडियाइँ रडियाइँ, क्षिप्ताइँ त्यक्ताइँ। हिसाल-चंडाल-चंडाइँ कोण्डाइँ।
तापसैँ परवशैँ, दारिताइँ जीर्णाइँ।

घत्ता। गो-बर्धन परेहि गो-गोपिणिँ[1] भार इव-जोयउ।
गिरि गोबर्धनउ गोवर्धनेहिँ ऊँचाइयउ ॥६॥

(६) कालिय-दमन

वैरि यशोदापुत्र, ऐँहु कंसह मनेँ परि-आइयउ।
कमलाहरण रउद्र तैँ, नंदह प्रेषण दीनेऊ ॥ ध्रुवक ॥
शिखि चुरुकि भूत, गउ राजदूत। सो भनेउ "नंद ! ना होहु मंद।
जहँ गरले-ग्राहि, निवसै महा'हि। जमुना सरंत तहँ तुहुँ तुरंत।
जायवि जवेहिँ कृत-जन-रवेहिँ। आनहि वराइँ इन्दीवराइँ।
तब नंद कँदै, शिरकमल धुनै। जहँ दीन शरण, तहँ ढुक्कु मरन।

---

[1] गोपाल

जहिँ राउ हणइ, अण्णाउ कुणइ । कि धरइ अण्णु, तहिँ विगय-मण्णु ।
हउँ काइँ करमि, लइ जामि मरमि । फणि सुट्ठु चंडु, तं कमल-संडु ।
को करिण छिवइ, को झंप घिवइ । धगधगधगंति, हुयवहि जलंति ।
उप्पण्ण-सोय, कंदइ जसोय । "महु एक्कु पुत्तु, अहिमुहि णिहित्त ।
मा मरउ बालु, मइँ गिलउँ कालु ।" इय जा तसंति, दीहर ससति ।
पियरइँ रसंति, ता विहिय संति । अलिकाय-कंति, रणधीरु मंति ।
पभणइ उविंदु[1], "णिहणवि फणिदु । णलिणाइँ हरमि, जलकील करमि ।"

घत्ता । इय भाणिबि कण्हु संप्राइउ जउणा सरवरु ।
उब्भड-फड-वियडंगु यम-पासु वाव धाइउ विसहरु ।।१।।

णं कंस-कोव-हुयवहहु धूमु । णं णइ-तरुणी-कडि-मुत्त-दाम ।
ण ताहि जि केरउ जल-तरंगु । ण कालमेहु दीही कयगु ।
सिय-दाढा-विज्जुलियहिँ फुरंतु । चल-जमल-जीहु विस-लव मुयंतु ।
हरि सउहुँ फडंगुलि रयण णक्खु । पसरिउ जमेण करु घाय-दक्खु ।
णं दंड-दाणु सर-सिरिइ मुक्कु । गइ-वेयउ कण्हहु पासि ढुक्कु ।
फणि फुप्फुयतु चल जुज्झ-लोलु । णं तिमिरहु मिलियउ तिमिर-लोलु ।
दीसइ हरि दहि भसलउल-कालु । णं अंजण-गिरिवरि णव-तमालु ।
तणु-कंति-परज्जिय-घण-तमासु । णक्खइँ फुरंति पुरिसोत्तमासु ।
सिरि माणिक्कइँ विसहर-वरासु । दीसंतइँ देंति 'व देहणासु ।
तंबेहिँ कुसुम-मणि-यरहिँ तंबु । णं सरि वेल्लिहि पल्लउ पलंबु ।
अहि घुलिउ अंगि महुसूयणासु । णं कत्थूरी-रेहा-विलासु ।

घत्ता । विसहर-घोलिर-देहु, सरि भमंतु रेहइ हरि ।
कच्छालंकिउ तुंगु, णं मयमत्तउ दिस-करि ।।२।। . . . .

---

[1] **विष्णु, कृष्ण**

जहँ राव हनै, अन्याय करै। की धरै अन्य तहँ विगत-मन्यु।
हौँ काहँ करौँ, लेइँ जाउँ मरौँ। फणि अतिव चंड, सो कमल-षंड।
को करेँहिँ छुवै, को झंप देँवै। धगधगधगंत हुतवह ज्वलंत।
उत्पन्न-शोक क्रंदै यशोद। "मम एकपुत्र अहिमुख नि-क्षिप्त।
ना मरउ बाल, मैँ गिरौँ काल।" इमि त्रसंति दीरघ श्वसंति।
पियरहिँ रमंति तो विहिन-शांति। अलिकाय-कांति रणधीर मंति।
प्रभनै उपेन्द्र निहनव फणींद्र। नलिनाइँ हरौँ, जलक्रीड करौँ।

घत्ता। इमि भनिय कृष्ण (तहँ) गयऊ यमुना-सरिवर।
उद्भट-फण-विकटांग यमपाश इव धायेँउ विषधर ॥१॥

जनु कंस-कोप-हुतवहह धूम। जनु नदि-तरुणी-कटि-सूत्रदाम।
जनु ताहिय केरउ जलतरंग। जनु कालमेघ दीर्घीकृतरांग।
सित-दाढा विज्जुलियहिँ फुरत। चल-यम-जीभ विपलव मुचंत।
हरि सँमुहँ फणांगुलि-रतन-नक्ख। पसरेँउ जमहीँ कर घात-दक्ष।
जनु दंडदान सर-श्रीहि मुक्क। जा वेगहिँ कृष्णहँ पास ढुक्क।
फण फुफ्फुवंत चल युद्धलोल। जनु तिमिरहँ मिलियौ तिमिर लोल।
दीसै हरि तहँ भसल[१]-कुल-काल। जनु अंजन-गिरिवरेँ नवत-माल।
तनु-कांति-पराजिय घन-त मास। नक्खैँ फुरंति पुरुषोत्तमास. . . ।
शिर माणिक्यहिँ विषधर-वराहँ। दीसंतै देंति'व देह-नाश।
ताम्रेहिँ कुसुम-मणि-करहिँ ताम्र। जनु सरेँ वेल्लिहि प्रलंब।
अहि घूरेँउ अंग मधुसूदनाहँ। जनु कस्तूरी-रोवा-विलास।

घत्ता। विषधर-घोलिर देह, शिर भ्रमंत राजै हरि।
कक्षालंकृत तुंग-जनु मदमत्तउ दिश-करि ॥२॥. . . .

---

[१] भ्रमर

(७) कृष्ण-महिमा

कण्हेण समाणउ कोवि पुत्तु । सजणउ जणणि विद्दविय-सत्तु ।
दुर्धर-भर-रण-धुर-दिण्ण-खंधु । उद्धरिय जेण णिवडंत वंधु ।
भंजिवि नियलइँ गय-वर-गईह । सहुँ माणिणीइ पोमावईह ।
कइवय दियहहिँ रइ-कीलिरीहिँ । बोल्लाविउ पहु गोवालिणीहिँ ।

७–कविका संदेश

"संगुत्तउँ पइँ माहव सुहिल्लु । कालिंदिलीरि मेरउँ कडिल्लु ।
एवहिँ महुरा-कामिणिहिँ रत्तु । महुँ उप्परि दीसहि अथिरं चित्तु ।"
क'वि भणइ "दहिउ मंथंतियाइ । तुहुँ मइँ धरियउ उब्भतियाइ ।
लवणीय-लित्तु करु तुज्झ लग्गु । क'वि भणइ पलोयइ मज्झु मग्गु ।
"तुहुँ णिसि णारायण सुयहिँ णाहिँ । आलिंगिउ अवरहिँ गोवियाहिँ ।
सो सुयरहि किं ण पउण्ण-वंधु । संकेय-कुडंगुड्डीणु रिंछु ।"
घत्ता । कावि भणइ "णासंतु उद्धरिवि खीर-भिंगारउ ।
किं वीसरियउ अज्जु ज मइँ सित्तु भडारउ ॥१०॥
इय गोवी-यण-वयणाइँ सुणंतु । कीलइ परमेसरु दरहसंतु ।
संभासिउ मेल्लिवि गव्व-भाउ । "इह जम्महु महुँ तुहुँ ताय ताउ ।
परिपालिउ थण-थण्णेण[१] जाइ । वीसरमि ण खणु मि जसोय माइ ।......
—उत्तरपुराण (पृ० ६४-८९)

(१) गरीबी

वक्कल-णिवसणु कंदर-मंदिरु । वण-हल-भोयणु वर तं सुंदरु ।
वर दालिद्दु सरीरहु दंडणु । णउ पुरिसह अहिमाण-विहंडणु ।
पर-पय-रय-धूसर किंकर-सरि । असुहाविणि णं पाउस-सिरि-हरि ।
णिव-पडिहार-दंड-संघट्टणु । को विसहइ केरण उर-लोट्टणु ।

---

[१] स्तन्य=दूध

(७) कृष्ण-महिमा

कृष्णेहिँ समानो कोइ पुत्र। संजनेँउ जननि विद्रविय शत्रु।
दुर्धर-भर-रणधुर दीनु खध। उद्धरिय जेहिँ निपनंत बंधु।
भजवि नियरैँ गजवर-गईह। सँम्मननीहि पद्मावतीह।
कतिपय-दिवसैँ रति क्रीडिरीहिँ। बोलावेड प्रभु गोपालिनीहि।

७—कविका संदेश

"-संगुप्तउ तैँ माधव सुहिल्ल। कालंदि तीरेँ मेरउ करिल्ल[1]।
अब्बहिँ मथुरा कामिनिहिँ रक्त। मम ऊपर दीसै अथिर-चित्त।"
कोँइ भनै "दही मंथंतियाई। तुहुँ मोहिँ धरियउ उद्भ्रंतियाइ।
नवनीत-लिप्त कर तोहिँ लाग।" कोँइ भनै विलोकै मध्य मार्ग।
"तुहुँ निशि नारायण सुतहि नाहिँ। आलिगेँउ अपरहिँ गोपियाहिँ।
सो-सुकरहि की न प्रद्युम्न-बंधु। संकेत-कुडंग[2]-उड्डीन रिंछ[3]।
घत्ता। कोइ भनै "नाशत उद्धरिव क्षीर-भृंगारउ।
की विसरियउ आज, जो मैँ सिचु भटारउ[4]॥१०॥
एहु गोपीजन वचनइँ सुनंत। क्रीडै परमेश्वर दर हसंत।
संभाषेँउ मेलिय गर्वभाव। "ऍहि जन्महुँ मम तव ताप ताउ।
परिपालेँउ स्तन-स्तन्येहिँ जाहि। विसरौँ न क्षणहुँ यशोद माइ।"........

—उत्तरपुराण (पृ० २६७-६८)

(७) गरीबी

वल्कल निवसन कंदर मंदिर। वन-फल भोजन वर सो सुंदर।
वर दारिद्र शरीरह दंडन। नहिँ पुरुषह अभिमान-विखंडन।
परपद-रज-धूसर-किंकर-सर। अ-सोँहावनि जनु पावस-श्री-धर।
नृप-प्रतिहार-दंड-संघट्टन। को विसहै करेहिँ उर.-लोट्टन।

---

[1] उत्सव उत्कर्ष [2] एक खेल [3] कल्लोलना [4] भट्टारक

को जोयइ मुँहु भूभंगालउ । किं हरिसिउ कि रोसें कालउ ।
पहु आसण्णु लहइ धिट्ठत्तणु । पविरल-दंसणु णिण्णेहत्तणु ।
मोणें जडु भडु खंतिइ कायरु । अज्जवु वसु पंडियउ पलाविरु ।
—उत्तरपुराण (पृ० २६७-६८)

(२) नीति-वचन

जो रसंतु वरिसइ सो णव-घणु । जं वंकउँ दीसइ तं सुरधणु ।
जो गिरि दलइ चलइ साविज्जुल । चंचरीय-चुविय कोमलदल ।
—आदिपुराण (पृ० ३०)

अंधे वट्टं वहिरे गीयं । ऊसर-छेत्ते वविय बीयं ।
संढे[1] लग्गं तरुणि-कडक्खं । लवण-विहीण विविहं भक्खं ।
अण्णाँणें तिव्वं तव चरणं । बल-सामत्थ-विहीणे सरणं ।
असमाहिल्ले सल्लेहणयं । णिद्धण-मणुए णव-जोव्वणयं ।
णिब्भोइल्ले[2] संचिय-दविणं । णिण्णेहे वर-माणिणि-रमणं ।
अविय अपत्ते दिण्णं दाणं । मोह-रयंधे धम्म-क्खाणं ।
—जसहर-चरिउ (पृ० १६)

(३) सोहै

सोहइ जलहरु सुर-धणु-छायएँ । सोहइ णर-वरु सच्चएँ वायएँ ।
सोहइ कइ-यणु कहएँ सुबद्धएँ । सोहइ साहउ विज्जएँ सिद्धएँ ।
सोहइ मुणि-वरिंदु मण-सुद्धिएँ । सोहइ महि-वइ णिम्मल-बुद्धिएँ ।
सोहइ मंति मंतविहि दिट्ठिएँ । सोहइ किंकरु असि-वर-लट्ठिएँ ।
सोहइ पाउसु सास-समिद्धएँ । सोहइ विहउ स-परियण-रिद्धिएँ ।
सोहइ माणुसु गुण-संपत्तिएँ । सोहइ कज्जारंभु समत्तिएँ ।
सोहइ महिरुह कुसुमिय-साहए । सोहइ सुहडु सुपोरिस-राहएँ ।
—आदिपुराण (पृ० ४०७)

---

[1] नपुंसक [2] कंजूस

को जोवै मुख भ्रूभंगलऊ। की हर्षेउ की रोपे कालउ।
प्रभु आसन्न लहै धृष्टत्त्वन। प्रविरल दर्शन निःस्नेहत्वन।
मौने जड भट क्षंतिइँ कायर। आर्जव पशु पंडितउ पलायिर।

—उत्तरपुराण (पृ० ६८-८९)

(२) नीति-वचन

जो रसंत बरिसइ सो नवघन। जो वंकउ दीसै मो सुरधनु।
जो गिरि दलै चलै सो विज्जुल। चंचरीक-चुंवित कोमल-दल।..

—आदिपुराण (पृ० ३०)

अंधे वाटउ बहिरे गीत। ऊसर खेत्ते बीजव वीज।
षंढे लग्गा तरुणि-कटाक्ष। लवण-विहीना विविधा भक्ष।
अज्ञाने तीव्रं तपचरनं। वल-सामर्थ्य-विहीने शरणं।
असमाधिल्ले सल्लेखनय[1]। निर्धनमनुजे नवयौवनय।
निर्भोगिल्ले संचित-द्रविणं। निर्नेहे वर-मानिनि-रमणं।
अपि अपात्रे दिन्नं दानं। मोह-रजांधे धर्माख्यानं।

—जसहर-चरिउ (पृ० १६)

(३) सोहै

सोहै जलधर सुरधनु-छायएँ। सोहै नरवर साँचहि वाचएँ।
सोहै कवि-जन कथइ सुवद्धइ। सोहै साधक **विद्यहिँ** सिद्धए।
सोहै मुनिवरेन्द्र मन-शुद्धिएँ। सोहै महिपति निर्मल-बुद्धिएँ।
सोहै मंत्रि मंत्रविधि दृष्टिएँ। सोहै किंकर असिवर-लट्ठिएँ।
सोहै पावस सस्य-समृद्धिएँ। सोहै विभव स्वपरिजन-ऋद्धिएँ।
सोहै मानुष गुण-संपत्तिएँ। सोहै कार्यारंभ समाप्तिएँ।
सोहै, महिरुह कुसुमित-शाखैँ। सोहै सुभट सु-पौरुष-राधएँ।

—आदिपुराण (पृ० ४०७)

---

[1] भूखे मरना

(४) दर्शन-वेदान्त

"कि खण-विणासि किं णिच्चु एक्कु। कि देहत्थुवि कम्मेण मुक्क।
किं णिच्चेयणु चेयण-सरूउ। किं चउभूयहँ संजोय-भूउ।
किं णिग्गुणु णिक्कलु णिव्वियारि। किं कम्महँ कारउ कि अकारि।
ईसर-वेसण किं रय-वसेण। संसरइ देव! संसारिकेण।
परमाणु-मेत्तु किं सव्वगामि। अप्पउ कहेँउ भणु भुवण-सामि।"
.... । "जइ[1] खण-विणासि अप्पउ णिरुत्त।
तो किं जाणइ णिहियउँ णिहाणु। वरिसहँ सएवि णिहिदव्वठाणु।
णिच्चहु किर कहिँ उप्पत्ति मच्चु। जंपइ जणु रइ-लंपडु, असच्चु।
जइ एक्कु जि तइ को सग्गि सोक्खु। अणुहुंजइ णरइ महंतु दुक्ख।
जइ भूय-वियारु भणंति भाउ। तो फिर किं लब्भइ मइ-विहाव।
णिक्किरियहु कहिँ करणइँ हवंति। कहि पयइ-बंधु जुत्ति'वि थवंति।
जइ सिव-वसु हिंडइ भूय-सत्थु। तो कम्म-कंडु सयलु'वि णिरत्थु।
घत्ता। जइ अणुमेत्तउ जीवो एहउ। तो सज्जीवउ किह करि देहउ ॥७॥

—उत्तरपुराण (पृ० १२७)

(५) काया नरक

माणुस-सरीरु दुह-पोट्टलउ। धायेउ धायेउ अइ-विट्टलउ।
वासिउ वासिउ णउ सुरहि मलु। पोसिउ पोसिउ णउ धरइ बलु।
तोसिउ तोसिउ णउ अप्पणउ। मोसिउ मोसिउ धरभायणउ।
भूसिउ भुसिउ ण सुहावणउ। मंडिउ मंडिउ भीसावणउ।
बोल्लिउ बोल्लिउ दुक्खावणउ। चच्चिउ चच्चिउ चिलिसावणउ।
मंतिउ मंतिउ मरणहोँ तपइ। दिक्खिउ दिक्खिउ साहहुँ भसइ।
सिक्खिउ सिक्खिउ 'वि ण गुणि रमइ। दुक्खिउ दुक्खिउ 'वि ण उवसमइ।
वारिउ वारिउ 'वि पाउ करइ। पेरिउ पेरिउ 'वि ण धम्मि चरेइ।

---

[1] **बौद्ध दर्शनके क्षणिकवादकी आलोचना**

(४) दर्शन-वेदान्त

"की[1] क्षण-विनाशि की नित्य एक। की देहस्थउ कर्महिँ मुक्त।
की निश्चेतन चेतन-स्वरूप। की चतु-भूतहँ संयोग-भूत।
की निर्गुण निष्कल निर्विकार। की कर्महँ कारक की अ-कार।
ईश्वर-वसेहिँ की रज-वशेहिँ। ससरै देव ! संसारिकेहिँ।
परमाणु-मात्र की सर्वगामि। आत्मा कहेँउ, भनु भुवन-स्वामि ?"
.... । "यदि क्षण-विनाशि आत्मा कहिय।
तो की जानै निहितउँ निधान। वर्षह गतेउ निधि द्रव्य थान।
नित्यहु फुर कहँ उत्पत्ति-मृत्यु। जल्पै यदि रज-लंपट असत्त्य।
यदि एकै ता को सर्गें सौख्य। अनुभोगै नरकें महंत दुःख।
यदि भूत-विकार भनंत भाव। तो फुर की लब्भै मति-विभाव।
निष्क्रियहू कहँ करणेहि[2] भवंति। कहँ प्रजावंधु युक्तिउ थपंति।
यदि शिव-वश हिंडै भूत-सत्त्य। तो कर्मकांड सकलहु निरर्थ।
घत्ता। यदि अणुमात्रे जीव एहौ। तो सज्जीवउ कहँ करें देहौ ॥७॥
—आदिपुराण (पृ० १२७)

(५) काया नरक

मानुष-शरीर दुख-पोट्टलऊ। धोयो धोयो अति विट्टलऊ[3]।
वासेँउ वासेँउ ना सुरभि मलू। पोसेँउ पोसेँउ ना धरै बलू।
तोषेउ तोषेउ ना आपनऊ। मोषेँउ मोषेँउ धर भायनऊ।
भूषेउ भूषेउ न सोँहावनऊ। मंडेउ मंडेउ भीषावनऊ।
बोलेँउ बोलेँउ दुःखावनऊ। चर्चेँउ चर्चेँउ चिरियावनऊ।
मंत्रेँउ मंत्रेँउ मरणहँ भसई। दीक्षेँउ दीक्षेँउ साधुहिँ भषई।
शिक्षेँउ शिक्षेँउ न गुणे रमई। दुःखेँउ दुःखेँउ ना उपशमई।
वारेँउ वारेँउ हू पाप करै। प्रेरेँउ प्रेरेँउ हु न धर्म चरै।

---

[1] क्या [2] उपचार [3] मलिन

अब्भंगिउ[1] अब्भंगिउ फरिसु । रुक्खिउ रुक्खिउ आमइ-सरिसु ।
मलियउँ मलियउँ वाएँ घुलइ । सिंचिउ सिंचिउ पित्ति जलइ ।
सोसिउ सोसिउ सिंभि गलइ । पच्छिउ पच्छिउ कुट्ठहँ मिलइ ।
चम्मे बद्धु 'वि कालि सडइ । रक्खिउ रक्खिउ जममुहि पडइ ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३०-३१)

(६) संसार तुच्छ

अंतेउरु अंतेउरु हणइ । खय-कालहों आयहों किं कुणइ ।
सण्णाहु-कय तहों किं करइ । छत्ते छायहु किं उवयरइ ।
णउ कहिँ मि मरण-दिणे उव्वरइ । चमराणिलु सासाणिलु धरइ ।
सुहु राय-पट्ट-बधे वसइ । किं आउ-णिवंधणु णउ ल्हसई ।
ण रहेहिँ रहिज्जइ जमहु वहु । किं मणुयहँ लग्गउ रज्जगहु ।
होइवि जाइवि सहसत्ति किह । रायत्तणु संभाराउ जिह ।
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ६०)

(७) भाग्य और पूर्वकर्मवाद

बाहिल्ल ते मिल्ल ते मूअ ते लल्ल । ते पंगु ते कुंट बहिरंध ते मंट ।
ते काण काणीण धण-हीण ते दीण । दुहरीण बल-खीण ।
णिक्काम णिद्धाम णिच्छाम णिण्णाम । णित्तेय णिप्पाण चंडाल ते पाण ।
ते डोंब कल्लाल मंच्छंधि णीवाल । दाढाल ते कोल ते सीह-सद्दूल ।
ते सिंगि वियराल ते णह-पहराल । ते पक्खि पिंछाल ।
ते सप्प रत्तच्छ मंसासिणो मच्छ । छिंधणइँ रुंधणइँ बंधणइँ बंचणइँ।
लुंचणइँ खंचणइँ कुंचणइँ लुट्टणइँ । कुट्टणइँ घट्टणइँ वट्टणइँ ।
पउलणइँ पीलणइँ हूलणइँ चालणइँ । तलणाइँ दलणाइँ मलणाइँ गिलणाइँ ।
णिरएसु णरएसु मणुएसु रुक्खेसु । दुक्खाइँ भुंजंति सग्गं कहं जंति ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३४)

---

[1] मालिश

अभ्यंगेँउ अभ्यंगेँउ परुषा । रोकेँउ रोकेँउ आम्रइ-सरिसा ।
मलियेँउँ मलियेँउँ वातेँ घुलई । सिंचेँउ सिंचेँउ पित्तेँ जलई ।
शोषेँउ शोषेँउ श्लेष्महिँ गलई । पाछेँउ पाछेँउ कुष्टहँ मिलई ।
चर्मे बद्धउ काले सड़ई । रक्षिय रक्षिय यम-मुखेँ पड़ई ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३०-३१)

(६) संसार तुच्छ

अंतःपुर अंतः उर हनई । क्षय-कालह आयउ की करई ।
सन्नाहकृत तहु की करई । छत्ते छायउ की उपकरई ।
ना कतहुँ मरन-दिन ऊबरइ । चमरानिल श्वासानिल धरइ ।
सुख राजपट्ट-बंधे वसई । की आयु निबंधन ना ह्रसई ।
न रथेहिँ रहिज्जै यमहुँ वहू । की मनुजहँ लागउ राज्य-ग्रहू ।
होइब जाइब महसाहि किमि । राजत्वन सध्याराग-जिमि ।
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ६०)

(७) भाग्य और पूर्वकर्मवाद

बहेल्ल[१] ते भिल्ल ते मूक सो लल्ल[२] । ते पंगु ते कुट वधिर'न्ध ते मंट ।
ते कानाँ कनीन धन-हीन ते दीन । दुखरीन वलहीन ।
निकाम निधाम नि-छाम नि-नाम । नि-तेज नि-प्राण चँडाल ते प्राण ।
ते डोम कलाल मछंधि नि-वाल[३] । दढाल तेँ कोल ते सीँह-शदूल ।
ते शृँगी विकराल ते नभ-पधराल । ते पक्षि पिंछाल ।
ते सर्प रक्ताक्ष मांसाशिन माच्छ । छिन्दनैँ रुंधनैँ वंधनैँ बंचनैँ ।
लुंचनैँ खंचनैँ कुंचनैँ लुट्टनैँ । कुट्टनैँ घट्टनैँ वट्टनैँ ।
प्रोलनैँ पीडनैँ हूलनैँ चालनैँ । तलनाइँ दलनाइँ मलनाइँ गिलनाइँ ।
तिर्यकेनारके मनुजे औ वृक्षे । दुःखाइँ भुंजंति स्वर्ग कहाँ जांति ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३४)

---

[१] वहेलिया　[२] लोलुप, सतृष्ण　[३] मच्छीमार बच्चे

(८) साम्यवादी उत्तर-कुरु[1] द्वीप

घत्ता । णिच्चु जि उच्छवु णिच्च दिहि, णिच्चु जि तणु तारुण्णु णवल्लउ ।
भोय - भूमिरुह - माणुसहँ, जं ज दीसइ त तं भल्लउ ।
ण दुज्जणु दूसिय सज्जण-वासु । ण खासु ण सोसु ण रोसु ण दोसु ।
ण छिक ण जिंभणु णालसु दिट्ठ । ण णिद्द ण णेत्त-णिमीलणु सुट्ठ ।
ण रत्ति ण वासरु धंतु ण घम्मु । ण इट्ठ-विग्रोउ ण कुच्छिय कम्म ।
अयालि ण मच्चु ण चिंतु ण दीणु । कयाइ कहिंपि सरीरु ण झीणु ।
पुरीस-विसग्गु ण मुत्त-पवाहु । ण लालु ण सिंभु ण पित्ति वि डाहु ।
ण रोउ ण सोउ ण सेउ विसाउ । **किलेसु ण दासु ण कोइवि राउ** ।
सुरूव सुलक्खण माणव दिव्व । अगव्व सुभव्व **समाण जि सव्व** ।
सुहाउ विणीसउ सासु सुयंधु । कलेवरि वज्ज समट्ठिय-बधु ।
ति-पल्ल-पमाणु थिराउ-णिबंधु । करीसर केसरि तेविहु बधु ।
ण चोरु ण मारि ण घोरु वसग्गु । अहो कुरु-भूमि निसासइ सग्गु ।
—उत्तरपुराण (पृ० ४०६-१०)

§ २१. शान्तिपा

(कलिकाल-सर्वज्ञ रत्नाकरशान्ति) । काल—१००० ई०
(विग्रहपाल-महीपाल ९६०-८८-१०३८) ।

(रहस्यवाद)

(राग रामक्रीं)

सअ-संवेअण-सरूअ विआरेँ अलक्ख लक्ख ण जाइ ।
जे जे उजुवाटे गेला[2] अण्ण वाटे भइला सोइ ॥

---

[1] **आर्योंका पूर्वनिवास** [2] **मैथिली**

(८) साम्यवादी उत्तर-कुरु द्वीप

घत्ता । नित्यहिँ उत्सव नित्य देहि, नित्यहि तनु तारुण्य नवल्ल ।
भोग-भूमि रुह मानुषहँ, जो जो दीसै सो सो भल्ल ।

न दुर्जन-दूषित सज्जन-वास । न खाँस न शोष न रोष न दोष ।
न छीँक न जम्भा न आलस दृष्ट । न निद्र न नेत्र निमीलन सुष्ट ।
न राति न वासर धंद न घाम । न इष्ट-वियोग न कुक्षिय काम ।
भयासि न मृत्यु न चिंत न दीन । कदापि कहूँहु शरीर न भीन[1] ।
पुरीष-विसर्ग न मूत्रप्रवाह । न लाल न श्लेष्म न पित्तह डाह ।
न रोग न शोक न सेतु विषाद । किलेश न दाश न कोउह राज ।
सुरूप सुलक्षण मान दिव्य । अगर्व सुभव्य समानहिँ सर्व ।
मुखाहं विनीसै श्वास सुगध । कलेवरें वज्र समस्थिय बंध ।
त्रिपल्ल प्रमाण थिरायु-निबध । करीश्वर केसरि तेहुअउ बंधु ।
न चोर न मार न घोर उपसर्ग[2] । अहो कुरु भूमि निसंशय स्वर्ग ।
—उत्तरपुराण (पृ० ४०९-१०)

§ २१. शान्तिपा

देश—मगध । कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (१२), राजगुरु ।
कृति—सुखदुःखद्वय-परित्यागदृष्टि ।

(रहस्यवाद)

(१५—राग रामक्रीं)

स्वसंवेदन स्वरूप विचारे । अलख लख्यो ना जाई ।
जो जो ऋजुवाटे गइला, अन्यवाटे भइला सोई ॥

---

[1] क्षीण　　[2] उपद्रव, खुराफात

काअरूअ ण बुज्झिअ मूढहि उजुवाट ससारा ।
(महुअरेहि एक्क अन्न राजहि कणकधारा ।)
माआ मोह समुद्द अन्त बुज्झसि ताहा ।
आगे णाव नभेला दीसइ भन्ति न पुच्छसि णाहा ॥
सूनापान्तर ऊह न दीसइ, भान्ति न वासने जान्ते ।
एषा अट्ठ महासिज्झि सिज्झइ उजुवाटे जाअन्ते ॥
वाम दाहिण दो बाटा छाडी शान्ति बोलथेउ संकेलिउ ।
घाट ण शुक्क खडतडि ण होइ आँखें बुज्झिअ वाट जाइउ ॥१५॥

(२६—राग शबरी)

तुला धुणि धुणि अंशूहि अंशू । अंशू धुणि धुणि णिरवर सेसू ।
तउ से हेतुअ ण पाविअइ । सान्ति भणइ कि स भाविअइ ॥
तुला धुणि धुणि सुण्णे आहारिउ । पुण लइअ अप्पण चटारिउ ।
वहल वढ ! दुइ भाग ण दीशअ । शान्ति भणइ वालग्ग ण पइसइ ।
काज ण कारण ण एहु जुग्ती । सअ-संवेअण बोलथि[1] सान्ती ॥२६॥
—चर्यापद

§ २२. योगीन्दु (जोइंदु)

काल १०००। देश—राजस्थान (?)। कुल—जैन साधु। कृतियाँ—

(१) ज्ञान-समाधि

जो जाया झाणग्गिएँ, कम्म-कलंक डहेवि ।
णिच्च-णिरंजण-णाणमय ते परमप्प णवेवि ॥१॥
ते हुँउ वंदउँ सिद्ध-गण, अच्छहिँ जे वि हवंत ।
परम-समाहि-महग्गियएँ, कम्मि-धणइँ हुणंत ॥३॥

कायरूप ना बूझै मूढहिं ऋजु वाटा मंसारा।
मधु-कर्हिं एक भंक्ष्य, राजहिं कनकधारा ॥
मायामोह समुद्रहि अन्त न बूझसि थाहा।
आगे (न) नाव नभेला दीसै, भ्रान्तिहिं पूछसि न नाथा ॥
शून्य-प्रान्तर ऊह न दीसै भ्रान्ति न वासने जाये।
एही अष्ट महासिद्धि सिद्धै, ऋजुवाटेहीं जाये ॥
बायें दहिन दो बाट छाडी शान्ति बोलेउ सकेरिय।
घाटे न शुल्क खरतरी न होइ, आँखि बुयझिवाट जाइय ॥१५॥

(२६—राग शबरी)

तुला धुनि धुनि रेशहि रेशा। धुनि धुनि निरवर शेषू।
तउ सो हेतु न पाइयइ। शान्लि भनै की मो भवियइ।
तुल धुनि धुनि शून्ये धारेउ। पुनि लेइय आपन चट्टारिउ।
बहुत मूढ़ ! दुइ भाग न दीसै। शान्ति भनै वालाग्र न पइसै।
कार्य न कारण न एहु जुगती। स्वक-सवेदन वोलै शान्ती ॥२६॥

—चर्यापद

§ २२. योगीन्दु (जोइंदु)

परमात्म-प्रकाश दोहा, योगसार-दोहा[1]।

(१) ज्ञान-समाधि

जे जायेंउ ध्यानाग्नियेहिं, कर्म-कलंक डहाइ।
नित्य-निरंजन-ज्ञानमय, ते परमात्म नमामि ॥१॥
तिन हौं वन्दौ सिद्धगण, रहें जोउ होवन्त।
परम-समाधि महाग्नियेहिं, कर्मेन्धनहिं होमन्त ॥३॥

---

[1] ए० एन्० उपाध्ये सम्पादित (श्री रायचंद्र जैन-शास्त्र-माला १०, बम्बई १९३०)

भाविं पणविवि पंचगुरु, सिरि-जोइंदु-जिणाउ ।
भट्टपहायरि विण्णविउ, विमलु करे विणु भाउ ॥८॥
गउ संसारि वसंतहँ, सामिय काल अणंतु ।
पर मइँ किंपि ण पत्तु सुहु, दुक्खुजि पत्तु महंतु ॥९॥

(२) अलख-निरंजन

तिहुयण-वंदिउ सिद्धि-गउ, हरि-हर झायहिँ जोजि ।
लक्ख, अलक्खें धरिवि थिरु, मुणि परमप्पउ सोजि ॥१६॥
णिच्चु णिरंजणु णाणमउ, परमाणंद-सहाउ ।
जो एहउ सो संतु सिउ, तासु मुणिज्जहि भाउ ॥१७॥
जो णिय-भाउ ण परिहरइ, जो पर-भाउ ण लेइ ।
जाणइ सयलुवि णिच्चु पर, सो सिउ संतु हवेइ ॥१८॥
जासु ण वण्णु ण गंधु रसु, जासु ण सद्दु ण फासु ।
जासु ण जम्मणु मरणु णवि, णाउ णिरंजणु तासु ॥१९॥
जासु ण कोहु ण मोहु मउ, जासु ण माय ण माणु ।
जासु ण ठाणु ण झाणु जिय, सोजि णिरंजणु जाणु ॥२०।
अत्थि ण पुण्णु ण पाउ जसु, अत्थि ण हरिसु विसाउ ।
अत्थि ण एक्कुवि दोसु जसु, सोजि णिरंजणु भाउ ॥२१॥
जासु ण धारणु धेउ णवि, जासु ण जंतु ण मंतु ।
जासु ण मंडलु मुद्द णवि, सो मुणि देउँ अणंतु ॥२२॥

(३) आत्मा

हँउ गोरउ हँउ सामलउ, हँजि विभिण्णउ वण्णु ।
हँउ तणु-अंगउँ थूलु हउँ, एहउँ मूढउ मण्णु ॥८०॥
हँउ वरु बंभणु वइसु हँउ, हँउ खत्तिउ हँउ सेसु ।
पुरिसु णउंसउ इत्थि हउँ, मण्णइ मूढु विसेसु ॥८१॥
अप्पा गोरउ किण्हु णवि, अप्पा रत्त ण होइ ।
अप्पा सुहुमु वि थूलु णवि, णाणिउ जाणें जोइ ॥८६॥

भावहिँ प्रणवों पंचगुरु, श्री **योगीन्दु** जिनाव।
भट्टप्रभाकर वीनवेँउ, निर्मल करिके भाव ॥८॥
गयउ संसार वसंतहीँ, स्वामी काल अनन्त।
पर मैं किछु पायउँ न सुख, दुःखइ पायउँ महन्त ॥९॥

(२) अलख-निरंजन

त्रिभुवन-वंदित सिद्धिगत, हरि-हर ध्यावे जेहि।
लक्ष्य अलक्ष्ये धरिबि थिर, मुनि परमात्मा सोइ ॥१६॥
नित्य निरंजन ज्ञानमय, परमानंद स्वभाव।
जो ऐसो सो शान्त शिव, तासु मनिज्जै भाव ॥१७॥
जो निज भाव न परिहरै, जो परभाव न लेइ।
जानै सकलउ नित्य पर, सो शिव शान्त ह्वेइ ॥१८॥
जासु न वर्ण न गंध रस, जासु न शव्द न स्पर्श।
जासु न जन्म न मरणहू, नाम निरंजन तासु ॥१९॥
जासु न क्रोध न मोह मद, जासु न माय न मान।
जासु न थान न ध्यान जिय, सोइ निरंजन जान ॥२०॥
अहै न पुण्य न पाप जसु, अहै न हर्ष विषाद।
अहै न एकहु दोष जसु, सोइ निरजन भाव ॥२१॥
जासु न धारण ध्येय नहिँ, जासु न यत्र न मंत्र।
जासु न मंडल मुद्र नहिँ, सो मॉनु देव अनन्त ॥२२॥

(३) आत्मा

हौँ गोरो हौँ सामलो, हौँ हि विभिन्नउ वर्ण।
हौँ तनु-अंगो स्थूल हौँ, ऐसो मूढै मन्व ॥८०॥
हौँ वर-ब्राह्मण वैश्य हौँ, हौँ क्षत्रिय हौँ शेष।
पुरुष नपुंसक इस्त्रि हौँ, मानै मूढ विशेष ॥८१॥
आत्मा गोरा कृष्ण नहि, आत्मा रक्त न होइ।
आत्मा सूक्ष्महु स्थूल नहिँ, ज्ञानी ज्ञाने जोइ ॥८६॥

अप्पु पयासइ अप्पु परु, जिम अंबरि रवि-राउ ।
जोइय एत्थु म भंति करि, एहउ वत्थु-सहाव ॥१०१॥
तारा-यणु जलि बिंबियउ, णिम्मलि दीसइ जेम ।
अप्पएँ णिम्मलि विंबियउ, लोयालोउ 'वि तेम ॥१०२॥
सो पर वुच्चइ लोउ परु, जसु मइ तित्थु वसेइ ।
जहिँ मइ तहिँ गइ जीवहँजि, णियमें जेण हवेइ ॥१११॥
जहिँ मइ तहिँ गइ जीव तुहुँ, मरणु वि जेण लहेहि ।
तें परबंभु मुए वि मँह, मा पर-दब्बि करेहि ॥११२॥
जइ णिविसद्धुवि कुवि करइ, परमप्पइ अणुराउ ।
अग्गि-कणी जिम कट्ठगिरि, डहइ असेसु'वि पाउ ॥११४॥

(५) निरंजन-योग

मेल्लिवि सयल अवक्खडी, जिय णिच्चिंतउ होइ ।
चित्तु णिवेसहि परमपएँ, देउ णिरंजणु जोइ ॥११५॥
जोइय णिय-मणि णिम्मलएँ, पर दीसइ सिउ संतु ।
अंबरि णिम्मलि घण-रहिएँ, भाणु जिजेम फुरंतु ॥११६॥
जसु हरिणच्छी हियवडएँ, तसु णवि बंभु वियारि ।
एक्कहि केम समंति बढ, वे खंडा पडियारि ॥१२१॥
णिय-मणि णिम्मलि णाणियहँ, णिवसइ देउ अणाइ ।
हंसा सरवरि लीणु जिम, महु एहउ पडिहाइ ॥१२२॥
देउ ण देउले णवि सिलएँ, णवि लिप्पइ णवि चित्ति ।
अखउ णिरंजणु णाणमउ, सिउ संठिउ सम-चित्ति ॥१२३॥
हरि-हर बंभुवि जिणवरवि, मुणि-वर-विंदवि भव्व ।
परम-णिरंजणि मणु धरिवि, मुक्खुजि झायहिँ सव्व ॥१३१॥
मुत्ति-विहूणउ णाणमउ, परमाणंदु-सहाउ ।
णियमिं जोइय अप्पु मुणि, णिच्चु णिरंजणु भाउ ॥१४१॥
जो णवि मण्णइ जीउ समु, पुण्णुवि पाउवि दोइ ।
सो चिरु दुक्खु सहंतु जिय, मोहहिँ हिंडइ लोइ ॥१७८॥

आत्म प्रकाशै आत्म पर, जिमि अंबरे रवि-राग ।
जोगी ! इहाँ न भ्रान्ति करु, एही वस्तु-स्वभाव ॥१०१॥
तारागण जलें बिंबित, निर्मल दीसै जेमि ।
आत्महिँ निर्मल विवितं, लोकालोकउ तेमि ॥१०२॥
सो पर कहियत लोक पर, जसु मति तहाँ वसेइ ।
जहँ मति तहँ गति जीव की, नियमेंहि क्योंकि हवेइ ॥१११॥
जहँ मति तहँ गति जीव तुहुँ, मरणउ क्योंकि लभेइ ।
ता परब्रह्महिँ छाडि जनि, मति परद्रव्य करेइ ॥११२॥
यदि निमिषार्द्धउ कोंइ करै, परमात्महिँ अनुराग ।
अग्नि कणी जिमि काठें गिरि, डहें अशेषहिँ पाप ॥११४॥

(५) निरंजन-योग

मेली सकल अपेक्षडी, जिव निश्चिन्ता होइ ।
चित्त निवेशै परमपदें, देव निरंजन जोइ ॥११५॥
जोगी ! निजमन निर्मले, पर दीसै शिव शान्त ।
अंबरें निर्मल घनरहित, भानू जेमि फुरन्त ॥११६॥
जसु हरिणाक्षी हृदयमें, तासु न ब्रह्म विचार ।
एकहिँ मूढ ! समाप किमि, दो खड्गा प्रतिकारि ॥१२१॥
निजमन निर्मलें ज्ञानि के, निवसै देव अनादि ।
हंसा सरवर लीन जिमि, मोहिँ ऐसहि प्रतिभाति ॥१२२॥
देव न देवलें नहि शिलहिँ, नहि लेप्य नहिं चित्र ।
अक्षय निरंजन ज्ञानमय, शिव समचित्ते थित्त ॥१२३॥
हरि-हर ब्रह्महु जिनवरहु, मुनिवर वृन्दहु-भव्य ।
परम-निरंजनें मन धरी, मोक्षहि ध्यावैं सर्व ॥१३१॥
मुत्तिविहीना ज्ञानमय, परमानद स्वभाव ।
नियमेहिँ जोगी ! आप मनु, नित्य निरंजन भाव ॥१४१॥
जो नहिँ मानै जीव सम, पुण्यहु पापहुँ दोय ।
सो चिर दुःख सहंत जिव, मोहेहिँ हिंडै लोक ॥१७८॥

(६) पंथ-पोथी-पन्नाकी निंदा

देवहँ सत्थहँ मुणिवरहँ, भत्तिएँ पुण्णु हवेइ ।
कम्म-क्खउ पुणि होइ णवि, अज्जउ संति भणेइ ॥१८४॥

देउ णिरजणु इँउ भणइ, णाणिं मुक्खु ण भंति ।
णाणविहीणा जीवडा, चिरु संसारु भमंति ॥१९६॥

सत्थ पढतुवि होइ जडु, जो ण हणेइ वियप्पु ।
देहि वसंतुवि णिम्मलउ, णवि मण्णइ परमप्पु ॥२०६॥

तित्थइँ तित्थु भमन्तहँ, मूढहँ मोक्खु ण होइ ।
णाण-विवज्जिउ जेण जिय, मुणिवरु होइ ण सोइ ॥२०८॥

चेल्ला-चेल्ली-पुत्थियहिँ, तूसइ मूढु णिभंतु ।
एयहिँ लज्जइ णाणियउ, बंधहँ हेउ मुणंतु ॥२११॥

भल्लाहँवि णासंति गुण, जहँ संसग्ग खलेहिँ ।
वइसाणरु लोहहँ मिलिउ, तेँ पिट्टियइ घणेहिँ ॥२३३॥

रूवि पयंगा सद्दि मय, गय फासहि णासंति ।
अलि-उल गंधहिँ मच्छ रसि, किम अणुराउ करंति ॥२३५॥

देउलु देउवि सत्थु गुरु, तित्थुवि वेउ वि कव्वु ।
वच्छु जु दीसै कुसुमियउ, इंधणु होसइ सव्वु ॥२५३॥

(७) शून्य-ध्यान

पँचहँ णायकु वसि करहु, जेण होंति वसि अण्ण ।
मूल विणट्ठइ तरुवरहँ, अवसइँ सुक्कहिँ पण्ण ॥२६३॥

सुण्णउँ पउँ झायंतहँ, वलि वलि जोइय जाहँ ।
समरसि-भाउ परेण सहु, पुण्णुवि पाउ ण जाहँ ॥२८२॥

उब्बस बसिय जो करइ, वसिया करइ जु सुण्ण ।
वलि किज्जउँ तसु जोइयहिँ, जासु ण पाउ ण पुण्ण ॥२८३॥

(६) पंथ-पोथी-पत्राकी निंदा

देव-शास्त्र-मुनिवरन की, भक्तिहिँ पुण्य हवेइ।
कर्मक्षय पुनि होइ नहिँ, आरज शान्ति भनेइ ॥१८४॥

देव निरंजन यों भनै, ज्ञानेहि मोक्ष न भ्रान्ति।
ज्ञानविहीना जीवडा, चिर संसार भ्रमंति ॥१९६॥

शास्त्र पढंतौ होइ जड, जो न हनेइ विकल्प।
देह वसंतउ निर्मलउ, नहि मानै परमात्म ॥२०६॥

तीर्थहिँ तीर्थ भ्रमन्तकहिँ, मूढहिँ मोक्ष न होइ।
ज्ञानविवर्जित जो कि जिव, मुनिवर होइ न सोइ ॥२०८॥

चेला-चेली-पोथियहिँ, तूषै मूढ निभ्रान्त।
एतहिँ लज्जै ज्ञानियउ, बंधन हेतु बुझन्त ॥२११॥

भलन केरहू नशैं गुण, जहँ संसर्ग खलेहिँ।
वैश्वानर लोहहिँ मिल्लेउ, तेहि पिट्टियइ घनेहिँ ॥२३३॥

रूपें पतंगा शब्दें मृग, गज स्पर्शे नाशंति।
अलिकुल गन्धे, मत्स्य रसें, किमि अनुराग करंति ॥२३५॥

देवल देवउ शास्त्र गुरु, तीर्थहु वेदहु काव्य।
वृक्ष जों दीसै कुसुमित, इंधन होइहै सर्व ॥२५३॥

(७) शून्य-ध्यान

पंच नायकन वश करहु, जेन होहिँ वश अन्य।
मूल विनष्टे तरुवरहि, अवशि सूखिहै पर्ण ॥२६३॥

शून्य पदहिँ ध्यायन्तहँ, बलि बलि जोगिय जावें।
समरसभाव परेन सहँ, पुण्य पाप ना जाहि ॥२८२॥

उवसा वसिया जो करै, वसिया करै जों शून्य।
बलि जाऊँ तेहि जोगियहिँ, जासु न पाप न पुण्य ॥२८३॥

णास-विणिग्गउ साँसडा, अंवरि जेत्थु विलाइ ।
तुट्टइ मोह तडत्ति तहिँ, मणु अत्थवणहँ जाइ ॥२८५॥

मोहु विलिज्जइ मणु मरइ, तुट्टइ सासु-णिसासु ।
केवल-णाणु वि परिणमइ, अंवरि जाहँ णिवासु ॥२८६॥

घोरु करंतु'वि तव-चरण, सयल'वि सत्थ मुणंतु ।
परम-समाहि-विवज्जियउ, णवि देक्खइ सिउ संतु ॥३१४॥

जो परमप्पउ परम-पउ, हरि-हर-बंभुवि बुद्धु ।
परम-पयासु भणंति मुणि, सो जिण-देउ विसुद्धु ॥३२३॥

—परमात्मप्रकाश[1]

(८) योग-भावना

संसारहँ भयभीयहँ, मोक्खहँ लालसयाहँ ।
अप्पा-संबोहण-कयइ, दोहा एक्कमणाहँ ॥३॥

णिम्मलु णिक्कलु सुद्ध जिणु, विण्हु बुद्धु सिव संतु ।
सो परमप्पा जिण भणिउ, एहउ जाणि णिभंतु ॥९॥

जो परमप्पा सो जि हउँ, जो हँउ सो परमप्पु ।
इउ जाणे विणु जोइया, अण्णु म करहु वियप्पु ॥२२॥

जाव ण भवहि जीव तुहुँ, णिम्मल अप्प-सहाउ ।
ताव ण लब्भइ सिव-गमणु, जहिँ भावइ तहि जाउ ॥२७॥

मूढा देवलि देउ णवि, णवि सिलि लिप्पइ चित्ति ।
देहा देवलि देउ जिणि, सो बुज्झहि समचित्ति ॥४४॥

धम्मु ण पढियइँ होइ, धम्मु ण पोत्था-पिच्छियइँ ।
धम्मु ण मढिय-पएसि, धम्मु ण मत्थालुंचियइँ ॥४७॥

जेहइ मण विसयहँ रमइ, तिमि जइ अप्प मुणेइ ।
जोइ भणइ हो जोइयहु, लहु णिव्वाणु लहेइ ॥५०॥

---

[1] ए० एन्० उपाध्ये सम्पादित रायचंद्र जैन-शास्त्र-माला, बम्बई १९३७ ई०

नासहिँ निकस्या साँसडा[1], अंबर जहाँ विलाइ।
टूटै मोह तुरंत तहँ, मन अस्तमने जाइ ॥२८५॥
मोह विलायें मन मरै, टूटै श्वास-निश्वास।
केवल ज्ञानहु परिणमै, अंबर जासु निवास ॥२८६॥
घोर करन्ते तपचरण, सकलहु शास्त्र जाँनन्त।
परम समाधि विवर्जित, नहि देखै शिव-शान्त ॥३१४॥
जो परमात्मा परम-पद, हरि-हर-ब्रह्मा-बुद्ध।
परमप्रकाश भनंति मुनि, सो जिन-देव विशुद्ध ॥३२३॥

—परमात्मप्रकाश

(८) योग-भावना

ससारहँ भयभीत जे, मोक्ष लालसा जाहि।
आत्मा-संबोधन कियउ, दोहा एकमनाहि ॥३॥
निर्मल निष्कल शुद्ध जिन, विष्णु बुद्ध शिव शान्त।
सो परमात्मा जिन भन्यो, एहउ जानु निभ्रान्त ॥९॥
जो परमात्मा सोइ हौं, जो हौं सो परमात्म।
एह जाने विनु जोगिया, अन्य न करहु विकल्प ॥२२॥
जौ न भावै जीव तुहुँ, निर्मल आत्मस्वभाव।
तौ न लहै शिवगमनहिँ, जहँ भावै तहँ जाव ॥२७॥
मूढ ! देवले देव नहिँ, शिलहिँ लेप्य नहि चित्रेँ।
देह देवले देव जिन, सो बूझै समचित्त ॥४४॥
धर्म न पढिया होइ, धर्म न पोथा पिच्छियहिँ।
धर्म न मठप्रवेश, धर्म न माथा-लुंचियहिँ ॥४७॥
जैसे मन विषयहिँ रमै, तिमि यदि आत्म लगेइ।
योगि भनै हे योगियो, तुरत निबाण लहेइ ॥५०॥

---

[1] श्वास

णासग्गिँ अब्भिन्तरहँ, जे जोवहिँ असरीरु ।
बहुडि[1] जम्मि ण संभवहिँ, पिवहिँ ण जणणी-खीरु ॥६०॥

जो जिण सो हउँ सोजि हँउ, एहउ भाउ णिभंतु ।
मोक्खहँ कारण जोइया, अण्णु ण तंतु ण मंतु ॥७५॥

जो सम-सुक्ख-णिलीणु वहु, पुण पुण अप्पु मुणेइ ।
कम्मक्खउ करि सोवि फुडु, लहु णिब्बाणु लहेइ ॥६३॥

(९) सभी देव सम्माननीय

सो सिउसंकरु विण्हु सो, सो रुद्द'वि सो बुद्ध ।
सो जिणु ईसरु बंभु सो, सो अणंतु सो सिद्धु ॥१०५॥

एवँहि लक्खण-लक्खियउ, जो पर णिक्कलु देउ ।
देहहँ मज्झहिँ सो वसइ, तासु ण विज्जइ भेउ ॥१०६॥
—योगसार

§ २३. रामसिंह

काल—१००० ई० (?) । देश—राजपूताना (?) । कुल—जैन साधु ।

(१) जग तुच्छ (वैराग्य)

अप्पायत्तउ जोजि सुहु, तेण जि करि संतोसु ।
पर सुह बढ़ ! चिततहं, हियइ ण फिट्टइ सोसु ॥२॥

जं सुहु विसय परंमुहउ, णिय अप्पा झायंतु ।
तं सुहु इंदु वि णउक लहइ, देविहिँ कोडि रमंतु ॥३॥

घर वासउ मा जाणि जिय, दुक्किय वासुउ ऐहु ।
पासु कपंते मंडियउ, अविचल णवि संदेहु ॥१२॥

---

[1] फिर

नासाग्रे अभ्यन्तरहिं, जे जावै अशरीर।
बहुरि जन्म ना सभवै, पिवै न जननी-क्षीर ॥६०॥

जो जिन सो हौं सोइहौं, एही भाव निभ्रान्त।
मोक्षइँ कारण जोगिया, अन्य न तंत्र न मंत्र ॥७५॥

जो शम-सुक्ख-निलीन वहु, पुनि पुनि आत्म मनेइ।
कर्मक्षय करि सोइ फुर, तुरत निवाण लहेइ ॥६३॥

(९) सभी देव सम्माननीय

सो शिव-शंकर विष्णु सो, सो रुद्रउ सो बुद्ध।
सो जिन ईश्वर ब्रह्म सो, सो अनंत-सो सिद्ध ॥१०५॥

ऐसे लक्षण-लक्षितुउ, जो पर निष्कल देव।
देह-मध्यही सो वसै, तासु नहीँ है भेद ॥१०६॥

—योगसार

§ २३. रामसिंह

कृति—पाहुड-दोहा[१]

(१) जग तुच्छ (वैराग्य)

आत्मायत्तउ जोहि सुख, तेनहि करु सन्तोष।
पर सुख चिन्तत मूढ़ रे, हृदय न छूटइ सोच ॥२॥

जो सुख विषय-पराङ्मुख, निज आत्मा ध्यायन्त।
जो सुख इन्दुहु ना लहइ, देवन् कोटि रमन्त ॥३॥

घरवास हु न जानु जिय, दुष्कृत-वासहु एहु।
पाश कृतांतेहि फेंकियउ, अविचल नहि संदेह ॥१२॥

---

[१] करंजा जैन-ग्रंथमाला, करंजा (वरार)

सप्पि मुक्की कंचुलिय, जं विसु तं ण मुएइ ।
भोय न भाउ न परिहरइ, लिंगग्गहणु करेइ ॥१५॥

अथिरेण थिरा मइलेण णिम्मला णिग्गुणेण गुणसारा ।
काएण जा विढप्पइ सा किरिया किण कायव्वा ॥१६॥

वर विसु विसहरु वरु जलणु, वरु सोविउ वणवासु ।
णउ जिणधम्म-परम्मुहउ मित्थत्तिय सहवासु ॥२०॥

हंउ गोरउं हउ सामलउ हउं मि विभिण्णउ वण्णि ।
हउँ तणु-अंगउ थूलु हउँ एहउ जीव म मण्णि ॥२६॥

(२) निरंजन-साधना

वण्ण-विहूणउ णाणमउ, जो भावइ सब्भाउ ।
संतु णिरंजणु सो जि सिउ तहिं किज्जइ अणुराउ ॥३८॥

उपलाणहि जोइय करहुलउ, दावणु छोडहि जिम चरइ ।
जसु अखइ णिरामइँ गयउ, मणु सो किम बुहु जगिरइ करइ ॥४२॥

पंच वलद्दण रक्खियइँ, णंदणवणु ण गओसि ।
अप्पु ण जाणिउ ण वि परु वि, एमइ पव्व इओसि ॥४४॥

पचहि बाहिरु णेहडउ, हलि सहि लग्गु पियस्स ।
तासु न दीसइ आगमणु, जो खलु मिलिउ परस्स ॥४५॥

मणु जाणइ उवएसडउ, जहिँ सोवेइ अचंतु ।
अचितहो चित्तु जो मेलवइ, सो पुणु होइ णिचिंतु॥४६॥

वट्टडिया अणुलग्गयहँ, अग्गड़ जोयंताहँ ।
कंटउ भग्गइ पाउ जइ, भज्जउ दोसु ण ताहं ॥४७॥

मणु मिलियउ परमेसरहो, परमेसर जि मणस्स ।
विण्णि वि समरसि हुइ रहिय, पुंज चडावउँ कस्स ॥४९॥

देहादेवलि जो वसइ, सत्तिहि सहियउ देउ ।
को तहिँ जोइय सन्तसिउ, सिग्घु गवेसहिँ भेउ ॥५३॥

सर्पहिँ मोची केंचुली, जो विष सो न मुँचेइ।
भोगहि भाव न परिहरइ, भेस-ग्रहण करेइ ॥१५॥

अथिरेहिँ थिरा मइलेहि निर्मला निर्गुणहिँ गुणसारा।
कायेहि जा वढइ सा क्रिया कीन कर्तव्या ॥१६॥

वरु विष, विषधर वरु ज्वलन, वरु सेबिब वनपास।
ना जिन-धर्म-पराङ्मुख, मिथ्याइय-सहवास ॥२०॥

हौं गोरा, हौं श्यामला, हौंहि विभिन्नो वर्ण —।
हौं तनु-अंगो, स्थूल हौं, एहउ जीव न मान ॥२६॥

(२) निरंजन-साधना

वर्ण-विहूनहिँ ज्ञानमय, जो भावइ सद्भाव।
संत निरंजन सोइ शिव, तहिँ कीजइ अनुराग ॥३८॥

उत्पला नहीं जोइ करि कला दामहिँ छोडी जिमि चरइ।
जस अक्षय निरामहिँ गयउमन, सो किमि वह जगरति करइ ॥४२॥

पाँच वरद्दन राखियउ, नन्दन-वन न गयोसि।
आत्म न जानेँउ नापि पर, एवँइँ प्रव्रज्योसि ॥४४॥

पंचहिँ बहिर नेहड़ा, हे सखि लगेँउ पियेहिँ।
तासु न दीसइ आगमन, जो खल मिलेँउ परेहि ॥४५॥

मन जानइ उपदेसडहिँ, जहँ सोवई अचिन्त।
अचिते चित्त जो मेलवइ, सो पुनि होइ निचिन्त ॥४६॥

वटिया अनुसरतन्तहेँ, आगे जोयन्ताहेँ।
काँटा लागइ पाय यदि, लागहु दोष न ताह ॥४७॥

मन मिलिया परमेश्वरहिँ, परमेश्वरहु मनाहिँ।
दोऊ समरस व्है रहेँउ, पूज चढाउँ काहिँ। ॥४९॥

देह-देवले जो बसइ, शक्ति सहितो देव।
को तहँ जोगी ! शक्ति-शिव, शीघ्र गवेसहु भेद ॥५३॥

सप्पि मुक्की कंचुलिय, ज विसु तं ण मुएइ ।
भोय न भाउ न परिहरइ, लिंगग्गहणु करेइ ॥१५॥

अथिरेण थिरा मइलेण णिम्मला णिग्गुणेण गुणसारा ।
काएण जा विढप्पइ सा किरिया किण कायव्वा ॥१६॥

वर विसु विसहरु वरु जलणु, वरु सोविउ वणवासु ।
णउ जिणधम्म-परम्मुहउ मित्थत्तिय सहवासु ॥२०॥

हंउ गोरउं हउं सामलउ हउं मि विभिण्णउ वण्णि ।
हउँ तणु-अंगउ थूलु हउँ एहउ जीव म मण्णि ॥२६॥

(२) निरंजन-साधना

वण्ण-विहूणउ णाणमउ, जो भावइ सब्भाउ ।
संतु णिरंजणु सो जि सिउ तहि किज्जइ अणुराउ ॥३८॥

उपलाणहि जोइय करहुलउ, दावणु छोडहि जिम चरइ ।
जसु अखइ णिरामइँ गयउ, मणु सो किम बुहु जगिरइ करइ ॥४२॥

पंच वलद्दण रक्खियइँ, णंदणवणु ण गओसि ।
अप्पु ण जाणिउ ण वि परु'वि, एमइ पव्व इओसि ॥४४॥

पंचहि बाहिरु णेहडउ, हलि सहि लग्गु पियस्स ।
तासु न दीसइ आगमणु, जो खलु मिलिउ परस्स ॥४५॥

मणु जाणइ उवएसडउ, जहिँ सोवेइ अचंतु ।
अचितहो चित्तु जो मेलवइ, सो पुणु होइ णिचिंतु॥४६॥

वट्टडिया अणुलग्गयहँ, अग्गड़ जोयंताहँ ।
कंटउ भग्गइ पाउ जइ, भज्जउ दोसु ण ताहं ॥४७॥

मणु मिलियउ परमेसरहो, परमेसर जि मणस्स ।
विण्णि' वि समरसि हुइ रहिय, पुंज चडावउँ कस्स ॥४९॥

देहादेवलि जो वसइ, सत्तिहि सहियउ देउ ।
को तहिँ जोइय सन्तसिउ, सिग्घु गनेसहिँ भेउ ॥५३॥

सर्पहिँ मोची केंचुली, जो विष सो न मुँचेइ ।
भोगहि भाव न परिहरइ, भेस-ग्रहण करेइ ॥१५॥

अथिरेहिँ थिरा मइलेहि निर्मला निर्गुणहिँ गुणसारा ।
कायेहि जा वढइ सा क्रिया कीन कर्तव्या ॥१६॥

वरु विष, विषधर वरु ज्वलन, वरु सेबिब वनपास ।
ना जिन-धर्म-पराङ्मुख, मिथ्याइय-सहवास ॥२०॥

हौं गोरा, हौ श्यामला, हौंहि विभिन्नो वर्ण ––।
हौं तनु-अंगो, स्थूल हौं, एहउ जीव न मान ॥२६॥

(२) निरंजन-साधना

वर्ण-विहूनहिँ ज्ञानमय, जो भावइ सद्भाव ।
संत निरंजन सोइ शिव, तहिँ कीजइ अनुराग ॥३८॥

उत्पला नहीँ जोइ करि कला दामहिँ छोडी जिमि चरइ ।
जस अक्षय निरामहिँ गयउमन, सो किमि वह जगरति करइ ॥४२॥

पाँच वरद्दन राखियउ, नन्दन-वन न गयोसि ।
आत्म न जानेँउ नापि पर, एवँइँ प्रव्रज्योसि ॥४४॥

पंचहिँ बहिर नेहड़ा, हे सखि लगेँउ पियेहिँ ।
तासु न दीसइ आगमन, जो खल मिलेँउ परेहि ॥४५॥

मन जानइ उपदेसडहिँ, जहँ सोवई अचिन्त ।
अचिते चित्त जो मेलवइ, सो पुनि होइ निचिन्त ॥४६॥

वटिया अनुसरतन्तहेँ, आगे जोयन्ताहँ ।
काँटा लागइ पाय यदि, लागहु दोष न ताह ॥४७॥

मन मिलिया परमेश्वरहिँ, परमेश्वरहु मनाहिँ ।
दोऊ समरस व्है रहेँउ, पूज चढाउँ काहिँ । ॥४९॥

देह-देवले जो बसइ, शक्ति सहितो देव ।
को तहँ जोगी ! शक्ति-शिव, शीघ्र गवेसहु भेद ॥५३॥

सिव विणु सत्ति ण वावरइ, सिउ पुणु सत्ति-विहीणु ।
दोहिँ' मि जाणहिँ सयलु जगु, बुज्झइ मोह-विलीणु ॥५५॥

अब्भिन्तर चित्ति वे मइलियइ, बाहिरि काइं तवेण ।
चित्ति णिरंजणु कोवि धरि, मुच्चहि जेम मलेण ॥६१॥

देह महेली एह वढ ! तउ सत्ता वइ नाम ।
चित्तु णिरंजणु परिणसिहुं, समरसि होइण जाम ॥६४॥

सइ मिलिया सइ विहडिया जोइय, कम्मणि भंति ।
तरल सहावहिँ पंथियहिँ, अण्णु कि गाम वसंति ॥७३॥

(३) पाखंड-खंडन

वक्खाणडा करंतु बुहु, अप्पि ण दिण्णुणु चित्तु ।
कणहिँ जि रहिउ पयालु जिम, पर संगहिउ बहुत्तु ॥८४॥

पंडिय पंडिय पंडिया, कणु छंडिवि तुस कंडिया ।
अत्थे गंथे तुट्ठोसि, परमत्थु ण जाणहि मूढोसि ॥८५॥

अक्खरडेहिँ जि गव्विया, कारणु तेण मुणंति ।
वंस-विहत्था डोम जिम, परहत्थडा धुणंति ॥८६॥

बहुयइं पढियइं मूढपर, तालू सुक्कइ जेण ।
एक्कुजि अक्खरु तं पढहु, सिवपुरि गम्मइ जेण ॥९७॥

हउँ सगुणी पिउ णिग्गुणउ, णिल्लक्खणु णीसंगु ।
एकहिँ अंगि वसंतयहँ, मिलिउ ण अंगहिँ अंगु ॥१०७॥

मूलु छंडि जो डाल चडि, कहँ तह जोयाभासि ।
चीरुणु वुणणहं जाइ वढ ! विणु उहियइँ कपासि ॥१०९॥

छह दंसण धंधइ पडिय, मणहं ण फिट्टिय भंति ।
एक्कु देउ छह भेउ किउ, तेण ण मोक्खहं जंति ॥११६॥

हलि सहि काइं करइ सो दप्पणु । जहिँ पडिबिंबु ण दीसइ अप्पणु ॥
धंधवालु मो जगु पडिहासइ । धरि अच्छंतु ण घरवइ दीसइ ॥१२२॥

शिव बिनु शक्ति न व्यापरइ, शिव पुनि शक्ति-विहीन ।
दोउहिँ जानें सकल जग, बूझिय मोह-विलीन ॥५५॥

अन्तहि चित्तहि मइलियहि, वाहिर काह तपेंहिँ ।
चित्ते निरंजन कोंइ धरु, मुंचहि जिमी मलेहि ॥६१॥

देह मेहरिया एह मूढ, तोहिँ सतावइ ताव ।
चित्त निरजन परहिँ सों, समरस होइ न जाव ॥६४॥

स्वयं मिल्लेंउ, स्वयं वीछुडेंउ, योगी ! कर्म न भ्रान्ति ।
तरल स्वभावहि पथिकहीं, अन्य कि गाँव वसन्ति ॥७३॥

(३) पाखंड-खंडन

व्याख्यानड़ा करन्त वहु, आत्महि दियउ न चित्त ।
कणहिउँ रहित पुआल जिमि, पर सग्रहेंउ बहुत्त ॥८४॥

पडित पंडित पडिता, कण छाडेंउ तुष कूटिया ।
अर्थहिं ग्रंथहिं तुष्टोसि, परमार्थ न जानइ मूढोसि ॥८५॥

अक्खरडेहिं जे गर्विया, कारण ते न जाँनंत ।
बांस-विहूनो डोम जिमि, पर हाथडा धुनंत ॥८६॥

बहुतहि पढिया मूँढ पर, तालू सूखइ जेहिँ ।
एकइ अक्षर सो पढहु, शिवपुर जावे जेहिँ ॥६७॥

हौं सगुणी प्रिय निर्गुण, निर्लक्षण, निस्संग ।
एकहि अंक वसंतहुँ, मिलेंउ न अंगहि अंग ॥१००॥

मूल छोडि जो डाल चढ़ि, कहँ तेहि योगाभ्यास ।
चीर न बीनेंउ जाइ मुढ़, विनु ओटिया कपास ॥१०९॥

खटदर्शन धंधे पडी, मतहिँ न टूटी भ्रान्ति ।
एक देव छ भेद किय, ताते मोक्ष न यान्ति ॥११६॥

हे सखि ! काह करिय सो दर्पण । जहँ प्रतिबिंब न दीसइ आपन ॥
धंधवाल मोहि जग प्रतिभासइ । घर अछते णा घरपति दीसइ ॥१२२॥

जसु जीवंतहँ मणु मुवउ, पंचेन्दियहिँ समाणु।
सो जाणिज्जइ मोक्कलउ, लद्धउ पहु णिव्वाणु ॥१२३॥

मुडिय मुडिय मुडिया। सिरु मुडिउ चित्तु ण मुडिया।
चित्तहँ मुंडण जि कियउ। संसारह खंडणु ति कियउ ॥१३५॥

पोत्था पढणि मोक्खु कहँ, मणुवि असुद्धउ जासु।
बहुयारउ लुद्धउ णवइ, मूलट्ठिउ हरिणासु ॥१४५॥

भल्ला णवि णासंति गुण, जहिँ सहु संगु खलेहिँ।
वइसाणरु लोहहँ मिलिउ, पिट्टिज्जइ सघणेहिँ ॥१४८॥

मुडु मुँडाइवि सिक्ख धरि, धम्महँ वद्धी आस।
णवरि कुडुंबउ मेलियउ, छुडु मिल्लिया परास ॥१५३॥

जे पढिया जे पंडिया, जाहिँ मि माण मरट्टु।
ते महिलाणहि पिडि-पडिय, भमियइँ जेम घरट्टु ॥१५६॥

देवलि पाहणु तित्थि जलु, पुत्थइँ सव्वइँ कव्वु।
वत्थुज दीसइ कुसुमियउ, इंधणु होसइ सब्बु ॥१६१॥

तित्थइँ तित्थ भमंतयहँ, किण्णेहा फल हूव।
बाहिरु सुद्धउ पाणियहँ, अब्भितरु किम हूव ॥१६२॥

तित्थइँ तित्थ भमेहि वढ़! धोयउ चम्मु जलेण।
एहु मणु किम धाएसि तुहुँ, मइलउ पाव-मलेण ॥१६३॥

(४) गुरु-महिमा

जं लिहिउ ण पुच्छिउ कहव जाइ। कहियउ कासु वि णउ चित्ति ठाइ।
अह गुरु उवएसे चित्ति ठाइ। तं तेम धरंतिहि कहिँ मि ठाइ ॥१६६॥

वे भंजेविणु एक्कु किउ, मणहं ण चारिय विल्लि।
तहि गुरुपहि हउँ सिस्सिणी, अण्णहिं करमि ण लल्लि ॥१७४॥

अग्गइँ पच्छइँ दहदिहहिं, जहिं जोवउ तहिं सोइ।
ता महु फिट्टिय भंतडी, अवसणु पुच्छइ कोइ ॥१७५॥

जासु जीवनहि मनु मुयो, पंचेन्द्रियहिँ समान ।
सो जानीयइ मोक्कलउ, लाहेँउ पथनिर्वाण ॥१२३॥

मुँडिया-मुँडिया-मुडिया, सिर मूँडेउ चित्त न मूडिया ।
चित्तहि मुंडन जिन कियउ, संसारहि खंडन तिन कियो ॥१३५॥

पोथा पढनी मोक्षकहँ मनहि असुद्धउ जास ।
बधकारक लुब्धक नवै, मूले ठिय हरिणास ॥१४६॥

भल न काह नाशइ गुण, जहँ लह संग खलेहि ।
वैश्वानर लोहहिँ मिलेँउ, पिट्टीयत सुघनेंहिँ ॥१४८॥

मूँड मुँडाइवि सीख धरि, धर्महि बाँधी आस ।
न निक कुटुंवहि छोडियह, छोड फेँकान पराश ॥१५३॥

जे पढ़िया, जे पंडिया, जेहि कि मान मर्याद ।
ते मेहरी पिडहि पड़ी, भ्रमियत जेम घरट्ट ॥१५६॥

देवल पाहन तीर्थ जल, पोथिहि सर्वहि काव्य ।
वस्तु जो दीसइ कुसुमित, इधन होइहै सर्व ॥१६१॥

तीर्थहि तीर्थ भ्रमंतयहँ, किछु नाहीं फल होत ।
बाहिर सुद्धो पानियहँ, अभ्यन्तर किमि होत ॥१६२॥

तित्थइँ तित्थ भ्रमेँउ मूढ, धोयेँउ चाम जलेहि ।
एहु मन किमि धोयेमि तुहूँ, मइलउ पाप-मलेहि ॥१६३॥

(४) गुरु-महिमा

जो लिखेँउ न पूछेँउ कहुं पि जाइ, कहियउ काहुपि न चित्त ठाइ ।
अथ गुरु-उपदेसे चित्तु ठाइ, सो तिमि धारंतोहि कहुंपि ठाइ ॥१६६॥

दो भंजाविय एक किय, मनहिं न चारी वेलि ।
तेहि गुरुवहिं हउँ शिष्यणी, अन्यहि करउँ न लाल ॥१७४॥

आगेहिं, पाछेहिं, दसदिसिहिं, जहँ जोवउँ तहँ सोइ ॥
सो मम काटी भ्रांतडी, अवश न पूछिय कोइ ॥१७५॥

मूढा जोवइ देवलइँ, लोयहिं जाइँ कियाइँ ।
देह ण पिच्छइ अप्पणिय, जहि सिउ-संतु ठियाइँ ॥१८०॥
वामिय किय अरु दाहिणिय, मज्झइँ वहइँ णिराम ।
तहिं गामडा[1] जु जोगवइ, अवर वसाइव गाम ॥१८१॥
अप्पा परहँ ण मेलयउ, आवागमणु ण भग्गु ।
तुस कंडंतहँ कालु गउ, तंडुलु हत्थि ण लग्गु ॥१८५॥
उव्वस वसिया जो करइ, वसिया करइ न सुण्णु ।
बलि किज्जइ तसु जोइयहि, जासु ण पाउ ण पुण्णु ॥१९२॥

(५) मंत्रतंत्र-ध्यान आदि बेकार

मंतु ण तंतु ण धेउ ण धारणु । ण'वि उच्छासह किज्जइ कारणु ॥
एमइ परम सुक्खु मुणि सुव्वइ । एही गलगल कासु ण रुच्चइ ॥२०६॥
वे पंथेहि ण गम्मइ वे-मुह सूई ण सिज्जए कथा ।
विण्णि ण हुति अयाणा इंदिय सोक्खं च मोक्खंच ॥२१३॥
वादविवादा जे करहि, जाहि ण फिट्टिय भंति ।
जे रत्ता गउ पावियइँ, ते गुप्पंति भमंति ॥२१७॥
कालहिं पवणहिं रवि, ससिहिँ-चहु एक्कटइँ वासु ।
हउँ तुहिं पुच्छउँ जोइया, पहिले कासु विणासु ॥२१९॥
—पाहुड-दोहा

§ २४. धनपाल

काल—१००० ई० (?) । देश—माएसर (गुजरात ?) । कुल—धाकड़

१—कवि-परिचय

वसिवि घरासमि हल्लुत्तालिं । विरइउ एउ चरिउ धणवालिं ।
बिहि खंडहि बावीसहिँ सन्धिहिँ । परिचिंतिय निय हेउनिबंधिहिँ ।

---

[1] **राजस्थानी और गुजराती**

मूढा ! जोवइ देवलहँ, लोगहिं जाहिं कियाह ।
देह न पेखइ आपणी, जहँ शिव-संत थिताह ॥१८०॥
वामे किये ँउ अरु दाहिने, माँझिय वहइ निराम ।
तहँ गामएँ जो जोगपनि ! अवर बसावइ ग्राम ॥१८१॥
आत्मा परहिं न मेलियउ, आवागमन न भाग ।
तुष कूटते काल गउ, तंदुल हाथ न लाग ॥१८५॥
उज्जड बसिया जो करइ, बसिया करइ जो सुन्न ।
वलिहारी तेहि जोगियहि, जासु न पाप न पुन्न ॥१९२॥

(५) मंत्रतंत्र-ध्यान आदि बेकार

मंत्र न तंत्र न ध्येय न धारण । नापि उछासहिं कीजिय कारण ॥
इमिहि परम-सुख मुनि सोवइ । एही गडबड कासु न रुचइ ॥२०६॥
दो पंथहिं न गमियइ पंथा, दो मुँह सुई न मीइय कंथा ।
दोउ न होहिं अजाना ! इन्द्रिय-सुख अरु मोक्षहू ॥२१३॥
वाद-विवाद जे करहिं, जाह न फाटी भ्रान्ति ।
जे रक्ता गोपायित, ते गोप्यन्त भ्रमन्ति ॥२१७॥
कालहिं पवनहि रविशशिहिं, चहु एकट्ठइ वास ।
हउँ तोहि पूँछउ जोगिया, पहिले कासु विनाश ॥२१९॥
—पाहुड-दोहा

§ २४. धनपाल

वैश्य। कृति—भविसयत्त कहा[1] (भविष्यदत्त-कथा)

१—कवि-परिचय

वसिय गृहाश्रमें हल्लुत्ताले ँ, विरचे ँउ एउ चरित धनपालेइँ ।
दुइ खंड वईसहिँ संधिहिँ, परिचिंतिय निजहेतु-निबंधहिँ ।

---

[1] गायकवाड ओरियंटल सिरीज, बडोदा, १९२३

घत्ता। धक्कड वणिवंसि माएसरहो॑ समुब्भविण।
धणसिरिदेवि-सुएण, विरइउ सरसइ-संभविण।
—भविसयत्त-कहा पृ० १८८

२—भौगोलिक वर्णन

(१) कुरु-जांगल[1] देश

एह भरहखित्ति सुन्दर पएसु। कुरु-जंगल नामि मही विसेसु।
वण्णिज्जइ संपय काइँ तासु। जहिँ निवसइ जणु अमुणिय पयासु।
आरामछित्तघरवित्ति विद्धु। परिपक्ककलमि - गोहण - समिद्धु।
जहिँ पुरइँ पवड्ढिय कलयलाइँ। धम्मत्थ-काम संचिय फलाइँ।
जहिँ मिहुणइँ मयण-परव्वसाइँ। अवतुप्प तुपरिवडिया रसाइँ।
उवभोय भोय-सुह सेवयाइँ। गामइँ कुक्कुड संडे बयाइँ।
जहि जलइँ कयावि न मुसियाइँ। मयरंद-रेणुवामीसियाइँ।
जहिँ सरइँ कमल-पहं-तंबिराइँ। कारंड-हंस-चय-चुबिराइँ।
जहिँ पथिय तरु छायहिँ भमति। जत्थत्थमियइँ तहिँ णिसि गमंति।
पामर वियड्ढि वयणइँ णियंति। पुडुच्छु-रसइँ लीलइँ पियंति।
—वहीं पृ० २, ३

(२) गज (हस्तिना)-पुर

घत्ता। तहिँ गयउरु णाउँ पट्टणु, जणजणियच्छरिऊ।
णं गयणु मुएवि सग्गखंडु महि अवयरिऊ॥
तं गयउरु को वण्णणहँसमत्थु। जं वुहइह मंडलु णं पसत्थु।
जं भुत्तु मउड-कुंडलधरेहिँ। मेहे सराइ बहु-णरवरेहिँ।
महवा चक्केसेतु जित्थु आसि। जें भुत्त वसुंधरि जेम दासि।
पुणु सणकुमातु णिहिरयणवालु। छवखंडवसुह सुह सायिसालु।

---

[1] कुरु देश

घत्ता। धक्कड वनिक-वंशे॑ माएसरहँ समुद्भवेहिँ।
धनश्रीदेवि सुतेहिँ विरचेउ सरस्वतिसंभवेँहिँ ॥

—भविसयत्तकहा पृ० १४८

२–भौगोलिक वर्णन

(१) कुरु-जांगल देश

एहु भरत-क्षेत्रे॑ सुदर प्रदेश। कुरुजंगल नामे महि-विशेष।
वानिज्जै संपति काइँ तासु। जहँ निवसै जन अमुनिय-प्रयास।
आराम-क्षेत्र - घरवित्त - वृद्ध। परिपक्वकलम - गोधन - समृद्ध।
जहँ पुरै॑ प्रवर्द्धिय कलकलाइँ। धर्मार्थ-काम-संचित-फलाइँ।
जहँ मिथुनै मदन-परब्वशाइँ। अवतृप्तेउ पाकरके रसाइँ।
उपभोग - भोग - सुख - सेवयाइँ। ग्रामो कुक्कुट - संसेवयाइँ।
जहँ जलै॑ कदापि न शोषियाइँ। मकरंद-रेणुवा-मिश्रिताइँ।
जहँ सरहिँ कमल-प्रभ-ताम्रकाइँ। कारंड-हंस-चय-चुंविताइँ।
जहँ पथिक तप्त छायहिँ भ्रमंति। यत्र अस्त मिया तहँ निशि गमंति।
पामर विदग्धे॑ वचनै नियंति। पुँड्र-इक्षु-रसै॑ लीलै॑ पिवंति।

—वहीँ पृ० २,३

(२) गज पुर[1]

घत्ता। तहँ गजपुर[1] नामे पट्टन, जन-जनिताश्चरिऊ।
जनु गगन मुँचिय स्वर्ग-खंड, महि अवतरिऊ ॥
सो गजपुर को वर्णन-समर्थ। जो पुहुमिह मंडन जनु प्रशस्त।
जो भुक्तु मुकुट-कुंडल-धरेहिँ। मेघेश्वरादि-वहु-नरवरेहिँ।. . . .
मघवा चक्रेशत यत्र आसि[२]। जेहि भुक्तु वसुंधर जेम दासि।
पुनि सनकुमार निशिरतन-पाल। छै खंड वसुध शुभ स्वामिसाल।. .

---

[1] हस्तिनापुर

जहँ अण्णवि णर णरवइ महंत । सग्गापवग्गवर सुहइँ पत्त ।
जसु कारणि णिय-सुहि तंडवेहिँ । कुरुखेत्ति भिडिउ कुरु-पंडवेहिँ ।
घत्ता । जहिँ तुग तवंगि संठिउ संख-कुंद-धवलू ।
जणु सुतुवि उद्धु देखइ गंगाणइहिँ जलु ।।

—वहीं पृ० ३

३—वाणिज्य-सार्थ

(१) बंधुदत्तके सार्थकी तैयारी

तुरिउ गमण-सामग्गि पयासिय । सुइ-सत्थत्थवत संभासिय ।
जाणाविउ भूवाल-णरिंदहों । समइ परिट्ठिउ सण्णणविदहों ।
हट्ट-मग्गि कुल-सील-णिउत्तहँ । घोसण[१] दिण्ण पुरउ वणिउत्तहँ ।
"चल्लउ जो चल्लइ कयविज्जें । बंधुअत्तु संचलिउ वणिज्जें ।
साहुमाणि वणिउत्तहँ चाहइ । अधणहँ भंडुल्लइ संबाहइ ।"
त णिसुणेवि पमाय-पउत्तहँ । मंतिउ थोव-विहव-वणिउत्तहँ ।
"अहों पुर-जण-मण-णयणाणंदणु । सेवहों धणवइ-सेट्ठिहिँ णंदणु ।
पइसहुँ अंतरेउ सहुँआएँ । अवसिं लच्छि होइ ववसाएँ ।
वणि-तणुरुह-रहसेण समागय । सज्जिय करह-वसह-महिसह सय ।"

—वहीं पृ० १६-१७

(२) भविष्यदत्तकी माँका विरोध

माइ महल्ल महुज्जम विज्जें । बंधुअत्तु संचलिउ वणिज्जें ।
तेण समाण मइँमि जाइव्वउ । तं वोहित्थु तीरि लाइव्वउ ।
देसंतर-पवासु माणिव्वउ । णियपुण्णहँ पमाणु जाणिव्वउ ।
दयिवायत्तु जइवि विलसिव्वउ । तो पुरिसिं ववसाउ करिव्वउ ।
तं णिसुणेवि सगग्गिर-वयणी । भणइँ जणेरि जलद्दिय-णयणी ।
हा इउ पुत्त ! काइँ पइँ जंपिउ । सिविणंतरिवि णाहिँ महु जंपिउ ।

---

[१] डुगडुगी पिटवाई—घोषणा की

जहँ अन्यउ नर नरपति महंत। स्वर्गापवर्ग वर सुखहिँ प्राप्त।
जसु कारणेँ निज-सुखेँ तांडवेहिँ। कुरुक्षेत्र भिडेँउ कुरु-पांडवेहिँ।
घत्ता। जहँ तुंग तपांगेँ सं-ठिउ, शंख-कुन्द-धवलू।
जनु सूती ऊर्ध्व देवइ, गगानदिह जल॥

—वहीँ पृ० ३

३—वाणिज्य-सार्थ

(१) बंधुदत्तके सार्थकी तैयारी

तुरत गमन-सामग्रि प्रकाशिय। शुचि-सार्थ-र्थवंत संभापिय।
जनवायउ भूपाल-नरेन्द्रहँ। समयहँ पूछेँउ सज्जन-वृन्दहँ।
हाट-मार्ग-कुल-शील-नियुक्तहँ। घोषण दीन पुरहँ वणि-पुत्रहँ।
"चल्लो, जो चल्लै क्रय-वेँचे। वंधुदत्त संचलेउ वनिज्जे।
साधु मानि वणिपुत्तहँ चाहै। अ—धनहँ भंडुल्लइ[१] सं-वाहै[२]।"
सो सुनियाहि प्रमाद-प्रयुक्तहँ। मंत्रेउँ थोड़-विभव-वणिपुत्रहँ।
"अहो पुर-जन-मन-नयन-नंदना। सेवहु धनपति-श्रेष्टिहिँ नंदन।
पइसहु अंतरेउ सहुआयेँ। अवशि लक्ष्मि होई व्यवसायेँ।
वणि-तनुरुह रभसेहिँ[३] समा-गउ। माजेँउ करभ-वृषभ-महिषइ सौ।

—वहीँ पृ० १६-१७

(२) भविष्यदत्तकी माँका विरोध

"माइ! महल्ल-महोद्यम-विद्येँ। बंधुदत्त स-चलेउ वनिज्जेँ।
तेही संगेँ हमहूँ जाइब्बो। सो वोहित-तीरेँ लाइब्बो।
देशांतर-प्रवास मानिब्बो। निज-पुण्यहँ प्रमाण जानिब्बो।
दैवायत्त यदपि विलसिब्बउ। तहूँ पुरु व्यवसाय करिब्बउ।"
सो सुनियाहि सगद्गद-वदनी। भनै जनेरि[४] जलार्दित-नयनी।
हा ई पुत्र! काह तैँ जल्पेउ। स्वप्नंतरेउ नाहिँ मोहिँ जल्पेउ।

---

[१] सौदा [२] देवै [३] तुरंत [४] माता

एक्क अकारणि कुविय-वियप्पें। दिण्णु अणतु दाहु तउ वप्पें।
अण्णुवि पईं देसंतरु जंतहों। को महु सरणु हियइ पजलंतहों।
अण्णुवि तेण समउ तउ जंतहों। णिव्वुइ खणु'वि णाहिँ महुचित्तहों।

घत्ता। को जाणइ कण्ण महाविसइ, अणुदिणु दुम्मइ मोहियइँ।
सम-विसम-सहावहिँ अंतरइँ, दुट्ठसवत्ति[1]हि दोहियइँ॥

एक्कुमिक्कु ववसाउ करंतहँ। समसाहिट्ठिउ भंडु भरंतहँ।
विहि पडिकूलु अम्ह पडिसक्कइ। अत्थहँ छेउ करिबि को सक्कइ।
एक-दव्व-अहिलास-विचित्तइ। को जाणइँ दाइयहँ चरित्तइ।
जइ सरूव दुट्ठत्तणु भासइ। बंधुअत्तु खल वयणहिँ वासइ।
जो नउ करइ अमंगलु जंतहों। मूलु[2]वि जाइ लाहु चितंतहों।"
जंपइ मामहु महुरकलाएँ। "चंगउ वुत्तु पुत्त! कमलाएँ।
अम्हह एत्थु-वसंतहों तेहउ। को'वि ण मित्तु पहाणु सणेहउ।
बंधुअत्तु पुरमज्झि सइत्तउ। राउलि सण्णमाणु धणयत्तउ।

घत्ता। जइ-जणणि-वयण विस-विस-मगड, दाइय-मच्छरु मणि वहई।
तो तुम्हहँ अम्हहँ सयणहमि, वंचिवि कलि परिहउ करई॥"

भविसयत्तु विहसेविणु जंपइ। "तुम्हहँ भीरत्तणिण समप्पइ।
अइयारि वामोहु ण किज्जइ। समवय-जणि पोढत्तणु हिज्जइ।
अइणएण जणि कायरु वुच्चइ। अइभएण जइ-लच्छिएँ मुच्चइ।
अइमएण दप्पुब्भडु णावइ। अइघिएण भोयणु'वि ण भावइ।
अइरूवि तिय-रयणु विणासइ। अइयारिं सव्वहों गुणु णासइ।
जइ ववसाइ दाउ णउ दिज्जइ। तो णायरहँ मज्झि लज्जिज्जइ।
जइ सो कहव सवत्तिहि जायउ। तो'वि तॉयहों सरीरि संभूयउ।
एक्कु सरीरु जाउ विहि भायहिँ। तहिँ किर काइँ राय-वेयारहिँ।

---

[1] सौत [2] पूंजी

एक अकारण कुपित विकल्पे। दीन अनंत-दाह तव बापें।
अन्यउ तैं देशान्तर जातह। को मम शरण हृदय-प्रज्वलंतह।
अन्यउ तेहिँ संग तव जातह। निर्वृति[1] क्षणहु नाहि ममचित्तह।
घत्ता। को जानै कर्ण महाविषइँ, अनुदिन दुर्मति-मोहितइँ।
सम-विषम स्वभावहिँ अंतरइँ, दुष्ट सौतियह दोहितइँ॥
एकमेक व्यवसाय करंतहँ। मम-साभेही भांड भरंतहँ।
विधि-प्रतिकूल ममर-प्रतिमक्कै। अर्थहँ छेद करबि को सक्कै।
एक द्रव्य-अभिलाष-विचित्रा। को जानै दैवयहँ चरित्रा।
यदि स्वरूप दुष्टत्वउ भासै। बंधुदत्त खल-वचनहिँ वासै।
जो तव करै अमंगल जाँतह। मूलउ जाइ लाभ चिंतंतहँ।"
जंपै मामहँ मधुरकलायें। "चंगउ उक्त पुत्र! कमलायें।
हमरे इहाँ वसंतह तेही। कोउ न मित्र प्रधान सिनेही।
बंधुदत्त पुर-माँझ स्वयत्तउ। राउलें[2] सर्व्वमान धनदत्तउ।
घत्ता। यदि जननि-वचन-विष-विषमगति, दर्शित मत्सर मनें वहई।
तो तुम्महँ हम्महँ स्वजनहउ, वंचिय कुलें परिभव करई।"
भविषदत्त विहसि जल्पियई। "तुम्हहँही भीरुता-समर्पियई।
अतिचारे व्यामोह न किज्जै। सम-वय-जनें प्रौढत्वं हीज्जै[3]।
अतिगमने जनें कायर उच्चै। अतिभयेहिँ जयलक्ष्मी मुंचै।
अतिमदेहिँ दर्पोद्भूट नावै। अतिघिवेहिँ भोजनउ न भावै।
अतिरूपें तिय-रतन विनाशै। अतिचारें सर्व्वउ गुण नाशै।
यदि व्यवसाय दाव ना दिज्जै। तो नागरहँ माँझ लज्जिज्जै।
यदि सो कहब सौतीको जायो। तोपि तातहँ शरीर-संभूतो।
एक शरीर जाउ दोउ भाई। तहँ फुर काईं राग-विचारी।

---

[1] चैन   [2] राजकुल (=दर्बार)   [3] कम होना

अण्णु'वि तहिँ कुल-सील-निउत्तहँ । होसहिँ पंच-सयइँ वणिउत्तहँ ।. . . .
अण्णुवि अम्हह तेण समाणु । किपि ण पुव्व-विरोह-विहाणु ।
घत्ता । मं माइ चित्तु कायरु करहि, फुडु कम्मइँ कम्महु कारणु ।
खुट्टइ जीविज्जइ जेम णवि, तेम अखुट्टइ नउ मरणु ।"
—वहीँ पृ० १७-१८

(३) माताका उपदेश

घत्ता । जोव्वण-वियार-रस-वस-पसरि, सो सूरउ सो पंडियउ ।
चल-मम्मणवयणुल्लावएहिँ, जो परतियहिँ ण खंडियउ ।।१८।।
पुरिसि पुरिसिव्वउ पालिव्वउ । परधणु परकलत्तु णउ लिव्वउ ।
तं धणु जं अविणासिय-धर्म्में । लब्भइ पुव्वक्किय-सुह-कम्में ।
त कलत्तु परिओसिय-गत्तउ । जं सुहि पाणिग्गहणि विढत्तउ ।
णिय-मणि जेण संक उप्पज्जइ । मरणंति'वि ण कम्मु तं किज्जइ ।
अण्णु-'वि भणमि पुत्त ! परमत्थें । जइवि होहि परिपुण्ण महन्थें ।
तरुणि तरल लोयण मणि भाविउ । पहु-सम्माण-दाण गुण गाविउ ।
तहिँमि कालि अम्हहिँ सुमरिज्जहि । एक्कवार महु दंसणु दिज्जहि ।
पर-धणु पायधूलि भणिज्जहि । परकलत्तु मइँ समउ गणिज्जहि ।
—वहीँ पृ० २०

(४) सार्थ (कारवाँ)की यात्रा

अग्गेय दिसइँ मल्हंति जंति । कुरुजंगलु महिमंडलु मुअंति ।
लंघंति वियण-काणण-पलंब । पुर - गाम-खेड - कव्वड - मडंब ।
जउणानइ सलिलु समुत्तरेबि । जल-दुग्गइँ थल-दुग्गइँ सरेवि ।
अन्नन्न-देस-भासइं नियंत । रयणायरें वेला-उलइ पत्त ।
लक्खिउ समुद्दु जल-लव-गहीरु । सप्पुरिसु'व थिरु गंभीरु धीरु ।
आसीविसो[1]'व्व विस-विसम-सीलु । वेला-महल्ल कल्लोल-लीलु ।

---

[1] साँप

अन्यउ तहँ कुल-शील-सँयुक्ता। होइहैं पंचशता वणिपुत्रा।....
अन्यउ हम्मउ तेहि समाना। किछुउ न पूर्व-विरोध-विधाना।
घत्ता। मति मा! चित्त कातर करहि, फुर कर्मइ कर्महँ कारण।
खुट्टइ[1] जीविज्जै जेम नहिँ, तेम अखुट्टइ ना मरण।"
—वहीं पृ० १७-१८

(३) माताका उपदेश

घत्ता। "यौवन-विकार-रस-वश- प्रसर, सो शूरा सो पडित।
चल-मन्मथ-वचनोल्लापएहिँ, जो परतियहिँ न खंडित ॥१॥
पुरुषें पुरुषत्त्वउँ पालिब्बउ। परधन-कलत्र नाहीँ लिब्बउ।
सो धन जो अविनाशिय धर्में। लब्भै पूर्वंकृत-शुभकर्में।
सो कलत्र परि-योषित-गात्रउ। जो सुखें पाणिग्रहण विहित्तउ।
निज मनें जातें शक उत्पज्जै। मरतेहूँ न कर्म सो किज्जै।
अन्यउ भनउँ पुत्र! परमार्था। यदपि होइ परिपूर्ण महार्था।
तरुणि-तरल-लोचन मनें भाविउ। प्रभु-सम्मान-दान-गुण गाविउ।
तेंहुउ काल मोहिहि सुमरिज्जै। एक वार मोहिँ दर्शन दिज्जै।
परधन पाद-धूलि भन्निज्जै। परलत्र मोँहिँ सम गण्णिज्जै।
—वहीं पृ० २०

(४) सार्थ (कारवाँ)की यात्रा

आग्नेय दिशहिँ छोडंति जांति। कुरुजंगल महिमंडल मुँचंति।
लंघंति विजन-कानन-प्रलंब। पुर - ग्राम - खेड - कव्वड - मडंप।
यमुना नदि सलिल सम्-उत्तरेउ। जल-दुर्गहिँ थल-दुर्गहिँ सरेउ।
अन्यान्य-देश-भाषहिँ नियत्त। रत्नाकर-वेलाकुलहिँ प्राप्त।
लक्खेउ समुद्र जल-लव-गँभीर। सत्पुरुष 'व थिर गंभीर धीर।
आशीविष इव विष-विषम-शील। वेला-महल्ल-कल्लोल-लील।

---

[1] **आयु घटनेपर**

दिट्ठइँ विउलइँ बेलावलाइँ। कय-विक्कय-रय-वयणाउलाइँ।
धम्मत्थ-कामकंखिर सुहाइं। सुवियड्ढ-वयण विलयामुहाइं।
तहि थाइवि जलजंतइँ कियाइँ। परिहरिबि वसह-महिसय-सयाइं।
जलजंता कम्मतरु करेबि। करणइह पियवयणहिँ संवरेबि।
वहणहिँ[1] आरूढ महापहाण। वणिवरहँ सयइँ पंचहिँ समाण।

—वहीं पृ० २१-२२

(५) बंधुदत्तके साथ समुद्र-यात्रा

घत्ता। णिज्जावयवयणुज्जुअमुहइँ, किखवइँ णंणं भडईं।
सच्चल्लइ रयणायरहों जलि, खरपवणाहय-धय-वडईं॥

दिढ़-बधइँ जिह भल्लर-गणाइँ। णिल्लोहइँ जिह मुणिवर-मणाइँ।
णिब्भिण्णइँ जिह सज्जण-हियाइँ। अकियत्थइँ जिह दुज्जण-कियाइँ।
वहणइँ वहंति जलहर-रउद्दि। दुत्तरि अत्थाहि महासमुद्दि।
लंघंतइँ दीवंतर-थलाइँ। पिक्खंति विविह कोऊहलाइं।
इय लीलइँ वच्चंताहँ ताहँ। उच्छाह-सत्ति-विक्कम पराहँ।
दुप्पवणें घणतरुवर-समीवें। वहणइँ लग्गइँ मयणाय-दीवें।
कल्लोल-बोल-जलरव वमालें। असगाह-गाह गहणंतरालें।
तीरंतरें जं सघट्ट पोय। उत्तरिय तरिव पमुहाइ लोय॥....

घत्ता। तं वयणु सुणिवि णायर-जणहु, नं सिरि वज्जदंडु पडिऊ।
वोहित्थइँ लेवि दुरास खलु, गहिर महासमुद्दि चडिऊ॥२५॥

पमुक्के कुमारे दुरायारिएहिँ। अमोहे जलोहे वहंतेहिँ तेहिँ।
थियं विंभियं त वणिदाण विंद। वियप्पाउरं करयलुग्गिण्ण-मुद्दं।
अहो सुंदरं होइ एयाण कज्जं। अगम्मंपि गंतूण खद्ध अखज्जं।
गयं णिप्फलं ताम सव्वं वणिज्जं। धुवं अम्ह गोत्तम्मि लज्जावणिज्जं।

---

[1] बड़ी नाव, महापोत (बजरा)

दीसैं विपुलैं वेलाकुलाइँ। क्रय - विक्रय - रत - बचनाकुलाइँ।
धर्मार्थ-काम-कांक्षी सुखाइँ। सुविदग्ध-बचन वनिता-मुखाइँ।
तहँ थायेउ[१] जलपोतहिँ केताहिँ। परिहरेउ वृषभ-माहिष-शताहिँ।
जलपोता कर्मातर करेउ। करनै प्रियवचनहिँ संवरेउ।
वहनहँ आरूढ महाप्रधान। वणि-वग्गहँ शतहँ-पंचहि समान[३]।

—वहीँ पृ० २१-२२

(५) बंधुदत्तके साथ समुद्र-यात्रा

घत्ता। विद्या-वय-बचन ऋजुकमुखा, की खला, नाना भटई।
संचल्लै रत्नाकर जले, खर-पवनाहत-ध्वज-पटई॥
दृढ़ बंधाइँ जिमि मल्लर[४]-गणाइँ। निर्लोभी जिमि मुनिवर-मनाइँ।
निर-भिन्ना जिमि सज्जन-हियाइ। अकृतार्था जिमि दुर्जन-क्रियाइँ।
वहनैं वहंति जलधर-रउद्र। दुस्तर अथाह महासमुद्र।
लंघंता द्वीपांतर - थलाइँ। पेखंता विविध कुतूहलाइँ।
इमि लीलै वाँचत ताँह ताँह। उत्साह-शक्ति-विक्रम-पराह।
दुप्-पवने घन-तरुवर-समीपें। प्रवहण लागेंउ मैनाकद्वीपें।
कल्लोल-बोल-जल-रव-भ्रमरे। असंख ग्राह ग्राह गहनं-'तरालें।
तीरंतरे जो संघट्ट पोत। उत्तरेंउ तरी-प्रमुखादि लोग।..
घत्ता। सो वचन सुनिय नागरजनहु, जनु शिरें वज्रदंड पडेंऊ।
वोहितेहिँ लेइ दुराश खल, गहिर महासमुद्र चढेंऊ॥२५॥
प्रमुचे कुमारे दुराचारियेहि। अमोघे जलोघे वहंतेहि तेहि।
ठिआ विस्मिता सो वणीन्द्रान-वृन्दा। विकलपातुरा करतलो दृगीर्ण-मुद्रा।
"अहो सुंदरो होइ एहू न काजा। अगम्याह गन्तु अखद्याउ खाद्या।
गओ निष्फला एह सव्वा वनिज्या। छुयो अम्ह गोत्रेहुं लज्जावनीया।

---

[१] रहेउ प्रवहण (जहाज) [३] सहित [४] पहलवान

ण जत्ता ण वित्त ण मित्तं ण गेहं । ण धम्मं ण कम्मं ण जीयं ण देहं ।
ण पुत्तं कलत्तं ण इट्ठं पि दिट्ठं । गयं गयउरे[1] दूरदेसे पइट्ठं ।
खय जाइ नूणं अहम्मेण धम्मं । विणट्ठेण धम्मेण सव्वं अकम्मं ।
कयं दुक्किय दोहएण हएण । सुहायारभट्ठेण दुट्ठेण एणं ।
अणिट्ठं कणिट्ठं भुअ मप्पहायें । समुद्दे रउद्दे खय तुम्ह जायें ।

—वही पृ० २२, २३

४—सामंती वणिक्समाज

(१) वसंत-वर्णन

घत्ता । एत्तहि महुमासहो आगमणु, एत्तहि पियपुत्त-समागमणु ।
परमोच्छवि रोमंचिय भुवहो, मुहु वियसिउ धणयत्तहों सुवहो ।।८।।
जिम तित्थु तेम पंचहि सएहि । किय भवण सोह निव्वुइ गएहि ।
घरि-घरि मगलइ पघोसियाइँ । घरिघरि मिहुणइ परिओसियाइँ ।
घरिघरि तोरणइँ पसाहियाइँ । घरिघरि सयणइ अप्पाहियाइँ ।
घरिघरि बहुचंदण-छडय दिन्न । मरु-कुंद-वणय-दवणय-पइन्न ।
घरिघरि सरेणु-रइ-पिंजरीउ । सोहंति चूयतरु-मंजरीउ ।
घरिघरि चच्चरि कोऊहलाइँ । घरिघरि अंदोलय सोहलाइँ ।
घरिघरि कय-वत्थाहरण सोह । घरिघरि आरद्ध-महाजसोह ।
घरिघरि सरूव-रंजिय-मणाइ । जुवइहि जोइयइ सदप्पणाइ ।
घत्ता । घरिघरि जलमंगलकलस किय, घरिघरि घरदेवय अवयरिया ।
घरिघरि सिंगार-वेसु धरिवि, नच्चिउ वर-जुवइहि उत्थरिवि ।।९।।
तं गयउरु सो पउर-समागमु । सो सियपक्खु वसंतहो आगमु ।
ताइ निरंतराइँ चुअ वणइँ । ताइ धवलपुंजवियइ भवणइँ ।

---

[1] हस्तिनापुर

प्रति-अगुलि मुंदरि हीरहि सुंदरि, कंचन-रज्ज सुमध्य तनू।
तसु तूणहु सुंदर कीजिय मदर, थापह वाणहं शेष धनू ॥२०६॥
जयति जयति हर बलयित-विषधर, तिलकित सुंदर चंद्रं मुनि-आनंदं जनकंदं।
वृषभ-गमनकर त्रिशुल-डमरु-धर, नयनहिं डाहु अनंगं शिर गंगं गौरि अधंगं।
जयति जयति हरि भुजयुग धरु गिरि, दशमुख-कंस-विनासा प्रियवासा सुदर-हासा।
बलि छलु महि धरु असुर-विलय करु, मुनि-जन-मानस-हंसा प्रियभाषाउत्तमवंशा ॥२१५॥

३—कविका संदेश

सन्तोष और निराशावाद

सेर एक यदि पावउँ घृत्ता, मंडा बीस पकावउँ नित्ता।
टंक एक यदि सेंधा पाया, जो हौं रंकउ सो हौं राजा ॥१३०॥
राजा लुब्ध समाज खल, वधु कलहारिनि सेवक धूर्त्तउ।
जीवन चाहसि सुक्ख यदि, परिहर घर यदि बहु-गुण-युक्तउ ॥१६६॥
पंडव-वंशहि जन्म धरीजे, संपति अर्जिय धर्म कौं दीजै।
सोउ युधिष्ठिर संकट पावा। देवकें लिक्खल कौन मिटावा ॥१०१॥
सो जन जनमेंउ सो गुणवंतउ। जो कर पर-उपकार हसतउ।
जो पुनि पर-उपकार विरुद्धउ। ताकि जननि किनु थाकेउ[1] बाँझउ ॥१४६॥

§ ४३: हरिब्रह्म

(?)। कुल—ब्रह्मभट्ट (?), राजदर्बारी। कृतियाँ—स्फुट[2]

१—मंत्री (चंडेश्वर)-प्रशंसा

यथा शरद-शशि-बिंब यथा हर-हार-हंस ठिय।
यथा फुल्ल-सित-कमल, यथा श्रीखंड-खंड किय।

---

[1] रहेउ [2] "प्राकृत-पैंगल" पृष्ठ १८४

जहा गंग-कल्लोल, जहा रोसाणिअ रुप्पइ,
जहा दुद्धवर मुद्ध फेण फँफाइ तलप्पइ।
पिअपाअ पसाए दिट्ठि पुणि, णिहुअ हसइ जह तरुणि जण।
वरमति **चंडेसर** कित्ति तुअ, तत्थ पेक्ख **हरिबंभ** भण ॥१०८॥ (१८४)

§ ४४: अंबदेव सूरि

काल—१३१४। देश—अनहिलवाडा (गुजरात[1])। कुल—वैश्य(?),

१–सामन्त-समाज

(१) सेठ (समरसिंह)को प्रशंसा

जिणि दिणि दिनु दक्खाउ, समरसीहि जिण धम्मवणि।
तसु गुण करउँ उदोउ, जिम अंधारइ फटिकमणि॥
सारणि अमियतणीय, जिणि वहाँवी मरुमंडलिहिँ।
किउ कृतजुग अवतारु, कलिजुगि जीवउ बाहुवले॥
ओसवाल कुलि चंदु, उदयउ एउ समान नहिँ।
कलिजुगि कालइ पासि, छेदीयउ सचराचरहिँ॥....
रतन कुक्खि कुलि निम्मलीय भोली पुतुजाया।
सहजउ साहणु समरसीहु बहु पुन्निहि आया॥
लहु अलगइ सुविचार चतुर सुविवेक सुजाण।
रत्न परीक्षा रंजवइ राय अउ राण॥
तउ देसल नियकुल पईव ए पुत्र सधन्न।
रूपवंत अउ सीलवंत परिणाविय कन्न॥
गोसलसुत्ति आवास कियउ अणहिलपुर नयरे।
पुन्न लहइ जिम रयण माहि नर समुद्दह लहरे॥
—समर-रास (पृ० २७-२९)

---

[1] "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह" G.O.S. vol. XIII.

यथा गंग-कल्लोल, यथा रोषाणित[1] रुपै।
यथा दुग्धवर-शुद्ध-फेन फंफाइ तलप्पै।
प्रियपाद प्रसादे दृष्टि पुनि, निभृत हसै जिमि तरुणिजन।
वरमंत्रि **चंडेश्वर** कीर्त्ति नव, तत्र पेखु हरिब्रह्म भन ॥१०८॥

§ ४४: अंबदेव सूरि

जैन साधु। कृति—समर-रास।

१—सामन्त-समाज

(१) सेठ (समरसिंह) की प्रशंसा

जिन दिनं दिन दक्षाउ, **समरसिंह** जिनधर्म-वणि।
तसु गुण करउँ उजोअ, जिमि अंधारै फटिकमणि॥
सरणी अमियतनीय[2]; जिन वहाइ मरु[3]मंडलहिँ।
किउ कृतयुग अवतार, कलियुग जीतेँउ वाहुवल॥
ओसवाल कुल-चंद्र, उदयेँउ एउ समान नहिँ।
कलियुग कालइ पाश, छेदीयऊ सचराचरहिँ॥
रतनकुक्षि कुल निर्मलीय भोली पुनु जाया।
सहजउ साधन समरसीह बहु पुण्यहिँ आया॥
लहु अलगइ सुविचार चतुर सुविवेक सुजाना।
रतन-परीक्षा रंजवई राजा अरु राना॥
तौ देसल निज कुलप्रदीप एँहु पुत्र सधन्या।
रूपवंत अरु शीलवंत परिनाविय कन्या॥
गोसल-सुत आवास कियउ **अनहिलपुर** नगरे।
पुण्य लहै जिमि रतन माँझ नर समुदह लहरे॥
—समररास (पृ० २६-२६)

---

[1] रगड़ा [2] अमृतकेर [3] मारवाड़

(२) बादशाह (अलाउद्दीन) और मीर (अलप खाँ) की प्रशंसा

तहि अच्छइ भूपतिहि भुवण-सतखंड-पसत्थो ।
विश्वकर्म विज्ञानि करिउ धोइउ निय हत्थो ॥
अमिय सरोवरु सहसलिगु इकु धरणिहिँ कुडलु ।
कित्तिषंभु किरि अवरदेसि मागइ आखंडलु ॥
अज्जवि दीसइ जत्थ-धम्मु कलिकालि अगजिउ ।
आचारिहिँ इह नयर-तणइ सचराचरु रंजिउ ॥
पा[1]तसाहि [2]सुरताण भीवु तहिँ राजु करेई ।
अलपखानु हीदूअह लोय धणु मानु जु देई ॥
साहु राय **देस**लह पूत्तु तसु सेवइ पाय ।
कलाकरी रंजविउ खानु बहु देइ पसाय ॥
मीरि मलिकि मानियइ समरु समरथु पभणीजइ ।
पर-उवयारिय माहि लीह जसु पहिलिय दीजइ ॥

२—(जैन) तीर्थयात्री-सेना

आगलि मुनिवर-संघु सावय जणा । तिलु न षिरइ तिम मिलिय लोय घणा ॥
मादल वंस विणा धुणि बज्जए । गुहिर भेरीय रवि अंबरे गज्जए ॥
नवय पाटणि नवउ रंगु अवतारिएँ । सुखिहिँ देवालय संखारी-संचारिएँ ॥
घरि बयसवि करि केवि समाहिया । समरगुण रंजिउ विरलउ रहियउ ॥
जयतु कान्हु दुइ संघपति चालिया । हरिपालो लंढुको महाधर दृढ़ थिया ॥
वाजिय संख असंख नादि काहल दुडदुडिया ।
घोडे चडइ सल्लार सार राउत सींगडिया ।
तउ देवालय जोयि वेगि घाघरि रवु झमकइ ।
सम विसम नवि गणइ कोइ नवि वारिउ थक्कइ ॥

---

[1] बादशाह [2] सुलतान

(२) बादशाह (अलाउद्दीन) और मीर (अलप खाँ)की प्रशंसा

तहँ आछे भूपतिहँ भुव सतखंड प्रशस्तो।
विश्वकर्म विज्ञान करेँउ धोइय निज हस्ते ॥
अमिय-सरोवर सहसलिंग ऍक धरणिहिँ कुडल।
कीर्त्ति-खंभ फुर अवर देश माँगड आखंडल ॥
आजउ दीसै यत्र धर्म कलिकाल अगंजेउ।
आचारेँहि इह नगरकेर सचाचर रंजेँउ।
पादशाह सुरतान **भीवु** तहँ राज करेई।
अलपखान हिंदुअहँ लोग धनमान जोँ देई ॥
साहु राय **देसलह** पुत्र तसु सेवै पाये।
कलाकरी रंजविउ खान वहु देइ प्रसादे ॥
मीर मलिक मानियै समर समरथ प्र-भनीजै।
पर-उपकारी माँझ लेख जसु पहिली दीजै ॥

२-(जैन) तीर्थयात्री-सेना

आगे मुनिवर संघ श्रावक-जना। तिल न खिड़ै तिमि मिलिय लोग घना ॥
माँदल-वंश-वीणा धुनि बाजई। गहिर भेरीरव अंबरेँ गाजई ॥
नवक पाँटन नवउ रंग अवतारेँऊ। सुखेँहिँ देँवालय शंख-री संचारेँऊ।
घरेँ वइसाँवि करि कोइ समाहिया। **समर**-गुण-रजित विरलउ राहिया ॥
जयतु कान्ह दुइ संघपति[1] चालिया। **हरिपालो लंढुको महाधर** दृढ ठिया ॥
बाजिय शंख असंख्य नाद काहल दुडदुडिया।
घोडे चढे **सलार**[2]सार **राउत** सीगडिया ॥
तब देवालय जोइ वेगि घाघर रव झमकै।
सम-विषमा ना गनै कोइ ना वारिउ थाकै[3] ॥

---

[1] जैन गृहस्थोंके संघके प्रधान [2] कमांडर [3] ठहरै, रहै।

सिजवाला धर धडहडड वाहिणि बहु वेगे।
धरणि धडक्कइ रजु उडए नवि सूझवि मागे ॥
हय हीसइ आरसइ करह वेगि वहइ वइल्ल।
सादकिया थाहरइ अवरु नवि देई बुल्ल ॥
निसि दीवी झलहलहि जेम ऊगिउ तारायणु।
पावल पाउ न पामियए वेगि वहइ सुखासण ॥
आगे वाणिहि संचरए संघपती साहु **देसलु**।
बुद्धिवंतु बहुपुंनिवंतु परिकमिहिँ सुनिश्चलु ॥
पाछे वाणिहि सोमसीहु साहुसहजा पूतो।
सांगणु साहु दूणिगह पूतु सोमजिनि जुत्तो ॥
जोड करी असवार माँहि आपणि समरागरु।
चडिय हींड चहुगमे जोइ जो संघ असुहकरु ॥
सेरीसे पूजियउ पासु कलिकालिहिँ सकलो।
सिरखेजि थाइउ **धवलक**ए संघु आविउ सयलो ॥
धंधूकउ अतिक्रमिउ ताम **लोलियाण**इ पहुतो।
नेमि भुवणि उछवु करिउ **पिपलालीय** वत्तो ॥
—वहीं (पृ० ३२-३३)

३—ग्रंथ-रचना-काल

संवच्छरि इक्कहत्तरए थापिउ रिसहजिणिदो।
चैत्रवदि सातमि पहुतघरे नंदऊ ए नंदउ ए नंदउ जा रवि चंदो ॥
पासउ सूरिहिँ गणहरह नेउअच्छ निवासो।
तसु सीसहिँ, अंबदेव सूरिहिँ रचियउ ए रचियउ ए रचियउ समरारासो ॥
—समररासो[१]

---

[१] पृष्ठ ३७

सिजवाला धर धड़धड़ै वाहिनि वहुवेगे।
धरनि धड़क्कै रज ऊड़ै ना सूझै मार्गे ॥
हय हिनसैं आरसैं करभ वेग वहैं वइल्ला।
सां[1]दकिया थाहरै और ना देई बोल्ला ॥
निशि दीपा झलझलैं जेम ऊगिय तारागण।
पावल पाव न पाइयै वेंगि वहै सुखासन ॥
आगे वाणी संचरै संघपति साहु **देसला**।
बुद्धिवंत वहुपुण्यवंत परिक्रमहिँ सुनिश्चला ॥
पाछे वाणिहि **सोमसीह** साँहु सहजा-पूतो।
सांगण साहु दूनिगह पूत सोम जिन युक्तो ॥
जोड़करी असवार माँह आपुहिँ समरागर।
चढिय हिंड चहुगमे जोय जो संघ असुखकर ॥
सेरीसे पूजियउ पार्श्व कलिकालहिँ सकलो।
सिरखेजी ठहरेउ **धवलकह** संघ आयेँउ सकलो ॥
धंधूकउ अति क्रमेँउ ताँह लोँलि यानह वहुनो।
नेमिभुवन उत्सव करेँउ **पिपलालिय** प्राप्तो ॥
—वहीँ (पृ० ३२-३३)

३—ग्रंथ-रचना-काल

संवत्सर एकहत्तरे थापेँउ ऋषभ जिनेंद्रो।
चैत्रवदी सातमि पहुतघरेँ नंदउ जो लौँ रवि चंद्रो ॥
पार्श्वउ सूरिहिँ गणधरह **नेउअच्छ** निवासो।
तसु शिष्येहिँ **अँबदेव** (सूरि) रचियउ समरारासो ॥
—समररास (पृ० ३७)

---

[1] सवार, गाड़ीवान आदि

§ ४५: अज्ञात कवि

काल—१३०० (ई०), देश—गुजरात।

१—कक्का[1]

(१) वैराग्य और वात्सल्य

कत्थ वच्छ कुवलय-नयण, सालिभद्द सुकुमाल।
भद्दा पथणइ देव तुहु, कह थिउ इत्तिय वार॥
खरउं कुड्डु ता पुत्त कहि, का देसण किय वीरि।
कवण अत्थु वरवाणिइउ, कंचणगोर सरीरि॥
खार समुद्दहर आगलउ, माहर कढिउ संसारु।
संजमपवहण हीण तसु, कियइ न लब्भइ पारु॥
गमयमत्त वीरिय पवर, जे जगि पुरिस पहाण।
सालिभद्द भद्दा भणइ, संजमु सोहइ ताण॥
घण कुंकुम चंदण रसिण, तुह तणु वासिउ वच्छ।
वयह परीसह किम सहिसि, मुणि गंगाजल सच्छ॥
नविवउ लिज्जइ तरुण पणि, सालिभद्द सुकुमाल।
मह्नु कुलमंडल कुलतिलय, कुलपईव कुलबाल॥
चरणु लेसिजइ पुत्त तुहु, नंदणनीय पवीण।
रोअंती भद्दा भणइँ, मइँ किम मेल्हिसि दीण॥
छण मइलंछण समवयण, तुह भज्जा बत्तीस।
ते विलवंती पेमभरि, किम कारिसि कुलईस॥
जणणि भणइ जां बालपणु, तां पुत्तह पडिवंधु।
तारुमइ बुल्लाविअउ, बहु उन्नाडइ कंधु॥

---

[1] बाराखड़ी

§ ४५ः अज्ञात कवि

कृति—शालिभद्र-कक्का ।[1]

१—कक्का

(१) वैराग्य और वात्सल्य

कहाँ वास कुवलय-नयन, शालिभद्र सुकुमार ।
भद्रा प्र-भनै देव तुहु, कहँ रहु एत्तिय वार ॥
खरउ[2] कुड्डु[3] ता पुत्र कहँ, का देशन किउ वीर ।
कौन अर्थ वर-वाणिइउ, कंचन गौर शरीर ॥
खार समुद्रहँ आगलउ, मा हर कढेँउ संसार ।
संयम-प्रवहण-हीन तसु, किये न लब्भै पार ।
गमय-मत्त वीर्य प्रवर, जे जग पुरुष प्रधान ।
शालिभद्र भद्रा भनै, संयम सोहै तान[4] ॥
घनकुंकुम चंदन रसेँहिँ, तव तन वासेँउ वत्स ।
व्रतहँ परीसह[5] किमि सहिसि, मुनि गंगाजल स्वच्छ ॥
नववय छीजै तरुणपन, शालिभद्र सुकुमार ।
मम कुल-मंडन कुल-तिलक, कुलप्रदीप कुलपाल ॥
चरण लेसि यदि पुत्र तुव, नंदन नीच प्रवीण ।
रोअंती भद्रा भनै, मोँहिँ का छाडेँसि दीन ॥
छण-मृगलांछन सम-वदन, तुव भार्या बत्तीस ।
ते विलपंती प्रेमभर, का कारेसि कुलईश ॥
जननि भनै जो वालपन, सो पुत्रह प्रतिवंधु ।
तारमती बोलावियउ, वहु उन्नाडै[6] कंधु ॥

---

[1] "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह" G.O.S. Vol. XIII

[2] अच्छा [3] आश्चर्य [4] तिनको [5] उपसर्ग, कष्ट [6] हिलावै

झलकंतउ कंचणघडिउँ, सत्तभूमि पासाउ ।
विहवउ कोडाकोडि धण, कहि कोइँ ऊणउ ठाउ ॥
नरवइ सेणिउ तुम्ह पहु, सुरगोभद्दु सुताउ ।
नित्तु नवएँ आभारणू, कहि को चित्तिविसाउ ॥
टलटलेसि धम्मत्थ पुण, धम्मगहिल्ला बाल ।
धम्म करेवा मह्नु समउ, तुहु धणु रक्खण बाल ॥
ठणकइ पुत्तसु चित्तिमहु, पुत्त विहूणिय नारि ।
विहविह मुच्चइ दुहु सहइ, दीणी परघर बारि ॥
डरपिसि सुणियइ सीहसरि, निसुणिसि सिव-फिक्कार ।
भुक्खिउ तिसिइउ वच्छ, तुह किम हिंडिसि नार ॥
ढलइँ चमर-वर पुत्त तुहु, सीस धरिज्जइ छत्तु ।
मणि सीहासणि बइठणउँ, किणि कारणि वइचित्तु ॥
नवउँ अंतेउरु नवउँ घरु, नवजोवणु नवरंगु ।
सालिभद्दु नवकणयतणु, ढलकरि चरण पसंगु ॥
तरुअरतलि आवासु मुणि, भिक्खह भोयणु पाणु ।
भूमंडलि आसणु सयणु, वच्छ चरणु दुहठाणु ॥
थल-डूँगर पाहणसघण, कक्कर कंट तुसार ।
पाणह वज्जिय गुरि सहिउ, हिंडिसि केम कुमार ॥
दहविह धम्मु करेसि किम, किम सोसिसि निय अंगु ।
वच्छ तहं ता दोहिलउँ, होसिइ तुह सीलंगु ॥
धम्मु किइउ जिम रिसहजिणि[1], तिम किज्जइ सुअ इत्थु ।
पहिलउँ साखिहिँ पसरिउ, अंतिय यासिउ तित्थु ॥
नवकप्पूरिहि पूरिया, नन्दण कोमल केस ।
केतगि वालइँ वासिया, किम उद्धरिसि असेस ॥

---

[1] एक तीर्थंकर

झलकंतउ कंचन गढिय, [1]सप्तभूमि प्रासाद।
विभवउ कोटाकोटि धन, कहँ कोँउ ऊनउ ठाँव ॥
नरपति श्रेणिक तुम्ह प्रभु, सुरगोभद्र सुताउ।
नित्य नवै आभारणू, कहँ को चित्त-विषाद ॥
टलटलेसि धर्मार्थं पुनि, धर्म-गहिल्ला बाल।
धर्म करेबा मम समय, तुव धन-रक्षण-काल ॥
ठापै पुत्र मोँ चित्त मैँ, पुत्र विहूनी नारि।
विभवहिँ मुचै दुख सहै, दीनी परघर वारि ॥
डरपसि सुनिया सिहस्वर, नि-सुनिय गिवाँ-फेक्कार।
भुखिय तृषितउ वत्स तुहुँ, किमि हिंडीयसि नार ॥
ढलैँ चमर-वर पुत्र ! तव, सीस धरिज्जै छत्र।
मणिसिहासनेँ बइठनउ, किन कारण वैचित्र ॥
नव अंतःपुर नवघर, नवयौवन नवरंग।
शालिभद्र नवकनकतनु ढलकर चरण-प्रसग ॥
तरुवरतल आवास मुनि, भिक्षहँ भोजन-पान।
भूमंडल आसन-शयन, वत्स ! चरण दुख-थान ॥
थल डूँगर पाहन सघन, कंकड कंट तुषार।
पनही वर्जिय गोड सन, हिंडसि केम कुमार ॥
दशविध धर्म करेसि किमि, किमि शोषसि निज अंग।
वत्स ! तहाँतहँ दोहलउ, होँइहै तुव शीलांग ॥
धर्म करेँउ जिमि **ऋषभ** जिन, तिमि कीजै सुत अत्र।
पहिले सखिहिँ पसारियउ, अंते यायेउ तीर्थ ॥
नवकर्पूरहिँ पूरिया, नन्दन ! कोमल केश।
केतकि वालैँ वासिया, किमि उद्धरिसि अशेष ॥

---

[1] सात महलोंवाला

पट्टंसुत्र तइँ पहरियां, रसियउ दिव्व अहारु ।
सुअ उव्वासिहिं सोसिया, केम करेसि विहारु ॥
फणि-रायह सिरिपुत्त मणि, मुल्लेणय बहुमुल्लु ।
मा गिण्हंता पाणहर, संजम-भरु तस तुल्लु ॥
बत्तीसहँ पल्लंकि तउं, सयण करइ नितु जाय ।
[1]डूँगरि कासुगि करिसि किम, बलि किज्जउँ तह काय ॥
भमिसि विहारिहि भारिअओ, नंदण तं सुकुमाल ।
वीर जिणंदह चरणु पुणु, मुणि बावन्नउँ फालु ॥
मयलंछण जिमि तारयहँ, सयलहँ किल भत्तारु ।
तं बत्तीसह बहुअरहं, एक्कु देव आधारु ॥
यइ तउँ संजमु लेसि सुअ, मेल्हिवि सयलु सिणेहु ।
ता गोभद्दु अभागिहउ, हा धिगु छुड्डुउ गेहु ॥
रहि रहि नंदण वयणु सुणि, मामा मइँ संतावि ।
तुह विणु नितु कुण पूरिसइ, मुक्काहरणहँ वावि ॥
लडकइँ सउँ संजमु लियल, नंदसेणु मुणिराउ ।
सो संजमुपव्वइय सुअ, भोगह कम्मपसाय ॥
वच्छ ति नारी दुक्खिनिहि, जाहँ न कंतु न पुत्तु ।
मुहुतइं नंदण जाइयइँ, हिंव आविऊँ निरुत्त ॥
सहसाकारिहिँ गहियवउ, सुयइ कंडरिएण ।
नंदण तेणय नरइदुह, पामिय भट्ठवएण ॥
षलह मणोरह पूजिसइँ, सज्जण होसिइ सोसु ।
नन्दण तुं थाइसि समणु, ऍउ महु कम्महँ दोसु ॥
समल देह कप्पउ समल, रत्तिदिवस गुरुआण ।
होइसइं तुव भद्दा भणइ, पर-आइत्त पवाण ॥

---

[1] वृक्ष-वनस्पतिहीन पर्वतको डूँगर कहते हैं ।

पट्टांशुक तैं पहिरिया, रसियउ दिव्य-अहार ।
सुत उपवासेंहि शोषिया, केम करेसि विहार ॥

फणिराजह श्रीपुत्र मणि, मूल्येनउ वहुमूल्य ।
सो गृहणंते प्राणहर, संयमभर तसु तुल्य ॥

बत्तीसेहँ पल्लंग तैं, शयन करै नित जाय ।
डूँगरि कासुग[1] करिसि किम, बलि किज्जउँ तह काय ॥

भ्रमसि विहारें भारिअउ, नंदन सो सुकुमार ।
वीरजिनेंद्रहँ चरण पुनि, मुनि बावनऊ फाल[2] ॥

मृगलांछन जिमि तारकहँ, सकलहँ कर भर्त्तार ।
तिन बत्तीसहँ बधुअरहँ, एक देव आधार ॥

यदि तैं संयम लेसि सुत, मेलिय[3] सकल सनेह ।
ता गोभद्र अभागिहउ, हा धिग छूटेंउ गेह ॥

रहि रहि नंदन वयन सुनि, मा मा मैं संताप ।
तुह विन नित को पूरिहैं, मुक्ताभरणहँ वापि ॥

लडकैं सँग संयम लियउ, **नंदसेन** मुनिराव ।
सो संयम प्रव्रजिय सुत, भोगहँ कर्म प्रसाद ॥

वत्स तें नारी दुःखिनी, जाहँ न कंत न पुत्त ।
मम तैं नंदन जाइइहि, क्यों आवेंऊँ निरुत्त[4] ॥

सहसा कारेंहिं गहियऊ, सुनिय कंडरीकेहिं[5] ।
नंदन ! तातें नरक-दुख, पाइय भ्रष्टव्रतेहिं ॥

खलह मनोरथ पूजिहैं, सज्जन होंइहै शोष ।
नंदन ! तूँ होयेंउ श्रमण, ऍहु मम कर्महँ दोष ॥

साँवर देह कल्पउ सँवर, रातदिवस गुरुज्ञान ।
होइहै तू भद्रा' भनै, पर-आयत्त-पराण ॥

---

[1] कायोत्सर्ग=खड़े बैठे ध्यानावस्थ होना   [2] छलाँग
[3] छोड़   [4] निरर्थक   [5] कंडरीककी कथा

हसत रोअंता पाहुणउ, ताम हसंता होउ।
सालिभद्द संजमु लियइ, महु बुज्झिअइ पमोहु ॥
—सालिभद्द-कक्का[1]

§ ४६: अज्ञात कवि (१३०० ई०)

१—जीते-जी कीर्त्ति

कित्ती सा सलहिज्जइ जा सुणीइ अप्पणेहिँ कण्णेहिँ।
पच्छा मुअण सुंदरि ! सा कित्ती होउ मा होउ ॥
जस-सहित जे नर हुआ, रवि पहिला उगंति।
जोगा जाते दीहडे, गिरि पत्थरा ढुलंति ॥
कीरति हंदा कोटड़ा, पाड्याही न पडंति ॥
—उपदेशतरंगिणी[2] (पृ० २७५)

§ ४७: राजशेखर[3] सूरि

काल—१३१४ ई० (?)। देश—गुजरात। कुल—जैन साधु।

१—सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य

अह सामल कोमल केशुपास किरि मोरकलाउ।
अद्ध-चंद-समु भालु मयणु-पोसइ भउवाउ ॥

---

[1] पृष्ठ ६२-६७ [2] "उपदेश-तरंगिणी" (रत्न-मन्दिर गणि १४६० ई०) धर्माभ्युदय-प्रेस, बनारस (२४१७ वीर संवत्) [3] कविराज राजशेखर नहीं

हसत रोॅअंता पाहुनउ, तहाॅ हसंता होउ।
शालिभद्र संयम लियै, मम बूझिहै प्रमोह॥
—शालिभद्र-कक्का (पृ० ६२-६७)

§ ४६: अज्ञात कवि (१३०० ई०)

१—जीते-जी कीर्त्ति

कीर्त्ति सा सलहिज्जै जा सुनीय आपनेहि कानेहिँ।
पाछे मुये प'सुंदरि ! सा कीर्त्ती होहु न होहु॥१२॥
यश-सहित जो नर हुआ रवि पहिला ऊगंत।
युग्गाँ जाते दीहड़े[1] गिरि-पत्थरा ढुलति॥१३॥
कीरति हूंदा कोटडा पाड़्या ही न पडति॥
—उपदेशतरंगिणी (पृ० २७५)

§ ४७: राजशेखर सूरि

कृति—नेमिनाथ-फाग[2]।

१—सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य

श्यामल कोमल केशपाश जनु मोरकलाप।
अर्धचंद्रसम भाल मदनपोसै भउवाहँ॥

---

[1] दिवस [2] "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह" G.O.S. vol. III

वंकुडिया लीय भुहंडियहं भरि भुवणु भमाउइ ।
लाडी लोयण लह कुडलइ सुरसग्गह पाडइ ॥
किरि ससिबिब कपोल कन्नहिँ डोल फुरंता ।
नासावंसा गरुड-चंचु दाडिमफल दंता ॥
अहर पवाल तिरेह कंठु राजल सर रूडउ ।
जाणुवीणु रणरणइं जाणु कोइलटहकडलउ ॥
सरल तरल भुय वल्लरिय सिहण पीण घण तुंग ।
उदरदेसि लंकाउलिय सोहइ तिवल-तरंगु ॥
कोमल विमल नियंब बिंब किरि गंगा-पुलिणा ।
करि-करऊरि हरिण जंघ पल्लव करचरणा ।
मलपति चालति वेलहीय हंसला हरावइ ।
संझारागु अकालिवालु नहकिरणि करावइ ॥
सहजिहिं लडहीय रायमएँ सुलखण सुकुमाला ।
घणउं घणेरउं गहगगहए नवजुव्वण बाला ॥
भंभरभोली नेमि, जिण वीवाह सुणेई ।
नेहगहिल्ली गोरडी, हियडाई विहसेई ॥
सावण सुकिल छट्ठि दिणि बावीसमउ जिणंदो ।
चल्लइ राजल परिणयण कामिणि नयणाणंदो ॥
—नेमिनाथ-फाग (पृ० ८३-८४)

२—शृंगार-सजाव

किम किम राजलदेवितणउ[1] सिणगारु भणेवउ ।
चंपइगोरी अइधोई अंगि चंदनु लेवउ ॥
खुंपु भराविउ जाइ कुसुमि कसतूरी सारी ।
सीमंतइ सिदूररेह मोतीसरि सारी ॥

---

[1] रानी

(३) रानी (ईश्वरदेवी)की प्रशंसा

तह पट्ट महादेवी प्रसिद्ध । ईश्वरदे प्रणयिनि प्रणय-विद्ध ।
निखिल'न्तःपुर-मध्ये प्रधान । निज पति-मन-प्रेषण सावधान ॥
सज्जन-मन कल्प-महीपशाख । कंकण-केयूरं'कित सुबाहु ।
छण-शशि-परिसर-संपूर्ण-वदन । मुक्त'मल कमलदल सरल-नयन ॥
आशासिंधुर गज-गमनलील । वंदिजन-मनाशा-दानशील ।
परिवार-भार-धुर-धरन शक्त । मोचै अंतरदल ललित-गात्र ॥
छै-दर्शन चित्ताशा-विश्राम । चतुसागरांत-विख्यात-नाम ।
अहमल्ल-राय-पद-भक्तियुक्त । अवगमित[१]-निखिल-विज्ञान-सूत्र ॥
निजनंदनो(इ) चिंतामणी'व । निज-धवलगेह-सरहंसिनी'व ।
परि-जानिय करन विलासकाज । रूपेहिँ जीत सूत्राम[२]-भार्य ॥
गंगा-तरंग-कल्लोलमाल । समकीर्त्ति भरिय ककुभान्तराल ।
कलकंठि-कंठ कलमधुर-वाणि । गुणगरुव रतन-उत्पत्ति-खानि ॥
अरिराज विषह शंकरहों शिष्ट । सौभाग्यलग्न गौरी'व दृष्ट ॥

(४) मंत्री (कान्हड)की प्रशंसा

अहमल्लराय महाँमंत्रि शुद्ध । जिन-शासन-परिणय-गुण-प्रबद्ध ।
कान्हड-कुल-कैरव-श्वेतभानु । प्रभुहूँ समाज सव्वँहूँ प्रधान ॥
गंजोल्लिय मन लक्षण बहूव । स्वीकारिउ काव्य-करणानुरूप ।
निज-घरें आयउ वन गंध-हस्ति । मदमत्त फुरिय मुखरुह-गभँस्ति ॥
वश हुयउ स्व स्वर दशदिशि-भरंत । मन कोन प्रतीच्छै तह तुरंत ।
सुप्रसन्न राव घरई तबेइ । भनु कौंन दुवार-किवाड़ देइ ।
जानीय वचन लिन चातुरंग । धन-कन-कंचन-संपूर्ण चंग ॥
घर समुँह आइ पेखेबि सवार । भनु कौन वप्प झंपइ दुवार ।

---

[१] ज्ञात [२] इन्द्र

चिंतामणि-हाडय-निवड-जडिउ । पज्जहइ कवणु सइं हत्थ चडिउ ।
घर रंगुप्पण्णउ कप्प-रुक्खु । जलें कवणु न सिंचइ जणिय सुक्खु ।।
सयमेव पत्त घरु कामधेणु । पज्जहइ कवणु कय-सोक्खसेणु ।
चारण-मुणि-तेएँ जित्त भवइ । गयणाउ पत्त किर कोण णवइ ।।
पेऊस पिंड केंर पत्तु भव्वु । को मुयइ निवे(इय) जीवियव्वु ।
अह्मल्ल-राय-कर-विहिय-तिलउ । मह्यणहँ महिउ गुणगरुअ-णिलउ ।
सो साहु पइट्ठवु जणिय-सेउ । सिवदेउ साहुकुल-वंस-केउ ।।
घत्ता । जो कण्हडु पुव्वुत्तउ, पुण्णपउत्त, महिमंडलि विक्खायउ ।
आहवमल्ल-णरिंदहु, मण-साणंदहु मंतत्तण पइभायउ ।।

(५) मंत्रि-पत्नीकी प्रशंसा

पिया तस्स सल्लक्खणा लक्खणड्ढा । गुरूणं पए भक्ति काउं वियड्ढा ।
स भत्तार-पायारविंदाणुगामी । घरारंभ-वावार-संपुण्ण-कामी ।।
सुहायार चारित्त-चीरंक-जुत्ता । सुचेयाण गंधोदएणं पवित्ता ।
स पासाय-कासार-सारा-मराली । किवा-दाण संतोसिया वंदिणाली ।।
पसण्णा सुवाया अचंचेल-चित्ता । रमाराम-रम्मा मए वालणित्ता(?) ।
खलाणं मुहंभोय-संपुण्ण जुण्हा । पुरग्गो महासाहु सोढस्स सुण्हा ।।
दया-वल्लरी मेह-मुक्कंवुधारा । सइत्तत्तणे सुद्ध-सीयप्पयारा ।
जहा चंदचूडा[१]नुगामी भवाणी । जहा सव्व वेइहिं सव्वंग वाणी ।।
जहा गोत्त णिद्दारिणो रंभ रामा । रमा दाणवारिस्स संपुण्ण-कामा ।
जहा रोहिणी ओसहीसस्स सण्णा । महड्ढी सपुण्णस्स सारस्स रण्णा ।।
जहा सूरिणो मुत्तिवेई मणीसा । किसाणस्स साहा जहा रूवमीसा ।

---

[१] शंकर

चिंतामणि हाटक निवह् जड़िउ । प्रज्जहै[1] कौन मॅग हस्त चढ़िउ ॥
घर रंग् उत्पन्नउ कल्पवृक्ष । जल कौन न सींचै जनित सुक्ख ।
स्वयमेव प्राप्त घर कामधेनु । प्रज्जहै कौन कृत-सौख्य-सेन ॥
चारण मुनि-तेजे जेंत्त हवै । गगनाहु आउ फुर को न नवै ।
पीयूष-पिंड करें पाइ भव्य । को मुचै निवेदिय जीवितव्य ॥
अहमल्ल राय-कर-विहित-तिलक । महाँ जनरु महित गुण-गरुव-निलय ।
सो साहु पईठउ जनित-सेतु । **शिवदेव** साहु कुल-वंश-केतु ॥ (१४ ख)
घत्ता । जो कान्हड पूर्वो-'क्तउ'पुण्य-प्रयुक्तउ महिमंडल विख्यात यऊ ।
अहमल्ल-नरेन्द्रह, मन-सानंदह मंत्रित्वन प्रति-भातयऊ ॥ (१५ ख)

(५) मंत्रि-पत्नीकी प्रशंसा

प्रिया तासु सुल्लक्षणा लक्षणाढ्या । गुरूणां पदे भक्ति-करणे विदग्धा ।
स्वभर्त्तार पादारविन्दानुगामी । घरारंभ व्यापार संपूर्ण कामी ॥
शुभाचार चारित्र चीरांकयुक्ता । सुचेतन्न गंधोदकेहीं पवित्रा ।
स्वप्रासाद-कासार-सारा मराली । कृपादान-सतोषिया वंदिताली ॥
प्रसन्ना सुवाचा अचंचल्ल-चित्ता । रमा राम रम्या मदेवाल-नेत्रा ।
खलों-को मुखाम्भोज संपूर्णज्योत्स्ना । पुराग्रोमहासाहु **सोढ़ाकों** सुन्हा[2] ।
दया-बल्लरी-मेघ-मुक्तांबुधारा । सतीत्वत्तने शुद्ध-सील-प्रकारा ।
यथा चंद्रचूड़ानुगामी भवानी । यथा सर्व वेदेहिँ सर्वांग वाणी ।
यथा गोत्र निर्दारिण[3]हेँ रंभाँ रामा । रमा दानवारी कि संपूर्ण कामा ।
यथा रोहिणी ओषधीशाह संगी । महाढ्या सँपूर्णाहु साराहु रानी ॥
यथा सूरिकी मुक्तिवेदी मनीषा । कृशानार्क स्वाहा यथा रूप मीसा । (१६ ख)

---

[1] छोड़ै　　[2] स्नुषा = पुत्रवधू　　[3] इन्द्र

§ ४१: जज्जल[1]

काल—१२६० ई० (हम्मीर[2] १२८२-६६)। देश—उत्तरी राजपूताना।

वीर-रस

(राना हम्मीरकी प्रशंसा[3])

मुंचहि सुंदरि पाअ अप्पहि हसिऊण सुम्मुहि खग्गं मे ।
कप्पिअ मेच्छ-सरीरं पेच्छइ वअणाइ तुम्ह धुअ हम्मीरो ॥७१॥ (१२७)

पअभरु दरमरु धरणि तरणि रह धुल्लिअ झंपिअ,
कमठ-पिट्ठ टरपरिअ मेरु-मंदर-सिरकंपिअ ।
कोह चलिअ हम्मीर-वीर गअजूह-सँजुत्ते ।
किअउ कट्ठ हा कंद ! मुच्छि मेच्छहके पुत्ते ॥६२॥ १(५७)

पिंधउ दिढ-सण्णाह वाह-उप्पर पक्खर दइ,
वंधु समदि रण धसउ सामि हम्मीर वअण लइ ।
उज्जल णह-पह भमउ खग्ग रिउ-सीसहि डारउ,
पक्खर-पक्खर ठेल्लि-पेल्लि पव्वअ अप्फालउ ।
हम्मीरकज्ज जज्जल भणइ, कोहाणल मुह मह जलउ ।
सुलताण-सीस करवाल दइ, तेज्जि कलेवर दिअ चलउ ॥१०६।(१८०)

ढोल्ला मारिअ ढिल्लिमह, मुच्छिअ मेच्छ सरीर ।
पुर जज्जला मंतिवर, चलिअ वीर हम्मीर ॥
चलिअ वीर हम्मीर, पाअभर मेइणि कंपइ ।
दिगमगणह अंधार धूरि सूरिय रह झंपइ ॥
दिगमग णह अंधार आणु खुरसाणक ओल्ला ।
दरमरि दमसि विपक्ख भार अ ढिल्लिमह ढोल्ला ॥१४७॥ (२४६)

---

[1] "प्राकृत पैंगल" से। [2] रणथम्भोरके राजा बीर हम्मीर जिन पर अलाउद्दीन ने १२६६में चढ़ाई की। [3] जिन कविताओंमें जज्जलका नाम नहीं है, उनके बारेमें सन्देह है, कि वह इसी कविकी कृतियाँ हैं।

§ ४१: जज्जल

कुल—हम्मीरका मंत्री और सेनापति ।

वीर-रस

(राना हम्मीरकी प्रशंसा)

मुंचहि सुंदरि ! पाव अर्पहि हँसियाउ सुमुखि खड्गहँ मे ।
काटिय म्लेच्छ शरीरहँ पेँखिहँ वदनहँ तुम्ह ध्रुव हम्मीरो ॥१२७॥

पगभर दरमरु धरणि तरणि रह धूलिय झंपिय,
कमठ-पीठ टरपरिय मेरु-मंदर-शिर कंपिय ।
क्रोधि चलिय हम्मीर वीर गज-यूथ-सँयुत्ते,
कियउ कष्ट "हाक्रंद" मूछि म्लेच्छनके पुत्ते ॥९२॥

पेन्हेँउ दृढ सन्नाह बाँह ऊपर पक्खर दइ,
बंधु समभि[1] रण धँसेँउ स्वामि हम्मीर वचन लइ ।
उज्वल नभ-पथ भ्रमेँउ खड्ग, रिपु शीशहिं डारेँउ,
पक्कड़-पक्कड़ ठेलि-पेलि पर्वत उच्छालेउ ।
हम्मीर-कार्य उज्जल भनइ, क्रोधानल-मुख महँ ज्वलउ,
सुल्तानशीश करवाल दइ, त्यागि कलेवर दिवु चलउ ॥१०६॥

ढोला मारिय दिल्लि महँ मूछिय म्लेच्छ शरीर,
पुर[2] जज्जल्ला मंत्रिवर चलिय वीर हम्मीर ।
चलिय वीर हम्मीर पाद-भर मेदनि कंपै,
दिग-मग-नभ अंधार धूलि सूरज-रथ झंपै ।
दिग-मग-नभ अंधार आनि खुरसान केँ ओल्ला[3],
दर मरि दमसि विपक्ष मार दिल्ली महँ ढोल्ला ॥१४७॥

---

[1] मीर मुहम्मदशाह और उनके साथियोंको हम्मीरने शरण दिया था, जिस पर अलाउद्दीनसे विरोध हो गया । [2] आगे [3] स्वामी

सहस मग्रमत्त गग्र लाख लख पक्खरिग्र ,
साहि दुइ साजि खेलंत गिंदू ।
कोप्पि पिग्र ! जाहि तहि थप्पि जसु विमल महि ।
जिणइ णहि कोइ तुग्र तुलक[1]-हिंदू ॥१५७॥ (२६२)

घर लग्गइ ग्रागि जलइ धह धह ,
कइ दिगमग णह-पह ग्रणल भरे ।
सब दीस पसरि पाइक लुलइ धणि ,
थणहर जहण दिग्राव करे ।

भग्र लुक्किग्र थक्किग्र वइरि तरुणि ,
जण भइरव भेरिग्र सद्द पले ।
महि लोट्टइ पिट्टइ रिउ-सिर टुट्टइ ,
जक्खण वीर हमीर चले ॥१६०॥ (३०८)

खुर खुर खुदि खुदि महि घघर रव कलइ ,
ण ण ण णगिदि करि तुरग्र चले ।
ट ट टगिदि पलइ टपु धसइ धरणि वपु ,
चकमक करि वहु दिसि चमले ।

चलु दमकि दमकि वलु चलइ पइक वलु ,
धुलकि धुलकि करि करि चलिग्रा ।
वर मणु सग्रल कमल विपख हिग्रग्र सल,
हमिर वीर जब रण चलिग्रा ॥२०४॥ (३२७)

जहा भूत वेताल णच्चंत गावंत खाए कवंधा ,
सिग्राकार फेक्कार हक्का रवन्ता-फुले कण्णरंधा ।
कग्रा टुट्ट फुट्टेइ मत्था कवंधा णचंता हसंता ,
तहा वीर हम्मीर संगाम-मज्झे तुलंता जुझंता ॥१८३॥ (५२०)

---

[1] तुरुक

सहस मदमत्त गज, लाख-लख पक्कडी ,
शाह द्वय साजि खेलंत गेंदू ।
कोपि प्रिय ! जाहि तहँ थापि यश-विमल महि,
जितै नहिं को तोंहिं तुरुक-हिंदू ॥१५७॥

घर लागै आग जलै धह-धह ,
करि दिग-मग नभ-पथ अनल-भरे ।
सब दीस पसरि पाइक्क[1] चलै ,
धनि थन-भर-जघन दियेउ करे ।

भय लुक्किय थाकिय बैरि तरुणि-
जन भैरव-भेरिय शब्द पड़ै ।
महि लोटै-पोटै रिपु-शिर टुट्टै ,
जखन वीर हम्मीर चले ॥१९०॥

खुर-खुर खुदि-खुदि महि घघर रव करे ,
न न न नगिदि करि तुरग चले ।
ट ट ट गिदि परै टॉप धँसै धरणि वपु
चकमक करि बहु दिशि चमरे ।

चलु दमकि दमकि बल चलै पडक[1]-बल ,
घुलुकि घुलुकि करि करि चलिया ।
वर मनुष दल कमल विपख[2] हृदय सल ,
हमिर वीर जब रण चलिया ॥२०४॥

यथा भूत-वेताल नाचत गावंत खाएँ कबंधा ,
शिवाकार फेक्कार हक्का रवंता फोंड़ैं कर्ण-रंध्रा ।
कॉया टुट फोड़ेइ मत्था कबंधा नचंता हसंता,
तथा वीर हम्मीर संग्राम-मध्ये तुरंता जुझंता ॥१८३॥

---

[1] प्यादा   [2] विपक्ष

§४२: अज्ञात कवि या कवि-वृन्द

काल—तेरहवीं सदीका पूर्वार्ध। देश—युक्त-प्रान्त या विहार।

१—सामन्त-समाज

युद्ध-वर्णन

अहि ललइ महि चलइ, गिरि खसइ हर खलइ,
सिस घुमइ अमिअ वमइ, मुअल जिवि उट्ठए।
पुणु घसइ पुणु खसइ, पुणु ललइ पुणु घुमइ,
पुणु वमइ जिविअ विविह, परि समर दिट्ठए॥१६०॥ (२६६)

गअ-गअहि ढुक्किअ तरणि लुक्किअ, तुरअ तुरअहि जुज्झिआ।
रह-रहहि मीलिअ धरणि पीलिअ, अप्प-पर णहि बुज्झिआ॥
वल मिलिअ आइअ पत्ति जाइउ, कंप गिरिवर-सीहरा।
उच्छलइ साअर दीण काअर, बइर बड्ढिअ दीहरा।१६३।(३०६)

कुंजरा चलंतआ पव्वआ पलंतआ।
कुम्म-पिट्ठि कंपए, धूलि सूर झंपए॥५६॥ (३७८)

उम्मत्ता जोहा [1]ढुक्कंता, विप्पक्खा मज्झे लुक्कन्ता।
णिक्कंता जंता धावंता, णिम्भंती कित्ती पावंता॥६७॥ (३७८)

ठामा-ठामा हत्थी-जूहा देक्खीआ,
णीला-मेहा मेरु-सिंगा पेक्खीआ।
वीरा हत्था अग्गे खग्गा राजंता,
णीला-मेहा-मज्झे विज्जू णच्चंता॥११३॥(४२५)

मत्ता जोहा वट्टे कोहा अप्पा-अप्पी गव्वीआ,
रोसा रत्ता सब्बा गत्ता सल्ला भल्ला उट्ठीआ।

---

[1] घुस रहे हैं

§ ४२: अज्ञात कवि या कवि-वृन्द

कुल—दर्बारी, भक्त। कृतियाँ—स्फुट कवितायें[1]।

१—सामन्त-समाज

(१) युद्ध-वर्णन

अहि ललै महि चलै गिरि खसै हर स्खलै,
शशि घुमै अमिय वमै मुअल जीइ उट्ठए।
पुनि धँसै पुनि खसै पुनि ललै पुनि घुमै,
पुनि वमै जीविता विविध परि समर दृष्टए ॥१६०॥

गज-गर्जहिं ढुक्किय तरणि लुक्किय तुरग-तुरंगहि जूझिया,
रथ-रथहि मेलिय धरणि पेलिय, आप पर नहिं बूझिया।
बल मिलै आइय पत्ति[2] जाइय, कंप गिरिवर शीखरा,
ऊछलै सागर दीन कातर वैरि बाढिय दीघरा ॥१६३॥

कुंजरा चलंतआ पर्वता पडंतआ।
कूर्म पृष्ठ कंपए, धूलि सूर झंपए ॥५६॥

उन्मत्ता योधा ढुक्कंता, विप्पच्छा मध्ये लुक्कंता।
निष्कांता जांता धावंता निर्भ्रांती कीर्त्ती पावंता ॥५७॥

ठावें ठावें हस्ति यूथा देखीया,
नीला मेघा मेरु-शृंगा पेखीया।
वीरा-हस्ता-अग्रे खड्गा राजंता,
नीला-मेघा-मध्ये विज्जू नाचंता ॥११३॥

मत्ता योधा बाढ़े क्रोधा आपे-आपा गर्बीया,
रोषा रक्ता सर्वा गात्रा शल्या भल्ला उट्ठीया।

---

[1] "प्राकृत-पैंगल" में संगृहीत, पृष्ठ कविताओंके अन्तमें—कोष्ठकमें। [2] प्यादा

हत्थी-जूहा सज्जा हूआ पाए भूमी कंपंता,
लेही देही छड्डो ओड्डो सब्बा सूरा जप्पंता।१५७।(४८३)
झत्ति जोइ सज्ज होइ गज्ज वज्ज तंखणा,
रोस-रत्त सब्ब-गत्त हक्क[1] दिज्ज भीसणा।
धाइ आइ खग्ग पाइ दाणवा चलंतआ,
वीर-पाअ णाअराअ कंप भूतलंतगा ॥१५९॥ (४८५)
चलंत जोह मत्त-कोह रण्ण-कम्म-अग्गरा,
किवाण-वाण-सल्ल-भल्ल-चाव-चक्क-मुग्गरा।
पहार वार धीर वीर वग्ग मज्झ पंडिआ,
पअट्ठ ओट्ठ कंत दंत तेण सेण मंडिआ ॥१६९॥.(४९९)
उम्मत्ता जोहा उट्ठे कोहा ओत्था-ओत्थी जुज्झंता,
मेणक्का रंभा णाहं दंभा अप्पा-अप्पी बुज्झंता।
धावंता सल्ला छिण्णे कंठा मत्था पिट्ठी पेरंता,
णं सग्गा मग्गा जाए अग्गा लुद्धा उद्धा हेरंता ॥१७५॥ (५०७)

२–देव-स्तुति

(१) दशावतार

जिण वेअ धरिज्जे महिअल लिज्जे, पिट्ठिहि दंतहि ठाउ धरा।
रिउ-वच्छ विआरे छल तणु धारे, बंधिअ सत्तु सुरज्जहरा।
कुल खत्तिअ कप्पे तप्पे दहमुह कप्पे, कंसअ केसि विणासकरा।
करुणा पअले मेच्छह विअले सो, देउ णराअण तुम्ह वरा ॥२०७॥ (५७०)

(२) राम-स्तुति

वप्प अ-उक्कि सिरे जिणि लिज्जिउ, तेज्जिअ रज्ज वणंत चलेविणु।
सोअर सुंदरि संगहि लग्गिअ, मारु विराध कवंध तहा हणु।

[1] आह्वान, ललकार

हस्ती-यूथा सज्जा हुआ पायें भूमी कपंता,
"लेही देही छाडो ओडो" सर्वा शूरा जल्पंता ॥१५७॥
भट्ट योधा सज्ज होइ, गर्ज वज्ज तत्क्षणा।
रोष-रक्त सर्वगात्र हाँक दीजें भीषणा।
धाइ आइ खड्ग पाइ दानवा चलंतआ।
वीरपाद नागराज कंप भूतल'न्तगा ॥१५६॥
चलंत योध मत्त क्रोध रन्न-कर्म आगरा।
कृपाण-वाण-शल्य-भल्ल-चाप-चक्र-मुग्दरा ॥
प्रहार-वार-धीर-वीर-वर्ग-मांझ-पंडिता।
प्रदष्ट-ओष्ट-कांत-दंत तेन मेनों मडिता ॥१६६॥
उन्मत्ता योद्धा उट्ठे क्रोधा उट्ठा-उट्ठी जुज्झंता,
मेनका-रम्भा-नाथं दम्भा अप्पा-अप्पी बुज्झंता।
धावंता शल्या छिन्ना कंठा मत्था पीठी पड्डंता,
जनु स्वर्गा-मार्गा जाये अग्गा-लुब्धा उर्ध्व हेरंता ॥१७५॥

२—देव-स्तुति

(१) दशावतार

जेहिं वेद धरिज्जै महितल लिज्जै, पीठहि दंतहि ठावें धरा।
रिपु-वक्ष विदारे छल-तनु धारे, वंधिय शत्रु स्वराज्य हरा॥
कुल-क्षत्रिय तापे दशमुख कप्पे[1], कंशय केशि विनाश करा।
करुणा प्रकटे म्लेच्छहें विदले, सो देउ नरायण तुम्ह वरा ॥२०७॥

(२) राम-स्तुति

वापह उक्ति शिरे जिनि लिज्जिउ। त्यागिय राज्य वनत चलेविऊ।
सोदर सुंदरि संगहि लग्गिय। मार विराध कवंध तथा हन ॥

---

[1] काटा

मारुइ मिल्लिअ वालि विहंडिअ, रज्ज सुगीवह दिज्ज अकंटअ ।
बंधु समुद्द विणासिअ रावण, सो तुअ राहव दिज्जउ णिब्भअ ॥२११॥ (५७६)

(३) कृष्ण

अरे रे वाहहि काण्ह णाव छोडि, डगमग कुगति ण देहि ।
तइ इत्थि णइहि संतार देइ, जो चाहहि सो लेहि ॥६॥
जिणि कंस विणासिअ कित्ति पआसिअ, मुट्ठि-अरिट्ठि विणास करे, गिरि हत्थ धरे ।
जमलज्जुण भंजिअ पअभर गंजिअ, कालिअ-कुल संहार करे, जस भुअण भरे ।
चाणूर विहंडिअ णिअ-कुल मंडिअ, राहा-मुह महु-पाण करे, जिमि भमर वरे ।
सो तुम्ह णराअण विप्प-पराअण, चित्तह चिंतिअ देउ वरा भअ-भीअ-हरा ॥२०७॥
भुवण-अणंदो तिहुअण कंदो । भमरसवण्णो स जअइ कण्हो ॥४६॥
परिणअ ससिहर-वअणं, विमल-कमल-दल-णअणं ।
विहिअ-असुर-कुल-दलणं, पणमह सिरि-महुमहणं ॥१०६॥[1]

(४) शंकर-स्तुति

जा अद्धंगे पव्वई, सीसे गंगा जासु ।
जो लोआणं वल्लहो, वंदे पाअं तासु ॥८२॥ (१४३)
जसु सीसहि गंगा गोरि अधंगा, गिव पहिरिअ फणि-हारा ।
कंठ-ट्ठिअ वीसा पिंधण दीसा, संतारिअ संसारा ।
किरणावलि कंदा वंदिअ चंदा, णअणहि अणल फुरंता ।
सो संपअ दिज्जउ बहु सुह किज्जउ, तुम्ह भवाणी-कंता ॥६८॥ (१६६)
रण दक्ख दक्ख हणु जिण्णु कुसुम-धणु, अंधअगंध विणास करु ।
सो रक्खउ संकरु असुर-भअंकरु, गिरि-णाअरि अद्धंग-धरु ॥१०१॥ (१७२)
जो वंदिअ सिरगंग हणिअ अणंग, अद्धंगहि परिकर धरणु ।
सो जोइ-जण-मित्त हरउ दुरित्त, संकाहरु संकर चरणु ॥१०४॥ (१७६)

---

[1] पृष्ठ १२, ३३४, ३६५, ४२१

मारुति मेंल्लिय बालि विघट्टिय, राज सुग्रीवहिं दिज्ज अकंटक ।
बंध समुद्र विनाशिय रावण, मो तोंहुँ राघव दिज्जिउ निर्भय ॥२११॥

(३) कृष्ण

अरे रे चालहि कान्ह नाव, छोटि डगमग कुगति न देहि ।
तै एहि नदिहि संतार देइ, जो चाहि सो लेहि ॥६॥
जिन कंस विनाशिय कीर्त्ति प्रकाशिय, मुष्टि अरिष्ट विनाश करे, गिरि हाथ धरे ।
यमलार्जुन भंजिय पदभर गंजिय, कालिय-कुल-संहार करे, यश भुवन भरे ।
चाणूर विखंडिय निज-कुल मंडिय, राधामुख मधु-पान करे, जिमि भ्रमरवरे ।
सो तुम्ह नरायण, विप्र-परायण, चित्ते चिंतित देहु वरे, भय-भीति-हरे ॥२०७॥
भुवन-अनंदा त्रिभुवन कंदा । भ्रमर-सवर्णा स जयतु कृष्णा ॥४६॥
परिणत-शशिधर-वदनं, विमल-कमल-दल-नयनं ।
विहित-असुरकुल-दलनं, प्रणमहु श्री मधुमथनं ॥१०॥

(४) शंकर-स्तुति

जेंहि अर्धंगे पार्वती, शीशे गंगा जासु ।
जो लोकन कर वल्लभ, वंदे पादहँ तासु ॥८२॥
जसु सीसहिं गंगा गौरि अधंगा, ग्रिव पहिरिय फणिहारा,
कंठे ठिय वीषा पहिरन दीशा, संतारिय मंसारा ।
किरणावलि कंदा वंदिय चंदा, नयनहिं अनल फुरंता,
सो संपति दिज्जउ बहु-सुख किज्जउ, तुम्ह भवानी कंता ॥६८॥
रण-दक्ष दक्ष [१]हनु, जित्तु कुसुमधनु अन्ध क-अंध विनाश करो ।
सो रक्षउ शंकर असुर-भयंकर, गिरि-नागरि-अर्धांग-धरो ॥१०१॥
जो वंदिय शिर गंग हनिय अनंग, अर्धंगहि परिकर धरणू ।
सो योंगि-जन-मित्र हरहु दुरित्त, शंकाहर शंकर-चरणू ॥१०४॥

---

[१] मारा

जसु कर फणिवइ-वलग्र तरुणिवर तणुमहँ विलसइ,
णग्रण ग्रणल गल गरल विमल ससहर सिर णिवसइ।
सुरसरि सिर महँ रहइ सग्रल जण-दुरित-दमण कर,
हसि ससिहर हरउ दुरित, वितरह अतुल अभग्रवर ॥१११॥ (१६०)
जाग्रा जा अद्धंग सीस गंगा लोलंती, सव्वासा पूरंति सव्व-दुक्खा तोलती।
णाग्रा राग्रा हार दीस वासा भासंता, वेग्राला जा संग णट्ठ दुट्ठा णासंता।
णाचंता कंता उच्छवे ताले भूमी कंपले,
जा दिट्ठे मोक्खा पाविज्जे, सो तुम्हाणं सुक्ख दे ॥११६॥ (२०७)
सिर किज्जिग्र गंगं गोरि अधंगं, हणिग्र ग्रणंगे पुर-दहणं।
किग्र फणवइ हारं तिहुग्रण सारं, वंदिग्र छारं रिउ-महणं।
सुर सेविग्र चरण मुणिगण सरणं, भव-भग्र-हरणं सूलधरं।
साणंदिग्र वग्रणं सुंदर-णग्रण गिरिवर-सग्रणं णमह हरं ॥१६५॥ (३१३)
जसु मित्त धणेसा ससुर गिरीसा, तहविहु पिंधण[1] दीस।
जह अमियह कंदा णिग्रलहि चंदा, तह विह भोग्रण वीस।
जइ कणग्र-सुरंगा गोरि अधंगा, तहविहु डाकिणि संग।
जो जसुहि दिग्रावा देव सहावा, कवहु ण हो तसु भंग ॥२०६॥ (३३८)
गवरिग्र-कंता अभिणउ संता। जइ परसण्णा दिग्र महि धण्णा ॥४८॥ (३६५)
पिंग-जटावलि-ठापिग्र गंगा, धारिग्र णाग्ररि जेण अधंगा।
चंदकला जसु सीसहि णोक्खा, सो तुह संकर दिज्जउ मोक्खा ॥१०५॥ (४१७)
वालो कुमारो स छमुडधारी, उप्पाउ-हीणा हउँ एक्क णारी।
अहंणिसं खाहि विसं भिखारी, गई भवित्ती किल का हमारी ॥१२०॥
तुग्र देव दुरित्त गणा हरणा चरणा, जइ पावउ चंदकलाभरणा सरणा।
परि पूजउ तेज्जिग्र लोभमणा भवणा, सुख दे मह सोक विणास मणा समणा ॥१५५॥
पहु दिज्जिग्र वज्जग्र सिज्जिग्र टोप्पर, कंकण वाहु किरीट सिर।
पइ कण्णहिं कुंडल णं रइमंडल, ठाविग्र हार फुरंत उरे।

[1] परिधान, पहिरन

जसु कर फणिपति वलय, तरुणि-वर तनुमहँ विलसइ,
नयन अनल गल गरल विमल शशधर शिर निवसइ।
सुरसरि शिरमँह रहै सकल-जन-दुरित-दमनकर,
हसि शशिधरः हरहु दुरित, वितरहु अतुल अभय वर ॥१११॥
जाया अर्धांग शीशे गंगा लोलंती, सर्वांगा पूरंति सर्व दुक्खा तोडंती।
नागा-राजा हार दिशा वासा भासंता, वेताला जा संग नष्ट दुष्टा नाशंता।
नाचंता कंता उत्सवे ताले भूमी कंपरे।
जा देखे मोक्षा पाइज्जा, सो तुम्हा कहँ सुक्ख दे ॥११६॥
शिर किज्जिय गंगं गोरि अधंगं, हनिय अनंगं पुर-दहनं।
किय फणिपति हारं त्रिभुवन सारं, वंदिय छारं रिपु-मथनं।
सुर-सेवित-चरणं मुनिगण-सरणं भवभय-हरणं शूलधरं।
सानंदित वदनं सुंदर-नयनं, गिरिवर-शयनं नमहु हरं ॥१६५॥
जसु मित्र धनेशा ससुर गिरीशा, तेहि विध पेन्हन दीश।
जिमि अमृतह कंदा नियरइ चंदा, तेहि विध भोजन वीष॥
यदि कनक-सुरंगा गौरि अधंगा, तेहि विध डाकिनि संग।
जो यशह दियावा देव स्वभावा, कबहु न हो तसु भंग ॥२०६॥
गौरिय कंता अभिनव शाता यदि परसन्न देँहुँ मोँहि धन्ना ॥४८॥
पिंग-जटावलि थापिय गंगा, धारिय नागरि जिनि अर्धंगा।
चंद्रकला जसु शीशहि नोखा, सो तेहिँ शंकर दिज्जउ मोक्षा ॥१०५॥
वालो कुमारो स छ-मुंड-धारी, उत्पाद-हीना हौँ एक नारी।
अहर्निशा खाइ विषं भिखारी, गती हुवैया फुर का हमारी ॥१२०॥
तव देव ! दुरित्त-गणा-हरणा-चरणा, यदि पावउँ चंद्र कला-भरणा-शरणा।
परिपूजउँ त्यागिय लोभमना भवना, सुख दे मोँहि शोक-विनाश मनः शमना ॥१५५॥
प्रभु ! दीजिय वज्रहिं सृज्जिय टोप्पर[1] कंकण वाहु किरीट शिरे,
प्रति कर्णहिं कुंडल जनु-रवि मंडल, थापिय हार फुरंत उरे।

---

[1] शिरस्त्राण

गुलि मुद्दरि हीरहि सुंदरि, कंचण रज्जु सुमझ्झ तणू ।

तसु तूणउ सुंदर किज्जिअ मंदर, ठावह वाणह सेस धणू ॥२०६॥

जअइ जअइ हर वलहअ विसहर तिलइअ सुंदर चंद मुणि आणंदं जणकंदं ।

वसह-गमणकर तिसुल-डमरु-धर, णअणहि डाहु अणंगं सिर गंगं गोरि अधंगं ।

जअइ जअइ हरि भुअजुअ धरु गिरि, दहमुह कंस विणासा पिअवासा सुंदर हासा ।

वलि छलि महि हरु असुर विलयकरु, मुणिजणमाणसहंसा पिअ सुहभासा उत्तमवंसा ॥२१५॥[1]

३—कविका संदेश

सन्तोष-और निराशा-वाद

सेर एक्क जइ पावउ धित्ता । मंडा वीस पकावउ णित्ता ।

टंकु एक्क जउ सेंधव पाआ । जो हउ रंको सो हउ राआ ॥१३०॥ (२२४)

राआ लुद्ध समाज खल, वहु कलहारिणि सेवक धुत्तउ ।

जीवण चाहसि सुक्ख जइ, परिहर घर जइ बहुगुण-जुत्तउ ॥१६६॥ (२७७)

पंडव-वंसहि जम्म धरीजे । संपअ अज्जिअ धम्मक दिज्जै ।

सोउ जुहुट्ठिर संकट पावा । देवक लेक्खिल केण मेटावा ॥१०१॥ (४१२)

सो जण जणमउ सो गुण-मंतउ । जो कर पर-उवआर हसंतउ ।

जे पुण पर-उपआर विरुझ्झउ, ताक जणणि किण थक्कउ वंझउ ॥१४६॥ (४७०)

§४३: हरिब्रह्म

काल—तेरहवीं सदीका उत्तरार्ध (चंडेश्वर-मंत्रीका काल)[2]। देश—विहार

१—मंत्री (चंडेश्वर)-प्रशंसा

जहा सरअ-ससि-विंब, जहा हर-हार-हंस ठिअ,

जहा फुल्ल सिअ कमल, जहा सिरि-खंड खंड किअ ।

---

[1] पृष्ठ ४३५, ४८०, ५७३, ५८६

[2] चंडेश्वर मिथिला-नेपाल के राजा हरिसिंह (१३१४-२५) के मंत्री थे, जिन्होंने "कृत्यरत्नाकर", "कृत्य-चिन्तामणि", "दानरत्नाकर" आदि ग्रंथ लिखे ।

अजउ भनेँउ कर सखी विमर्षि । अछै भलो वर नेमिह-पास ।
"पुनि सखि । मोदक यदि ना होंति । छुधितेँ सोँ हारी किन रुच्चंति ।।२४।।
"मनह पास यदि जल्दी होइ । नेमिहिँ पास तेँतनउ ना कोइ ।
यदि सखि ! वरौं त श्यामल-धीर । घन विनु पियै कि चातक नीर" ।।२५।।
चैत्र मास वनसपती अँकुरै । वन-वन कोयल टहका करै ।
पंच-वान केँर धनुष धरेवि । वेधै लक्षिय राजल-देवि ।।२६।।
"जोँउ सखि ! मातेँउ मास वसंत । इमि खेलीजै यदि होँइ कंत ।
रमियै नव नव कर शृंगार । लीजै जीवित यौवन-सार" ।।२७।।
"सुनु सखि ! मानेँहु मम परिणयन । ना ऊपर ठिय वाधव-वयन ।
यदि प्रतिपन्ना चूकै नेमि । जीवित यौवन ज्वलनेँ जलेमि ।।२८।।
बैशाखह विहसिय वनराजि । मदनमित्र मलयानिल वाइ ।
फुट्टिय हियरा माँझ वसंत । विलपै **राजल** पेखिय कंत ।।२९।।
सखी दुःख बीसरिबा भनई । "सुनु सुनु भ्रमरउ का रुनझुनई ।
"दिवस पंच थिर यौवन होइ । खाहु पियहु विलसहु सब कोइ" ।।३०।।
रमण प्रशंसिय राजल-कन्य । "जाहि कंत वशेँ ते पर धन्य ।
जसु पिय न करै किछुउ पुछारी । सो हौँ एकइ फूट-लिलारी" ।।३१।।
जेठ विरह तप्पै जिमि सूर । घन-वियोगेँ सुखियो नदि-पूर ।
पेखेँउ फुल्लिय चंपक-बेल्लि । राजल मूर्छी नेह-गहिल्लि ।।३२।।
"मूर्छी रानी हा सखि ! धाव ! पडियउ खंडह जेवड़ घाव ।"
हरि मूर्छा चंदन पवनेहिँ । सखि आश्वासै प्रिय-वचनेंहिँ ।।३३।।
भनै "देवि ! विरती-संसार । परिख परिख मैं जानेँउ सार ।
निज प्रपन्नउ[१] प्रभु सम्हारि[२] । मोँहि लइ साथे गढ गिरनार ।।३४।।
आषाढ़ह दृढ हियइँ करेबि । गर्ज विज्जु सब श्रवगण नेवि ।
भनै वचन उगसेनहँ जाय । करिसि धर्म सेविसि प्रिय-पाय ।।३४।।
"मिलिउ सखी !" राजल प्रभनंति । चना जेम न मिरिच्च खाचंति ।
एकली अच्छ[३] सखि ! झँख मन आल[४] । तप-दोहिल्लउ[५] तूँ सुकुमार ।।३५।।
—नेमि-चौपाई (पृ० ९-१०)

---

[१] होनेवाला पति [२] याद करके [३] हूँ [४] मिथ्या [५] दुर्लभ

§ ३९. चन्दबरदाई

चंदबरदाई। काल—१२०० ई०। देश—लाहौर-दिल्ली। कुल—भाट। कृति—पृथिवीराज-रासो[1]

१—हिमालय-वर्णन

सकल भूमि कौ भेद राज जानै ए भग्गै।
अति सु-विकट बन-जूह चढ़ै संग्राम न होई॥
अश्व-पाय गज-पाय चढन किहि ठौर न कोई।
बनविकट जूह परबत गुहा बरबेहर बंकम बिषम॥
दारु भयानक अति सरल बर प्रस्तर जल नहिं सुषम।
झरै झरनि झोरं-सु आघात सोरं जिने सद्द या सद्द ता अंग मोरं
हयं तज्जि राज चलै हत्थ डोरं इथं इक्क पच्छौ बियं जन जोरं।
बजै सद्द-सद्दं परच्छंद उट्ठै सुनै ऋंन सोरं सुधीरज्ज छुट्टै
इकं होइ राजं पथं सन्त रूंधै दिये हत्थ तारी तिनं को न बूधै।

२—सामन्त-समाज

(१) राजा बीसलदेवकी प्रशंसा

धर्माधिराज रति जोग भोग षट षुंट णिक्ति षग्गह सु-भोग
जग दुष्ष बीर बीसल नरिंद महापाप रत द्रव्यान अंध

---

[1] वर्तमान रूप १६वीं सदीसे पहिलेका नहीं है।

ऋत अक्रित काम क्रितह सु कीन जिन असुर घोर षनि द्रव्य लीन
संसार थागि पुनि द्रव्य काज उपजाई मति अजमेर राज
कोडी सु मोल गज कियौ एक लीयो न किनह किरि महर नेक
कामंध अंध सुज्झ्यो न काल हक अहक जोरि गिरि इक्क भाल
चलल्यौ न राज नीतिह प्रमान आनीत बंधि नृप थान थान
सुज्झ्यौ न ध्रम्म चलल्यौ प्रमान मृकजो निगम्म करि अगम-मान
अब लोह छोह छांडिय सु-किति मुक्कयो ध्रंम आध्रम जिति
दरवार अतिथि दीसै न कोइ अप्प-सुह किति संभरै लोइ
चौसठि बरस बर राज कीन पायौ न पुण वर सुयष हीन
—पृथ्वी०रासो—पृ० ७८-७९

आनन्द अग्ग पर इन्द्र सम ध्रंम्म नंद जस उव्वरै ।
अजमेर नयर अरिजेर कारि विमल राज बीसल करै ॥
वर पट्टन अट्टन अमित समित वेद फुनि राज ।
समय अंत बीसल सिरह धर्यौं छत्र सम साज ॥
—पृ० रा०—पृ० ९१

(२) शृंगार-रस

रतिराज रु जोवन राजत जोर, चॅप्यो सिसिरं उर सैसव-कोर ।
उनी मधि मङखि मधू धुनि होइ, तिन उपमा बरनी कवि कोइ ।
मुनी बर आगम जुव्वन बैन, नव्यो कवहू न सुउद्दिय मैन ।
कबहूँ ढुरि श्रंन न पुच्छत नैन, कहो किन अव्व ढुरी ढुरि वैन ।

ससि रोरन सैसव दुंदुभि बज्जि, उथै रतिराज सजोवन सज्जि ।
कही बर श्रोन सुरंगिय रज्जि, भये नर दोउ बनंबन भज्जि ।
इय मीन नलीन भये रत रज्जि,
भय विभ्रम भाइ परी नहि नंजि ।
सुनि प्रथम बालिय रूप, बरबाल लच्छिन रूप ।
अहिसंधि सैसव-याल, अजु अरक राका हाल ।
सैसव सुसूर समान, वयचंद चढ़न प्रमान ।
सैसब्ब जोबन एल, ज्यों पंथ पंथी मेल ।
परि भौंह भवर प्रमान, वै बुद्धि अच्छरि आन ।
द्रिग स्याम सेत सुभाग, सावक्क मृग छुटि वाग ।
बिय दृगन ओपम कोउ, सिसभ्रंग षंजन होउ ।
बरबरन नासिक राज, मनि जोति दीपक लाज ।
गतिसिषां पतंग नसाव, ओपंम दे कवि आव ।
नासिक्क दीपन साल, झँप दल षंजन-बाल ।
बिय बरल जोवन सेव, ज्यों दंपती हथलेव ॥
वैसंधि संधिय चिंद, ज्यों मत्त जुरहि गुविंद ।
तुछ रोमराज विसाल, मनो अग्गि उग्गिय बाल ।
कुच तुच्छ तुच्छ समूर, मनों कामफल-अंकूर ।
बयरूप ओपम एह, जा जनक नृप कर देह ।
बर छिन्न थक्कत तेह, मनों काम द्रप्पन देह ।
वै संधि कविवर बंध, ज्यों वृद्ध बाल विबंध ।
वै संधि संधि प्रामन, ज्यों सूर ग्रहन प्रमान ।

वै राह ससि गिलि सूर, नव ग्रह (प्र)मत्त करूर।
बरवाल वै सधि एह, सिक्कार काम करेह।

लसकरे लसलसि छंडि, चितरंक दीन ममंडि।
कर्‌यो सुह्लांन कामिनी, दिपंत मेघ दामिनी।

सिंगार षोडसं करे, सुहस्त दर्पनं धरे।
वसन्न वासि वासनं, तिलक्क भाल भासनं।

दुनैन अैन अंजए, चलं चलंत षंजए।
सुहंत श्रोन कुंडलं, ससी रवी कि मंडलं।

सुमुत्ति नास सोभई, दसंन दुत्ति लोभई।
अनेक जाति जालितं, धरंत पुप्फ मालितं।

झँकार हार नोपुरं, घमंकि घुघरं धुरं।
विलेपि लेपचंदनं, कसी सु कंचुकी घनं।

सुछुद्र घंटि घंटिका, तमोल आय अटिका।
कनक्क नग्ग कंकनं, जरे जराइ अंकनं।

बिसाल बानि चातुरी, दिषंन रंभ आतुरी।
अनेक दुत्ति अंगकी, कहंत जीभ भंगकी।

निसि थट्टिय-फट्टिय तिमिर, दिसि रत्ती धवलाइ।
सैसव में जुव्वन कछ, तुच्छ तुच्छ दरसाइ।

दक्षिन वृत्त सुनाभि, तुंग नासा गजगमनी।
सासनि गंध रुषं जु चारु, कुटिल केस रतिरमनी।

बरजंघन मृदुपधु सुरंग, कुरंग लज्जे छविहीनं।

(३) युद्ध

(क) वीर-रस

हत्थे हत्थ सुज्झै न, मेघ डंभरि मडि रज्जी ।
निसि निसीथ अंतरो, भान उत्तरि सथ सज्जी ॥
बिज्ज वीर झलकंत, पवन पच्छिम दिसि बज्जै ।
मोर सोर पप्पीह, अवनि सक्लि घन गज्जै ॥
बंटी जु सिलह निसि सत्तमिलि, सधिय पंग दरबार दिसि ।
चामंडराय दाहर ननै, लरन लोह कड्ढे तिरसि ॥
पच्छैं भौं संग्राम, अग्ग अपछर बिच्यारिय ।
पुछै रंभ मेनिका, अज्ज चित्त किमि भारिय ॥
तब उत्तर दिय फेरि, अज्ज पहुनाई आइय ।
रथ्थ बैठिऔ थान, सोझ तह कंज न पाइय ॥
भर सुभर परे भारत्थभिरि, ठाम ठाम चुप जीत संधि ।
उथकीय पंथ हल्लै चल्यो, सुथिर सभौ देखिय नभ ॥

(ख) रण-यात्रा

ढलकत ढाल तरवर प्रमान, हलके हलंत गज नग-समान ।
अपसकुन सकुन चितहि न चित्त, निरिमान वन्त गुन धरत तत्त ।
कदवति सलिल जहाँ सलिलपंक, चितचित्त डवंक जे करे कंक ।
चल्ले नरिंद अरि पुब्ब गाव, भुमिया ससंक सब लगत पाव ।
गढ़ घेरि पंग किअ अप्रमान, मानों कि मेरि पारस्स भान ।

पंगह सुबीर गढ़ करि गिग्ह, जनु सर्वरि परस चदा सरह ।
गोरी नरिंद हय-गय-सुभर, सजि आयौ उप्पर सुअय ।
चैत मास रवि तीज, मेन पष्षह कल चदह ।
भयौ सुदिन मध्यान, चढचो प्रथिराज नरिंदह ॥
कटक सवर हिल्लोर, भार सेसह करि भग्गिय ।
चढि सामंत सकज्ज, नद्द सुर अमर जग्गिय ॥
गज रोर मोर वधे घटा, मिलह बीज सिल कावलिय ।
पप्पीह चीह सह नाइ सुर, नदि घग्घर मैलान दिय ॥

(ग) युद्ध-वर्णन

पंग जग षुलं । कूह मच्ची हुलं ॥ सार तुट्टे पलं । षग्ग मच्चे षलं ॥
हाल हालाहल । मोव्व वित्थौ तलं ॥ गिद्ध कोलाहल । अंत दंती रुलं ॥
उद्ध पीयं छलं । चर्म अग्नि तलं ॥ वीर निद्धी चल । सिद्ध ठट्टे रुलं ॥
संभु मालं गलं । ब्रम्ह चिता चल ॥ भूत वित्ता तलं । पत्थ पारथ्थलं ॥
देव देवानलं । फट्टि फारक्कलं ॥ घाय बज्जे घल । सूर घुम्मै रुलं ॥
तार चौसट्ठिल । बाइ भूतं तलं ॥ रीति पच्छी षिलं । तार आयासनं ॥
सूर उग्यौ ननं । कोट चड्ढे फन ॥
जहाँ उत्तरचो साहि चिन्हाव मीर । तहाँ नेज गडचो ढढुक्के पुँडीरं ॥
करी आन साहाब सावधि गोरी । धकी धींग धिग धकावै सजोरी ॥
दोंऊ दीन दीनं कढ़ी बकि अस्सि । किधौं मेघमे वीजु कोटि निकस्सि ॥
किए सिग्घर कोरता मेल अग्गी । किधौं बद्दर कोर नागिं न नग्गी ॥
हबक्के जु मेच्छं भ्रमंतं ज छुट्टै । मनो घेरनी घुम्मि पारेव तुट्टै ॥
उरं फुट्टि बरछी बरं छब्बि नासी । मनो जालमें मीन अद्धी निकासी ॥

लटक्के जुरं नं उडै हंस हल्लै । रसं भीजि सूरं चवग्गान षिल्लै ॥
लगे सीस नजा भ्रमें भेजि तथ्थें । भषे बाइसं भात दीपत्ति सथ्थें ॥
करै मार मारं महाबीर धीरं । भए मेघधारा बरष्षंत तीरं ॥
परे पंच पुंडीर सा चंद कढ्यौ । तबै साहि गोरी स चन्हाव चढ्यौ ॥
घर धरकि धाहर करबि काइर रसमिसू रस कूरयं ॥
गजघंट घनकिय, रुद्र भनकिय, षनकि संकर उद्दयो ।
रननंकि भेरिय कन्ह हेरिय, दंति दान धनंदयौ ॥
वरं बंबरं चोरं माही ति साई । हले छत्र पोतं बले थार घाई ॥
बुले सूर दूक्के दहक्के पचारं । घले वथ्थ दोऊ धरं जा अषारं ॥
उतंमंग तुट्टै परै श्रोन धारी । मनो दण्ड सुक्की अगीवाइ वारी ॥
नचै कंधबंधं दकै सीस भारी । तहाँ जोग-माया जकी सो बिचारी ॥
सोलंकी माधव नरिंद, षान षिलजी मुख लग्गा ।
सबर बीररस वीर, बीर बीरा रस पग्गा ॥
दुअन वुड्व जुध तेग, दुहुँ हत्थन उब्भारिय ।
तेग तुट्टि चालुक्क, बथ्थ परिकड्ढि कटारिय ॥
लइ बग्ग कैमास वीरं अमानं । धमंके धरा गोम गण्णे गुमानं ॥
उतें उप्परी बाग तत्तार षानं । मिले हिंदु मीरं दोऊ दीन मानं ॥
बजे राज सिंधू सु मारूअ बज्जै । गजे सूर सूरं असूरं सुभज्जै ॥
चढे व्योम विम्मान देषंत देवं । बढ़े स्वामि-कज्जै सुसज्जै उभेवं ॥
छुटे नाल गोला हवाई उछंगं । नछत्रं मनों जानि तुट्टे निहंगं ॥
करष्षै चलै बान बानं कमानं । भई अंध-धुंधं न सुज्झै सु भानं ॥
मिले सेल भेलं समेलं अपारं । सनाहं फटै हीय होवंत पारं ॥
मदं मत्त दंतं उषारै मसंदं । मनो मिल्लिया पब्ब उष्षालि कंदं ।

मचै हूक हूकं वहै सार-धारं। चमक्कें चमक्कें करारं करारं ॥
भभक्कै भभक्कै वहै रत्तधारं। सनक्कै सनक्कै वहै वान-भारं ॥
हबक्कै हबक्कै वहै सेल भेलं। कुकें कूक फूटी सुरत्तांन ढालं ॥
वकी जोगमाया सुरं अप्पथानं। बहै चट्ट-पट्टं उघट्टं उलट्टं ॥
कुलट्ठा धरै अप्प-अप्पं उहट्ठं। दडक्कं वजै सेन सेना सुघट्टं ॥

(घ) युद्धमें छल

छल तक्यौ श्रीरांम, सेत साइर तव बंध्यौ।
छल तक्यौ सुग्रीव, बालिजिउ ताउह संध्यौ ॥
छल तक्यो लछिमना, सूरमंडल अलि बेध्यौ।
छल तक्यो नरसिंध, अग्गकंस नष उर छेद्यौ ॥
छलबल करंत दूपन न कोइ, किस्न कलह कंसह करिय।
सोमेस राज तकि अप्प विधि, रत्तिवाह छलमन धरिय ॥

३–कविका संदेश

(भाग्यवाद)

नर करनी कछु और, करै करता कछू औरै।
अनचिंतन करै ईस, जीय सुनर औरै दौरै ॥
रचे रचन नर कोरि, जोरि जम पाइ बस्त सह।
छिनक मध्य हरि हरै, केलि किरतव्य क्रम्मइह ॥
प्रथिराज गमन देवास दिसि, ब्याह विनोद सुमंडिजिय।
अनचिंति जग्गि गज्जन बलिय, आनि उतंग सु कंक किय ॥
जु कछू लिष्यो लिलाट, सुष्ष अरु दुःष समंतह।
धन विद्या सुन्दरी, अंग आधार अनंतह ॥
कलप कोटि टरि जाहिँ, मिटै न न घटै प्रमानह।
जतन जोर जो करै, रंच न न मिटै बिनानह ॥

तेरहवीं सदी

§४०: लक्खण

काल—१२५७ ई०। देश—रायवड्डिय (रायभा, आगरा) कुल—वैश्य,

१—आत्म-परिचय

(१) काव्य-महिमा

तं मुणेंवि भणिउ साहुल-सुएण। जिण-चरणच्चण-पसरिय-भुएण ॥
भो [1]लब-कंचु कुल-कमल-सूर। कुलमाणव चित्तासा पऊर ॥
घत्ता। तुहुँ कइ-यण-मण-रजणु पाव-विहजणु गुणु-गण-मणि-रयणायरऊ।
उच्छट्ठि अवट्ठिउ सुणयो मट्ठिउ(?)णिहिल-कला-मलणायरऊ ॥
तुहुं धण्णु जासु एरिसिउ चित्तु, तिपयत्थ रसुज्जलु मइ पवित्तु।
सयणासण तंबेरम तुरंग, धयछत्त चमर बालावरंग ॥
धण-कण-कचण घण-दविण-कोस, जपाण जाण भूसण सँतोस।
घरपुर णयरायर देस-गाम, पट्टोलंबर पट्टण समाण ॥
संसार-सारु पयवत्थु भावु, जंज दीसइ णाणा सहाउ।
तंतं सुहेण पावियइ सव्वु, लहियइ ण कव्वु माणिक्कु भव्वु ॥

(२) आत्म-परिचय

एक्कहि दिणें सुकइ पसण्ण चित्तु, णिसि सेज्जायलें झायइ सइत्तु।
महुबोह-रयणु धडगरुय सरिसु, बुहयण-भव्वयणहं जणिय हरिसु ॥
करकंठकण्ण पहिरण असक्कु, णरहरमई तेण सजोरु थक्कु।
भइ सुकइत्तणु विज्जा विलासु, बुहयण-मुह-मंडणु साहिलासु ॥
आणद लयाहरु अमिय रोइ, णवि याणइ सूण-इण इत्थ कोवि।

---

[1] बड़े बालवाला

तेरहवीं सदी

§ ४०: लक्खण

जैन-गृहस्थ। कृति—अणुवयरयण पईब (अनुव्रत-रत्नप्रदीप)[1]

१—आत्मपरिचय

(१) काव्य-महिमा

सो सुनिय भनेंउ साहुल-सुतेहिं। जिन-चारणार्चन-प्रसरिय-भुजेहिं॥
"हे लंवकंचु-कुल-कमल-सूर। कुल मानव चित्ताशा-प्रपूर॥
घत्ता। तुहुँ कवि-मन-रंजन, पाप-विभजन, गुण-गण-मणि-रतनाकरऊ।
उच्छेदि कुवर्त्तन-सुनयउ मार्जउ, निखिल-कलामल-नागरऊ॥
तुहुँ धन्य जासु ऐसहू चित्त। त्रिपदार्थ रसोज्ज्वल मति-पवित्र॥
शयनासना स्तंवेरम तुरंग। ध्वज छत्र चमर बालावरंग॥
धन-कण-कंचन-धन द्रविण-कोश। झंपान-यान-भूषण सँतोप॥
घर पुर नगरागर देश ग्राम। पट्टोल[2]-अंबर-पट्टन समान॥
संसारसार पद-वस्तु[3] भाव। जो जो दीसै नाना स्वभाव॥
सो सो सुखेहिं पाइयै सर्व। लभियै न काव्य-माणिक्य भव्य॥

(२) आत्म-परिचय

एकै दिन सुकवि प्रसन्न चित्त। निशि शय्यातले ध्यावै स्वपित्त।
"मम बोधरतन धड[4] गरुव सरिम। बुधजन भाविकजन[5] जगिय हरष॥
करकंटकर्ण पहिरन असक्क। नरहरमति तेन सँजोर थक्क[6]।
मै सुकवित्वहँ विद्याविलास। बुधजन मुखमंडन साभिलाष॥
आनंद लताघर अमृत रोपि। ना जानै सुनै न इहाँ कोइ।

---

[1] १५१८ (१५७५ संवत्) की हस्तलिखित प्रति—अप्रकाशित
[2] रेशमी　[3] पदार्थ　[4] तन　[5] जैन-भक्त　[6] रहना

(३) कविका दीनता-प्रकाश

मइं अमुणंते अक्खर विसेसु, न मुणमि पबंधु न छद-लेसु ।
पद्धडिया बंधे सुप्पसणउ, अवगमउ अत्थु भव्वयणु तण्णु ।
हीणक्खउ मुणेंवि इयरु तत्थु, संभवउ अण्णु वज्जेंवि अणत्थु ।

२—सामन्त-समाज

(१) राजधानी-वर्णन

इह-जउणा-णइ-उत्तर-तडित्थ । मह-णयरि रायवड्डिय[1] पसत्थ ।
धण-कण-कंचण-वण-सरि-समिद्ध । वाणुण्णयकर-जण-रिद्धि-रिद्ध ॥
किम्मीर-कम्म णिम्मिय रवण्ण । सट्टल सतोरण विविह-वण्ण ।
पंडुर पायारुण्णइ समेय । जहि सहहि णिरंतर सिरिनिकेय ॥
चउहट्ट चच्चरू दाम जत्थ । मग्गण-गण-कोलाहल समत्थ ।
जहिँ विवणे विपणे घण कुप्पभंड । जहि कसिअहिँ णिच्च पिसंडि खंड ॥
णिच्चिच्च-याण-संमान-सोह । जहिँ वसहि महायण सुद्धबोह ।
ववहार चार सिरि सुद्ध लोय । विहरहिँ पसण्ण चउवण्ण लोय ॥
जहिँ कणयचूड मंडण विसेस । सिंगार-सार-कय निरवसेस ।
सोहग्ग लग्ग जिणधम्म सील । माणिणि-णिय-पइ-वय-वहण-लील ॥
जहि पण्ण पऊरिय पण्ण साल । णायर-णरेहि भूसिय विसाल ।
थिय जिण बिबुज्जल जणियसम्म । कूडग्ग धयावलि-रुद्ध-धम्म ॥
चउ सालुण्णय-तोरण-सहार । जहिँ सहहिँ सेय सोहण-विहार ।
जहिँ दविणंगण बहि पेम छित्त । लावण्ण-पुण्ण-धण लोलचित्त ॥
जहि चरउ चाउ कुसुमाल भेउ । दुज्जण सखुद्द खल पिसुण एउ ।
ण वियंभहिँ कहिमि न धणविहीण । दविणड्ढ णिहिल णर धम्मलीण ॥
पेम्माणुरत्त परिगलिय गव्व । जहिँ वसहिँ वियक्खण मणुवसव्व ।
वावार सव्व जहिँ सहहिँ णिच्च । कणयंबर भूसिय राय-भिच्च ॥
तंबोल-रंग-रंगिय धरग्ग । जहि रेहहिँ सारुण सयल मग्ग ।

---

[1] रायभा गाँव

(३) कविका दीनता-प्रकाश

मैं अवुझंता अक्षर-विशेष । न बुझौं प्रबंध न छन्दलेश ।
पद्धतिका[१] बंधैं सुप्रसन्न । अवगमैं भव्यजन अर्थ तूर्ण ॥
हीनाक्षउ जानी इतर तत्र । संभवउ अन्य वर्धेउ अनर्थ ।

२–सामन्त-समाज

(१) राजधानी-वर्णन

इहँ यमुना नदि उत्तर तटस्थ । महनगरि रायभा(है) प्रशस्त ।
धन-कण-कंचन-वन-सरि-समृद्ध । दानोन्नत कर-जन-ऋद्धि-ऋद्ध ॥
किर्मिरि[२] कर्म निर्मिय रमण्य । स'ट्टल स-त्तोरण विविधवर्ण ।
पांडुर प्राकार-उन्नति समेत । जहँ रहैं निरंतर श्रीनिकेत ॥
चौहट्ट चर्चर-ोद्दाम यत्र । माँगन-गण-कोलाहल-समर्थ ।
जहँ विपणि विपणि घन कूप्यभाड । जहँ कसियैं नित्य पिषंग-खंड ॥
निश्चित यान सम्मान सोह । जहँ वसैं महाजन शुद्ध-बोध ।
व्यवहार चारु श्री शुद्धलोक । विहरैं प्रसन्न चौवर्ण लोक ॥
जहँ कनकचूड़-मंडन विशेष । शृंगार-सार कृत-निरवशेष ।
सौभाग्य लग्न जिन-धर्मशील । मानिनि निजपति वच-वहन-शील ॥
जहँ पण्य प्रपूरिय पण्यशाल । नागर-नरेहिँ भूषित विशाल ।
ठिय जिन बिंबोज्ज्वल जनित शर्म । कूटाग्र ध्वजावलि रुद्ध धर्म ॥
चतुशालोन्नत तोरण स-हार । जहँ अहैं श्वेत शोभन विहार ।
जहँ द्रविणागन वहि[३] प्रेमक्षेत्र । लावण्यपूर्ण धन लोलचित्त ॥
जहँ चरउ चारु कुसुमाल भेत्र । दुर्जन स-क्षुद्र खलपिशुन एव ।
न विजुंभैं कतहुँ न धनविहीन । द्रविणाढ्य निखिल नर धर्मलीन ॥
प्रेमानुरक्त परिगलित-गर्व । जहँ वसैं विचक्षण मनुज सर्व ।
व्यापार सर्व जहँ सधैं नित्य । कनकांवर-भूषित राजभृत्य ॥
तांबूल रंग-रंगिय'धराग्र । जहँ राजैं सारुण सकल मग्ग ।

---

[१] चौपाई　[२] चित्रविचित्र　[३] बाहर

(२) राजा (आहवमल्ल)की प्रशंसा

तहिँ णरवइ आहवमल्ल एउ । दारिद्द समुद्दतरण-सेउ ॥
घत्ता । उव्वासिय-पर-मडलु दसिय-मंडलु, कास-कुसुम-संकास-जसु ।
छल-बल-सामत्थें णीइ णयत्थें, कवण राउ उवमियइ तसु ॥
णिय-कुल-कैरव-सिय-पयंगु । गुण-रयणाहरण-विहूसियंगु ।
अवराह-वलाहय-पलय-पयणु । मह-माग-ग्गण-पडिदिण्ण-तवणु ॥
दुव्वसण-सोस-णासण-पवीणु । किउ अखलिय-सजस मयंक सीणु ।
पंचंग-मंत-वियरण-पवीणु । . . . .
माणिणि-मण-मोहणु-मयर-केउ । णिरुवम-अविरल-गुण-मणि-णिकेउ ।
रिउ-राय-उरत्थल दिण्ण हीरु । विसमुण्णय-समरें भिडंत वीरु ॥
खग्गग्गि-डहिय-पर-चक्कवंसु । विपरीय-बोह-माया-विहंसु ।
अतुलिय-वल खल-कुल-पलयकालु । पहु-पट्टालंकिय विउल भालु ॥
सत्तंग-वज्ज-धुर दिण्णु खंधु । संमाण-दाण-पोसिय सबंधु ।
णिय-परियण-मण-मीमसण-दच्छु । परिवसिय-पयासिय-केर कच्छु ।
करवाल-पट्टि-विप्फुरिय जीहु । रिउ दंड चंड सुंडाल सीहु ।
अइ-विसम-साह-सुद्दामधामु । चउ-सायरंत-पायडिय-णामु ॥
णाणा-लक्खण-लक्खिय सरीरु । सोमुज्ज्व(ल) सामुद्दय गहीरु ।
दुप्पिच्छ-मिच्छ-रण-रंग-मल्ल । हम्मीर[1]-वीर-मण-नट्ठ-सल्ल ॥
चउहाण-वंस-तामरस-भाणु । मुणियइँ न जासु भुय-बल-पमाणु ।
चुलसीदि-खंड-विण्णाण-कोसु । छत्तीसाउह(प)यउण समोसु ॥
साहण-समुद्दु बहुरिद्धि रिद्धु । अरि-राय-विसह संफरु-पसिद्धु ।
घत्ता । खत्तिय सासणु परबल तासणु, ताण-मडल उव्वासणु ।
जस पसर पयासणु णव जल-हरसणु, दुण्णय वित्ति पवासणु ॥

---

[1] रणथम्भोरवाले

(२) राजा (आहवमल्ल)की प्रशंसा

.तहँ नरपति **आहवमल्ल** एव । दारिद्रय-समुद्रोत्तरण-सेतु ।
घत्ता । उद्वाँसित परमंडल देशित मंडल, काशकुसुम-संकाश-यशू ।
छलबल-सामर्थ्यें नीतिनयार्थें, कवन राव उपमियै तसू ।।
निज-कल-कैरव-सित-पतंग । गुण-रतनाभरण-विभूषितांग ।
अपराध वलाहक प्रलय-पवन । मथ[1]-मार्गगण प्रतिदत्त तपन ।।
दुर्व्यसन शोष-नाशन-प्रवीण । किउ अ-खलित स्वयश-मयंक सैन्य ।
पंचांग मंत्र-विचरन प्रवीण । . . . .
मानिनि मन-मोहन मकरकेतु । निरुपम अविरल गुण-मणि-निकेत ।
रिपु-राज-उरस्थले दीन हीर । विषिमोन्नत समरें भिडंत वीर ।।
खड्गाग्नि-दग्ध-पर-चक्रवंश । विपरीत बोध-माया विध्वंस ।
अतुलित-बल खलकुल-प्रलयकाल । प्रभु पट्टालंकृत विपुल भाल ।।
सप्तांग-राज्य-धुर दीनु कंध । सम्मान-दान-पोषित स्वबंधु ।
निज-परिजन-मन-मीमांस-दक्ष । परिवसिय-प्रकाशिय-केर कक्ष ।।
करवाल पट्ट विस्फुरति जीह । रिपुदंड-चड-शुंडाल-सींह ।
अतिविषम साहसोद्दाम-धाम । चतुसागरांत प्राकटित नाम ।।
नाना लक्षण-लक्षित शरीर । सोमोज्ज्वल सामुद्र'व गभीर ।
दुष्प्रेक्ष्य म्लेच्छ रणरंग-मल्ल । **हम्मीर**-वीर मन-नष्ट-शल्य ।।
चौहान-वंश-तामरस-भानु । बुझियै न जासु भुजबल-प्रमाण ।
चौसट्ठि खंड विज्ञानकोश । छत्तीसायुध प्रकटन समोष[2] ।।
साधन-समुद्र वहु-ऋद्धि-ऋद्ध । अरिराज-विषह संफर[3] प्रसिद्ध ।
घत्ता । क्षत्रिय-शासन परबल-त्राशन त्राण मँडल-उद्वासनऊ ।
यश - प्रसर - प्रकाशन नव जलधर सन, दुर्नयवृत्ति प्रवासन ।।

---

[1] मन्मथ [2] समूह [3] जहरमोहरा

(३) रानी (ईसरदे)की प्रशंसा

तहों पट्ट महाएवी पसिद्ध। ईसरदे पणयणि पणय-विद्ध।
णिहिलंतेउर मज्झएँ पहाण। णिय पइ मण-पेसण सावहाण।
सज्जण-मण-कप्प महीय साहु। कंकण केऊरंकिय सुबाहु।
छण-ससि-परिसर संपुण्ण-वयण। मुक्कमल कमलदल सरल गयण।।
आसा सिंधुर गइ गमण लील। बंदियण-मणासा दाण-सील।
परिवार भार धुरधरण सत्त। मोयइ अंतर-दल ललिय गत्त।।
छद्दंसण चित्तासा विसाम। चउ सायरंत विक्खायणाम।
अहमल्ल-राय-पय भत्तिजुत्त। अवगमिय णिहिल विण्णाणसुत्त।।
णियणंदणाहँ चिंतामणीव। णिय धवलग्गिह सरहंसिणीव।
परियाणिय-करण-विलासकज्ज। रूवेण जित्त-सुत्ताम-भज्ज।।
गंगा-तरंग कल्लोल माल। समकित्ति भरिय ककुहंतराल।
कलयंठि-कंठ कलमहुर-वाणि। गुणगरुअ रयण उप्पत्ति खाणि।
अरिराय विसह संकरहो सिट्ठ। सोहग्ग-लग्ग गोरिव्व दिट्ठ।।

(४) मंत्री (कान्हड)की प्रशंसा

अहमल्ल[१]-राय-महमंति सुद्धु। जिण-सासण-परिणइ गुणपवद्धु।
कण्हडु-कुल कइरव सेयभाणु। पहुणा समज्ज सव्वहँ पहाणु।।
गंजोल्लिय मणु लक्खणु बहूउ। सीयरिउ कव्व करणाण रूउ।
णियघरें पत्तउ वणगन्ध हत्थि। मयमत्तु फुरिय मुहरुह गभत्थि।।
वसि हुयउ स-सर दसदिसि भरंतु। मणि कोण पडिच्छइ तहों तुरंत।
सुयस्सण राउ घरइँ तवेइ। भणु कवणु दुवार कवाड देइ।।
अवमिय वयणलिणा चातुरंग। धण-कण-कंचण-संपुण्ण चंग।
घर समुह एंत पेच्छिवि सवारु। भणु कवणु बप्प झंपइ दुवारु।।

---

[१] आहवमल्ल राजा

(५) विरह-वर्णन

पिय ! हउँ रहिया सकल दिन, तव विरहाग्नि किलॉन्त ।
थोडइ जलें जिमि माछरी, तल्लोविल्ल करंत ॥
मैं जानेउँ पिय विरहियह, कोंइ धरां होइ विकाल[1] ।
नतरु मयंकउ तिमि तपै, जिमि दिनकर क्षयकाल ॥ (८६)

३—कविका संदेश

(१) जग तुच्छ

ऐसोइ भनिय तव थूलभद्र । चिंतइ तहाँ परमार्थ भद्र ।
मनुजत्वह सार त्रिवर्ग-सिद्धि । तेंहि विघ्नहेतु अधिकार-ऋद्धि ॥४७॥
जो तहाँ राज-चित्तानुकूल । आरंभ करंतह पापमूल ।
को मंत्रिहिँ उपजै विमलधर्म । जेंहिँ लब्भै शाश्वत सिद्ध-शर्म ॥४८॥
परपीड करेइय जो बहूत । ग्रहणैं निज गिरही रूप जलौक ।
नरनाहेंहिँ दीजै जोउ द्रव्य । निष्पीडिब सँग प्राणीहिँ सर्व ॥४९॥
परबशा सर्व-भय-विह्वलाह । अन्यान्य-प्रयोजन-व्याकुलाह ।
अधिकार जनहें (पुनि) काम-भोग । संभवैं विजृंभिय गुरु-प्रमोद ॥५०॥
कोशा-घर वारह वत्सरेहिँ । विषयहिँ न तृप्ति लोकोत्तरेहिँ ।
वहुराज्य-कार्य-प्रक्षिप्त-चित्त । का संप्रति होइसि मूढ-चित्त ॥५१॥
तैं जनम-मरण-कल्लोल मत्त । भवजलधि भ्रमिय मनुजत्व प्राप्त ।
परिहरिय विषय-फल तासु लेहि । का कोटी कौडिहिँ हारवेहि ॥५२॥
इमि विषय-विरक्तउ-प्रशम-प्रसक्तउ, स्थूलभद्र संविग्नमना ।
शिव-सुक्ख-कृतादर, भवभय कातर, चहै चित्तें दुश्चर-चरना ॥५७॥

× × ×

---

[1] विकारी

(२) चलु जीवउ जुव्वणु धणु सरीरु । जिम कमलदलग्ग-विलग्ग नीरु ।
अथवा इहत्थि जं किपि वत्थु । तं सव्वु अणिच्चु हहा धिरत्थ ॥
पिइ माय भाय सुकलत्तु पुत्तु । पहु परियणु मित्तु सिणेह-जुत्तु ।
पहवंतु न रक्खइ कोवि मरणु । विणु धम्मह अन्नु न अत्थि सरणु ॥
रायावि रंकु सयणो वि सत्तु । जणओ तणऊ जणणि वि कलत्तु ।
इह होइ नडव्व कुकम्मवंतु । संसार-रंगि वहुरूव्बु जंतु ॥
एक्कल्लउ पावइ जीवु जम्मु । एक्कल्लउ मरइ विढत्त-कम्मु ।
एक्कल्लउ परभवि सहइ दुक्खु । एक्कल्लउ धम्मिण लहइ मुक्खु ॥
जहँ जीवह एडवि अन्नु देहु । तहिं कि न अन्नु धणु सयणु गेहु ।
जं पुण अणन्नु तं एक्कचित्त । अज्जेसु नाणु दंसणु चरित्तु ॥
वस-मंस-रुहिर-चम्मट्ठि-बद्ध । नउ-छिड्ड-झरंत-मलावणद्ध ।
असुइ-स्सरूव-नर-थी-सरीर । सुइ वुद्धि कहवि मा कुणसु धीर ॥....
जह मंदिरि रेणु तलाइ वारि । पविसइ न किंचि ढक्किय दुवारि ।
पिहियासवि जीवि तहा न पावु । इय जिणिहि कहिउ संवरु पहाव ॥...
जहिं जम्मणु मरणु न जीवि पत्तु । तं नत्थि ठाणु [१]वालग्ग-मत्तु ॥ (३११)....

(२) इन्द्रिय मारना

नहु गम्मु अगम्मु व किपि गणइ । अब्बंभ कलुस अहिलास कुणइ ।
सकलत्ति वि हुंतइ महइवेस । पररमणि गमणि पयडइ किलेस ॥१२॥
सिसिरम्मि निवाय घरग्गिसयडि । घण-घुसिण-तेल्ल-वहुवत्थ-सवडि ।
चंदण-रस-कुसुम-जलावगाह । धारागिहि गिंभि महेइ नाइ ॥१३॥
पाउसि पय-पंक-पसंग तद्दु । वंछइ अच्छिद्द भवणयलु लद्धु ।
जइ कुणइ विविह-विसयाणुवित्ति । तेंह विहु न एहु पावेइ तित्ति ॥१४॥
एक्कवि फासिंदिउ. वुहयण निंदिउ, करइ किंपि दुच्चरिउ तिहि ।
नानाविहु जम्मिहि, पीडिओं कम्मिहि, सहसि विडंबण सामि जिह ॥१५॥

---

[१] बालकी नोकके बराबर भी

(२) चल जीवन यौवन धन शरीर। जिमि कमलदलाग्र-विलग्न नीर।
अथवा इहाँहँ जो किछुव वस्तु। सो सर्व अनित्य "हहाधिग्"अर्थ ॥
पितु माय भाय सुकलत्र पुत्र। प्रभु परिजन मित्रसिनेह-युक्त।
सक्कै ना रोकिय केहु मरन। विनु धर्महु अहै न अन्य शरण ॥
राजाउ रंक स्वजनऊ शत्रु। जनकउ तनयउ जननी कलत्र।
इह होइ नटव्य कुकर्मवन्त। संसार-रगें बहुरूप जंतु ॥
एकल्लै पावै जीव जन्म। एकल्लै मरै करीय कर्म।
एकल्लै परभवें सहै दुःख। एकल्लै धर्मेंहिं लहै मूर्ख ॥
जहँ जीवहु ईहउ अन्य देह। तहँ का न अन्य धन स्वजन गेह?
जो पुनि अनन्य सो एक चित्त। आयाहिँ ज्ञान-दर्शन-चरित्र ॥
वशाँ-मांस-रुधिर-चर्म-अस्थि-बद्ध। नौ छिद्र भरंत मलावनद्ध।
अशुचि स्वरूप नर-तिय-शरीर। शुचि बुद्धि कहव ना करसु धीर ॥. . .
जिमि मंदिरें रेणु तलायें वारि। प्रविशै न किछू ढाँके दुवारि।
ढँकि आस्रव[1] जीवें तथा न पाप। इमि जिनहिँ कहिउ संवर[2]-प्रभाव ॥
जहँ जन्म न मरण न जीव पाय। सो नाहि थान वालाग्र-मात्र ॥ (पृ० ३११)

(२) इन्द्रिय शत्रु

ना गम्य अगम्यउ किछउ गनै। अब्रह्म[3] कलुष अभिलाष करै।
सकलत्रहु होतेँउ चहै वेश। पररमणि-गमन प्रकटेँउ किलेश[4] ॥१२॥
शिशिरेंहिँ नि-वात घरेऽग्नि सिगडि। घन-घुसृण-तेल बहुवस्त्र सँपडि।
चंदन-रस-कुसुम-जलावगाह। धारागृहे[5] ग्रीष्मे चहै न्हाय ॥१३॥
पावस पदपंक प्रसंग स्तब्ध। वांछै अच्छिद्र भवनतल लब्ध।
जो करै विविध-विषयानुवृत्ति। तेँहि विनु न एहु पावही तृप्ति ॥१४॥
एकउ फरसेंद्रिय बुधजन निंदिय करै केँतक दुस्चरित तेँही।
नानाविध जन्मेंहिँ पीडिय कर्मेंहिँ सहस विडंबन स्वामि जेँही ॥

---

[1] चित्तमल [2] संयम [3] व्यभिचार [4] चित्त-मालिन्य [5] फौवारा-घर

तह भक्खाभक्ख-विवेय-मूढु । रस-विसय-गिद्धि-दोलाधिरूढु ।
अविभाविय पेयापेय वत्थु । रसणुवि कुणेइ बहुविहु अणत्थु ॥१६॥
जं हरिण-ससय-संबर-वराह । वणि संचरंत अकयावराह ।
तण-सलिल-मत्त-संतुट्ठ चित्त । मम्मर-रव-सवणुब्भंत-नेत्त ॥१७॥
हिंसंति केवि मिगया पयट्ट । पसरंत - निरंतर - तुरयघट्ट ।
कर-कलिय-कुंत-कोदंड-बाण । संसय-तुल-रोविय-नियय-पाण ॥१८॥
जं गहिरि सलिल वियरत मीण निक्करुण केवि निहणहिं निहीण । (४२६)
जं लावय-तित्तिरि-दहिय-मोर । मारेंति अदोसवि केवि घोर ॥१९॥
तं रसणह विलसिउ, दुक्कय कलुसिउ, तुम्हहँ कित्तिउ कित्तियइ ।
जं वरिस-सएणवि, अइनिउणेणवि, कहवि न जंपिउ सक्कियइ ॥२१॥[1]

(३) नरक-भय

तह नरयवासि जं परवसेण । मइँ नरयवाल-मुग्गुर-हएण ।
अवगूढु वज्ज-कंटय-सणाहु । सिबलितरु-जणिय-सरीर-बाहु ॥६८॥
कंदंतु कलुणु जं हढिण धरवि । खाविय नियमंसु भडित्तु करिवि ।
जं वेयण-विहुरिय-सव्व-गत्तु । हउँ पायउँ तडयउँ तंबु तत्तु ॥६९॥
जं पूय - रुहिर - वस - वाहिणीइ । मज्जाविउ वेयरणी - नईइ ।
जं तत्त-पुलिणि चलउव्व भुग्गु । जं सूलवेह दुहु पत्तु दुग्गु ॥७०॥ (४३२)
जं वज्ज-जलण-जालोलि-तत्त । मइँ लोहमइय महिलावसत्त ।
जं महि हिमु कुसईँ खंडु करवि । उड्डिओँ खणेण पारउव्व मिलिवि ॥७१॥
जं कुंभिपाकि पक्कओँ परद्धु । जं चंड-तुंड-पक्खीहि खद्धु ।
जं तिलु'व निपीलिउ लोहजंति । जं वसहि'व वाहिउ भरि महंति ॥७२॥
अच्छोडिओँ जं सिचउव्व सिलहिँ । करवत्ति भित्तु जं कंठ कयलहिँ ।
जं तले'उ कठल्लिहिँ पप्पड'व्व । सत्थेहि छिन्नु जं चिब्भडुव्व ॥७३॥
—कुमारपाल-प्रतिबोध[2]

---

[1] वहीँ पृष्ठ ४२७ [2] पृ० ४३३

तिमि भक्ष्या-भक्ष्य-विवेक-मूढ । रस-विषय-गृद्धि-दोलाधिरूढ ।
विनु सोचे पेयापेय वस्तु । रसनउ करेइ बहुविध अनर्थ ।।१६।।
जो हरिन-शशक-साँभर-वराह । वनें संचरंत अकृतापराध ।
तृण-सलिल-मात्र सतुष्ट चित्त । मर्मर रव-श्रवण-उद्भ्रांत-नेत्र ।।१७।।
हिंसंति केउ मृगया-प्रवृत्त । प्रसरंत निरंतर तुरग घट्ट ।
करकलित कृत कोदंड वाण । संशयतुलाँ रोपिय निजय प्राण ।।१८।।
जो गहिर-सलिल विचरंत मीन । निष्करुण केउ निहनैं निहीन ।। (४२६)
जो लावक तित्तिर दधिक मोर । मारंति अदोषउ केउ घोर ।।१९।।
सो रसनह-विलसिय दुष्कृत-कलुषित तुम्हहँ कीत्तिउ कीत्तियई ।
जो वर्ष शतेहूँ, अतिनिपुणेहूँ, कतहुँ न जल्पन शक्कियई ।।२१।। (पृ० ४२७)

(३) नरक-भय

तहँ नरकवासें जो परवशेहिँ । मैं नरकपाल-मुद्गर-हतेहिँ ।
लिपटिया वज्रकंटक-सँनाह[1] । सेमलतरु जनित शरीर-बाध ।।६८।।
क्रंदंत करुण जो हठेंहिँ धरवि । खाइय निजमांस भत्ता करवि ।
जो वेदन-विफुरिय सर्व गात्र । हौं पादेउँ तडपेंउँ ताम्र तप्त ।।६९।।
जो पूत रुधिरवश वाहिनीइ । मज्जावेंउ **बैतरणी**-नदीइ ।
जो तप्तपुलिनें चलताहु भोगु । जो शूलवेध दुख पाव दुर्ग ।।७०।। (४३२)
जो वज्र ज्वलन ज्वालालितप्त । मैं लोहमयी महिलावसक्त ।
जो महि हिम कुशाईं खंड करबी । उड्डिय क्षणेंहिँ पारउ मिलवी ।।७१।।
जो कुंभिपाके पाकेंउ परार्ध । जो चंड-तुंड-पक्षीहिँ खाद्य ।
जो तिल'व निपीडेंउ लोहयंत्रें । जो वृषभ'व वाहेंउ भरें महंत ।।७२।।
आ-छोडेंउ जो पटइव शिलहिँ । करपत्रें भिद्यउ जो कंठ तलहिँ ।
जो तलेंउँ कडाहिहिँ पापडे'व । शस्त्रेहिँ छिदेंउँ जो कक्कडि ईव ।।७३।। (४३३)

—कुमारपाल-प्रतिबोध

---

[1] कवच

§ ३७. जिनपद्म सूरि

काल—१२०० ई०। देश—गुजरात। कुल—जैन साधु।

१—ऋतु-वर्णन

पावस—

झिरिमिरि झिरिमिरि झिरिमिरि ए मेहा वरिसंति।
खलहल खलहल खलहल ए वादला वहंति।
झबझब झबझब झबझब ए वीजुलिय झक्कइ।
थरहर थरहर थरहर ए विरहिणि मणु कंपइ ॥६॥
महुर गंभीर सरेण मेह जिमि जिमि गाजंते।
पंचबाण निय-कुसुम-बाण तिम तिम साजंते।
जिम जिम केतकि महमहंत परिमल विहसावइ।
तिम तिम कामिय चरण लग्गि निय रमणि मनावइ ॥७॥
सीयल कोमल सुरहि वाय जिम जिम वायंते।
माण-मडफ्फर माणणिय तिम तिम नाचंते।
जिम जिम जलभर भरिय मेह गयणंगणि मलिया।
तिम तिम कामीतणा नयण नीरहि झलहलिया ॥८॥
भास। मेहारव भर उलटिय, जिमि जिमि नाचइ मोर।
तिम तिम माणिणि खलभलइ, साहीता जिमि चोर ॥९॥

—थूलिभद्द-फागु[1]

---

[1] पृष्ठ ३८-३९

§ ३७. जिनपद्म सूरि

कृति—थूलिभद्द-फाग।

१–ऋतु-वर्णन

पावस—

झिरझिर झिरझिर झिरझिर ए, मेघा वरसति।
खलखल खलखल खलखल ए, वादला वहंति॥
झबझब झबझब झबझब ए, वीजुली झबक्कै।
थरथर थरथर थरथर ए, विरहिनि मन कंपइ॥
मधुर गभीर स्वरें मेघ जिमि जिमि गाजंते।
पंचवाण निज-कुसुम-बाण तिमि तिमि साजंते॥
जिमि जिमि केतकि महमहंत परिमल विहसावै।
तिमि तिमि कामिय चरण लागि निज रमणि मनावै॥७॥
शीतल कोमल सुरभि वायु, जिमि जिमि वायंते।
मान-मडफ्फर[1] माननिय, तिमि तिमि नाचंते॥
जिमि जिमि जलभर भरिय, मेघ गगनांगनें मिलिया।
तिमि तिमि कामीकेर नयन, नीरहिँ झलझलिया॥८॥
भास। मेघारव भर उलसिय, जिमि जिमि नाचैं मोर।
तिमि तिमि माननि खलवलै, साहीता[2] जिमि चोर॥९॥
—थूलिभद्द-फागु (पृ० ३८-३९)

---

[1] गर्व [2] पकड़ा

२—सामन्त-समाज

(१) शृङ्गार-सजाव

अइ सिंगारु करेइ वेस मोटइ गन ऊलटि ।
रइयरगि बहुरंगि चंगि[१] चंदणरस ऊगटि ।
चंपय केतकि जाइ कुसुम सिरि पुप भरेइ ।
अति आछउ सुकुमाल चीरु पहिरणि पहिरेइ ।।१०।।
लहलह लहलह लहलह एँ उरि मोतियहारो ।
रणरण रणरण रणरणएँ पगि नेउर सारो ।
गमग गमग गमग ए कानिहि वरकुंडल ।
झलझल झलझल झलझल ए आभरणहँ मंडल ।।११।।
मयण-खग्ग जिम लहलहंत जसु वेणी दण्डो ।
सरलउ तरलउ सामलउ रोमावलि दण्डो ।
तुंग पयोहर उल्लसइ सिंगार थपक्का ।
कुसुमबाणि निय अमियकुंभ किर थापणि मुक्का ।।१२।।
भास । काजलि अंजिवि नयणजुय, सिरि संथउ फाडेई ।
बोंरियावडि कांचुलिय पुण, उरमंडलि ताडेई ।।१३।।
कन्नजुयल जसु लहलहंत किर मयण हिंडोला ।
चंचल चपल तरंग चंग जसु नयणकचोला ।
सोहइ जासु कपोल पालि जणु गालि मसूरा ।
कोमलु विमलु सुकंठ जासु वाजइ सँखतूरा ।।१४।।
लवणिम-रसभर कूवडीय जसु नाहिय रेहइ ।
मयणराइ किर विजयखंभ जसु ऊरू सोहइ ।

---

[१] अच्छा

२—सामन्त-समाज

(१) शृंगार-सजाव

अति शृंगार करेइ वेष मोटै मन ऊलटि,
रचितरंग बहुरंग चंग चंदन रस ऊबटि[१]।
चंपक-केतकि-जाति-कुसुम शिर-खोंप भरेई,
अति-आछउ सुकुमार चीर पहिरन पहिरेई ॥१०॥
लहलह लहलह लहलहए उर मोतिय हारो,
रणरण रणरण रणरणइ पग नूपुर सारो।
जगमग जगमग जगमगै कानहिँ वर-कुंडल,
झलमल झलमल झलमलै आभरणहँ मंडल ॥११॥
मदन खड्ग जिमि लहलहंत जसु वेणी-दंडो,
सरलउ तरलउ श्यामलउ रोमावलि-दंडो।
तुंग पयोधर उल्लसै शृंगार स्तवक्का,
कुसुम-वाण निज अमृतकुंभ जनु थापन रक्खा ॥१२॥
भास[२]। काजल अंजिय नयन युग, सिर सैंथौं[३] फाड़ेइ।
बोंरिपट्टी[४] कंचुकिय पुनि, उरमंडल ताड़ेइ ॥१३॥
कर्ण-युगल जसु लहलहंत जनु मदन हिंडोला,
चंचल चपल तरंग चंग जसु नयन-कचोला[५]।
सोहै जासु कपोल-पालि जनु गरल मसूरा,[६]
कोमल विमल सुकंठु जासु बाजै शँख-तूरा ॥१४॥
लवणिम रसभर कूपडीयं[७] जसु नाभिय राजै,
मदनराय कर विजय खंभ जसु ऊरू सोहै।

---

[१] उबटन [२] छन्द विशेष [३] माँग [४] लिलारी [५] कटोरा [६] फूला [७] कुईं

जसु नह-पल्लव कामदेव-अंकुसु जिम राजइ ।
रिमझिमि रिमझिमि पायकमलि घाघरिय सुवाजइ ।।१५।।
नवजोवन विलसंत देह नवनेह गहिल्ली ।
परिमल लहरिहि मदमयंत रइ-केलि पहिल्ली ।
अहरबिंब परवाल खण्ड वर-चंपावन्नी ।
नयन सलूणिय हावभाव वहुगुण संपुन्नी ।।१६।।
इय सिणगार करेवि वर, जब आवी मुणिपासि ।
जो एवा कउतिगि मिलिय, सुर-किंनर आकासि ।।१७।।
—वहीं पृ० ३९-४०

(२) हाव-भाव

नयणकडक्खिय आहणएँ वाँकड जोवन्ती ।
हावभाव सिणगार भंगि नवनविय करंती ।
तहवि न भीजइ मुणि-पवरो तउवेस बोँलावइ ।
"तवणु तुल्लु तुह देह नाह ! महतणु संतावइ ।।१०।।
बारह वरिसहँ तणउ नेहु किणि कारणि छाडिउ ।
एवडु निठुरपणउ कइ मूसिउ तुम्ही मंडिउ ।
थूलिभद्द पभणेइ वेस ! अह खेदु न कीजइ ।
लोहिहि घडियउ हियउ मज्झ तुह वयणि न थीजइ ।।१९।।
मह विलवंतिय उवरि नाह अणुराग धरीजइ ।
रिसु पावसु-कालु सयलु मूसिउ माणीजइ ।
मुणि-वइ जंपइ वेस ! सिद्धि रमणी परिणेवा ।
मणु लीणउ संजम सिरी सुं भोग रमेवा ।।२०।।
—वहीं[१]

---

[१] पृष्ठ ४०

जसु नख-पल्लव कामदेव-अंकुश जिमि राजै,
रिमझिम रिमझिम पादकमल घाघरिय सुवाजै ॥१५॥
नवयौवन विलसंत देह नवनेह-गहिल्ली,[1]
परिमल लहरेहिं मदमदंत रतिकेलि पहिल्ली।
अधरबिंब परवाल-खंड वर-चंपा-वर्णी,
नयन सलोनिय हावभाव बहुगुण-संपुर्णी ॥१६॥
इमि शृंगार करीय वर, जब आई मुनि पास।
जोयेवा कौतुक मिलेँउ, सुर-किन्नर आकास ॥१७॥
—वहीं पृ० ३९–४०

(२) हाव-भाव

नयन-कटाक्षहँ आहनई वांको जोयंती,
हाव-भाव शृंगार-भंगि नव-नविय करंती।
तवउ न वीँधै मुनि-प्रवरो तब वेश बोँलावैं,
"तपन तुल्य तुव देह नाथ ! मम तनु संतापै ॥१८॥
बारह वर्षहँ केर नेह केंहि कारण छड्डिउ,
एवड[2] निठुरपनइ का मोसे तुम मंडिउ[3]।"
थूलिभद्र प्र-भनेइ "वेश[4] ! इह खेद न कीजै,
लोहेंहिं गढियउ हृदय मोर. तुव बचन न बिंधै ॥१९॥"
"मम विलपंतिय उपर नाथ ! अनुराग धरीजै,
ऐसो पावस-काल सकल मोसो मानीजै।"
मुनिपति जल्पै "वेश ! सिद्धि-रमणी परिणेवा।
मन लीनउ संयम श्री सोँ भोग रमेवा ॥२०॥"
—थूलिभद्द-फाग पृ० ४०

---

[1] ग्रहण किये [2] इतना [3] शुरू किया [4] वेश्या

§ ३८: विनयचंद्र सूरि

काल—१२०० ई० (?)। देश—गुजरात। कुल—...जैन साधु।

विरह-वर्णन

(बारहमासा)

नेमि कुमरु सुमरवि गिरनारि। सिद्धी राजल कन्न-कुमारि।
श्रावणि सरवणि कंडुय मेहु। गज्जइ विरहिनि भिज्झइ देहु।
विज्जु झबक्कइ रक्खसि जेव। नेमिहि विणु सहि सहियइ केम ॥२॥
सखी भणइ सामिणि मन भूरि। दुज्जण-तणा म वंछिति पूरि।
गयउ नेमि तउ विणठउ काइ। अछइ अनेरा वरह सयाइ ॥३॥
बोलइ राजल तउ इहु वयणु। नत्थी नेमी सम वर-रयणु।
धरइ तेजु गहगण सविताव। गयणु न उग्गइ दिणयरु जाव ॥४॥
भाद्रवि भरिया सर पिक्खेवि। सकरुण रोअइ राजलदेवि।
हा एकलडी मइ निरधार। किम ऊवेषिसि करुणासार ॥५॥
भणइ सखी राजल मन रोइ। नीठुरु नेमि न अप्पणु होइ।
सिंचिय तरुवर पारि पलवंति। गिरिवर पुणि कड-डेरा हुंति ॥६॥
साँचउ सखि वरि गिरि भिज्जंति। किमइ न भिज्जइ सामलकंति।
धण वरिसंतइ सर फुट्टन्ति। सायरु पुण धण ओह डुलिंति ॥१७॥
आसोमासह असु-पवाह। राजल मिल्हइ विणु नमि नाह।
दहइ चंद चंदण हिम सीउ। विणु भत्तारह सउ विवरीउ ॥८॥
—चतुष्पादिका[1]

सखि नवि खीना नेमि हिरेसि। मन आपणपउ तउ खय नेसि।
जिणि दिक्खाड़िउ पहिलउ छोहु। न गणिउ अट्ठ भवंतर-नेहु ॥९॥
नेमि दयालू सखि निरदोसु। कीजइ उग्रसिण पर रोसु।
पसुय भराविउ मूकउ वाडु। मुझ प्रिय सरिसउ कियउ विहाडु ॥१०॥

---

[1] प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह

§ ३८: विनयचंद्र सूरि

कृति—नेमिनाथ-चतुष्पादिका[1]

विरह-वर्णन

(बारहमासा)

नेमि कुमर सुमिरिय गिरनार। सिद्धी **राजल** कन्य-कुमारि।
श्रावण श्रवणे कडुआ मेह। गर्जै विरहिन छीजै देह।
विज्जु झमक्कै राक्षसि जेम। नेमि बिना सखि ! सहियै केम ॥२॥
सखी भनै "स्वामिनि ! मन झूर। दुर्जन करे न वाँछित पूर।
गयेँउ नेमि तब विवशेँउ काइ। आछै अन्यहुँ वरहुँ सताइँ ॥३॥"
बोलै राजल "तव ऍहु वयन। नाही **नेमि** सम वर-रत्न।
धरै तेज ग्रह-गण सब ताउ। गगन न ऊगै दिनकर जाउ ॥४॥"
भादों भरिया सर पेखेइ। सकरुण रोवै राजल-देइ।
"हा एकलडी मै निराधार। का उद्वेजिस करुणासार ॥५॥
भनै सखी राजल मन रोइ। "नीठुर नेमि न आपन होइ।
सिंचिय तरुवर परि प्लवंति। गिरिवर पुनि करडेरा होंति ॥६॥
साँचउ सखि ! वारि गिरि भिद्यंति। काहु न भिद्यै श्यामल कांति।
घन वर्षन्ते सर फूटंति। सागर पुनि घन-ओघ डुलंति ॥७॥"
आश्विन मासहुँ आँसु-प्रवाह। राजल मेलै[2] बिन नेँमि नाहु।
दहै चद चंदन हिम शीत। विनु भर्त्तारहुँ सँगउ विपरीत ॥८॥
—**चतुष्पादिका**

"सखि ! ना क्षीणा नेमि हृदेश। मन आपनयौ तउ क्षय लेस।
जिन देखाड़ेँउ पहिलउ छेह[3]। न गणेँउ आठ भवांतर[4]-नेह ॥९॥
नेमि दयालू सखि ! निर्दोष। कीजै उग्रसेन पर रोष।
पशू भरायेँउ मूकेँउ बाड। मम प्रिय सरिसउ कियउ विगाड ॥१०॥

---

[1] **"प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह'**, G.O.S. Vol. XIII (**बड़ोदा**) 1920
[2] **छोडै** [3] **आशा-भंग** [4] **जन्मांतर**

कत्तिग क्षित्तिग उग्गइ संभ। रजमति भिज्भिऊ हुइ अनिभभ[1]।
राति दिवसु आछइ विलपंत। बलिबलि दय करि दयकरि कंत ॥११॥
नेमितणी सखि मूकि न आस। कायरु थग्गउ सो घरवास।
इमइ ईसि सनेहल नारि। जाइ कोइ छांडवि गिरिनारि ॥१२॥
कायरु किमि सखि नेमि जिणिंदु। जिमि रिणि जित्तउ लक्खु नरिंदु।
फुरइ सासु जा अग्गलि नास। ताव न भिल्लउ नेमिहिं आस ॥१३॥
मगसिरि मग्गु पलोअइ बाल। इणयरि पभणइ नयण विसाल।
जो मइ मेलइ नेमि कुमार। तसुणी वेल वहउ सवि वार ॥१४॥
एहु कयाग्रहु तउ सखि मिल्हि। करमु काइ तिणि नेमिहि हिल्लि।
मंडि चडाविउ जो किर मालि। हे हे कु करइ रोहणि कालि ॥१५॥
अठभव सेविउ सखि मइ नेमि। तासु समाहउ किम न करेमि।
अवगन्नेसइ जइ मइ सामि। लग्गी आछिसु तोइ तसु नामि ॥१५॥
पोसि रोस सवि छोडिबि नाह। राखि राखि भइ मयणह पाह।
पडइ सीउ नवि रयणि विहाइ। लंहिय छिद्द सवि दुक्ख अमाइ ॥१७॥
नेमि नेमि तू करती मुद्धि। जुव्वणु जाइ न जाणिसि सुद्धि।
पुरिस-रयण भरियउ ससारु। परणु अनेरउ कुइ भत्तारु ॥१८॥
भोली तउ सखि खरी गमारि। वारि अछंतइ नेमि कुमारि।
अन्न पुरिसु कुइ अप्पणु नडइ। गइवरु लहिउ कु रासभि चडइ ॥१६॥
माहमासि माचइ हिम रासि। देवि भणइ मइ प्रिय लइ पासि।
तइ विणु सामिय दहइ तुसारु। नवनव मारिहि मारइ मारु ॥२०॥
इहु सखि रोइसि सहू अरन्नि। हत्थि कि जामइ धरणउ कन्नि।
तउ न पती जिसि माहरि माइ। सिद्धि रमणि रत्तउ नमि जाइ ॥२१॥
कंति वसंतइ हियडामाहि। वाति पहीजउं किमहि लसाइं।
सिद्धि जाइ तउ काइ त बीह। सरसी जाउत उगसेंण-धीय ॥२२॥
फागुण वागुणि पन्न पडंति। राजल दुक्खि कि तरु रोयंति।
गब्भि गलिवि हउ काइ न मूय[2]। भणइ विहंगल धारणि धूय ॥२३॥

---

[1] दुर्बल [2] मृत

कातिक क्षितिग ऊगै साँझ। रजमति छीजेउ होइ अति झाँझ।
राति-दिवस आछै विलपंत। "वलि वलि दयाँ करु दयाँ करु कंत" ॥११॥
नेमि केर सखि मुचउ आश। कायर भागेँउ सो घर-वास।
ऍँहु ऐसीह सनेहल नारि। जाइ कोइ छाडिय **गिरिनार**" ॥१२॥
"कायर का सखि! नेमि जिनेंद्र। जिन रणेँ जीतेँउ लाख नरेन्द्र।
फुरै श्वास जौ आगल नास। तौ लोँ न छोड़उँ नेमिहि आश ॥१३॥"
मगसिर मार्ग प्रलोकै बाल। ऐसोँ प्रभनै नयन-विशाल।
"जो मोँहि मिलवै नेमिकुमार। तसु उपकार वहुउ सब वार" ॥१४॥
"एहु कुआग्रह तव सखि! मेलु[1]। करसि काह तिन नेमिहिँ हिल्ल।
मंडेँ चढ़ायेँउ जो पुनि माल। हे हे को करै टोग्रन[2]-काल" ॥१५॥
अठ भव सेवेँउँ सखि! मै नेमि। तसु ऊमाइ[3] किमि न करेमि।
अवश छिजीहै जो मोँहिँ स्वामि। लागी रहोँ तऊ तसु नाम" ॥१६॥
"**पूस** रोष सब छाड़हु नाह्। राखु राखु मोहिँ पद-नह-पाँह।
पडै शीत ना रजनि विहाइ। लहिय छिद्र सव दुःख अमाइ" ॥१७॥
"नेमि नेमि तू करती मुग्धेँ। यौवन जाइ न जानसि शुद्ध।
पुरुष-रतन भरियउ ससार। परनहु अन्य कोँई भर्तार" ॥१८॥
"भोली तैँ सखि! खरी गँवारि। वर अच्छते नेमिकुमार।
अन्य पुरुष कोँइ आपन नहई। गज-वर लहे कोँ रासभ चढ़ई" ॥१९॥
माघ मास मातै हिम-राशि। देवि भनै "मोहि प्रिय लेउँ पास।
तव विनु स्वामिय! दहै तुपार। नवनव मारहिं मारै मार" ॥२०॥
"ऍँहु सखि रोवसि जिमि आरण्येँ। हाथ कि जोये धरियौँ कर्णेँ।
तौ न पतीजसि हम्मर माइ। सिद्धि-रमणि-रातो नेँमि जाइ" ॥२१॥
कंत वसंतै हियरा-माँहि। बात पहीजौ किमिहि लसाइ।
सिद्धि जाइ तोहि काई भीय[4]। ओहि सँग जाऊ उगसेँन-धीय" ॥२२॥
फागुन पवना पर्ण पडंति। राजल दुःख कि तरु रोवंति।
"गर्भ गलिय हौँ काह न मूय।" भनै विहव्वल धारणि-धूय[5] ॥२३॥

---

[1] छोड़ [2] रक्षा, पहरा [3] वांछा [4] भय [5] पुत्री

अजिउ भगिउ करि सखि विम्भासि । अछइ भला वर नेमिहि पास ।
अनुसखि मोदक जउ नवि हुंति । छुहिय सुहाली किन रुच्चंति ॥२४॥
मणह पासि जइ वहिलउ होइ । नेमिहि पासि ततलउ ना कोइ ।
जइ सखि वरउँ त सामल-धीरु । घण विणु पियइ कि चातक नीरु ॥२५॥
चैत्र मासि वणसइ पंगुरइ । वणि वणि कोयल टहका[1] करइ ।
पंचबाणि करि धनुष धरेबि । वेभइ मॉडी राजल देवि ॥२६॥
जुइ सखि ! मातउ मासु वसतु । इणि खिल्लिज्जइ जइ हुइ कंतु ।
रमियइ नवनव करि सिणगारु । लिज्जइ जीविय जुव्वण-सारु ॥२७॥
सुणि सखि मानिउ मुझु परिणयणु । नवि ऊपरि थिउ बधव-वयणु ।
जइ पडवन्नइ चुक्कइ नेमि । जीविय जुव्वणु जलणि जलेमि ॥२८॥
वइसाहह विहसिय वणराइ । मयणमित्त मलयानिलु वाइ ।
फुट्टिरि हियडा माझि वसंतु । विलपइ राजल पिक्खउ कंतु ॥२९॥
सखी दुक्ख वीसरिबा भणइ । "संभलि भमरउ किम रुणझुणइ ।
दीस पंचथिरु जोव्वणु होइ । खाउ पियउ विलसउ सहु कोइ ॥३०॥
रमणि पसंसिय राजल-कन्न । जीह कंतु वसि ते पर धन्न ।
जसु पउ न करइ किमइ मुहाडि । सा हउं इक्क ज भुंडनि लाडि ॥३१॥
जिट्ठ विरहु जिमि तप्पइ सूरु । छण वियोगि सुसियं नइ पूरु ।
पिक्खिउ फुल्लिउ चंपइ विल्लि । राजल मूछी नेह गहिल्लि ॥३२॥
मूछी राणी हा सखि धाउं । पडियउ खंडइ जेवडु घाउ ।
हरि मूछा चंदण पवणेहि । सखि आसासइ प्रिय-वयणेहि ॥३३॥
भणइ देवि विरती संसार । पडिखि पडिखि मइ जाउव सार ।
नियपडिवन्नउ प्रभु संभारि । भइ लइ सरिसी गढि गिरिनारि ॥३४॥
आसाढह दिठु हियँउ करेवि । गज्जु विज्जु सवि अवगन्नेवि ।
भणइ वयणु उगसेणह जाय । करिसि धम्मु सेविसु प्रिय पाय ॥३५॥
मिलिउ सखी राजल पभणंति । चिणय जेम नमिरिय खणंति ।
अउगी अच्छि सखि ! झखि मन आल । तपु दोहिल्लउ तउँ सुकुमार ॥३६॥

—नेमिनाथ-चतुष्पदिका[2]

---

[1] टहका आधुनिक शब्दानुकरण [2] पृष्ठ ९-१०

झलकै कुंडल कान, रवि-शशि-मंडित जनु अवर ।
गंगा-जल गजदान, ग्रंथित गुण-गज गुडगुडै ॥७२॥
उरवरें मोतीहार, वीर वलय करें झलझलै ।
नवल अंग शृंगार, खलकतो टोडर[1] वामए ॥७३॥
पहिरनि चादर चीर, कंकोलह करि माल करें ।
गुरुओ गुण-गभीर, दीसेंउ अपर कि चक्रधर ॥७४॥

(२) सेना-यात्रा

ठवनि ॥ रवि-उद्गमें पूरवदिशहिं, पहिलेंइ चालिय चक्र ।
धूनिय धरतल थरथरै, चलिय कुलाचल-चक्र ॥१८॥
पीछें प्रयाणा तब दियो, भुजवलि भरत नरेंद्र ।
पिंडि पंचानन परदलहं, धर-तल अपर सुरेंद्र ॥१९॥
वाजिय समभेंरि संचरिय, सेनापति सामंत ।
मिलिय महाधर-मंडलिय, ग्रंथित गुण गर्जंत ॥२०॥
गड़गड़तो गजवर गुडिय, जंगम जिमि गिरिशृंग ।
गुंड-दंड चिर चालवैं, मोडैं अंगें अंग ॥२१॥
गंजैं फिरि फिर गिरि-शिखर, भंजैं तरुवर-डालि ।
अंकुश-वश आवैं नहीं, करैं अपार अनाडि ॥२२॥
हींसैं घसमस हिनहिनैं, तरवर तार **तुखार** ।
स्कंदैं खुरलैं खेलइय, मनमाना असवार ॥२३॥
पाखर[2] पंख इव पाखेंरु, ऊड़ाऊड़ी जाइ ।
हाँफैं तडफैं श्वस-धसैं, जडैं जकारिय धाइ ॥२४॥
फिरैं फेंकारै स्फोरणैं, फुर फेनावलि फार ।
तरल-तुरंगम समतुलैं, **ताजिक** तरल **ततार** ॥२५॥

---

[1] आभूषण [2] जीन

घडहडंत धर द्रम-द्रमिय, रह रुंधइँ रहवाट ।
रव-भरि गणइँ न गिरि-गहण, थिर थोभइँ रहथाठ ॥२६॥

चमर-चिन्ध-धज लहलहइँ, मिल्हइँ, मयगल माग ।
वेगि वहंता तिहँतणइ, पायल न लहइँ लाग ॥२७॥

दडयडंत दह-दिसि दुसह, (प)सरिय पायक-चक्क ।
अंगोअंगिहिँ अंगमइँ, अरियणि असणि अणंत ॥२८॥

ताकइँ तलपइँ तलिमिलिइँ, हणि हणि हणि पभणंत ।
आगलि कोइ न अछइ भलु, जे साहसु जूझंत ॥२९॥

दिसि दिसि दारक संचरिय, वेसर बहइँ अपार ।
संष न लाभइँ सेनतणि, कोँइ न लहइँ सुधि सार ॥३०॥

बंधव बंधवि नवि मिलइँ, बेटा मिलइँ न बाप ।
सामि न सेवक सारवइँ, आपिहिँ आप विथाप ॥३१॥

गयवडि चडिऊ चक्कधरोँ, पिडि पयंड भुयदंड ।
चालिय चहुँदिसि चलचलिय, दिइँ देसाहिव दंड ॥३२॥

वज्जिय समहरि द्रमद्रमिय, घण नीनाद निसाण ।
संकिय सुरवरि सग्ग सवेँ, अवरहँ कवण पमाण ॥३३॥

ढाक ढूक् त्रंवकतणइँ, गाजिय गयण निहाण ।
षट् षंडह षंडाहिवहँ, चालतु चमकिय भाण ॥३४॥

भेरिय-रव-भर तिहुँ-भुयणि, साहित किमइँ न माइ ।
कंपिय पय-भरि शेष रहु, विण साहीउ न जाइ ॥३५॥

सिर डोलावइ धरणिहिँ, टंकु टोल गिरिशृंग ।
सायर सयलवि झलझलिय, गहलिय गंग-तरंग ॥३६॥

खर-रवि षुंदिय[1] मेहरवि, महियलि मेहंधार ।
उजु-आलइ आउध तणइँ, चलइँ राय खंधार ॥३७॥

---

[1] उच्चारण ख

धड़धड़ंत धर द्रमद्रमिय, रथ रुंधैं रथवाट।
रव-भरें गनैं न गिरि-गहन, थिर स्तोभैं रथ ठाट ॥२६॥
चमर-चिन्ह-ध्वज लहलहैं, छोडैं मदगल मार्ग।
वेग वहंता तेहिकर, पायल न लहैं लाग ॥२७॥
दड़दड़ंत दशदिशि दुसह, पसरिय पायक[1]-चक्र।
अंगा-अंगी अंगमैं, अरिजनें अशनि अनंत ॥२८॥
ताकैं तडपैं तिलमिलैं, "हन हन हन" प्र-भनंत।
आगे कोइ न अहै भल, जे साहस जूझंत ॥२९॥
दिशिदिशि दारक संचरिय, वेसर[2] बहैं अपार।
शंक न लावैं सेनते, कोंइ न लहैं सुधि सार ॥३०॥
बांधव बांधवें ना मिलैं, बेटा मिलैं न बाप।
स्वामि न सेवक सारखैं, आपुहिं आपउ थाप ॥३१॥
गजपति चढेऊ चक्रधर, पीडि प्रचंड भुजदंड।
चालिय चहुँदिशि चलचलिय, देंइ देशाधिप दंड ॥३२॥
बाजिय भेरी द्रमद्रमिय, घनो निनाद निसान।
शंकित सुरवर स्वर्ग सब, अपरहँ कवन प्रमाण ॥३३॥
ढाक-ढूक[3] त्र्यंवकतनइँ[4], गाजिय गगन निधान।
षट् खंडहँ खंडाधिपहँ, चालत चमकिय भान ॥३४॥
भेरी-रव-भर तिहु भुवन, समुहा कतहुँ न माइ[5]।
कंपित पदभरें शेष रहु, विन सावेंऊ न जाइ ॥३५॥
शिरें डोलावैं धरणिहीं, टुंक डोल गिरिशृंग।
सागर सकलउ झलझलिय उछलिय गंग-तरंग ॥३६॥
खर रवें खुंदिय मेघ रवि, महितल मेघ'न्धार।
ऋजुकालै आयुधन कर, चलै राज-खंधार[6] ॥३७॥

---

[1] प्यादा [2] खच्चर [3] आवाज [4] त्र्यंबककेरा [5] समाइ [6] स्कंधावार-सेना-कैम्प

मंडिय मंडलवइ न मुहें, ससि न कवइँ सामंत।
राउत राउत-वट रहिय, मनि मुंझइँ मतिवंत ॥३८॥
कटक न कवणिहिँ भरतणूँ, भाजइ भेडि भडंत।
रेलइँ रयणायर जमलें, राणोराणि नमंत ॥३९॥

ठवणि १०। तउ कोपिहिँ कलकलिउ कालके(र)य कालानल,
कंकोरड कोरबियऊ करमाल महाबल।
काहल कलयलि कलगलंत मउडाधा मिलिया,
कलह तणइ कारणि कराल कोपिहिँ पर जलिया ॥१२०॥
हुउउ कोलाहल गहगहारि, गयणगणि गज्जिय,
मंचरिया सामंत मुहड सामहणिय सज्जिय।
गडगडंत गय गडिय गेलि गिरिवर सिर ढालइँ,
गूगलीय गुलणई चलंत करिय ऊलालइँ ॥१२१॥
जुडइँ भिडइँ भडहुडइँ खेदि खडखडइँ खडाखडि,
धणिय वुणिय धोसवइँ दंतु दो त (डातड़ात)डि।
खुरतलि खोणि खणंति खेदि तेजिय तरवरिया,
समइँ धसइँ धसमसइँ सादि[1] पय सइँ पाषरिया ॥१२२॥
कंधग्गल केकाण कवी करडइँ कडियाला,
रणणइँ रवि रण बखर सखर घण घाघरियाला।
सींचाणा वरि सरइँ फिरइँ सेलइँ फोकारइँ,
ऊडइँ आडइँ अंगि रंगि असवार विचारइँ ॥१२३॥
धसि धामइँ धडहडइँ धरणि रवि-सारथि गाढा;
जडिय जोध जडजोड जरद सन्नाहि सनाढा।
पसरिय पायल पूर कि पुण रलिया रयणायर,
लोह लहर वरवीर वयर वहवटिइँ अवायर ॥१२४॥

---

[1] सवार

मंडित मंडलपतिन मुखें शशि न अवइ सामंत।
राउत[1] राउतपन-रहिय, मनें मोहैं मनिवंत ॥३८॥
कटकन कौनेंहि भरतको, भागै भीडिभडंत।
रेलैं रतनाकर युग, रानारान नमंत ॥३९॥

ठवनि १०। तब कोपेहिं कलकलेंउ कालकेरइ कालानल,
कंकोलइ कोरंबिउ करमाल महाबल।
काहल कलकले कलकलंत मुकुटाधर मिलिया,
कलहकेर कारण कराल कोपेहिं पर ज्वलिया ॥१२०॥
भयेंउ कोलाहल गडगडाट, गगनंगण गर्जिय,
संचरिया सामंत सुभट साधनिय सज्जिय।
गडगडंत गज गुडिय गैल गिरिवर-शिर ढारैं,
गुग्गलीय हस्तिनि चलंत करिय उल्लालै ॥१२१॥
जुडैं भिड़ैं भट-भटहिं खेदि खड़खड़ैं खड़ाखड़,
धनियधुनिय धूसवैं दंत दोऊ(त) तड़ातड़।
खुरतर क्षोणि खनंत खेदि त्याजिय तरवरिया,
शमैं धसइँ धसममैं सादि पदसँग पाखरिया ॥१२२॥
स्कंधाग्रेछल लगाम-करडै कडियाली,
रणणैं रवि रण बखर सखर घन घाघरियाला।
सिचाना[2] वरसरइँ फिरैं सेलैं फुक्कारैं,
ऊड़ैं आड़ैं अंगें रंग असवार विचारैं ॥१२३॥
धसि धामैं धड़धड़ैं धरणि रवि-सारथि गड्ढा,
जटित जोध जटजूट जरद सन्नाह सनद्धा।
प्रसरिय पायल पूर कि पुनि रलिया रतनाकर,
लोह लहर वरवीर वैर वधवटैं आया कर ॥१२४॥

---

[1] राजपुत्र [2] बाज

रणणिय रवि रण-तूर तार त्रंबक त्रहत्रहिया,
ढाक-ढूक-ढम-ढमिय ढोल राउत रह रहिया ।
नेच निसाण निनादि (निनी) नीझरण निरंभिय,
रणभेरी भुंकारि भारि भुयबलिहिँ वियंभिय ॥१२५॥
चल चमाल करिमाल कुंत कड़तल कोदंड(उ),
झलकइँ साबल सबल सेल हल मसल पयंड(उ) ।
सिंगिणि गुण टंकार सहित बाणावलि ताणइँ,
परशु उलालइँ करि धरइँ भाला ऊलालइँ ॥१२६॥
तीरिय तोमर भिंडपाल डबतर कसबंधा,
साँगि सकति तरुआरि छुरिय अनु नागतिबंधा ।
हय खर रवि ऊछलिय खेह छाइय रविमंडल,
धर घूजइ कलकलिय कोल कोपिउ काहडुल[1] ॥१२७॥
टलटलिया गिरि टंक टोल खेचर खलभलिया,
कडडिय कूरम कंध-संधि सायर झलहलिया ।
चल्लिय समहरि सेस सीसु सलसलिय न सक्कइ,
कंचणगिरि कंधार भारि कमकमिय कसक्कइ ॥१२८॥
कंपिय किन्नर कोडि पडिय हरगण हडहडिया,
संकिय सुरवर सग्गि सयल दाणव दडवडिया ।
अतिप्रलंव लहकइँ प्रलंब वलचिंध चहूँ दिसि,
संचरिया सामंत-सीस सीकिरिहिँ कसाकसि ॥१२९॥
जोइय भरह-नरिंद कटक मूँछह बल घल्लइ,
कुण बाहूबलि जेउ बरब मइँ सिउँ बलबूल्लइ ।
जइ गिरि कंदरि विचरि वीर पइसंतु न छूटइ,
जइ थलि जंगलि जाइ किम्हइ तु मरइ अषूटइ ॥१३०॥

---

[1] सन्दिग्ध

रणणिय रवि रण-तूर्य तार त्र्यंबक त्रहत्रहिया,
ढाक-ढूक ढमढमिय ढोल राउत[1] रथ रहिया।
नेजाँ निशान निनाद (निनी) निर्झरन् अरंभिय,
रणभेरी हुंकार भार भुजबलेँहिँ विजृम्भिय ॥१२५॥
चम-चमाल[2] करवाल कुत कडतल कोदंडउ,
झलकैँ सावर सबल शेल हल मुशल प्रचंडउ।
शारंग गुण टंकार-सहित वाणावलि नानैँ,
परशु उलालै करधरैँ भाला ऊलालैँ ॥१२६॥
तीरिय तोमर भिंदपाल डबतर कसबंधा,
साँगि शक्ति तरुवार छुरी अरु नाग त्रिबंधा।
हय खर रवेँ ऊछलिय, खेह छाइय रविमंडल,
धराँ कंपै कलकलिय कोल कोपेँउ काहडुल ॥१२७॥
टलटलिया गिरि टंक टोल खेचर खलबलिया,
कड़ड़िय कूरम स्कंध-संधि सागर झलझलिया।
चालिय समरा शेष-सीस सलसलेँउ न सक्कै,
कंचनगिरि कंधार भार कपकपिय कसक्कै ॥१२८॥
कंपिय किन्नर-कोटि पड़िय हर-गण हड़हड़िया,
शंकिय सुरवर स्वर्गेँ सकल दानव दड़वड़िया।
अतिप्रलंब लहकै प्रलंब बल-चिन्ह चहूँ दिशि,
संचरिया सामंत-शीर्ष सीकरेँहिँ कसाकसि ॥१२९॥
जोयेँउ भरत नरेन्द्र कटक मूँछहूँ वल डालै,
को बहुबलि जो गरव मोँहिँ सँगे बल बोलै।
यदि गिरिकंदर-विवरेँ वीर पइठंत न छूटै,
यदि थल जंगल जाइ कैसहु तो मरै अखूटै ॥१३०॥....

---

[1] राजपुत्र [2] चमकते

गय आगलिया गलगलंत दीजइँ हय लास-ा,
हुइँ हसमस.......[1]भरहराय केरा आवास-ा।
एक निरंतर वहइँ नीर एकि ईंधण आणईं,
एक आलसिइँ पर-तणुँ पँगु आणिउँ तृण ताणइँ ॥१३३॥
एकि उतारा करिय तुरय तलसारे बाँधइँ,
ऍक मरडइँ केकाण खाण इकि चारे राँधइँ।
ऍक भीन्निय नयनीरि तीरि तेतिय बोलावइँ,
एक वारू असवार सार साहण वेलावइँ ॥१३४॥
ऍक आकुलिया तापि तरल तडि चडिय झँपावइँ,
ऍक गूडर मावाण सुहड चउरा दिवरावइँ।
—भरतेश्वर बाहुबली-रास

§ ३६. सोमप्रभ

काल—११९५ । देश—अनहिलवाडा (गुजरात) । कुल—पोरवाल

१—नीति-वाक्य

वसइ कमलि कल-हंसी जीवदया जसु चित्ति।
तसु-पक्खालण-जलिण होसइ असिव-निवित्ति ॥ प्रस्ताव १ (२६)
आभरण-किरण दिप्पंत देह। अहरीकय सुरबहु-रूवरेह।
घण-कुंकुम-कद्दम घर-दुवारि। खुप्पंत-चलण नच्चंति नारि ॥ (३२)
तीयह तिन्नि पियारईं, कलि-कज्जलु-सिंदूर।
अन्नइ तिन्नि पियारइँ, दुद्धु जँवाइउ तूरु ॥ (३२)
बेस विसिट्ठइ वारियइ, जइवि मणोहर-गत्त।
गंगाजल-पक्खालियवि, सुणिहि कि होइ पवित्त ॥

---

[1] खंडित

गज आगड़िया गलगलंत दीजै हय लास-र,
हूँ धममम .....भरतराय केरा आवासा।
एक निरंतर लाव नीर ऍक ईंधन आनै,
एक आलसेंहिं पर तनु पग आनेंउ तृण तानै ॥१३३॥
एक उतारा करिय तुरग हयसारे बाँधै,
ऍक रगड घोडा हूं खान ऍक चारा राँधै।
ऍक पकड नदनीर तीर सो स्त्रिय बोलावै,
एक वार असवार सार साधन[1] वेलावैं ॥१३४॥
ऍक आकुलिया तापें तरल नडि-चढिय झँपावैं,
ऍक गूदर[2], सावान[3] सुभट चौरा देवरावैं।
—बाहुबलीरास

§ ३६. सोमप्रभ

वैश्य—जैन साधु (महन्त)। कृतियाँ—कुमारपाल-प्रतिबोध[4]

१—नीति-वाक्य

वसइ कमल कलहंसी, जीव-दया जसु चित्त।
तसु प्रक्षालन जलहीं, होइह अशिव-निवृत्ति ॥ (पृ० २६)
आभरण-किरण दीप्यंत देह। अधरीकृत सुरबधु-रूपरेख।
घन कुंकुम-कर्दम घर-दुवार। लिपटंत चरण नाचति नारि ॥ (३२)
तीयहँ तीन पियारईं, कलि-काजल-सिंदूर।
अन्यउ तीन पियारईं, दूध-जमाई-तूर्य ॥ (३२)
वेशविशिष्ट[1]हिं वारियत, यदपि मनोहर गात्र।
गंगाजल प्रक्षालियउ, सुनह कि होइ पवित्र ॥

---

[1] हाथन [2] बिदा करें। [3] तंबू [4] Gaikwad's Oriental Series; XIV, 1920. १४०२ ई० की हस्तलिखित (उत्तरी भारतकी अन्तिम) ताल-पोथी

नयणिहि रोयइ मणि हसइ, जणु जाणइ सउ तत्तु ।
वेस विसिट्ठह तं करइ, जं कट्ठह करवत्तु ॥ (८६)

पडिवज्जिवि दय देव गुरु, देवि सुपत्तिहि दाणु ।
विरइवि दीण-जणुद्धरणु, करि सकलउँ अप्पाणु ॥ (१०७)

पुत्तु जु रंजइ जणय-मणु, थी आराहइ कंतु ।
भिच्चु पसन्नु करइ पहु, इहु भल्लिम पज्जंतु ॥

मरगय वन्नह पियह उरि, पिय चंपय-पह-देह ।
कसवट्टइ दिन्निय सहइ, नाइ सुवन्नह रेह ॥ (१०८)

हियडा संकुडि मिरिय जिम, इंदिय-पसरु निवारि ।
जित्तिउ पुज्जइ पंगुरणु, तित्तिउ पाउ पसारि ॥ (१११)

संसय-तुलहि चडावियउँ, जीविउ जान जणेण ।
ताव कि संपइ पावियइ, जा चिंतविय मणेण ॥ (२४६)

रिद्धि विहूणह माणुसह, न कुणइ कुवि सम्माणु ।
सउणिहि मुच्चइ फलरहिउ, तरुवरु इत्थु पमाणु ॥

जइविहु सूरु सुरूवु विअक्खणु । तहवि न सेवइ लच्छि पइक्खणु ।
पुरिस गुणागुण-मुणण-परम्मुह । महिलह बुद्धि पयंपहिँ जंबुह ॥ (३३१)

रावणु जायउ जहिँ दियहि, दह-मुह एक्क-सरीरु ।
चिंताविय तइयहिँ जणणि, कवणु पियावउँ खीरु ॥ (३९०)

२-सामन्त-समाज

(१) मंत्रि-पुत्र स्थूलभद्र

पुरि चिट्ठइ **पाडलियुत्त** नामु । धण-कण-सुवन्न-रयणाभिरामु ।
तहिँ नवमु **नंद** पालेइ रज्जु । पडिवक्ख-महीहर-हलण-वज्जु ॥१॥

मुणि पत्त-कप्प-जल-सित्तु गत्तु । बालत्तणि जसु रोगेहि चत्तु ।
तसु कप्पय मंतिहि वंसि हूओ । **सगडालु**[1] मति निववक्खु भूओ ॥२॥

---

[1] शकटारि नन्द राजाका मंत्री

नयनें रोवै मनें हँसै, जनु जानै सब तत्त्व।
वेश विशिष्टहँ[1] सो करै, जो काठहँ करपत्र ॥ (८६)

प्रतिपादन दयाँ देव गुरु, देव सुपात्रहँ दान।
विरचिव दीन-जनोद्धरन, करि सकलउँ अप्पान ॥ (१०७)

पुत्र जो रंजै जनक-मन, स्त्री आराधै कंत।
भृत्य प्रसन्न करै प्रभू, यही भला परि-अन्त ॥

मर्कत-वर्ण प्रियह उरें, प्रिय चंपक-प्रभ देह।
कसौटियहँ दीनी सोंहै, नारि सुवर्णह रेख ॥ (१०८)

हियरा संकुचि कच्छु जिमि, इन्द्रिय-प्रसर निवारि।
जेतै पूरै प्रावरण, तेतै पाव पसार ॥ (१११)

संशय-तुलहिँ चढावियउ, जीवित जान जनेहिँ।
तब का संपत् पाइहै, जो चिंतविय मनेहिँ ॥ (२४६)

ऋद्धि-विहूनहँ मानुषहँ, न करै कोंइ सम्मान।
शकुना मुंचैं फल-रहित, तरुवर इहाँ प्रमाण ॥

यद्यपि शूर सुरूप विचक्षण। तदपि सेवै लक्ष्मि प्रतिक्षण।
पुरुष गुणागुण-मनन-पराङ्मुख। महिलहँ बुद्धि प्रजल्पैं जो बुध ॥ (३३१)

रावण जायेंउ जसु दिनहिँ, दशमुख एक शरीर।
चिंतविया तहिया जननि, कौन पियाअउँ क्षीर ॥ (३९०)

२—सामन्त-समाज

(१) मंत्रि-पुत्र स्थूलिभद्र

पुरि आहै पाटलिपुत्र नाम। धन-कन-सुवर्ण-रतनाभिराम।
तहँ नवम नंद पालेइ रज्ज। प्रतिपक्ष-महीधर-दलन-वज्र ॥१॥

मुनिपात्र-कल्प जल-सिक्त गात्र। बालत्वें जसु रोगेहिँ त्यक्त।
तसु कल्पक मंत्रिहि वंश हूअ। शकटारि मंत्रि नृप-चक्षु-भूत ॥२॥

---

[1] वेश्या

तसु **थूलभद्दु** सुओं आसु पढमु । मयणुव्व मणोहर रूव परमु ।
जो जम्म दियहि देवयहिँ वुत्तु । इह होही चउदह-पुव्व-जुत्तु ।।३।।
सिरिउत्ति विइज्जउ आसि पुत्त । नय-विणय-परक्कम-बुद्धि-जुत्तु ।
तह जक्खा-पमुह पसिद्ध पत्त । मेहाइ गुणिहिँ भइणीउ सत्त ।।४।।

(२) नारी-सौंदर्य

कंचण कलसिहि जणि फलिय, सहइ लच्छिलय चित्त ।
कोसा वेसा पुव्वकय, सुकय जलिण जँ ऍव सित्त ।।६।।
रयणालंकिय सयल-तणु, उज्जल-वेस-विसिट्ठ ।
न सुर-रमणि विमाण-गय, लोयण-विसइ-पविट्ठ ।।७।।
जसु वयण विणिज्जिउ नं ससंकु । अप्पाणु निसिहिँ दंसइ स-संकु ।
जसु नयण-कंति-जिय-लज्ज-भरिण । वणवासु पवन्नय नाइ हरिण ।।८।।
जसु सहहिँ केस-घण-कसण-वन्न । नं छप्पय मुह-पंकय-पवन्न ।
भुवणिक्क-वीर-कंदप्प-धणुह । सुंदरिम विडंबहि जासु भमुह ।।९।।
जसु अहर हरिय-सोहग्ग-सारु । नं विद्दुम[1] सेवइ जलहि खारु ।
जसु दंत-पंति सुंदेरु रुंदु । नहु सीओसहँ तुवि लहइ कंदु ।।१०।।
असणंगुलि पल्लव नह पसूण । जसु सरल-भुयउ लयाउ नूण ।
घण-पीण-तुग-थण-भार-सत्तु । जसु मज्भु तणुत्तणु नं पवत्तु ।।११।।

(३) वसन्त

अह पत्तु कयाइ वसंत समओं । संजणिय-सयल-जण-चित्त-पमओं ।
उल्लासिय-रुक्ख-पवाल-जालु । पसरंत-चारु-चच्चरिव्व मालु ।।१।।
जहिँ वण-लय-पयडिय कुसुम-वरिस । महु-कंत समागय जणिय हरिस ।
पवमाण-चलिर-नवपल्लवेहिँ । नच्चंति नाइ कोमल-करेहिँ ।।२।।

---

[1] **मूंगा, प्रवाल**

तसु स्थूलिभद्र सुत रहे॑उ प्रथम । मदन इव मनोहर रूप परम ।
जेहि जन्मदिवस देवतहिँ उक्त । ई होइहै चौदह पूर्व[1] युक्त ॥३॥
श्री सिरिय दुतियो अहे॑उ पुत्र । नय-विनय-पराक्रम-बुद्धि-युक्त ।
तिमि यक्षा-प्रमुख प्रसिद्धि प्राप्त । मेधादि गुणे॑हि भगिनीउ सप्त ॥४॥

(२) नारी-सौंदर्य[2]

कंचन कलशेहिँ जनु फटिक, सो॑है लक्ष्मिलय चित्र ।
कोशा वैश्या पूर्वक्त, मुक्त जले॑हीँ सिक्त ॥६॥
रतनालंकृत सकल तनु, उज्ज्वल वेश-विशिष्ट ।
जनु सु-रमणि विमान-गत, लोचन-विषय प्रविष्ट ॥७॥
जसु वदन विनिर्जित जनु शशांक । अप्पान निशिहिँ दरसै[3] स-शक ।
जसु नयनकांति जिन लज्ज भरे॑हिँ । वनवास सिधारे॑उ मनहु हरिन ॥८॥
जसु सो॑है॑ केश घन-कृष्ण-वर्ण । जनु षट्पद मुखपंकज-प्रपन्न[3] ।
भुवनैकवीर कंदर्प धनुहु । सुदरिस विडबै जासु भउंह ॥९॥
जसु अधर धरिय सौभाग्य-सार । जनु विद्रुम सेवै जलधि खार ।
जसु दंत-पंक्ति सुंदर रुद[4] । नख शीतोपध[5]-तोउ लहै कद ॥१०॥
हस्तांगुलि-पल्लव नखप्रसून । जसु सरल भुजउ लताउ नून[6] ।
घन-पीन-तुंग-थनभार-सक्त । जसु मध्य[7] ननुत्वहँ जनु प्रवृत्त ॥११॥

(३) वसन्त

पुनि आव कदाचि वसंत-समय । सजनिय सकल जन चित्त प्रमद ।
उल्लासिय वृक्ष-प्रवाल-जाल । प्रसरंत चारु चर्चरि'व माल ॥१॥
जहँ वनलताँ प्रकटिय कुसुम-वर्ष । मधुकांत समागत जनित-हर्ष ।
पवमान चलिय नवपल्लवेहिँ । नाचंति न्याइँ कोमलकरेहिँ ॥२॥

---

[1] धर्म-ग्रथ [2] मंत्रि पुत्र स्थूलिभद्रकी प्रेयसी वेश्या कोशा [3] प्राप्त
[4] विस्तृत [5] चंद्र [6] निश्चय [7] कटि

नव-पल्लव-रत्त-असोअ-विडवि । महुलच्छिहि सउँ परिणयणु घडवि ।
जहिँ रेहहिँ नाइ कुसुभ-रत्त । वत्थेहिँ नियंसिय सयल-गत्त ।।३।।
हसइ' व्व फुल्ल-मल्लिय-गणेहिँ । नच्चइ'व पवण वेविर-वणेहिँ ।
गायइ भमरावलि रविण नाइ । जो मयमवि मयणम्मत्तु भाइ ।।४।।
घण मयण-महूसवि, पिज्जंतासवि, तहि वसंति जणचित्तहरि ।
कय-विसय-पसंसिहिँ नीओं वयंसिहिँ, **थूलभद्दु कोसाहि**[1] घरि ।।५।। . .

(४) (वेश्या-) प्रेम

अवरुप्परु अणुराय गुणु, दोहिहिँ पयडंतीहिँ ।
थूलभद्द कोसहँ पढमु, किउ दूहत्तणु तीहिँ ।।१२।।
निम्मल-मुत्तिय-हारमिसि, रइय चउक्कि पहिट्ठ ।
पढमु पविट्ठहु हिय तसु, पच्छा भवणि पविट्ठु ।।१३।।
चंदणु दंसिउ हसिय मिसि, इय कोसहिँ असमाणु ।
घरि पविसंतह तासु किउ, निय अंगिहि सम्माणु ।।१४।।
अक्ख-विणोइण ते गमहिँ, जा दुन्निवि दिण-सेसु ।
ता पच्छिम-दिसि कामिणिहि, अंकि निविट्ठु दिणेस ।।२३।।
सव्व-कला-संपन्नु रसिय, -जण-संतोसु कुणंतु ।
अमयमयइ कर-फंसि-सुहि, तहि कुमुइणि वियसंतु ।।२४।।
पारद्धु संगीउ तहिँ, कोस वेस नच्चिय वियक्खणि ।
रंजिय-मणु घणु दविणु, थूलभद्दु तसु देइ तक्खणि ।।
तयणंतरु अणुरत्तमण, मयण-पलंकि निसन्न ।
माणिय-मयण-विलास-सुह, दुन्नि'वि निद्द-पवन्न ।।२५।।

---

[1] कोशा गणिका

नवपल्लव-रक्त-अशोक विटप । मधु लक्ष्मिहिँ सँग परिणयहँ करब ।

जहँ राजैँ नारि [1]कुसुभ-रक्त । वस्त्रेहिँ आच्छादिय सकल-गात्र ॥ ३॥

हसई इव फुल्ल-मल्लीगणेहिँ । नाचइ'व पवन-कंपिर-वनेहिँ ।

गावै भ्रमरावलि-रवेँहिँ न्याइँ । जो स्वयमपि मदनोन्मत्ता भाइ ॥४॥

घन मदन-महोत्सवेँ पीयंत'ासव, तहँ वसतेँ जनचित्तहरे ।

किय विषय प्रशंसेँ, निजहिँ वयस्यहिँ, **थूलभद्र कोशाकेँ** घरे ॥५॥

(४) (वेश्या-) प्रेम

अपरापर अनुराग गुण, दोउहिँ प्रकटतेहिँ ।

थूलभद्र-कोशाँहँ प्रथम, किउ दूतीत्वहँ तेहिँ ॥१२॥

निर्मल मोतिय हार-मिस, रचित चतुष्क प्रहृष्ट ।

प्रथम वईठेउँ हिय तसु, पाछे भवन प्रविष्ट ॥१३॥

चंदन दर्शेँउ हसित-मिस, ई **कोशहिँ** अ-समान ।

घर प्रविशंतहँ तासु किउ, निज अंगहिँ सम्मान ॥१४॥. . . .

अक्षविनोदेँहि वीतवैँ, जौं दोऊ दिन शेष ।

तो पश्चिम दिश-कामिनिहँ, अंकेँ निविष्ट दिनेश ॥२३॥

सर्वकला-संपन्न रसिक, - जन - संतोष करंत ।

अमृतमयइ कर-पर्श सुखेँ, तह कुमुदिनि विकसंत ॥२४॥

प्रारंभेउ संगीत तहँ, **कोश** वेश नाचै विचक्षणी ।

रंजित मन घन द्रविण, स्थूलभद्र तेँहिं देइ तत्क्षणी ॥

तदनंतर अनुरक्त मन, मदन पलंग निषण्ण ।

माणिक मदनविलास-सुख, दोऊ निद्रापन्न ॥२५॥

---

[1] चम्पई या केसरिया (कुसुंभी) रंगमें रँगे

(५) विरह-वर्णन

पिय ! हउँ थक्किय सयलु दिणु, तुह विरहग्गि किलंत ।
थोडइ जलि जिम मच्छलिय, तल्लोविल्लि करंत ॥
मइँ जाणिउँ पिय-विरहियह, कवि धर होइ वियालि ।
न वरि मयंकु वि तह तवइ, जह दिणयरु खयकालि[1] ॥ (८६)

३—कविका संदेश

(१) जग तुच्छ

एवंति भणिय तो थूलभद्दु । चिंतेइ तत्थ परमत्थ भद्दु ।
मणुयत्तह सारु ति-वग्ग-सिद्धि । तिहि विग्घ-हेउ अहिगार-रिद्धि ॥४७॥
जं तत्थ राय-चित्ताणुकूल । आरभ कणंतह पावमूल ।
कउ मंतिहि जायइ विमलधम्मु । जिणि लब्भइ सासउ सिद्ध-सम्मु ॥४८॥
पर-पीड-करेविणु जं पभूअ । गिन्हहिँ निउ गिरुहि रूव जलूअ ।
नरनाहिण घिप्पइ तंपि दव्वु । निप्पीलिवि सहुँ पाणेहिँ सव्वु ॥४९॥
पर-वसहँ सव्वु भय-भिभलाहँ । अन्नन्न-पओअण बाउलाहँ ।
अहिगार-जणहं (पुणि) कामभोअ । संभवहिँ वियंभिय गुरु-पमोय ॥५०॥
कोसा-घर बारस-वच्छरेहि । विसइहि न तित्तु लोउत्तरेहिँ ।
वहु रज्ज-कज्ज-वक्खित्त-चित्तु । कि संपइ होहिसि मूढ-चित्तु ॥५१॥
पइ जम्म-मरणु कल्लोलमत्तु । भवजलहि भमिवि मणुअत्तु पत्तु ।
परिहरिवि विसय-फलु तासु लेहि । कि कोडी कवडिइँ हारवेहि ॥५२॥
इम विसय-विरत्तउ, पसमपसत्तउ, **थूलभद्दु** संविग्गमणु ।
सिव-सुक्ख-कयायरु, भवभयकायरु, महइ चित्ति दुच्चर चरणु ॥५७॥

× × ×

---

[1] प्रलयकाल

§ ३१. हरिभद्रसूरि

जैन साधु, महामंत्री पृथ्वीपालके अनुगृहीत। कृति—नेमिनाथ-चरिउ* (८०३ श्लोक)

१—प्रकृति-वर्णन

(१) प्रात: वर्णन

तपन-विदलिय तिमिर-धम्मिल्ल[1] परि-खसिय तारक-वसन, कलकलंत तरुशिखर पक्षिय।
परिस्यंदित कुसुम-मधुबिंदु-मिश्रण तैं बहु-रक्षिय।
जमु मैं कुमरिहि दु:खें बैरें रजनि-विलीन।
प्रति-पक्षिय खंचरेंद्र मुख-बुद्धि'व कुमुदिनि की।
कुमर-रतनह प्रभ प्रकाशेंउ मृदु विकसै विसि[2]-मुखैं, उदयगिरिहिं आरुहेंउ दिनकर।
सं-पायेंउ अतिशय राजहंस कमलोघ-सुखकर।
प्राप्तावसर समुल्लसिय शांब-राज[3]-शृंगार।
जनु कुंकुम - कौसुम्भ - वरवस्त्र - कृतालंकार।
शांत-चक्रहँ विहित-संतोप प्रविराजै पूर्व दिनें अपहरंत तम-वल्लि-लज्जहिं।
प्रसरंत रागारुणेहिं नववधु इव रवि-दयित-संगेहिं।
उदयंते नव-रवि नृपेहिं गर्जन्तेहिँ प्रतिपक्ष।
कमलकोशें विनिहित कर-वर्त्त[4] गुरुत्वे लक्खु[5]।
हरित तारक-रेणु निकुरंविय निष्प्रभें दोषाँकरें, निर्मले गगनतलें चढेंउ।
रवि राजै कनकमय-मंगलार्जुन-कलश-मंडेंउ।
भ्रमरा धावैं कुमुदिनिउ खिलेंउ कमलवनहँ।
केहि इव कहँ प्रतिबंध जगें चिरपरिचित-गणहँ।

---

[1] केश [2] कमल [3] कामदेव [4] किरण समूह [5] लख्यो

विरह-विहुरिय चक्कमिहुणाइँ मिलिऊण साणंद, हुय तुट्ठ भमहिँ पहियण [illegible] ।
कोसिय[1]-कुलु ऍक्कु परिदुहिउ रविहिं [illegible] ।
——णेमिणाह-चरिउ ७

(२) वसंत-वर्णन

पाणि संठिय मजु सिंजत भमरावलि सामलियदलि कुसुम-सहयार-मंजरि ।
पसरंत हरिसुल्ल सिय पुलय सरेंण रेहंत सिरवरि ।
विरइवि करसंपुटु भणहिँ, उज्जाणिय आगतु ।
जह पहु हरिसिय भुवण-जणु, संपइ पत्तु वसंतु ।
जमिह पसरिउ दइय-संगु'व्व मलयानिलु अगसुहु पत्तविहवु पुणु कुसुम-परिमलु ।
चारिज्जय तूर-रव-रम्मु फुरिउ कलयंवि-कलयलु ।
पउमाएण कंकेल्लि-तरु-कुसुमइँ नयणसुहाइँ ।
तवणिज्जज्जल कुसुम-भरु हूय कोरिंट-वणाइँ ।
जत्थ माहवि लइय तो मरिय सेहालिय कुतलिय जालईय लहु सुरहि लद्धयवि ।
भूयद्दुम मंजरिय वहुगुलब पायव असोयवि ।
आलिंगिज्जहिँ पूगफलेँ, तरु कामुय सव्वगु ।
नागवल्लि तरुणिहिँ जणहँ, उज्जीविरहि अणगु ।।
जहिँ पवालंकुरेँहिँ कयसोह डिंभाइँ'व तिलयकय गरुयमहिम कामिणि गुहाइँ'व ।
वहुलक्खण चित्त-सय मणहराइँ नर-वइ-गिहाइँ'व ।
उत्तिम जाइ प्पसवकय-महिमंडणाइँ वणाइँ ।
विलसहिँ भुवणाणंदयर, नं नरनाहकुलाइँ ।।
जहिय विज्ज सियकुसुम कणियार-वणराइ कंचणमयव कुणइ पहिय हियमाण विब्भमु ।
अहिकंखहिँ भुवणयले सयल-मिहुण निय-दइय-संगमु ।
गिज्जहिँ रासहिँ चच्चरिउ, पेज्जहिँ वरमहराउ ।
माणिज्जहिँ तुंगत्थणिउ, किज्जहिँ जल-कीलाउँ ।।
——णेमिणाह-चरिउ[2]

---

[1] कौशिक—उल्लू [2] संधि ४

विरहविधुरित चक्रमिथुनाइँ मिलियउ सानंद, हुये तुष्ट भ्रमैं पथिजन महितलैं ।
कौशिक-कुल एक पति-मुक्ति रविहिं ग्राहइँ नभतलैं ।
—नेमिनाथ-चरित ७

(२) वसंत-वर्णन

पाणि-संठिय भंज मिजत भ्रमरावलि श्यामलिय, दलैं कुसुम सहकार-मंजरि ।
पसरंत हर्षित सित-पुलक-भरैं राजंत शिखरैं ।
विरचिय कर-संपुट भनै उद्-जानिय आगंत ।
जिमि प्रभु हर्षिय भुवन-जन, संप्रति आउ वसंत ।
जो ऐंहि पसरेंउ दयित-संग इव मलयानिल अंग-सुख प्राप्तविभव पुनि कुसुम-परिमल।
संचारिय तूर्य-रव रम्य फुरेंउ कलकपि-कलकल ।
पद्मारुण कंकेलि[1]-तरु-कुसुमा नयन-सुखाइँ ।
तपनीय ज्वल कुसुम-भर हुअ कोरिंट-वनाइँ ।
यत्र माधवि लतिक तोमरिय[2]-शेफालिक कुंतलिय जालकित लघु सुरभि लइयउ ।
भुर्जद्रुम मंजरिय वहु - गुल्म - पादप अशोकउ ।
आलिंगिज्जैं पूग-फलैं, तरु कामुक सर्वांग ।
नागवल्लि-तरुणिहिँ जनहँ, उज्जीवियहि अनंग ।।
जिमि प्रवालांकुरेंहिँ कृतशोभ डिभा इव, तिलककृत गरुव-महिम कामिनि-मुखाइव ।
वहुलक्षण - चित्रगत - मनहरा नरपति - गृहा इव ।
उत्तम-जाति - प्रसवकृत, महिमंडना वनाइँ ।
विलसैं भुवनानंदकर, जनु नरनाथ - कुलाइँ ।।
जाहि फुटिय सित-कुसुम कर्णिकार-वन-राजि कंचनमृदउ, करै पथिक-हृदयाहँ विभ्रम ।
अभिकांक्षैं भुवनतलैं सकल-मिथुन निज-दयित-संगम ।
गाइज्जै रासहिँ चर्चरिउ, पीइज्जै वर-मदिराव ।
मानिज्जै तुंग - स्तनिउ, किज्जै जल - क्रीडाव ।।
—नेमिनाथ-चरित संधि ४

---

[1] अशोक [2] फैला हुआ।

२—सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य-वर्णन

जीएँ रयणिहिँ नियय तणु किरणमालच्चिय दीव सिव सोह मेतु मंगल-पईवय ।
सवणाण विहुसणइँ नयणकमल विइ मेत्त मेवय ।
गंडयलच्चिय तिमिर-हर, जगेँ पहु ससि-रवि-संख ।
सवण जेँ अंदोलय ललिय, विहल महुहु आकंख ॥
जणु सुहावहिँ मुहह निसास कि मलयानिल भरेण, दंतकिरण धवलहिँ कि चंदेण ।
अहरो विहुरं जवइ जगु विकइण कि अंगरागेण ।
रसण पउच्चिय मिउफरि, सूनपा-मयण मयणेज्ज ।
नह-मणि-किरणच्चिय कुणहिँ, कुसुम वयारह कज्जु ॥
तरल-नयणेहिँ कुडिल-केसेहिँ थण-जुयलेण, पुणु कठिण तुज्झ रुव मज्झपएसेण ।
अच्चंतं वाउलिय देवपूय गुरु विणय हरिसेण ।
इय सा सयलुवि जगु जिणइ, निय-गुण-दोस-सएण ॥
—णेमिणाह-चरिउ[1]

(२) पुरुष (कृष्ण)-सौंदर्य

नील-कुंतल कमल-नयणिल्लु विवाहरु सियदसणु, कंबुग्गीवु पुर-अररि उरयलु ।
जुय दीहर-भुय-जुयल वयण ससि जिय कमल-उप्पल ।
पउमदलारुण करचलणु, तविय - कणय - गोरंगु ।
अट्ठ वरिस वउ पहु हुयउ, समहिय विजिय अणंगु ॥
—वही

(३) विवाह-महोत्सव

ता पहुत्तइ लग्ग समये मिलिएहिँ सुहि-सज्जणेहितेसि, कुमरकुमरीण दोण्हवि ।
पारद्ध विवाह-विहि तयणु-खयर पहु दुहिय अन्नवि ।

---

[1] संधि ७

२—सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य-वर्णन

जेहि रजनिहिँ निजय तनुकिरण-मालार्चित दीप शिव मोह मात्र मंगलप्रदीपय ।
श्रवणाइँ विभूषणैं नयन-कमल द्वे मित्र एवय ।।
गंडतल-अर्ची तिमिरहर, जग प्रभ शशि-रवि-शंख ।
श्रवण जें आंदोलै ललित, विफल न होहु आकंक्ष ।।
जनु स्वभावें मुखनिःश्वास की मलयानिल भरेहिँ, दंतकिरण धवलहिँ की चंदेहिँ ।
अधराहु-हु रंजवै जग विकचें की अंगरागेहिँ ।।
रसन प्र-उच्चिय मृदुफलें, सून मदन शर्यानिज्ज ।
नख-मणि-किरणार्चिय करै, कुसुम-बिारहँ काज ।।
तरलनयनेहिँ कुटिल-केशेंहिँ स्तन-युगलेहिँ, पुनि कठिन तार रूप मध्यप्रदेशेहिँ ।
अत्यंत व्याकुलित देँव-,पूजा गुरु-विनय हर्षेहिँ ।
इमि सा सकलउ जग जितै, निज गुण-दोष-शतेहिँ ।। ।।
——नेमिनाथ-चरित संधि ७

(२) पुरुष (कृष्ण)-सौंदर्य

नीलकुंतल कमल-नयनिल्ल विंवाधर सित-दशन, कंबुग्रीव पुर-अरर[१] उरतल ।
युग-दीरघ-भुज-युगल वदन सीस जिमि कमल-उत्पल ।
पद्मदलारुण कर - चरण, तप्तकनक - गोरंग ।
आठ वर्ष वय प्रभु हुयेंउ, समधिक-विजित-अनंग ।।
——वहीं

(३) विवाह-महोत्सव

तव प्रभूतइ लग्न समये मिलितेहिँ सुहृद्-साजनहितैषि, कुमर कुमरीहु दोनउ ।
प्रारब्ध विवाह-विधि तपनः-खचर-[२]प्रभ दुहित अन्यउ ।

---

[१] अरर—कपाट　　[२] विद्याधर

नियं-नियं जणयाणुग्गहिणु, कयसायर सिंगार ।
लग्ग कुमारहु पाणितलें, फुरिय मलय-पव्भार ॥

ता कुमारहु वित्ति विवाहेँ परारंत महूसवेण नयरलोउ सयलोगि वहरिसु ।
आमीसहँ गय-सहस देइ कुणइ मंगलिय पगरेसें ।

अह नरनाहें ण वित्थरेंण, निय-नयरंमि असेसं ।
पारद्धउ वद्धावणउँ, तंमि विवाहु विसेसें ॥

वज्जंत गज्जंत वहुभेय-तूरं । लभिज्जंत दिज्जंत कप्पूर-पूरं ।
पणच्चंत णच्चंत वेसा-समूहं । दसिज्जंत हिंडंत लावणयतूहं ।

एंत गच्छंत चिट्ठत वहुसज्जणं । लेंत वियरंत सुयसंत जण-रंजणं ।
खंत पिज्जंत दिज्जंत वहुभक्खयं । लोय उल्लसिय वहुभेय भणसुक्खयं ।

धावंत कीलंत वग्गंत खुज्जयगणं । वंत उट्ठत निवटंत वालयजणं ।

—णायकुमार-चरिउ[1]

(४) नारी-विलाप

हरिण-णयणिय चंपयच्छाय ससि-सोमवयणंवुरुह, कुंद-कलिय-सम-दंत-पंतिया ।
परिदेविय रव-भरिय धरणि गयण अंतरमय थिय ॥

कुट्टहिँ सिरु कर-मुग्गरिहिँ, पीडहिँ उरु वादाहिँ ।
ताडहिँ वच्छोरुहवियउ, निय-करसाहाहिँ ॥

रुयहिँ गायहिँ ललहिँ मुच्छहिँ सिवकारहिँ पुक्कारिहिँ, साहिहि गहियउ उरें हार तोडहिँ ।
उल्लूरहिँ चिहुर-भर कणय-रयण-वलयावलि मोडहिँ ॥

सरिवि सरिवि निय-पियय महु, गुणगणु तहिँ विलवंति ।
जह स विहट्टिय तरु विहय, नियरु वि रोयावंति ॥

—णायकुमार-चरिउ[2]

---

[1] संधि ७ [2] संधि ६

निज निज जनकानुग्रहेँउ, कृत - सादर - शृंगार ।
लाग कुमारह पाणितलेँ, फुरिय मलय पहुहार ॥

तौ कुमार-कुल-विवाहेँ पसरंत महोत्सवेँ, नगर लोग सकलऊ सँहर्षेउ ।
आशीषहँ शत-सहस देइ करै मंगलिय प्रकर्षेउ ।

अथ नरनाथेँ विस्तरेँ, निज नगर ही अशेषेँ ।
प्रारंभेउ बधावनउ, नेहिं विवाह - विशेषेँ ॥

बाजंत गाजंत बहुभेद-तूरं । लभिजंत दीयन कर्पूर-पूरं ।
न-नाचंत नाचंत वैश्या-समूहं । द्रशिज्जंत हिंडंत वामन-समूहं ।

जांत आवंत तिट्ठंत बहुसज्जन । लेंत वितरंत सुप्रशांत जनरंजन ।
खात पीयंत दीयंत बहु-भक्षण । लोक उल्लसिय बहुभेद मनमुक्खयं ।
धावंत क्रीडंत वल्गंत कुब्जक-गण । वांत उट्ठंत निपतत बालकजनं ॥

—वही

(४) नारी-विलाप

हरिन-नयनिय चम्पक-छाय शशि-सौम्य वदनाबुरुह, कुंदकलिय-सित-दंत-पंक्तिया ।
परिदेयेँउ रव-भरिय धरणि-गगन-अंतरमय इव ॥

कूटैँ शिर कर - मुद्गरिहिँ, पीडैँ उरु - पादाहूँ ।
ताडैँ वक्षोरुह विकट, निज(निज)कर-शाखाहिँ ॥

रोवैँ गावैँ ललैँ मूर्छैँ सीत्कारैँ पुक्कारैँ, सखिहि गहिउ उर-हार तोड़हीँ ।
उल्लूरैँ[१] चिकुर-भर कनक-रतन-वलयालि मोडहीँ ।

सुमिर सुमिर निज-प्रियहं मह्मँ,-गुण-गण तहँ विलपंति ।
जिमि स-तिरस्कृत-तरु विहग. नितरुउ रोआपंति ॥

—वही संधि ६

[१] लोचैं

३—कविका संदेश

(सब तुच्छ)

तरल् तारुण्णु जल'व चवल संपयवि ।
इच्छ आयास मदुलह पुणु वंचियवि ॥
तप्पु विणस्सरु सयण नियय कज्जट्ठिया ।
विसम-परिणामु'वि हि कामिणि 'वि दुट्ठिया ॥
पिसुणवल पिच्छिणो महि दुराराहया ।
मणुवि मक्कड, मयच्छीउ तव्वाहया ॥

—वहीं

§३२. अज्ञात कवि

(बीसल-देव काल ११५३–६४)

(१) जगडू साहुके दानकी प्रशंसा

नउ करवाली मणियडा, ते अग्गीला च्यारि ।
दानसाल जगडू-तणी, दीसइ पुहवि मँझारि ॥११८॥
बीसलदे विरुग्रं करइ-जगडु कहावइ जी ।
तु(उ) परीसइ फालिसिउँ, एउ परीसइ घी ॥११९॥

—उपदेशतरंगिणी, पृ० ४१-४२

(२) अकालमें दुर्दशा

कल्लिहिँ बोर जि वीणती, अज्ज न जाणइ खक्ख ।
पुणरवि अडविहिँ करि सुघर, न सहुँ एह अणक्ख ॥१३७॥
भूमी गुणेण जइ कहवि तुंगिमा तुज्झ होइ ता होउ ।
तह तुह फलाण रिद्धी होही वीग्राणुसारेण ॥१३८॥

—उ० त०, पृ० ४६

३—कविका संदेश

(सब तुच्छ)

तरल तारुण्य जल इव चपल संपदउ।
इच्छि आकाश मृदुलह पुनि वंचियउ॥
ताप विनश्वर शयन निजय कार्य-ट्ठिया।
विषम-परिणामउ हि कामिनिउ दुट्-ठिया॥
पिशुन-बल प्रेक्षका महि दुराराधआ।
मनउ मर्कट, मृगाक्षीउ तद्-बाधआ॥
—वहीं

§ ३२. अज्ञात कवि

कृति—स्फुट

(१) जगड्डू साहुके दानकी प्रशंसा

ना करवाली मनियरा ते आगिल्ला चारि।
दानशाल जगडूकेंरी, दीसै पुहवि-मँझारि॥११८॥
बीसलदे विरुद करै, जगडु कहावै जीव।
तू(नो) परसै फालसैं, एह परीसै घीव॥११९॥
—उपदेशतरंगिणी, पृ० ४१-४२

(२) अकालमें दुर्दशा

कालहिँ वोर जो वीनती, आज न जानै कक्ख।
पुनरपि अटविहिँ करिसु घर, ना सँग एह अनक्ख॥१३७॥
भूमि गुणेहीँ यदि कहबि तुंगिमा तुज्झ होउ ता होउ।
तिमि तव फलाहँ ऋद्धी होही बीजानुसारेहीँ॥१३८॥
—उपदेशतरंगिणी, पृ० ४१, ४२, ४६

§३३. आम भट्ट

काल, (जयसिंह—कुमारपाल १०९३-११४२-७३)। देश—अन्हिलवाड़ा-

सामन्त-प्रशंसा

(१) जयसिंह (सिद्धराज)-प्रशंसा

डरि गइंद डगमगिअ चन्द करमिलिय दिवायर,
डुल्लिय महि हल्लियहि मेरु जलझंपइ सायर।
सुहडकोडि थरहरिय कूरकूरंभ कडक्किअ,
अतल वितल धसमसिअ, पुहवि सहु प्रलय पलट्टिय ॥
गज्जंति गयण कवि **आम** भणि, सुरगणि फणिमणि इक्कहूअ।
मागहि हिमगहि सम गहि मगहि मुंन मुंछ **जयसिंह** तुह ॥२०२॥

(२) कुमारपाल-प्रशंसा

रे रक्खइ लहुजीव वडवि रणि मयगल मारइ,
न पिइ अणगलनीर हेलि रायह संहाइ।
अवर न बंधइ कोइ सघर रयणायर बंधइ,
परनारीं परिहरइ लच्छि पररायह रुंधइ।
कुमरपाल कोपिँ चडिउ फोडइ सत्तकडाहि जिमि,
जे जिणधम्म न मन्निसइँ तीहवि चाडिसु तेम-तिग ॥२०४॥
—वहीँ उ० त०, पृ० ६५

§ ३३. आम भट्ट

पाटन (गुजरात)। कुल—ब्राह्मण, राज-कवि। कृतियाँ—स्फुट

सामन्त-प्रशंसा

(१) जयसिंह (सिद्धराज)-प्रशंसा

डरि गयंद उगमगिय चन्द करमिलिय दिवाकर,

डोल्लिय महि हल्लियह गेरु जल जंपै सागर।

सुभट-कोटि थरर्थारिय कूर-कूरम्भ कडक्किय,

अतल वितल धमर्मागय पुहवि सँग प्रलय पलट्टिय।

गर्जंति भगन कवि आम भन, सुर-मणि फणि-मणि एक हुअ।

भागहि हिम गहि मम गहि मगहि मुच मंछ जयसिंह तुव ॥२०३॥

(२) कुमारपाल-प्रशंसा

रे राखै लघुजीव वडउ रणें मदकगल मारै,

न पिउ अनर्गल नीर हेरि राजहँ संहारै।

अवर न बाँधै कोउ स-घर रतनाकर वावै,

परनारी परिहरै लच्छि पर-राजहँ ख्वै।

कुमरपाल कोपी चढेउ फोडै मप्तकडाहि जिमि।

जो जिनधर्म न मानिहैं, नेहहिँ चाढिसु ताम तिमि ॥२०४॥

—उपदेशतरंगिणी (पृ० ६८, ६५)

§ ३४: विद्याधर

काल—११८० (जयचंद ११७०-९४)। देश—कन्नौज। कुल—ब्राह्मण,

(सामन्तोंकी प्रशंसा)

जयचंद-महिमा[1]

(वीर-रस)

चंदा कुंदा कासा, हारा हीरा तिलोअणा केलासा।
जेत्ता जेत्ता सेत्ता, तेत्ता **कासीस** जिण्णिआ ते कित्ती ॥७७॥ (१३७)
विसुह चलिअ रण अचलु, परिहरिअ हअ-गअ-वलु।
हलहलिअ **मलअ** णिवइ, जमु जस तिहुअण पिअइ।
वरणसि-णरवइ लुलिअ, सअल उवरि जस फरिअ ॥८७॥ (१४८)
भअ भंजिअ **बङ्गा** भग्गु **कलिंगा**, **तेलंगा** रण मुक्कि चले।
मरहट्ठा ढिट्ठा लग्गिअ कट्ठा[2], **सोरट्ठा** भअ पाअ पले।
चंपारण कंपा पव्वअ झंपा, ओत्था ओत्थी जीवहरे।
कासीसर राआ किअउ पआणा, **विज्जाहर** भण मंतिवरे ॥१४५॥ (२४४)
राअह भग्गंता दिगलग्गंता, परिहर हअ-गअ-घर-घरिणी।
लोरहि[3] भर सरवरु पअ अरु परिकरु, लोट्टइ पिट्टइ तणु धरणी।
पुणु उट्ठइ संभलि कर दंतंगुलि, वाल तनअ कर जमल करे।
कासीसरु राआ णंहलु काआ, करु माआ पुणु थप्पि धरे ॥१८०॥ (२८९)
जे किज्जिअ धाला जिण्णु णिवाला, **भोट्टता** पिट्टंत चले।
भंजाविअ **चीणा** दप्पहि हीणा, लोहावल हाकंद पले।

---

[1] "The King's (Jaichandra's) minister Vidyadhara" the Hist. of Rashtrakuta, p. 128. [2] दिशा
[3] **लोर (मल्लिका) आंसू**

§ ३४. विद्याधर

राज महामंत्री।[1] कृतियाँ—स्फुट कविताये[2]।

(सामन्तोंकी प्रशंसा)

जयचंद-महिमा

(वीर-रस)

चंदा कुंदा कासा हारा हीरा त्रिलोचना कैलासा।
जेत्ता जेत्ता श्वेता, तेत्ता कासीस जीतिया तव कीर्त्ति ॥७७॥

विमुख चलिय रणें अचल, परिहरिय हय-गज-बल।
हलहलिय **मलय** नृपति, यासु यश त्रिभुवन पिवई।
बनरसि-नरपति लुलिय सकल-उपरि यश फुरिया ॥८७॥

भय भाजिय **बंगा** भागु **कलिंगा, तेलंगा** रण मुंचि चले।
मरहट्ठा दिट्ठा लागिय काष्टा, **सौराष्ट्रा** भय पाद पड़े।
चंपारन कंपा पर्वत झंपा, उट्ठी उट्ठी जीवहरे।
काशीश्वर राना कियेउ पयाना, **विद्याधर,** भनु मंत्रिवरे ॥१४५॥

राजा भागंता दिश-लागंता, परिहरि हय-गज-घर-घरनी।
लोरहिं भरु सरवर पद पर-परिकर, लोटै-पीटै तनु धरणी।
पुनि उट्ठै संभलि कै दंतांगुलि, बाल-तनय कर यमल करै।
काशीश्वर-राजा स्नेहल-काया, करु माया, पुनि थापि धरै ॥१८०॥

जेहिं कीजिय धारा जित्तु **नेपाला, भोट्टंता** पिट्टंत चले।
भंजावेउ **चीना** दर्पहिं हीना, लोहावलें 'हा'क्रंदि पड़े॥

---

[1] **'सर्वाधिकार-भार-धुरंधरः।...चतुर्दशविद्याधरो विद्याधरः...।" प्रबंध-चिन्तामणि (मेरुतुंगाचार्य १३०४ ई०) पृष्ठ ११३-१४ (सिंघी जैन-ग्रंथ माला १, शांतिनिकेतन १९३२ ई०)** The king's (Jaichanda's) minister Vidyādhara. Hist. of the Rashtrakutas (Altekar) p. 128

[2] **"प्राकृत-पैंगल"** (Biblio thica Indica) **में संगृहीत। जिनमें कविका नाम नहीं, उनका कर्तृत्व संदिग्ध है।**

ओड्डा उड्डाविअ किसी पाविअ, मोलिअ मालव-राअ-बले ।
तैलंगा भग्गिअ पुणवि ण लग्गिअ, कासीराआ जखण चल ॥१०९॥ (३१५)
भत्ति पत्ति पाअ भूमि कंपिआ, टप्पु खुंदि खेह सूर भंपिआ ।
गोलराअ-जिण्णि माण मोलिआ, कामरूअ-राअ बंदि छोलिआ ॥१११॥ (४२३)
भंजिआ मालवा गंजिआ [1]कण्णला, जिण्णिआ गुज्जरा लुठिआ कुंजरा ।
बंगला-[2]भंगला-ओड्डिआ मोड्डिआ, मेच्छआ कंपिआ कित्तिआ थप्पिआ ॥१२८॥(४४६)
रे गोड ! थक्कंति ते हत्थि-जूहाइ, पल्लट्टि जुज्झंतु पाइक्क-बूहाइ ।
कासीसु राआ सरासार अग्गे ण, की हत्थि की पत्ति की वीर-वग्गेण ॥१३२॥ (४५०)

§ ३५: शालिभद्र सूरि

काल—११८४ ई०। देश—गुजरात। कुल—...जैन साधु।

सामन्त समाज

(१) सिंहासनासीन राजा

पखवि पुरह प्रवेसु, दूत पहूतउ रायहरें ।
सिउँ प्रतिहार प्रवेसु, पामिय नरवर-पय नमइ ॥६८॥
चउकिय माणिक-थंभ-, माहि बईठउ बाहूबलें ।
रूपिहिं जीसिय रंभ, चमरहारि चालइँ चमर ॥६९॥
मंडिय मणिमइ दंड, मेघाडंबर सिर धरिय ।
जस पयडे भुयदंडि, जयवंती जयसिरि वसइँ ॥७०॥
जिम उदयाचल सूर, तिम सिरि सोहइ मणिमुकुटों ।
कस्तुरि कुसुम कपूर, कूचुंबरि महमह(मह)ए ॥७१॥

---

[1] कर्नाटक [2] भग्गल—अंगदेश (भागलपुर प्रदेश)

ओड्डा उड्डापेउ कीर्त्ती पायेउ, मोडिय मालव-राज बले ।
तेलंगा भागेउ पुनहु न लागेउ, काशी-राजा जवन चले ॥१६८॥
भट्ट पत्ति[1]-पाद भूमि कंपिया, टाप खूँदि खेह सूर झंपिया ।
गौड-राज जित्तु मान मोड़िया, कामरूप-राज बंदि छोड़िया ॥१११॥
भंजिया मालवा गंजिया कन्नडा, जिन्निया गुर्जरा लूटिया कुंजरा ।
बंगला भंगला ओडिया मोडिया, म्लेच्छवा कपिया कीतिया थापिया ।१२८।
रे गौड ! थाकंति ते हस्ति-यूथाइं, पल्लट्टि जूझन्ति पाइक्क इयूहाइं ।
काशीश राजा सरासार आगेहिं, की हस्ति की पत्ति की वीर-वग्गेहिं ॥१३२॥

§ ३५: शालिभद्र सूरि

कृति—बाहुबलिरास[2]

सामन्त-समाज

(१) सिंहासनासीन राजा

पेखें उपुरहँ प्रवेश, दूत बहुतउ राजघरें ।
स्वयं प्रतिहार प्रवेशु, पाइय नरवर-पद नमैं ॥६८॥
चउकी माणिक-थंभ-, माँझ बइठउ बाहुबलि ।
रूपे जैसी रंभ, चमरधारि चालैं चमर ॥६९॥
मंडित मणिमय दंड, मेघाडंबर पशर धरिय ।
जसु प्रकट भुजदंडें, जयवंती जयश्री वसिय ॥७०॥
जिमि उदयाचलें सूर, तिमि शिर सोहै मणि-मुकुट ।
कस्तुरि-कुसुम कपूर-, कच्चूमर महमह-महइ ॥७१॥

---

[1] प्यादा, पदाति [2] "भारतीय-विद्या" (वर्ष २, अंक १) में मुनि जिनविजय जी द्वारा पंद्रहवीं-सोलहवीं सदीके हस्तलेखके आधार पर सम्पादित

सेअ-'सअ-पगुरण वहल-सिरिहड-रसु-ज्जल,
बहु-पहुल्ल-विअइल्ल-फुल्ल-फुल्ला विअ-कुतल ।
तो पयड धाइ दसण-जणिय-खल-यण-उर-भर-भारिअ,
अहिसरइ चद-सुदर निसिहिं, पइँ पिअयम-अहिसारिआ ॥११॥
जइ तुह मुह करयलु उ मोडवि । चल्लिअ चीरचलु अच्छोडवि ।
माणिणि ! तुवि पसाओं-करिसुम्मउ । पइँ पिइ उत्तावलिअ म गम्मउ ।
जइ किं वइवि सवह-पय-जुयलु, इह विहि वसिण विहट्टइ ।
ता तुज्झ मज्झु खीणतु खरउ, किं न खामोअरि ! तुट्टइ ॥१३॥
गोवी-अण-दिज्जत-रासय निसुणतहँ,
वासा-रत्ति पहुच्चइ पहिअहँ पवसतहँ ।
निअ-वल्लह तिँव किँवइ हिअयतरि निवडिअ,
जिँव जनह न वहति चलण नावइ निअडिअ ॥३॥
अहरुट्ठ दलइ जवापसूण दत-कुद,
पाणि-चरण-नयण-वयण विअसि-आरविंद ।
कुसुम परु पच्चक्खु'वि सुदरि ! तुज्झ देहु,
तुह तनु-मज्झ-देसु वहसि विवरीउ एहु ॥५॥
हसि तहारओं गइ-विलासु पडिहासइ रित्तओं,
कोइल-रमणिइ तुहवि कठु कुंठत्तणु पत्तओं ।
विरहय कक्केल्लिह दोहल सपइ पूरतिअ,
ज किर कुवलय-नयण एह हिंडइ गायंतिअ ॥८॥
भ्रू-वल्लि-चावयं मणोहवस्स ससितुल्ल वयण,
अग चामीअरप्पहँ अहिणव-कमल-दल-नयणं ।
तीए हीरावलिव दतंपति विद्दुम अहरं,
पेच्छंताणं पुणो पुणो, काण न हवइ मणं विहुर ॥११॥
निच्छिउ करिवि चंदु दोण्णि खंड । तहि निम्मिय मय-नयणाइ गंड ।
वर-कुसुमंडेविणुं गध-चगु । कोमलु तह विरइओं एहु अगु ॥१४॥

श्वेतांशुक-प्रावरण-बहुल, श्रीखड-रसोज्वल ।

बहुप्रफुल्ल विकचिल्ल-फुलन फुल्लाविय कुतल ।

तो प्रकट धाइ दर्शन-जनिन खल-जन उर-भर-भारिया ।

अभिसरै चद्र-सुदर निशिहिँ, तैँ प्रियतम अभिसारिया ॥११॥

यदि तुहँ मुख-करतल उ मोडवि । चल्लिय चीराचले आ-छोड़वि ।

मानिनि ! तव प्रसाद करि सुनऊ । तैँ प्रिय उत्तावल्लिय न जावउ ।

यदि कि पतिउ संवह पदयुगल, इहँ विधि-वशेँहि बाटई ।

तौ तव मध्य क्षीणतउ खरउ, किं न क्षामोदरि ! टूटई ॥१३॥

गोपी-जन दीजंत राशक नि-सुनतहँ ।

वासर-रात्रि पहूँचै पथिकहँ प्रवसंतहँ ।

निज-वल्लभ तिमि किमिवहि हृदयतरेँ निवडिय ।

जिमि जनह न वहति चरण नावैं निगडिय ॥३॥

अधरोष्ठ दलै जवाप्रसून दत कुद,

पाणि-चरण-नयन-वदन विकसित-अरविंद ।

कुसुम पर प्रत्यक्षउ सुदरि ! तव देह,

तव तनु-मध्यदेश वहहु विपरीत एह ॥५॥

हसि तुहारउ गति-विलासेँ प्रतिभासै रिक्तउ,

कोकिल-रमणिहि तोर कठेँ कुठत्त्वहिँ प्राप्तउ ।

विरहइ कंकेली दोहल सप्रति पूरेतिअ,

जो पुनि कुवलय-नयनेँ ! एह हिडै गायतिअ ॥८॥

भ्रूवल्लि-चापकं मनोभवहँ शशि-तुल्यंव्वदन,

अगे चामीकर-प्रभ अभिनव-कमलदल-नयनं ।

ताही हीरावली'व दतपवित विद्रुम अधरं ।

पेखंतेहिँ पुनी पुनि , काहु न होई मन विधुरं ॥११॥

निश्चय करवि चद दोँइ खड । तहि निर्मित मदनयनइँ गड ।

वरकुसुम लेपियउ गंध चंग । कोमल तिमि विरचिय एहु अंग ॥१४॥

कुमुअ-कमलहँ एक्क उप्पति मउलेइ तुवि,
कमल-वणु कुमुअ-सड्डु निच्चुवि विश्रासइ।
स-च्छद-विश्रारिणिश्र चद-जोण्ह कि मत्त-वालिश्रा ॥१६॥
मणहरु तुह मुह-सरुह, रयणीअर-विब्भमु धरइ ।
कामिणि हास-विलासु'वि, जोण्हा-पसरहु अणुहरइ ॥४४॥
कवणु सु धन्नउ जिण विणु, कामिणि कंकण हत्थश्रो विअलहिँ ।
अन्नु कि ऍंवइ ससि-मुहि, हिडइ उन्नमिहहिँ कर-कमलहिँ ॥५१॥
जइ गगा-जलि धवलि, कालइ जउणा-जलि जइ खित्तअउ ।
राय-हसि नहु वहु न तुट्टु, सुज्झत्तणु तुवि तेत्तउ ॥१०७॥
वयणु सरोजु नयण कुवलय-दल, हासु नव-फुल्लिअ मल्लि ।
कर-पाय असोअ-पल्लव-च्छाय, सहजि कुसुमाउह भल्लि ॥१०८॥
तुहुँ उज्जाणि म वच्चसु जइवि हु, विलसइ मयणूसवु पवलु ।
गइ-नयणिहिँ लज्जीहइ तुह हंसीउलु सहि तह हरिण-उलु ॥८॥
पिउ आइउ निवडिउ पइहिँ, सपणय-वयणिहिँ, अणुणिवि माणु मुआविआ ।
इअ सिविणयभरि आलिंगिमि जाँवहिँ ताँवहिँ सहि ! हय कुक्कुडि रडिआ ॥२७॥
—छन्दोनुशासन (पृ० ३४क ख, ३६क, ४-क ख, ४२क, ४३ ख, ४४ख)

(५) ऋतु-वर्णन

(क) पावस

रेहइ अरुण-कंति धरणी-अलि इदगोवया[1],
पाउस-सिरि नाइ पय जावय-बिदु लग्गया ।
एहवि विज्जु-लेह कलकंतिअ बहल-कंतिआ,
लक्खिज्जइ जायरूव-निम्मिअव्व कठिआ ॥७॥
मत्तंबुवाह वरसतिण पड समहिओ,
आयण्णसु सपय महिअलि ज विरहओ ।

---

[1] वीरबहूटी

कुमुद-कमलह एक उत्पत्ति मुकुल तउ,

कमल-वन कुमुद-पड नित्यहिँ विकासै।

स्नच्छद-विहारिणिय चंद्र-ज्योत्स्न कि मत्त-वालिका ॥१६॥

मनहर तव मुख-सरुरुह, रजनीकर-विभ्रम धरइ।

कामिनि ! हास-विलासउ, ज्योत्स्ना-प्रसरह अनुहरइ ॥४४॥

कवन सोँ धन्यउ जिन विनु, कामिनि कंकण हस्तहँ विगलै।

अन्य कि एव शशिमुखि, हिडै उन्नमितइँ कर-कमलैँ ॥५१॥

यदि गंगा-जलेँ धवली, कालइ यमुना-जलेँ यदि क्षिप्तऊ।

राजहंसि नभ वहु न टूटु, शुद्धत्वेँ तय नेत्तऊ ॥१०७॥

वदन-सरोज नयन कुवलय-दल, हास नव-फुल्लिय मल्ली।

कर-पाद अशोक-पल्लव-छाय, सहजे कुसुमायुध भल्ली[१] ॥१०८॥

तुहुँ उज्जैनि न अजहु जइविहु, विलसै मदनोत्सव प्रबल।

गति-नयनेँहिँ लज्जीहै, तुहु हंसीकुल सखि तिमि हरिण-कुल ॥८॥

पिय आयउ नि-पडेँउ पदहिँ, स-प्रणय-वचनेँहिँ अनुनइ मान सोँ आविया।

इमि स्वपने भरि आलिगउँ जौ लोँ, तौ लोँ सखि ! हत कुक्कुटि रटिया ॥२७॥

—छन्दो० (पृ० ३४, ३६, ४०, ४२, ४३, ४४)

(५) ऋतु-वर्णन

(क) पावस

राजै अरुण-कांति धरणीतलेँ इन्द्रगोपका,

पावस-श्री न्याइँ पद यावक-विन्दु लग्गया।

ईहउ विज्जु-लेख कल-कंतिय बहुल-कंतिया,

लक्खीजै जातरूप - निर्मितव्य कंठिया ॥७॥

मत्त-'म्बुवाह वर्षतेहिँ पति समधिका,

आकर्णहु सम्प्रति महितलेँ जो विरचिया।

---

[१] भाला

हंस-हंकल-सद्दिण ज आसि णोहरु, दद्दुर-रडिआउलु निम्मिओ तं सरवरु ॥ ६ ॥

गहिरु गज्जइ धरइ मय - वारि, विहल - घुलु नहु कमइ ।
दुन्निवारु दिसि-दिसि पलोट्टइ ! ओ मत्त-वालिय-सरिसु विसम-चेट्टु पाउसु पयट्टइ॥ १८॥

गज्जइ घण - माला घणघणाहु । न मयण - निवइणो कुंजर।- घड ॥६१॥

कुसुमग्गमु अज्जुण-केअइ-कुडयहु । पेच्छिवि कहवि हु न हु रइ-मडहिँ ।
नव - पाउसि पइसतइ ओ जाइ । निअंत भमर दुओ हिंडहिँ ॥३७॥

वज्जहिँ गज्जिर-घण-मद्दल, नच्चहिँ नह-यल-अंगणि नव-चचल-विज्जुल ।
गायहिँ सिहि इह संगीअउ, पाउस-लच्छिहिँ करइ जुआणहु मण-आउल ॥४३॥

—छन्दोनुशासन[1]

(ख) शरद्-वर्णन

तरुणी किलकिंचिअइँ विसट्टहिँ, ससि-जोण्ह-समुज्जल रत्तडी ।
मल्लिअ पुल्लइँ परिमल-सारइँ, जउ तउ गय मग्गहु वत्तडी ॥११३॥
तुहु मुहुलायन्न-तरंगिणिएँ, झलकंतउ कंति-करविअओ ।
सोहइ निम्मल-वट्टुल-मडलु, जल-मज्झि नाइ ससि-बिंबिओ॥११४॥

—छन्दो० (पृ० ३५ख, ३६ख, ४१क, ४५क)

(ग) हेमन्त-वर्णन

महु-रसु घुटिउ जेहिँ जहिच्छइ, ते अलि दीसँत भमंत ।
मालइ-ओहुल्लणउँ करतिण, कि सोँहिओँ पइँ हेमंत ॥१११॥

—छन्दो०[2]

(घ) वसंत-वर्णन

किं न फुल्लइ पाडल पर-परिमल । महमहेइ किँ न माहवि अविरल ।
नवमल्लिअ कि न दलइ पहल्लिय । किं उत्थरइ कुसुम-भरि मल्लिय ।

---

[1] पृ० ३५ख, ३६ख, ४१क, ४५क [2] पृ० ४२ ख

हंस-हकल-शब्दे`हिँ जो अहे`उ नोहर, दर्दुर-रटनाकुल निर्मित सो सरवर ॥ ९ ॥

गँभिर गर्जे धरै मद-वारि, विहूल नभ क्रमई,
दुर्निवार दिशि-दिशि प्र-लोटै, ओ मत्त-वालिक-सदृश विषम-चेट पावस प्रवर्त्ते ॥१८॥

गर्जै घनमाला घनघनाइ, जनु मदन-नृपतिकर कुजर-घट ॥ ६१ ॥

कुसुमोद्‌गम अर्जुन-केतकि-कुटजहँ। पेखिय कइविउ नहि रति-मडहिँ।
नव-पावसे` पइसतइ ओ जाइ, देखत भ्रमर दून हिंडहिँ ॥३७॥

बाजै` गज्जर-घन-मर्दल, नाचै` नभतल-आगने` नव-चचल-विज्जुल।
गावै` शिखि इहँ सगीतउ, पावस-लक्ष्मिहि करै युवानह मन-आकुल ॥४३॥

—छन्दो० (पृ० ३५, ३६, ४१, ४५)

(ख) शरद्-वर्णन

तरुणी किलकिंचितै` विसट्टै`, शशि ज्योत्स्न-समुज्ज्वल-रातडी।
मल्ली फुल्लै परिमल सारै`, जो तो गय मागहु वातडी ॥११३॥
तव मुख-लावण्य-तरंगिणिएँ, झलकतउ कांति करवितओ[१]।
सोहै निर्मल-वर्त्तुल-मडल, जल-माँझ न्याइँ शशि-विबओ ॥११४॥

—छन्दो० (पृ० ३५, ३६, ४१, ४५)

(ग) हेमन्त-वर्णन

मधु-रस घोँटिउ जेहि यथेच्छहँ, ते अलि दिसत भ्रमत।
मालति-ओलहनउ करति, की साधिउ तैँ हेमंत ॥१११॥

—छन्दो० (पृ० ४)

(घ) वसंत-वर्णन

की न फूलै पाटल पर-परिमल। महमहै की न माधवि अविरल ॥
नव-मल्लिक की न दलै पहँपिया। की उच्छलै कुसुम-भरे` मल्लिय।

---

[१] पुष्ट

दीहिय-तलाय-सर-तल्लडिहिँ । कि न पमाहि पउमिणि फुडइ ।
तुवि जाइ जाय-गुण-संभरणु झाणु । कि भसलुहु मणि खुडइ ॥१२॥
सुणिवि वसति पुर-पोढ-पुरधिहिँ रासु ।
सुमरि विलडहि हूओ तक्खणि पहिउ निरासु ॥१५॥
मत्त-कोइल-नाय णदीइ सिगार-रसोगमिण, नच्चमाण-मायद-पत्तहि ।
अहिणिज्जइ मयण-जय-नाडउव्व, सपइ वसतिण ॥१६॥
लुट्टिद्दु चंदण-वल्लि-पल्लकि सम्मिलिदु लवग-वणि खलिदु वत्थु-रमणीय-कयलिहिँ।
उच्छलिदु फणि-लयहिँ घुलिदु सरल-कक्कोल-लवलिहिँ, चुबिदु माहवि-वल्लरहिँ ।
पुलइद-काम-सरीरु भमर-सारिच्छउ सचरइ, रट्ठउ मलय-समीरु ॥३१॥
माणु म मेल्हि [1]गहिल्लिएँ निहुई होहि खणु,
उभयओँ चदु पयट्टओँ रासावलय खणु ।
दिक्खिसु एहिवि नयणिहिँ, पइ हलि मयण-हय,
वल्लह पयह पडति, भणतिय वयण-सय ॥३॥
आमूलु वि वहु-पकिण सँवलिअ सव्व-वार-पडिबोह सोहर-हिय ।
कटय-सय-ससेविअ-जल-सयण, जिण उववयणु न सोहहिँ कमल-वण ॥७॥
कोइल-कल-रवु चदणु, चदुज्जोअ-विलासु ।
वल्लह-सगमि अमय-रसु, विरहिय जलिउ हुआसु ॥२६॥
जं सहि ! कोइल कलु पुक्कारइ, फुल्लु तिलओ ।
त पत्तु वसतु मासु, कामहु लीलालओ ॥६८॥
दीसइ उववणि, फुल्लिओ नाय-केसरो ।
न माहविण वण-सिरिहि दिण्ण-सेहरो ॥७२॥
कर असोअ-दलु मुहु-कमलु हसिउ नव-मल्लिअ ।
अहिणव-वसत-सिरि एह, मोहण-इल्लिअ ॥८६॥
पत्तउ एहु वसंतउ, कुसुमाउल-महुअरु ।
माणिणि ! माणु मलंतउ, कुसुमाउह-सहयरु ॥६४॥

---

[1] छोटेसे घरमें, छोटी उमरकी घरवाली (गृहिणिके !)

दीघी-तलाव-सर-तालडिहिँ। की न प्रसाधि पद्मिनि फूटई।
तहु जाति ! जात-गुण-सभरण ध्यान। की भ्रमरहु मणि खूटई ॥१२॥
सुनिय वसतें पुर-प्रौढ-पुरध्रिय रास।
सुमिरि बिलटहि हुयउ तत्क्षण पथिक निराश ॥१५॥
मत्त-कोकिल-नाद-नंदी श्रृगार-रसोद्गम्येँहि नृत्यमान माकद-पक्तिहिँ।
अभिनीजै मदन-जयनाटकहँ, सप्रति वसतें हीँ ॥१६॥
लोटिय चदन-वल्लि-पर्यंकेँ सम्मिलिय लवग-वनेँ स्खलिय वस्तु-रमणीय-कदलिहिँ।
उच्छलिय फणि-लतहिँ घुरिय सरल-ककोल-लवगिहिँ, चुविय माधवि-वल्लरिहिँ।
पुलकित काम-शरीर भ्रमर-सरीसउ सचरै, रोयउ[1] मलय-समीर ॥३१॥
मान न मेलि गृहिल्लिएँ, निभृता होहि क्षण,
उभयउ चद्र प्रकटेउ, रामा-वलय[2] क्षण।
देखिहु एहिहि नयनहिँ, तैँ री मदन-हत,
वल्लभ-पदहँ पडति, भनतिय वचन-शत ॥३॥
आमूलउ बहु-पकेँहिँ सँवरिय, सर्व-द्वार-प्रतिबोध सोहर-हिय।
कटक-शत-ससेविय जल-शयन, जिन उपवचन न सोहैँ कमल-वन ॥७॥
कोकिल-कलरव चदन, चद-उदोत-विलास।
वल्लभ-सगमेँ अमृत-रस, बिरहे जलेँउ हुताश ॥२९॥
जो सखि ! कोकिल कल-पुक्कारैँ, फुलेँउ तिलओ।
सो आउ वसत मास, कामहँ लीला-लयो ॥६८॥
दीसै उपवनेँ, फुल्लिय नागकेसरो।
जनु माधवेँ वन-श्रीहिँ दियेँउ शेखरो ॥७७॥
कर अशोक-दल मुख कमल हसित नव-मल्लिय।
अभिनव-वसत-श्री एह, मोहनइल्लिय[3] ॥८६॥
आयउ एहु वसंतउ, कुसुमाकुल-मधुकर।
मानिनि ! मान मलतउ, कुसुमायुध-सहचर ॥९४॥

---

[1] चिल्लाया [2] रश्मिवलय [3] मोहिनी

घोलिर-नवपल्लवु, परिफुल्लिओं रेहइ असोअ-तरु ।
विरइओं रम्मु नाइ, महु-मासिण कुसुमा-उहु-सेहरु ॥६८॥
—छन्दो०[1]

(४) विरह-वर्णन

जे महु दिण्णा दिअहडा, दइएँ पवसतेण ।
ताण गणतिएँ अगुलिउ, जज्जरिआउ नहेण ॥३३३॥
विरहानल-जाल-करालिअउ, पहिउ कोवि वुड्डिवि ठिअओ ।
अनु सिसिर-कालि सअल-जलहु, धूमु कहन्तिहु उड्डिअओ ॥४१५॥
पिय-संगमि कउ निद्दडी, पिअहों परोक्खहों केव ।
मइँ विन्नि'वि विन्नासिआ, निद्द न एँव न तेंव ॥४१८॥
हिअडा पइ एँहु बोल्लिअओं, महु अग्गइ सय-वार ।
फुट्टिसु पिएँ पवसतिहउँ, भडय ढक्करि-सार ॥४२२॥
सुमरिज्जइ त वल्लहउँ, ज वीसरइ मणाउँ।
जहिँ पुणु सुमरणु जाउँ गउ, तहों नेहहों कइँ नाउँ ॥४२६॥
हिअडा जइ वेरिअ घणा, तो कि अब्भि चडाहुँ ।
अम्हाहीं बे हत्थडा, जइ पुणु मारि मराहुँ ॥
रक्खइ सा विस-हारिणी, बे कर चुंबिवि जीउ ।
पडि विंबिअ-मुंजालु जलु, जेहिँ अहाडिउ पीउ ॥
बाह-विछोडवि जाहि तुँह, हउँ तेवइँ को दोसु ।
हिअय-ट्ठिउ जइ नीसरहि, जाणउँ मुंज स रोसु ॥४३९॥
--प्राकृतव्याकरण (१४७, १६५, १६९, १७०, १७३)

निक्कंदल-किय-कच्छ, नलिणि-वज्जिय-किय सरसरि,
निच्चंदण किय मलओं, तुहिण-वज्जिय किय हिमगिरि ।

---

[1] ३४ख, ३५ख, ३६क-ख, ३७क, ३९ख, ४१क-ख, ४२क, ४५क

डोलिलय नवपल्लव, परिफुल्लिय राजै अशोक-तरु ।
विरचेंउ रम्य न्याइँ, मधुमासेंहिं कुसुमायुध-शेखरु ।।९८।।
—छन्दो० (पृ० ३४-३७, ३९, ४१, ४२, ४५)

(४) विरह-वर्णन

जो मोंहिं दिन्ना दिवसडा, दयितें प्रवसतेइँ ।
ताह गनतिउ अगुलिउ, जर्जरियाउ नखेइँ ।।३३३।।
विरहानल-ज्वाल-करालियउ, पथिक कोउ बूडिय ठियउ ।
अनु शिशिर-कालें सकल-जलहु, धूम कहतिउ उट्ठियउ ।।४१५।।
प्रिय-सगमें कहँ नींदडी, प्रियह परोक्षहु केमि ।
मैं दोउहि विन्यासिया, निद्र न एम तेमि ।।४१८।।
हियडा तैं ऐंहु बोल्लियउ, मम आगे शतवार ।
फूटेंसु प्रिय प्रवसतही, भडक[1] ठिक्करि-सार ।।४२२।।
सुमिरज्जै तेंहिं वल्लभउँ, जो वीसरै मनाउ ।
जहँ पुनि सुमिरन चलि गउ, तह नेहह की नाउँ ।।४२६।।
हियरा यदि वैरी घना, तो की नर्भहिं चढाउँ ।
हमरो ही दो हाथडा, यदि पुनि मारि मराउँ ।।
राखै सा विष-धारिणी, दोउ कर चुंविय जीउ ।
प्रतिबिंबित-मुंजाल जल, जेंहिं ले लीयउ पीउ ।।
वाँह विछोडिय जाहि तुहुँ, हउँ तेवइँ को दोष ।
हृदय-स्थित यदि नीसरै, जानउँ मुंज सरोष ।।४३९।।
—प्राकृत-व्या० (पृ० १४७, १६५, १६९, १७०, १७३)

निर्-कंदल किय कच्छ, नलिनि-वर्जित किय सुरसरि ।
निश्चदन किय मलय, तुहिन-वर्जित किय हिमगिरि ।।

---

[1] भांडा बर्त्तन ।

निप्पल्लव किय करि पयत्तु-कंकेल्लि-विडवि-सय,
पत्त-चत्त किय बाल-कयलि, अकुसुम किय तरु-लय ।
सिसिरोवयार किहिं परियणिहिं, णिम्मुत्तावलि किय भुवण ।
तो विहु न तीइ विरह-तुह भरि. खमइ दाह-दारुण-विअण ॥४॥
तरुणि - हूण - गड-प्पहु - पुछिअ - तिमिर - मसि,
उक्क - झलुक्का[1]- वडणु दुसहु मा करउ ससि ।
मलयानिलु मय-नयणि घुणिअ-कप्पूर-कयलि-वणु,
मधुक्किय-मयण-'गि सहि ! इमा तुज्झ तवउ तणु ।
तणु-अगि ! म खडहडि पडहि तुह, मयण-वाण-वेयण-कलह ।
चयमाणु माणि वलहिण सहुँ, चडि म जीव समय-तुलह ॥१०॥
लायण्ण-विब्भम तरगतिहिँ । निद्दूढ-वम्म जिआवतिहिँ ।
प्रेमि प्रियाहिँ जो पुलोइज्जइँ । ता मत्तलोइ सग्गु पाविज्जइ ॥१३॥
मत्त-महुअरि-तार-झकार-कलयठि-कलयलिहिँ, मयण-धणु-हुडुकार-ससिहिँ ।
कह जीवहुँ विरहिणिउ, दुर - देस - पवसत - रमणिउ ॥२१॥
कुविदो मयणो महाभडो, वण-लच्छी अ वसत-देहिआ ।
कह जीवउँ सामि ! विरहिणि, मिउ-मलयानिल-फंस-मोहिआ ॥५४॥
जलइ जइवि कुसुम-लया-हरु, तवइ चदु जह गिम्हि दिवायरु ।
तुवि ईसा-भर-तरलिअ, पिअ-सहि वयणु न मन्नइ बालिअ ॥५७॥
जलइ सरोवरि नीलुप्पल-वणु ! वणि लय फुल्लिअ नहयलि हिम-किरणु ।
विरह-रहक्कइँ तुह तणु-अगिहिँ, सुहय ! विणिम्मिओ जलु थलु नहु जलणु ॥३२॥
सइ विज्जुल-अविउत्तउ तुहुँ जल-हर-करि, गुदलु निट्ठु न जाणसि विरहिअहँ ।
इअ भणि चितवि किपि अमगलु, दइअहुँ असु-पवाहु पलुट्टउ पँथिअहँ ॥४५॥
विरह रहक्कइँ सुहय न जपइ, न हसइ जीवइ केवलु पिअ-पच्चासइ ।
अहवा किंति उरत्थावण्णणु, करिसहुँ निच्छइँ मरिसहुँ तुहु जसु नासइ ॥४६॥

---

[1] ऊककी तरह भक्से बलनेवाला, ऊक भरकानेवाला

निष्पल्लव किय करि प्रयत्न कंकेलि-विटप-गत ।
पत्र-त्यक्त किय बाल-कदलि, अ-कुसुम किय तरु-लत ॥
शिशिरोपचार किउ परिजनिहिं, निर्मुक्तावलि किय भुवन ।
तोपिउ न नाहि विरह तुह भरें, खमै दाह-दारुण-विजन ॥८॥
तरुणि हूण-गंड-प्रभ पोंछिय तिमिर-मसि,
उल्क-झलुक्का बलन दुसह ना करउ शशि ।
मलयानिल मृग-नयनि घूर्णि कर्पूर-कदलि-वन,
सधुक्षिय मदनाग्नि सखि ! एँह तोर तपउ तनु ।
तनु-अंगि ! न खडहडि पहि तुहुँ, मदन-बाण-वेदन-कलह ।
त्यजमान मान वल्लभेंहिं संग, चढि न जीउ संशय-तुलहँ[1] ॥१०॥
लावण्य-विभ्रम-तरंगनिहिँ । निदृढ मन्मथ जियावतिहिँ ।
प्रेमें प्रियाहि जो पुलकिज्जै । तो मर्त्यलोकें स्वर्ग पाइज्जै ॥१३॥
मत्त-मधुकरि तार-झंकार कलकंठि-कलकलहिं, मदनधनु-टंकार-सरिसहिं ।
किमि जीवहु विरहिनिउ, दूर-देश प्रवसत रमणेंउ ॥२१॥
कुपितउ मदन-महाभटउ, वन-लक्ष्मीउ वसंत-रंगिता ।
किमि जीवउ स्वामि ! विरहिणी, मृदु-मलयानिल-स्पर्श-मोहिता ॥५४॥
ज्वलै यदपि कुसुमलता-घर, तपै चंद जिमि ग्रीष्म-दिवाकर ।
तउ ईर्ष्या-भर-तरलिय, प्रिय-सखि-वचन न मानै बालिका ॥५७॥
ज्वलै सरोवरें नीलोत्पल-वन । वनें लता फूलिय नभतलें हिमकिरण ।
विरह-धधक्कें तुह तनु-अंगिहिं, सुभग ! विनिर्मेउ जल थल नभ ज्वलन ॥३२॥
स्वयं विज्जुल अवियुक्तउ तुहँ जलधर कारि, गुदल[2] निष्टों न जानसि विरहियहँ ।
इमि भनि चिंतै किछुअ अमंगल दयितहँ, अश्रु-प्रवाह प्रलोटउ पथिकहँ ॥४५॥
विरह धधक्कैं सुभग न जल्पै, न हसै जीवै केवल प्रिय-प्रत्याशै ।
अथवा काउ अवस्था-वर्णन, करिहउँ निश्चय मरिहहुं तव यश नाशै ॥४६॥

---

[1] तराजू [2] मस्त

उण्हय अमयमऊह-मऊह विदूसहु, वदण-पकुवि जलइ लयाहरु वि ।
इय तुह विरहिण तहि तणु-अगिहि सुहय, सुहाइ न किंपि'वि पसिअहि दय करिवि ॥५०॥
—छन्दो०[1]

३—नीति-वाक्य

सायरु उप्परि तणु धरइ, तलि घल्लइ रयणाइँ ।
सामि सुभिच्चु 'वि परिहरइ, सम्माणेइ खलाइँ ॥३३४॥
गुणहिँ न सपइ कित्ति पर, फल लिहिआ भजति ।
केसरि न लहइ बोड्डिअबि, गय लक्खेहिँ घेप्पति ॥३३५।
जीविउ कासु न वल्लहउँ, धणु पुणु कासु न इट्ठु ।
दोण्णिवि अवसर-निवडिअइँ, तिण-सम गणइ विसिट्ठु ॥३५८॥
वासु महारिसि एँउ भणइ, जइ सुइ-सत्थु पमाणु ।
मायहँ चलण नवन्तहँ, दिवि-दिवि गगा-ण्हाणु ॥३९९॥
वम्भ ते विरला केवि नर, जे सव्वग-छइल्ल ।
जे वका ते वचयर, जे उज्जुअ ते बइल्ल ॥४१२॥
गयउ सु केसरि पिअहु जलु, निच्चितइँ हरिणाइँ ।
जसुकेरएँ हुकारडएँ, मुहहुँ पडति तृणाइँ ॥४२२॥
सिरि चडिआ खति प्फलइँ, पुणु डालइँ मोडंति ।
तोवि महद्दुग सउणहँ, अवराहिउ न करंति ॥४४५॥
—प्राकृतव्याकरण[2]

जे निअहिँ न पर-दोस । गुणिहिँ जि पयडिअ तोस ।
ते जगि महाणुभावा । विरला सरल-सहावा ॥१२४॥
पर-गुण-गहणु स-दोस पयासणु । महु महुरक्खरहि अभिअ-भासणु ।
उवयारिण पडिकिओ वेरिअणह, इअ पद्धडी मणोहर सुअणहँ ॥१२८॥
—छंदोनुशासन (पृ० ४३क)

---

[1] पृ० ३४क, ३५ख, ३६क, ४०ख, ४४ख, ४५क-ख

[2] पृ० १४७, १५२, १६१, १६६, १६९, १७५

उण्णइ अमृतमयूख मयूखउ दुस्सह, चदन-पकउ ज्वलै लताघर भी ।
एँहु तव विरहें तम तनु-अगिहि सुभग ! सोँहाइ न किछुउ प्रियसखि दयां करवि ।५०।
—छन्दो० (पृ० ३४-३६, ४०, ४४, ४५)

३–नीति-वाक्य

सागर ऊपर तन धरै, तलें घाले[1] रतनाइँ ।
स्वामि सुभृत्यहँ परिहरै, सम्मानेइ खलाइँ ।।३३४।।
गुणहिँ न सपति कीत्ति पर, फल लिखिया भजति ।
केसरि न लहै कोडियउ, गज लक्षहँ घेंप्पति[2] ।।३३५।।
जीविवु कासु न वल्लभउ, धन पुनि कासु न इष्ट ।
दोउहिँ अवसर आपड़े, तृण-सम गनै विशिष्ट ।।३५८।।
व्यास महाऋषि इमि भनै, यदि श्रुति-शास्त्र-प्रमाण ।
मातह चरण नमन्तहँ, दिनें-दिनें गंग-नहन ।।३९९।।
ब्रह्म ! सोँ विरला कोउ नर, जो सर्वांग छइल्ल ।
जो वका सो वचकर, जो ऋजुका सोँ बइल्ल ।।४१२।।
गयउ सोँ केसरि पियहु जल, निश्चिते हरिनाइँ ।
जासुकेर दह् हाडयें, मुखइँ पडति तृणाइँ ।।४२२।।
शिर चढिया खावइँ फलहिँ, पुनि डालिहिँ मोडति[3] ।
तऊ महाद्रुम शकुनहीं, अपराधी न करति ।।४४५।।
—प्राकृत० (पृ० १४७, १५२, १६१, १६६, १६९, १७५)

जे देखहिँ न पर-दोष,। गुणेँहिँ जें प्रकटैं तोष ।
ते जगें महानुभावा । विरला सरल-स्वभावा ।।१२५।।
पर-गुण-ग्रहण स्वदोष-प्रकाशन । मधु-मधुराक्षरें अमृत-भाषण ।
उपकारेँहिँ प्रतिकरिय वैरिजन, एँउ पद्धती मनोहर सुजन ।।१२८।।
—छन्दो० (पृ० ४३)

---

[1] डारै [2] लेते [3] तोड़ते

§ ३१. हरिभद्र सूरि

(चंद्रसूरि-शिष्य)। काल—११५९ ई० (जयसिंह-कुमारपाल १०९३-११४२-७३)। देश—गुजरात (अनहिलवाड़ा पाटणमें निवास) कुल—

१—प्रकृति-वर्णन

(१) प्रातः वर्णन

तपणु वियलिर तिमिर धम्मिलु परिरहसिर तारय वसण-कलयलत तरुसिहर पक्खिय।
परिसदिर कुसुम-महु-विंदु-मिसिणएँ पइ वड्डुक्खिय।
जस मइ कुमरिहें दुक्खेण वडरेण रयणि-विलीण,
पडिवक्खिय खर्याग्द सुहबुद्धि'व कुमुदणि की।
कुमर-रयणह पहु पयासें उ मित्र-वियसइँ विमिमुहइँ, उदयगिरिहिँ आरुहिउ दिणयरु।
रागावियउ वड्डनिरु रायहस कमलोह-सुहयरु।
पत्तावसर समुल्लसिय सभराय सिंगार।
न कुकुम कोसुभ वरवत्थ-कयालकार।
सत चक्कहँ विहिय सतोस पविरायइ पुव्वदिसि अवहरत तम-वल्लि-लज्जेण।
पसरत रायारुणेण नववहु'व्व रवि-दइय-संगेण।
उदयते णयरवि निवेण गजतेण पडिवक्खु।
कमलकोसें विणिहित करवट्टु गुरुत्तणें लक्खु।
हरिय तारय-रेणु-नियरमिश्रइ निप्पहें दोसयरें, निम्मलं मि गयणयलें चड्डिउ।
रवि रेहइ कणयमउ-मंगलज्जुन कलसु मंडिउ।
भमरा धावहिँ कुमुइणिउ उब्भिवि कमलवणेसु,
कस्सव कहि पडिबंधु जगें चिरपरिचिय-गणेसु।

---

*प्रो० हर्मान् याकोबी द्वारा संपादित—देखो पृ० ३८५ पर

(३) गुरुकी शिक्षाका फल

जांसु श्रावक[1] सो वोल न भावै, लिम्नन या।
जांसु प्राण हिन धरति, न श्रावक शुद्ध-नया ॥
जांसु भोजन न शयन, न अनुचित वइसनऊ।
संग प्रहरणे न प्रवेश, न दुष्टउ बोलनऊ ॥२१॥
जहं न हास ना हुड्, न खेल न रूसनऊ।
कीर्ति-निमित्त न दीजै, जहं धन आपनऊ ॥
करैं भि वहु-आस्वादन, जहं तृण मेलियई।
मिलिया केलि करंति, महिला[3] महलियई ॥२२॥
जहिं सक्रान्ति न ग्रहण, न मास न मडलऊ।
जहं श्रावक-श्री दीसै, कियउ न विट्टलऊ[4] ॥
स्नानचार जन मेलवि, जहं न विभूषणऊ।
श्रावकजनेहिं न करिय, जहं गृह-चिन्तनऊ ॥२३॥
जहं न आपु वर्णिज्जै, परउ न दूषियई ॥
जहं सद्गुण वर्णिज्ज, वि-गुण उपेक्षियई ॥
जहँ पुनि वस्तु-विचारणें, काँसुउ न वीं वियई।
जहँ जिन-वचन-उत्तीर्ण, न कथा प्रजल्पियई ॥२७॥
ऍहि अनुशोच प्रवृत्तह, शका न कोंउ करई।
भवसागरेंति पडत, न एकउ ऊतरई ॥
जे प्रतिशोच प्रवृत्तहिं, आपुउ जिय धरई।
अवशिय स्वामी होंनि ते, निर्वृनिपुर-वरई ॥३१॥
ताँसु पदपकज पण्यहिं, पायेंउ जनभ्रमरु।
शुद्ध-ज्ञान-मधुपान, करतउ होंइ अमरू ॥

---

[1] शिष्य [2] छोड कर [3] महिला, मेहरी
[4] विटलाहा (मल्लिका) = गया, पतित [5] छोडे [6] निर्वाण-पुर०

सत्थु हतु मो जाणइ, सत्थपसत्थ सहि ।
कहि अणुवमु उवमिज्जइ, केण समाण सहि ॥४३॥
इय जुग-पवरह सूरिहि, सिरि जिणवल्लहह ।
नाय समय परमत्थह, बहुजण-दुल्लहह ॥
तसु गुण थुइ बहुमाणिण, सिरि जिणदत्त-गुरु ।
करइ सु निरुवम, पावइ, पइ जिणदत्तगुरु ॥४७॥
—चाचरि[1]

३—वेश्या-निंदा

जोव्वणत्थ जा नच्चइ दारी । सा लग्गइ सावयह वियारी ।
तिहि निमित्तु सावयसुय-फट्टहिं । जंतिहिं दिवसिहिं धम्मह फिट्टहिं ॥३॥
बहुय लोय रायध सपिच्छहि । जिण-मुह-पकउ विरला वच्छहि ।
जणु जिणभवणि सुहत्थ जु आयउ । मरइ सु तिक्ख-कडक्खहिं घायउ ॥३४॥

४—कविका संदेश

(१) जात-पाँत मजबूत करो

बेट्टा-बेट्टी परिणाविज्जहिं । तेवि समाण धम्म-घरि दिज्जहिं ।
विसमधम्म-घरि जइ वीवाहइ । तो सम्मत्तु सु निच्छइ वाहइ ॥६३॥
इय जिणदत्तुवएस-रसायणु । इह-परलोयह सुक्खह भायणु ।
कण्णजलिहिं पियंति जि भव्वइँ । ते हवंति अजरामर सव्वइँ ॥८०॥
—उवएसरसायणु

(२) धर्मोपदेश

विक्कम संवच्छरि सय-बारह । हुयइ पणट्ठउ सुहु घरवारह ।
इय संसारि महाविण सत्तिहि । नत्तहि सुम्मइ सुक्खु वसतिहि ॥३॥

---

[1] विरहा गीत

शास्त्रहँते मो जाने, शास्त्र प्रशस्त मही।
किमि अनुपम उपमिज्जे, केन समान मही ॥४३॥
इति युग-प्रवरह सूरिहि, सिरि जिनवल्लभहा।
न्याय[1]-समय-परमार्थह, बहुजन-दुर्लभहा॥
तासु गुण-थुति बहुमानें, सिरि जिणदत्तगुरु।
करें मों निरुपम पाव, पद जिन-दत्त-गुरु ॥४७॥
—चाचरि

३–वेश्या-निंदा

यौवनार्थ जो नाचै दारी[2]। सा लागै श्रावकहँ पियारी।
तें हि निमित्त श्रावक श्रुत-फाडें। जाने दिवसें धर्महि फोडें ॥३३॥
बहुत लोग रागाध मों पेखहिँ। जिन-मुख-पंकज विरला वाछहिँ।
जन जिनभवनें शुभार्थ जों आयउ। मरे मों तीक्ष्ण-कटाक्षें घायलु ॥३४॥

४–कविका संदेश

(१) जात-पाँत मजबूत करो

बेटा-बेटी परनावीजै[3]। सोउ समानधर्म[4]-घरें दीजै।
विषम-धर्म-घरें यदि बीवाहै। तो सम्यक्त्व[5] सों निश्चय बाहै[6] ॥६३॥
इति जिनदत्तु-'पदेश-रसायन। इह-परलोकह सुक्खह-भाजन।
कर्णांजलिहिँ पियहि जे भव्यहँ। ते भवंति अजरामर सव्वैं ॥८०॥
—उवएसरसायण

(२) धर्मोपदेश

विक्रम-संवत्सर गत-बारह। होई प्रनष्टउ सुख-घरवारह्।
इति संसारें स्वभावें शाले हि। वर्त्तें सुम्मति सुक्खु वसते हि ॥३॥

---

[1] नात=ज्ञातृ(-पुत्र) महावीर [2] गणिका, दारिका [3] विवाहिज्जै
[4] एकधर्मी [5] जैनीपन [6] बहाना, फेंकना

तह वि वत्त नवि पुच्छहिं धम्मह । जिण गुरु मिल्लहि कज्जिण दग्गह ।
फलु नवि पावहि माणुस-जम्मह । दूरे होंति तिज्जि सिव-सम्मह ॥४॥
मोह-निद्द जणु सुत्तु न जग्गइ । तिण उट्ठिवि सिव-मग्गि न लग्गइ ।
जइ सुहत्थु कुवि गुरु जग्गावइ । तुवि तव्वयणु तासु नवि भावइ ॥५॥
परमत्थिण ते सुत्तवि जग्गहिं । सुगुरु-वयणि जे उट्ठेंवि लग्गहिं ।
राग-द्दोस-मोंह 'वि जे गजहि । सिद्धि-पुरंधि ति निच्छइ भुजहि ॥६॥
वहुय लोय लुंचियसिर दीसहिं । पर रागद्दोसिहिं सहुं विलसहिं ।
पढहिं गुणहिं सत्थइ वक्खाणहि । परि परमत्थु तित्थु सु न जाणहि ॥७॥
दुद्धु होइ गो-यक्किहि धवलउ । पर पेज्जतइ गंतरु बहलउ ।
एक्कु सरीरि सुक्खु सपाडइ । अवरु पियउ पुणु मसु 'वि साडइ ॥१०॥
ईसर धम्म-पमत्त जि अच्छिहि । पाउ करेवि ति कुगइहिं गच्छहिं ।
धम्मिय धम्मु करंति जि मरिसहि । ते सुहु सयलु मणिच्छिउ लहिसहि ॥२३॥
कज्जउ करइ बुहारी बुद्धी । सोहइ गेहु करेइ समिद्धी ।
जइ पुण सा वि जुयजुय किज्जइ । ता कि कज्जा तीएँ साहिज्जइ ॥२७॥
इय जिणदत्तुवएसु जि निसुणहि । पढहि गुणहि परियाणवि जि कुणहि ।
ते निव्वाण-रमणि सहुँ विलसहि । वलिउ न ससारिण सहुँ मिलिराहि ॥३२॥

काव्यस्वरूपकलक[1]

(३) दुर्लभ मानुष-जन्म

लद्धउ माणुस-जम्मु महारहु । अप्पा भवसमुद्दि गउ तारहु ।
आपु म अप्पहु रायह रोसह । करहु निहाणु म सव्वह दोसह ॥२॥

(४) गुरु सब कुछ

दुलहउ मणुय-जम्मु जो पत्तउ । सह लहु करहु तुम्हि सुनिरुत्तउ ।
सुह-गुरु-दसण विणु सो सहलउ । होइ न कीवइ वहलउ बहलउ ॥३॥

---

[1] अपभ्रंश-काव्य-त्रय, Gaikwad's Oriental Series, Vol. XXXVII, 1927

तँहाँ बात ना पूछैं धर्मह । जिन-गुरु मीलहिं कार्य दामहं ।
फल ना पावैं मानुष-जन्मह । दूरे होनि त्याग शिव-शर्महँ ॥४॥
मोह-निद्र जन सुत्तु न जागै । सो उट्ठिउ शिव-मार्ग न लागै ।
यदि शुभार्थ कोइ गुरु जग्गावै । तोउ तद्वचन तासु ना भावै ॥५॥
परमार्थे ते सूतउ जागैं । सुगुरु-वचनें जे उठिया लागै ।
राग-द्वेष-मोहउ जे गजैं । सिद्धि-पुरंध्रि ते निश्चय भजैं ॥६॥
बहुत लोग लुंचित-शिर दीसें । पर राग-द्वेषहिं सँग विलसें ।
पढैं गुनैं शास्त्रहिं वक्खानैं । पर परमार्थ-तीर्थ सो न जानै ॥७॥ . .
दुग्ध होइ गो-यक्कतउ धवलउ । पर पीवते अंतर बहुलउ ।
एक शरीर सुक्खु स-पावै । अवर प्रियउ पुनि मासउ स्वादै ॥१०॥
ईश्वर-धर्म प्रमत्त जे आछहिं[1] । पाप करिय ते कुगतिहिं गच्छहिं ।
धार्मिक धर्म करत जें सर्पहिं । ते सुख सकल मनोच्छित लभिहैं[2] ॥१३॥
कार्य करै (जो) बुहारी[3] बुद्धी । सोहै गेह करइ समृद्धी ।
यदि पुनि सोउ युगयुग कीजे । ता का कार्ये तीय साधीजे ॥१७॥
इति जिनदत्त-उपदेश जे सुनहीं । पढैं गुनैं परि-ज्ञान जें करहीं ।
ते निर्वाण-रमणि-सँग विलसहिं । तबेँउ न ससारे सँग मिलिसहिं[4] ॥२२॥
—काव्यस्वरूपकुलक

(३) दुर्लभ मानुष-जन्म

लाभेँउ मानुष-जन्म महारघु । आपें भव-समुद्रतें तारहु ।
आपु न अर्पहु रागहँ रोषहँ । करहु निधान न गर्वहँ दोषहँ ॥२॥

(४) गुरु सब कुछ

दुर्लभ मानुष-जन्म जो पायउ । सह लघु करहु तुम्म सु-निरुक्तउ ।
शुभ गुरु-दर्शन विनु सो सहलउ । होइ न करतें बहलउ[5] बहलउ ॥३॥

---

[1] है [2] आवेंगे [3] वधू (गढवाली) [4] मिलिहै [5] बहुत

सुगुरु सु वुच्चइ सच्चउ भासइ । पर-परिवायि-नियरु जसु नासइ ।
सव्वि जीव जिव अप्पउ रक्खइ । मुक्ख-मग्गु पुच्छियउ जु अक्खइ ॥८॥
इह विसमी गुरुगिरिहिं समुट्ठिय । लोय-पवाह-सरिय कु पइट्ठिय ।
जसु गुरुपाउ नत्थि सों निज्जइ । तसु पवाहि पडियउ परिविखज्जइ ॥६॥
पर न मुणइ तयत्थु जो अच्छइ । लोय-पवाहि पडिउ सु'वि गच्छइ ।
जइ गीयत्थु कोवि त वारइ । ता न उट्ठिवि लउडइ मारइ ॥१६॥
तिव तिव धम्मु कहिति सयाणा । जिव ते मरिवि हुति सुर-राणा ।
चित्तासोय करन्त ट्ठाहिय । जण तहिं कय हवति नट्ठाहिय ॥२१॥
—उवएस-रसायण

५ : बारहवीं सदी

§ ३०. हेमचंद्र सूरि

(कलिकाल-सर्वज्ञ) काल—१०८८-११७९[1], देश—धवक्कलपुर (गुजरात) में जन्म, अनहिलवाडा पाटन (गुजरात) में साहित्यिक कार्य। कुल—मोढ

१—सामन्त-समाज

(१) राज-प्रशंसा

खीर-समुद्दिण लवण-जलहि, कुवलय-कुमुयहिं ।
कालिंदी सुर-सिंधु जलिण, मह्यु-महणु हरिण ॥

---

[1] सोलंकी (चालुक्य) अनहिलवाडा (गुजरात) के राजा कर्ण (१०७४-९१), जयसिंह सिद्ध-राज (१०९३-११४२), कुमारपाल (११४२-७३), अजयपाल (११७२-७४), मूलराज द्वितीय (११७६-७८) और भीमदेव भोला (११७८-१२२४) के समकालीन। कुमारपालके गुरु।

सु-गुरु सों उच्चै सच्चै भाषै । पर-परिवादि-निकर जसु नासै ।
सर्व जीव जिव आपउ रक्खै । मुक्खमार्ग पुच्छियउ जो अक्खै ॥८॥
उह विषमी गुरु गिरहिं समु-उट्ठिय । लोकप्रवाह-सरित्त कों पइट्ठिय ।
जासु गुरु-पाद नाहि श्रवणिज्ज । तासु प्रवाह पडिय परि-खिज्जै ॥९॥
पर न मानै तदर्थ जो अच्छै । लोक-प्रवाह पडिय सो उ गच्छै ।
यदि गेयार्थ कोउ नहिं वारै । सो नहिं उट्ठिय लगुडहिं मारै ॥१९॥
तिमि तिमि धर्म कहहिं सयाना । जिमि ते मग्गि होहि सुर-राना ।
चित्ताशोक करता थाइय । जन तहँ कृत भवति नष्टाहित ॥२१॥

—उवदेश-रसायन

५ : बारहवीं सदी

§ ३०. हेमचंद्र सूरि

वणिक, जैनसाधु-आचार्य । अपभ्रंश-कृतियाँ—प्राकृतव्याकरण[1], छन्दोनुशासन[2], देशीनाममाला (कोश)

१—सामन्त-समाज[3]

(१) राज-प्रशंसा

क्षीरसमुद्रेंहिं लवण-जलधि, कुवलय-कुमुदहिं ।
कालिंदी सुर-सिंधु-जलेंहिं, मध-मथन हरिन ॥

[1] ठहरा [2]डाक्टर पी. एल्. वैद्य द्वारा संपादित, मोतीलाल-लाधाजी (पूना) द्वारा प्रकाशित १९२८। अपभ्रंश के सभी उद्धरण हेमचंद्रके रचे नहीं हैं

[2] देवकरण मूलचंद्र (बंबई) द्वारा प्रकाशित, १९१२

[3] सभी उद्धरण हेमचन्द्र की रचना नहीं हैं । ये पद्य हेमचंद्र-संगृहीत हैं, शायद कोई उनके अपने रचित भी हो

कइलासिण सरिसउ हू किरि, सो अजण-गिरि ।
उह तुहु जस-सिरि धवलिओ, पहु कि पडरु महुरि ॥१२॥
जे तुह पिच्छहि वयण-कमलु, ससहर-मडल-निम्मलु ।
जे विहु पालहिँ भिच्च-करमु, थुणहिँ जि निरुवमु विक्कमु ॥
ज विहु आसण धरहिँ, पायकमलु जे पणमहि ।
ता हत लच्छी-विग्गुह, पहु-जग-धवलिय दिसि-मुह ॥१३॥
उक्करडा-खल-चउ-गज्जउ, चिरु जुज्झागणु ।
उन्नामउ सिर-कमरु म लज्जओँ, थवक गहब्भर तुहु कट्टहिँ ।
अन्नुन्न ति-हुअणि कित्ति-धवल विसाओ तुह वट्टइ ॥१४॥
पहु ! तुहु वेरि अरण्णि गय, निच्चु'वि निवसहि जिव मसय ।
घण-कटय-दुम्सचरणि, तहिँ भवडइ करीर-वणि ॥१६॥
जइ जाहि सुर-मग्गिअ जइ गिरि-निज्झर सेवहि जइ पइसहि काणण-तरु-सडय ।
रिउ-निव नुवि नवि छुट्टहिँ पहु ! तुज्झ पयावह, कालहु अइदीहि-हर-भुअ-दडय ।५५।
—छन्दोनुशासन[1]

(२) वीर-रस

भल्ला हुआ जोँ मारिआ, वहिणि ! महारा कंतु ।
लज्जेज्जतु वयसियहु, जइ भग्गा घरु एन्त ॥३५१॥
जहिँ कप्पिज्जइ सरिण सरु, छिज्जइ खग्गिण खग्गु ।
तहिँ तेहइ भड-घड-निवहि, कतु पयासइ मग्गु ॥३५७॥
कंतु महारउ हलि सहिएँ ! निच्छइँ रूसइ जासु ।
अत्थिहिँ सत्थिहिँ हत्थिहिँ वि, ठाउ'वि फेडइ तासु ॥३५८॥
अम्हे थोवा रिउ वहुअ, कायर एव भणति ।
मुद्धि निहालहि गयण-यलु, कइ जण जोण्ह करति ॥३७६॥
खग्ग-विसाहिउ जहिँ लहहु, पिय ! तहिँ देसहिँ जाहुँ ।
रण-दुब्भिक्खेँ भग्गइ, विणु जुज्झेँन वलाहुँ ॥३८६॥

---

[1] पृ० ३७ ख, ३८ क, ४१ क, ४५ ख

कैलाशेंहि सदृशउहुफूर , सो अंजन-गिरि ।
इह तव यश-श्री धवलियउ, प्रभु का पाइय नभ ॥१२॥
जो तव परम वदन-कमल, शशधर-मंडल-निर्मल ।
जो विधि पालै भृत्यकर्म, थुवै जे निरुपम विक्रम ॥
जं विध शासन धरै पाद-कमल जे प्रणमैं ।
तो हत ! लक्ष्मी-विमुख, प्रभु-यश-धवलिय दिशिमुख ॥१३॥
उत्कण्ठा -आखल चउ गर्जेउ, चिर-युद्धमना ।
उन्नामित-शिर-कायर ना लज्जउ, थाक मतिभर तव निकटे ।
अन्योन्य त्रिभुवने कीर्ति-धवल, विषादो तव बाटे ॥१४॥
प्रभु तव वरि अरण्य-गज, नित्यउ निवसे जिमि मशक ।
घन-कटक-दु सचरणे, नहं भवइ करीर-वने ।॥१६॥
यदि जावे सुर-सरित यदि गिरि-निर्भर सेवैंहि, यदि पइसै[१] कानन-तरु-खंडें ।
रिपु-नृप तउ नहि छूटे प्रभु ! तुम्ह प्रतापहं, कालह अति-दीर्घ-हर-भुज-दंडें ॥५५॥
—छन्दोनुशासन (पृ० ३७, ३८, ४१, ४५)

(२) वीर-रस

भल्ला हुआ जो मारिया, बहिनि ! हमारा कंत ।
लज्जिज्जेहु वयस्ययहिं, यदि भागा घर ऍन्त ॥५३१॥
जहँ काटिज्जे शरहिँ शर, छिद्यै खड्गहिँ खड्ग ।
तहँ तेही भट-घट-निवहे, कंत प्रकाशै मग्ग ॥३५७॥
कन्त हमारो रे सखिय, निश्चै रूसे जासु ।
अस्त्रहिँ शस्त्रहिँ हाथियहिँ[२], ठावहिँ फोड़ै तासु ॥३५८॥
हम हैं थोड़े रिपु वहुत, कायर एम भनंति ।
मूढ निहारैं गगन-तल, कवि जन जोन्ह[५] करंति ॥३७६॥
खड्ग बेसाहिब जहँ लहउ, प्रिय ! तहँ देशहिँ जाहु ।
रण-दुर्भिक्षे भागई, विनु युद्धेहिँ वलाहु[६] ॥३८६॥

---

[१] स्रवै [२] हाथी [३] पइठै [४] आता [५] ज्योत्स्ना [६] सेना

अब्भड-वंचिउ बे पयइँ, पेम्मु निअत्तइ जाव।

सव्वासण-रिउ-सम्भवहो, कर परिअत्ता ताँव ॥

हिअइ खुडुक्कइ गोरडी, गयणि घुडुक्कइ मेहु।

वासा-रत्ति पवासुअहँ, विसमा सकडु एहु ॥

अम्मि ! पओहर वज्ज मा, निच्चु जे सम्मुह थन्ति।

महु कन्तहो समरंगणइँ, गय-घड भज्जिउ जन्ति ॥

पुत्ते जाएँ कवण गुणु, अवगुणु कवणु मुएण।

जा बप्पी की भूँहडी,[1] चंपिज्जइ अवरेण ॥

त तेत्तिउ जलु सायरहो, सो तेवडु वित्थारु।

तिसहे निवारण पलुवि नवि, पर घुट्ठुअइ असारु ॥३९५॥

महु कन्तहो गुट्ठ-ट्ठिअहो, कउ झुम्पडा वलन्ति।

अह रिउ-रुहिरें उल्हवइ, अह अप्पणें न भन्ति ॥४१६॥

जइ भग्गा पारक्कडा, तो सहि ! मज्झु पियेण।

अह भग्गा अम्हहँ तणा, तो तें मारिअ देण ॥४१७॥

सामि-पसाउ सलज्जु पिउ, सीमा-संधिहिँ वासु।

पेक्खिवि बाहु-बलुक्कडा, धण मेल्लइ नीसासु ॥४३०॥

——प्राकृतव्याकरण (पृ० १५०-५२, १५६, १५८, १६०, १६५, १७१)

कर-हय-थणहर-गलिअ-लोल-मणोहर-हारय।

गडत्थल - लुलिअ - मइल-जडिल - कुंतल - भारय।

अणवरय-वाहणि-वड-पसूण सोण-विलोअण।

तुह हुअ नर-वइ-तिलय सपय वेरि वहु-यण ॥६॥

जेत्थु गज्जहिँ मत्त-करि-णिवह, रखोलहिँ जत्थु हय।

जेत्थु भिउडि-भीसण भमति भड,

तहिँ तेहइ रणि वरइ विजय-लच्छि पइँ पर समरोब्भउ ॥२९॥

जसु भुअ-बलु हेलुद्धरिअ-धरणि,

निसुणिवि वणयर - गण - उवगीउ - सुविक्कम।

---

[1] पितृभूमि

'लिगन-वंचित दो पदै प्रम निवर्त्ते जव्व।
सर्वामिन रिपु सभवहु कर परिवर्त्तै तव्व ॥
हृदय खुडुक्कै गोरडी, गगन घुडुक्कै मेह।
वर्षा-रात्रि प्रवासुकहँ, विषमा संकट एह ॥
अम्म ! पयोधर वज्र ना, नित्य जे सम्मुख थानि।
मम कन्तह समरांगणे गज-घट भाजेँउ जानि ॥
पुत्रे जाये कवन गुण, अवगुण कवन मुएहिँ।
जो बापेकी भूमिडी, चाँपिज्जै अपरेहिँ ॥
सो तेत्तउ जल सागरहँ, सो तेवडु विस्तार।
तृषह निवारण चिलुव ना, पर धुंत्लो असार ॥३९५॥
मम कंतह गोष्ठ-स्थितह, कैंत झोंपडा ज्वलन्ति।
तहेँ रिपु-रुधिरेँ बुझवै, चहेँ आपने न भ्रान्ति ॥४१६॥
यदि भागा परकेरआ, तो सखि ! मोर प्रियेहिँ।
ओ भागा हमकेरका, तो तेँ मारिय तेहि ॥४१७॥
स्वामि-प्रसाद सलज्ज प्रिय, सीमा-संधिहिँ वास।
पेखिय बाहु-बलक्कडा, धनि मेलै निःश्वास ॥४३०॥
—प्राकृतव्याकरण (पृ० १५०-२, १५६, १५८, १६०, १६५, १७१)
करहत-स्तन-धर गलिय लोल मनोहर हारय।
गडस्थले लुलिल मडल-जटिल-कुतल भारय ॥
अनवरत-वाहिनि-वट - प्रसून शोण - विलोचन।
तव हुअ नरपति-तिलक सम्प्रति वैरि-वधू-जन ॥६॥
यत्र गर्जैँ मत्त-करि-निवह, (औ) कूदैँ यत्र हय।
यत्र भृकुटि-भीषण भ्रमति भट।
तहँ तेही रणेँ वरै विजय-लक्ष्मि तैँ पर-समरोद्भवउ ॥२६॥
जाँसु भुजवल्ले हेला उद्धरेउ धरणि,
सुनिया वनचर-गण-उपगीत-सुविक्रम।

---

[१] रहते [२] उतना (गढ़वाली)

अज्जवि हरिमिअ नव-दब्भकुर-दमिण,
पयडहिँ कुन्त-महिहर पुलउग्गमु ॥८४॥
—छन्दोनुशासन[1]

(३) कु-नारी

जासु अगहिँ घणु नगा-जालु- जसु पिंगल-नयण-जुअो ।
जसु दत परिरत्त-विअडुन्नय,
न धरिज्जइ दुह-कग्णी मन्तकरिणि जिँन घरिणि दुन्नय ॥२७॥
गाँवि पट्टणि हट्टि चउहट्टि, राउलि देउलि पुरि ज दीसइ ।
लडह-अगिअ विरहिद-जालएण, न सा एक्कवि काय-वहु-रुव-कलिअ ॥३०॥
—छन्दोनुशासन (पृ० ३६अ)

(४) शृंगार-रस

विप्पिअ-आरउ जइवि पिउ, तोवि तँ आणहि अज्जु ।
अग्गिण दड्ढा जइवि घरु, तो तेँ अग्गि कज्जु ॥३४३॥
जिँव जिँव वंकिम लोअणहँ, णिरु सामलि सिक्खेइ ।
तिँव तिँव वम्महु निअय-सर, खर-पत्थरि तिक्खेइ ॥३४४॥
तुच्छ-मज्झहेँ तुच्छ-जम्पिरहे,
तुच्छच्छ-रोमावलिहे तुच्छ-राय-तुच्छयर-हासहेँ ।
पिय-वयणु अलहतिअहेँ, तुच्छकाय-वम्मह-निवासहेँ ।
अन्नु जु तुच्छउँ तहेँ धणहेँ, त अक्खणउँ न जाइ ।
कटरि थणतरु मुद्धडहेँ, जेँ मणु विच्चि ण माइ ॥३५०॥
फोडेंति जे हियडउँ अप्पणउँ, ताहँ पराई कवण घण ।
रक्खेज्जहु लोअहोँ अप्पणा, बालहेँ जाया विसम-थण ॥३५०॥

---

[1] पृ० ३५ख, ३६ख, ४५क

आजउ हर्षिय नव-दर्भांकुरके मिस,

प्रकटै कुल-महिधर पुलकोद्गम ॥८८॥

—छन्दोनुशासन (पृ० ३५, ३६, ४५)

(३) कु-नारी

जसु अग्गहिं घन नमा-जाल, जसु पिंगल-नयन-युग ।

जसु दंत अविरल-विकटोन्नत,

न धरीजै दुख-कारिणि मत्त-करिणि इव घरिणि दुर्नय ॥२७॥

गाँव पाटन हाट चोहट, रावल दवल पुर जो दीसै ।

सुदरागी विरहेश्रजालकेहिं, नेहि सा एकउ कुन-वहुरूप-कलिना ॥३०॥

—वहीं (पृ० ३६)

(४) शृंगार-रस

विप्रियकारक यदपि पिउ, तउ तेहिं आनहु आज ।

आगिहिं दाहा यदपि घर तउ तेहिं आगी काज ॥३४३॥

जिमि जिमि वंकिम लोचनहं, बहु-सांवारि सीखाय ।

तिमि तिमि मन्मथ विजयशर, खर-पाथर तीखाय ॥३४४॥

तुच्छ मध्ये तुच्छ जल्पने,

तुच्छ[1]-अच्छ रोमावलिहिं, तुच्छ-राग तुच्छतर हासे,

प्रियवचन अलभनियहँ, तुच्छकाय मन्मथ निवसहें ।

अन्य जो तुच्छउ तेहि धनिहि, सो भाषनउ न जाइ ।

कटरि थननर मुर्धइहिं, जो मन-वीच न माइ[2] ॥३५०॥

फोडहिं जे हियडा आपनउं, तांह पराई कवन घृण ।

राखीजहु लोगो ! आपना बाला जाया विषम थन ॥३५०॥

---

[1] अल्प   [2] समाइ

एक्कहिँ अक्खिहिँ सावणु अन्नहिँ भद्दवउ,
माहउ महिअल-सत्थरि गण्ड-स्थले सरउ ।
अंगिहिँ गिम्ह सुहच्छी-तिल-वणि मग्गसिरु,
तहे मुद्धहे मुह-पंकर आवासिउ सिसिरु ।
हिअडा फुट्टि तडत्ति करि, काल-क्खेवें काइं ।
देक्खउं हय-विहि कहिं ठवइ, पइँ विणु दुक्ख-सयाइं ।।३५७।।
जइ न सु आवइ दूइ ! घरु, काइं अहो-मुहु तुज्झु ।
वयणु जु खण्डइ तउ सहिए, सो पिउ होइ न मज्झु ।।
भमरु म रुण-झुणि रण्णडइ, सा दिसि जोइ म रोइ ।
सा मालइ देसंतरिअ, जसु तुहुं मरहि विओइ ।।३६९।।
मुह-कबरि[1]-बन्ध तहे सोह धरहिँ, न मल्ल-जुज्झ ससि-राहु करहिँ ।
तहे सहहिँ कुरल भमर-उल-तुलिअ, न तिमिर-डिंभ खेल्लंति मिलिअ ।।३८२।।
बप्पीहा पिउ-पिउ भणवि कित्तिउ रुअहि हयास ।
तुह जलि महु पुण वल्लहइ, बिहुँ वि न पूरिअ आस ।।
बप्पीहा कइँ बोल्लिअण, निग्घिण वार-इ-वार ।
सायरि भरिअइ विमल-जलि, लहहि न एक्कइ धार ।।३८३।।
भमरा ! एत्थुवि लिंबडइ, केंवि दियहडा विलंबु ।
घण-पत्तलु छाया-बहुलु, फुल्लइ जाम कयंबु ।।३८७।।
केम समप्पउ दुट्ठु दिणु, किध रयणी छुडु होइ ।
नव-वहु-दसण-लालसउ, वहइ मणोरह सोइ ।
ओ गोरी-मुह-णिज्जिअउ, वद्दलि लुक्कु मियंकु ।
अन्नु वि जो परिहविय-तणु, किह ठिउ सिरि-आणंद ।।
निरुपम-रसु पिएँ पिअवि जणु, सेसहो दिण्णी मुद्द ।
भण सहि निहुअउँ ते ब मइं, जइ पिउ दिट्ठु सदोसु ।।४०१।।

---

[1] जूड़ा

एकहिं आंखें सावन, अन्यहिं भादों,

माघव महियल-साथरें गड्ण्थलें शरदो ।

अगहिं ग्रीष्म सुभार्क्षा तिल-वनें मार्गसिरु,

तेहि मुग्धहं मुख-पंकजे आवासिउ शिशिरु ।

हियडा फूट तड्यक्क करि, कालक्षप कार्इं ।

देखउं हत-विधि कहं थर्प, तैं बिनु दुःख शताइं ॥३५७॥

यदि न सो आव दूति ! घर, काइं अधामुख तोर ।

वचन न खडे तव सखी, सो पिउ होइ न मोर ॥

भ्रमर ! न रुनझुन रणरणे, सो दिशि जोय न रोउ ।

सा मालति देशातरिय, जसु तुहुं मरै वियोग ॥३६८॥

मुख कवरि-बन्ध तहं सोह धरहिं । जनु मल्ल-युद्ध शशि-राहु करहिं ।

तहि सोभै कुरल[1]-भ्रमर-कुल तुलिय । जनु तिमिर डिभ खेलनि मिलिय ॥३८२॥

पप्पीहा पिउ-पिउ भनवि केतिक रोवे हताश ।

तव जलें मम पुनि बल्लभें, दोहूं न पूरिय आश ॥

पप्पीह का बोलिये इ, निर्घृण बारबार ।

सागरें भरियइ विमल जल, लहे न एकहु धार ॥३८३॥

भ्रमरा ! ईहै लिपटिया, किछु दीवसें बिलबु ।

घनपत्ता छाया-बहुल, फूलै जबहु कदब ॥३८७॥

केसि समर्पउ दुष्ट दिन, किमि रजनी यदि होइ ।

नव - बधु - दर्शन - लालसउ, वहै मनोरथ सोइ ॥

ओ गोरी-मुख-निर्जितउ, बादल लुक्कु मृगाक ।

अन्यउ जो परिभविय तनु, किमि ठिउ श्री आनद ॥

निरुपम-रस पिउ पियवि जनु, शेषहों दीनी मुद्र ।

भन सखि ! निभृतउ निमि मईं, यदि पिउ दीस मदोस ॥४०१॥

---

[1] सशब्द

अन्नें ते दीहर-लोअण, अन्नु तं भुअ-जुअलु ।
अन्नु सु घण-थण-हारु ते, अन्न जि मुह-कमलु ॥
अन्नु जि केस-कलावु, सुअन्नु जु पाउ विहि ।
जेण णिअंविणि घडिअ स, गुण-लायण्ण-णिहि ॥
एसी पिउ रूसेउ हउँ, रुट्ठी मइँ अणुणेइ ।
पग्गिँव एइ मणोरहइँ, दुक्करु दइउ करेइ ॥४१४॥
—प्राकृतव्याकरण (पृ० १४६-१५२, १५४, १५७, १५८, १६१-६२)

गयणप्परि कि न चडहिँ, कि नरि विक्खरहिँ दिसिह्नि वसु,
भुवण-त्तय-गलावु हरहि, कि न किरवि गुहारसु ।
अथयारु कि न दलहिँ, पयडि उज्जोँउ गहिउल्लओँ,
कि न धरिज्जहिँ देवि गिरहँ, सइँ हरि मोहिल्लओँ ।
कि न तणउ होहि रयणारह, होहि किं न सिरि-भायरु ।
तुवि चद निअवि मुह गोरिअहि, कवि न करइ तुह आयरु ॥५॥
परहुअ-पचम-सवण-सभय मन्नउँ सो किर,
लि भणि भणइ न किपि मुद्ध-कलरम-गिर ।
चदु न दिक्खण सक्कइ ज सा ससि-वयणि,
दप्पणि पभुह न पलोअइ लि भणि मय-नयणि ।
वइरिउ मणि मन्नवि कुसुम-सरु, खणि खणि सा वहु उत्तसइ ।
अच्छरिउ रूव-निहि कुसुम सरु, तुह दसणु ज अहिलसइ ॥६॥
जइ अज्झलवकहिँ नयण दीह-नयणि अहि-खणु,
केअइ-कुसुम-दलग्गि भसलु विलसइ त जणु ।
जइ तीए मुहि हावि भदु हासउ चडइ,
ना जणु हीरय-पउगराय-मचओँ झडइ ।
जइ तीएँ महुर-मिउ-भासिणिहि, वयण-गुफ निसुनिज्जइ ।
तावह करेप्पि जणु अमय-रसु, कण्ण-पण्ण-पुडि पिज्जइ ॥७॥
सवण-निहिअ-हीरय-हसंत-कुडल-जुअल,
थूलामल-मुत्तावलि-मडिअ-थण-कमल ।

कृत-चमर-सुवाते मलिल-महाये गुण-भरिया ।
उट्ठाइय रमणिहिँ मुनिमन-दमनिहि मणहरिया ॥
सा करतल-कमलहिँ मुललित-मरलहिँ उर हनई ।
उद्-व्याकुल-नयनी गद्गद-वदनी पुनि भनई ॥
"हा वैरी बीबस पाप-मलीमम की कियऊ ।
मम अहँउ वराकिउ रमण परायउ की हियऊ ॥
हा दैव ! पराङ्मुख दुर्नय दुर्मुख तुहुँ भयऊ ।
हा स्वामि ! मलक्षण सुष्ट विचक्षण कइँ गयऊ ॥
मम उपर भटारा[1] नरवर माग करुण करो ।
दुख-जलधि-पडती प्रलयहँ जाती नाथ धरो ॥
हौं नारि वराकी आपनि आये को मुमिरऊँ ।
पर छाडिय तुम्हहिँ जीवौं एव की मरऊँ ॥"
इमि शोक-विमुग्धइँ लपियउ क्षुब्धहिँ जो हियइँ ।
हौं बोलेसु तइयहुँ मिलिहै जइहउँ मोर पती ॥
वही पृ० ६७

(४) पत्नि-विरह

आवासहों आवई जाव राव । मदनावलि ना पेखैउ ताव ॥
जोइयै चतुर्दिश हृदयहीन । उट्ठेगिर हिडै महिहे दीन ॥
तो शकेंउ नरवरें गलित-गर्व । कहँ गउ कलत्र सर्वांग-भव्य ॥
मदनावलि जा आनदभूअ । सा एव की विपरीत हूअ ॥
तब प्रेषेउ किंकर वर-नृपेहिँ । "अवलोकहु स्वामिनि दिशि-पथेहिँ ॥"
जोयउ दिसीहिँ आगत-वलेइ । पुक्कारहिँ ऊँचा कर करेइ ।
तब राय देखियउ ते सोंवत । परि-मुच अश्रु नयनहिँ तुरत ।
"हे प्रजापति तुहुँ श्रवणानुबध । मोहि आखहु सुंदर-नेह-बधु ।

---

[1] भट्टारक=राजा

हा मुद्धि मुद्धि तुहुँ केण णीय। कि एवहिँ रिहविकवि कहिमि ठीय ॥
हा कुंजर कि तुहुँ जमहों दूउ। कि दीसइँ महो पडिकूलु हूउ ॥
घत्ता। चिरु मोहु वहतउ कोवि हियइँ, लडह-रुउ अग्गइँ हुयउ।
विज्जाहरु आयउ सोवि तहिँ, विज्जासायर पारु गउ ॥
—वहीं पृ० ५१

(५) दिग्विजय-वर्णन

ध्रुवकं। करकडइ साहिवि महि-सयल, परिपुच्छिउ मइवरु विमलमइ।
भणु सम्मइ मइवर को 'वि णिरु, जो अज्जु'वि दुट्ठउ णवि णवइ ॥
सो मइवरु पभणइ "देव देव। तुह महियलु सयलु'वि करइ सेव।
परि दिविड-देसें णिव अत्थि धिट्ठ। ते णमहि ण कासुवि हियइँ दुट्ठ।
सिरि चोडि पंडि णामेण चेर। णउ करहिं तुहारी देवकेर" ॥
आयण्णि'वि तं चंपाहिवेण। सपेसउ दूयउ तहों खणेण।
"तें जाइवि ते चोडाइ राय। इउ भणिय णवहु करकंड-पाय।"
[1]णिब्भत्थिउ दूयउ तेहिँ सोवि। "जिणु मेल्लिवि अण्णुण णवहु कोवि।"
करकडहों आइवि कहिउ तेण। "णउ करहि सेव तुह कि परेण।"
तं सुणिवि वयणु करकडु राउ। "जइ देमि ण तहों सिर णियय पाउ।
तो महियल पुत्त इदिय सुहासु। महों अत्थि णिवित्ति परिग्गहासु।"
एँह पइज करिवि करकंडएण। लहु दिण्णु पयाणउ कुद्धएण।
घत्ता। चंपाहिउ चल्लिउ तहों उवरि, गय चडिवि विणिग्गउ पुरवरहो।
चउरगइँ सेण्णइँ राजुयउ, सो लीला धरइ सुरेसरहो ॥
तहों जंतहों महि हय-खुरहिँ भिण्ण। गयणगणि गय-रय-धूम-वण्ण।
पसरतहि तेहिँ दिग्गाणणाहँ। णं मुहवडु किउ दिसिवारणाहँ।
महि हल्लिय चल्लिय गिरिवरिंद। कपंत पणट्ठा खे सुरिंद।
दक्खिण-वहे गउ तेरापुरम्मि। तहों दक्खिण-दिसिहि महावणम्मि।

---

[1] डाँटा, फटकारा

हा मुग्धे मुग्धे तुहुं केहिं नीउ । की एव लुक्किय कतहुं ठीय ।
हा कुंजर ! की तुहुँ यमहुँ दूत । की दोषहिं मोहि प्रतिकूल हुग्र ।
घत्ता । चिर मोह वहतउ कोउ हियहिं, मुंदर रूप अग्रे हुयउ ।
विद्याधर आयउ मोउ नहिं, विद्यासागर पार गउ ॥

—वही पृ० ५१

(५) दिग्विजय-वर्णन

ध्रुवक । करकंडेहिं साधिउ महि-सकल, परिपूछेंउ मति वर विमलमति ।
"भणु सम्यक् मतिवर कोउ निश्चय, जो आजउ दुष्टउ नहि नवइ ।"
सो मतिवर प्र-भणै "देवदेव । तुहँ महियल सकलहू करै सेव ।
पर द्रविड-देशें नृप ग्रहै धृष्ट । सो नमै न काहुहिं हृदय-दुष्ट ।
श्री **चोल पांड्य** नामेन **चेर** । ना करै तुहारी देवकेर ।"
सुनि केहू सो चपाधिपेहिं । सम्प्रेपेंउ दूतहिं तहं क्षणेहिं ।
"तैं जाइवि तेहि **चोलाधिराज** । इमि भनिवि 'नमहु करकंडपाद' ।"
निर्भर्त्स्येंउ दूतउ तेहिं सोउ । "जिन छाडि अन्य ना नमहुँ काहु ।"
करकंडहिं आई कहेंउ तेन । "ना करै सेव तव की परेन ।"
सो सुनिय वचन करकंडु राव । "यदि देउँ न तेहि शिर निजहिं पाव ॥
तो महितल-पुत्र-इन्द्रिय-सुहास । मम ग्रहै निर्वृत्ति-परिग्रहास ।"
एँहु पइज[१] करेंउ करकंडएहिं । लघु[२] दीन प्रयाणउ क्रुद्धएहिं ।
घत्ता । चंपाधिप चल्लेंउ तेहि उपरि, गज चढिय नीसरेंउ पुरवरहँ ।
चतुरगइँ सैन्यइँ सयुतउ, सो लीला धरै सुरेश्वरहँ ॥
तहँ जातेंउ महि हय-खुरेहिं भिन्न । गगनागने[३] गजरज धूमवर्ण ।
पसरता ते दिश-आननाहँ । जनु मुख-वधू किउ दिग-वारणाहँ ।
महि हल्लिय चल्लिय गिरिवरेंद्र । कंपत प्रनष्ट रवे[३] सुरेंद्र ।
दक्षिणपथें गउ **तेरापुरेंइ** । ताँहु दक्षिण-दिशी महावनेइ ।

---

[१] प्रतिज्ञा [२] तुरंत [३] आकाश में

ग्रावासिउ तहिं वलु चाउरगु । खणें सीह पुलिदहं हुयउ भगु ।
सताडिय दूसय पचवण्ण । ण ग्रमरगेह - भूमिहि पवण्ण ।
गय करिवर लेविणु जलहों मेट्ठ । रासहियहिं धाविय खर पहिट्ठ ।
लोलाविय धय णिव-णरवरेहिं । महि णच्चइ ण उब्भिय करेहिं ।
घत्ता । ग्रावासिउ ग्रच्छइ जाव तहिं, करकड-णराहिउ पउर-बलु ।
पडिहारु पराइउ तहो पुरउ, दूराउ णमतउ हरियमलु ।।
—वहीं पृ० ३५, ३६

(६) युद्ध-वर्णन

तं सुणिवि वयणु चंपाहिराउ । मणणज्झइ ता किर बद्धराउ ।
तावेत्तहि दतीपुरि-णिवेण । कंपाविय मेइणि मंदरेण ।
णिण्णासिय ग्ररि-यण-जीवएण । उड्डाविय दहदिसि रय रणेण ।
णहु छायउ [1]खलियउ रविवएण । लहु दिण्णु पयाणउ कुद्धएण ।
गंगाणएसु सपत्तएणु । गंगाणइ दिट्ठी जतएण ।
सा सोहइ सिय-जल कुडिलयंति । ण सेयभुजंगहो महिल जति ।
दूराउ वहंती ग्रइविहाइ । हिमवन्त-गिरिन्दहों कित्ति-णाइं ।
बिहिं कूलहिं लोयहिं ण्हतएहि । ग्राइच्चहों जलु परिदितएहि ।
दब्भंकिय उड्ढहि करयलेहिं । णइ भणइ णाइं एयहिं छलेहि ।
"हउं सुद्धिय णिय-मग्गेण जामि । मा रूसहि ग्रम्हहों उवरि सामि" ।
णइ पेक्खिवि णिउ करकड णामु । गउ जणण-णयरु गुण-गणिय-धामु ।
घत्ता । जे सगरि सुरवर-खेयरहं, भउ जणियउ धणुहर-मुग्रस-रहीं ।
तं वेढिउ पट्टणु चउदिसिहिं, गय-तुरय णरिदहिं दुद्धरहीं ।।
ता हयइं तूराइं, भुवणयल पूराइं ।
वज्जंति वज्जाइं, ग्राणाए घडियाइं, परबलइं भिडियाइं ।

[1] स्खलित, खंडित

आवासेँउ तहँ बल-चातुरग । क्षणेँ मिह पुलिदहँ भयेँउ भग ।

सताडिय दुस्सह[1] पचवर्ण । जनु अमरगेह-भूमिहि प्रपन्न ।

गय करिवर लेइय जलहोँ मेँठ[2] । रामभियहिँ धाइय खर प्रहृष्ट ।

लोलाइय ध्वज नृपनरवरेहिँ । महि नाचै जनु उत्थित-करेँहिँ ।

घत्ता । आवासेँउ अच्छइ जब्ब तहँ, करकड-नराधिप पौरबल ।

प्रतिहार पर्-आयेँउ तेँहि पुरउ, दूराउ नमतउ हरियमल ॥

· —वही पृ० ३५, ३६

(६) युद्ध-वर्णन

सो सुनिय वचन **चंपाधिराज** । सन्नाहेँ तो फुरि बद्ध-राग ।

तब्बै तहँ **दतीपुर**-नृपेहिँ । कपाइय मेदिनि मदरेँहिँ ।

निर्-नाशिय अरिजन-जीविनेहिँ । उड्डाविय दश-दिशि रज रणेहिँ ।

नभ छायउ खलियउ रविपदेहिँ । लघु दीन प्रयाणउ क्रुद्धएहिँ ।

गंगा - प्रदेश संप्राप्तएहिँ । गगानदी देखेँउ जातएहिँ ।

सो सोहै सित-जल-कुटिल-पक्ति । जनु श्वेतभुजगह महिला जति ।

दूराउ वहंती अति-विभाइ । हिमवन्त-गिरीन्द्रह कीर्त्ति-न्याइँ ।

दोँउ कूलहँ लोगहि न्हातएहिँ । आदित्यहँ जल परि-देतएहिँ ।

दर्भांकित उट्ठा-करतलेहिँ । नदि भनै न्याइँ एतहिँ छलेहिँ ।

"हउँ केवल निजमार्गहिँ जाउँ । ना हसहु हम्महँ उपर स्वामि" ।

नदि पेखिय नृप करकड-नाम । गउ जनन-नगर गुण-गणिय धाम ।

घत्ता । जो सगर सुरवर-खेचरहँ, भय जनियउ धनुधर-सुच-शरहीँ ।

सो बेढेँउ पाटन चउदिशिहिँ, गज-तुरग नरिन्द्रेहिँ दुर्धरहीँ ॥

तब हयइँ तूराइँ, भुवन - तल - पूराइँ ।

वार्जति वाजाइँ, आनाद-घटिताइँ । पर-बलहिँ भिडियाइँ ।

---

[1] दुशाले [2] महावत

कुंताइँ भज्जंति, कुंजरइ गज्जंति । रहसेण वग्गंति, करि-दसेण लग्गंति ।
गत्ताइँ तुट्टंति, मुंडाइँ फुट्टंति । सुंडाइँ धावंति, अरिथाणु पावंति ।
अंताइँ गुप्पंति, रुहिरेण थिप्पंति । हड्डाइँ मोडंति, गीवाइँ तोडंति ।
घत्ता । केवि भग्गा कायर जेवि णर, केवि भिडिय केवि पुणु ।
सग्गुग्गामिय केवि भड, मडेविणु थक्का केवि रणु ।।
—वहीं पृ० २८-३१

३—कविका संदेश

(१) मुनिका दर्शन

घत्ता । करकंड सुणेविणु त वयणु, अत्थाणहों उट्ठिउ तक्खणिण ।
[1]गउ सत्तपयइँ मउलेवि कर, सुमरंतउ मुणिवरपय मणिण ।।
ता आणदभेरि तुरंतएण । देवाविय तुट्ठइँ राणएण ।
तहे णट्ठु सुणेविणु लद्धभोय । परिमिलिय खणद्धें भविय लोय ।
कवि माणिणि चल्लिय ललिय देह । मुणि-चरण-सरोयहँ बद्धणेह ।
कवि णेउर सद्दें रणझणंति । संचल्लिय मुणि-गुण ण थुणंति ।
कवि रमणु ण जंतउ परिगणेइ । मुणि-दसणु हियवएँ सइ मुणेइ ।
कवि अक्खयधूव भरेवि थालु । अइरहसइँ चल्लिय लेवि बालु ।
कवि परिमलु बहलु वहंति जाइ । विज्जाहरि ण महियलि विहाइ ।
घत्ता । काइवि छण ससहर-आणणिया, करें कमलकरंती संचलिया ।
आणंदिय भेरिहें सुणिवि सुरु, लहु भवियण सयलवि तहिँ मिलिया ।
जिणिंद-धम्म-रत्तओ, मुणिंद - पाय - भत्तओ ।
सुवण्णकंति - दित्तओ, सरोय - पत्त - णेत्तओ ।
पलंब - पीण - हत्थओ, विबुद्ध - सव्व - सत्थओ ।
विसुद्ध-सन्धि-गत्तओ, खणेण जाव पत्तओ ।

---

[1] गयेउ

कुताइँ भज्जन्ति । कुजरइ गर्जन्ति । रथसेन वल्गन्ति । करि-दशन लग्गति ।
गात्राइँ टूटंति । मुंडाइँ फुटति । रुंडाइँ धावति । अग्नि-थान पावति ।
अंत्राइँ गोपंति । रुधिरेहिँ थप्पंति । हड्डाइँ मोडति । ग्रीवाइँ तोडति ।
घत्ता । केँऊ भग्ग कायर जेउ नर, केँउ भिडिया केउ पुनि ।
खड्ग उट्ठाइय कोउ भट, मंडियउ थाकेँउ केउ रणेँ ।।

—वहीँ पृ० २८-३१

३—कविका संदेश

(१) मुनिका दर्शन

घत्ता । करकडू सुनीया मो वचन । ग्रास्था[1]नहँ उट्ठेँउ तत्-क्षणहीँ ।
गउ सप्तपदे मुकुलित-कर, सुमिरंतउ मुनिवर-पद मनहीँ ।।
तब आनँदभेरि तुरतएहिँ । देवायउ तुष्टहिँ राणएहिँ ।
तहँ नष्ट सुनीया लब्ध-भोग । परिमिलेउ क्षणार्ध भाँवुक लोग[2] ।
कोँइ मानिनि चल्लिय ललित-देह । मुनि-चरण-सरोजहँ बद्ध-नेह ।
कोँइ नुपुर-शब्देँ रुनझुनति । सं-चल्लिय मुनि-गुण जनु स्तुवति ।
कोँइ रमण न जातउ परि-गनेइ । मुनि-दर्शन-हिय पद स्वयँ जनेइ ।
कोँइ अक्षय-धूप भरीय थाल । अति रभसैँ चल्लिय लेइ बाल ।
कोँइ परिमल-बहुल बहति जाइ । विद्याधरि जनु महितलेँ विहारि ।
घत्ता । काहुउ क्षण शशधर-आननिया, करेँ कमल करती सचलिया ।
आनंदिय भेरिहि सुनिय स्वर, लघु भविजन[3]सकलउ तहँ मिलिया ।।
जिनेंद्र-धर्म-रक्तओ । मुनींद्रपाद-भक्तओ ।
सुवर्ण-कांति-दीप्तओ । सरोजपत्र-नेत्रओ ।
प्रलंब-पीन-हस्तओ । विबुद्ध-सर्व-शास्त्रओ ।
विशुद्धि-सधि-गात्रओ । क्षणेहिँ जाव प्राप्तओ ।

---

[1] दर्बार   [2] जैन भक्त   [3] भक्त

तहिं पि ताव दिट्ठिया, भणनि हा पमूठिया ।

पुरंधि[1] कावि दुक्खिया, हणति दोवि कुक्खिया ।

रुवंति अंसु बाहुल, जणाण दुःख-सकुल ।

कुणंति चित्तु आउल, धरंति वेसु वाउल ।

घुलंति जावि मुच्छइए, पडति भू-पएसए ।

सुणेवि त णरेसरो, सुवारणि-द्धणीसरो ।

घत्ता । करकडइ पुच्छिउ कोवि णरु, ऍह णारि वराई किं रुवइ ।

विलवती हियवइँ मुहु करइ, अप्पाणउ विहलघल मुअइ ॥

—वहीं पृ० ८१-८२

(२) संसार तुच्छ

त सुणिवि वयणु रायाहिराउ । ससारहो उवरि विरत्त-भाउ ।

धी धी असुहावउ मच्च-लोउ । दुहु कारणु मणुरहं अग-भोउ ।

रयणायर-तुल्लउ जेत्थु दुक्खु । महुबिंदु-समाणउ भोय-सुक्खु ।

घत्ता । हा माणउ दुक्खइं तड्ढ-तणु, विरसु रसंतउ जहिं मरइ ।

भणु णिग्घिणु विसयासत्त-मणु, सो छंडिवि को तहिँ रइ करइ ॥

कम्मेण परिट्ठिउ जो उवरे । जम-रायए सोणिउ णिययपुरे ।

जो बालउ बालहि लावियउ । सो विहिणा णियपुरि चालियउ ।

णव-जोव्वणि चडियउ जो पवरु । जमु जाइ लएविणु सोजि णरु ।

जो बूढउ वाहि-सएहि कलिउ । जमदूयहिँ सो पुणु परिमलिउ ।

वहलइए सहु हरि अतुलबलु । सो विहिणा णीयउ करिवि छलु ।

छखड वसुन्धर जेहि जिया । चक्केसर[2] ते कालेण णिया ।

विज्जाहर किंणर जे खयरा । बलवता जम-मुहे पडिय सुरा ।

फणिणाहइ सरिसउ अमर-वइ । जमु लितउ कवणु'वि णउ मुअइ ।

---

[1] स्त्री [2] चक्रवर्ती

तहाँउ तब्ब दिट्ठिया । भनंति 'हा' प्रमुड्ढिया ।
पुरध्रि काउ दुक्खिया । हननि दोउ कुक्षिया ।
रोँवति अश्रु-वाहुल । जनाइ दुख सकुल ।
करेंइ चित्त आकुल । धरति वेप वाउर ।
धुरंति जा विमूढिया । पडति भू-प्रदेशए ।
मुनीय सो नरेश्वरो । सुवारुणी धनीश्वरो ।
घत्ता । करकडइ पूछेंउ कोइ नर, एह नारी बराकी का गवैं ।
विलपती हियइँ दुहू करहिँ, अप्पानउ विह्वलना मुचैं ॥
—वहीं पृ० ८१-८२

(२) संसार तुच्छ

सो सुनिय वचन राजाधिराव । समारहँ उपर विरक्त-भाव ।
'धिक धिक [1]असोँहावउ मर्त्यलोक । दुख-कारण मनोँरथ-अंग-भोग ।
रतनाकर-तुल्यउ यत्र दुख । मधुबिंदु-समानो भोग-सुक्ख ।
घत्ता । हा मानव दुखइँ स्तब्ध-तन, विरम हसतउ जहँ मरै ।
भन निर्घृण विषयासक्त मन, सो छाडिय को तहँ रति करै ॥
कर्महिँ परिट-ठिउ जो उबरे । यमराजहिँ सो लेउ निजय-पुरे ।
जो बाल्येहिँ बालउ लालियऊ । सो विधिना निजपुरेँ चालियऊ ।
नवयौवन चढियउ जो प्रवरू । यम जाइ लिवावन सोउ नरु ।
जो बूढउ व्याधिशतेँहिँ कलिऊ । यमदूतहिँ सो पुनि परिमर्दिऊ ।
बलभद्रहु सम हरि अतुल-बलू । सो विधिना लीयउ करिय छलू ।
छै-खड वसुन्धर जेउ जिया । चक्रेश्वर ते कालेहिँ लिया ।
विद्याधर किन्नर जे खचरा । बलवता यम-मुखेँ पडेँउ सुरा ।
फणिनाथैँ सरिसउ अमर-पती । यम लेतउ कवन न ना मुवई ।

---

[1] अशुभावह या अस्वभाव

घत्ता। णउ सोत्तिउ बंभणु परिहरइ, णउ छंडइ तवसिउ तवि-ठियउ।
धणवंतु ण छुट्टइ णवि णिहणु, जह काणणे जलणु समुट्ठियउ।
दइवेण विणिम्मिउ देहु जंपि। लायण्णउ मणुवहँ थिरु ण तँपि।
णव-जोव्वणु मणहरु ज चडेइ। देवहि वि ण जाणिउ कहिँ पडेइ।
जे अवर सरीरहिँ गुण वसंति। णवि जाणहुँ केण पहेण जंति।
ते कायहों जइगुण अचल होंति। ससारहँ विरइँ ण मुणि करंति।
करि-कण्ण जेम थिर कहिँ ण थाइ। रेवन्तहँ सिरि णिण्णासु जाइ।
जह सूयउ करयलि थिउ गलेइ। तह णारि विरत्ती खणि चलेइ।
भू-णयण-वयण-गइ कुडिल जाहँ। को सरल करेवइँ सक्कु ताहँ।
मेल्लती ण गणइ सयण इट्ठु। सा दुज्जण-मेत्ति'व चल णिकिट्ठु।

घत्ता। णिज्झायइ जो अणुवेक्ख चल, वइरायभाव सपत्तउ।
सो सुरहरमडणु होइ णरु, सुललिय-मणहर-गत्तउ॥
संसार भमतहँ कवणु सोक्खु। असुहावउ पावइ विविह दुक्ख।
णरयालइँ णाणा णारएहिँ। चिरकियहिँ णिहम्मइ वइरएहिँ।
हियएण'वि चितहुँ सक्कियाइँ। तहिँ भुत्तइँ पवरइँ दुक्कियाइँ।
अवरुप्परु जाइ विरुद्धएहि। तिरियाण मज्झे उप्पण्णएहि।
मुहबंधण-छेयण-ताडणाइँ। पावीयहिँ तेहिँ तणु-फाडणाइँ।
मणुयत्तणे माणउँ परिमलंतु। परिभिज्जइ णियमणे सलवलतु[1]।
सुरलोएँ पवण्णउ णट्ठबुद्धि। मणि भिज्जइ देक्खिवि परहों रिद्धि।
णउणारि जेम रूवइँ करेइ। तिम जीउ-कलेवर सइँ धरेइ।

घत्ता। ससारहँ उवरि णिहालणउ, किउ जेण णरेण कयायरेण।
भणु काइँ ण लद्धउ तेण जइ, पवर रयण रयणायरेण॥
जीवहों सुसहाउ ण अत्थि कोवि। णरयम्मि पडंतउ धरइ जोवि।
सुहि सज्जण-णंदण इट्ठ-भाव। णवि जीवहों जंतहों ए सहाय।

---

[1] हड़बड़ाता

घत्ता। ना श्रोत्रिय ब्राह्मण परिहरई। ना छाडै तपसिउ तपें थितऊ।
धनवत न छुट्टइ ना निधनू, जिमि काननें ज्वलन समुत्थितऊ॥
दैवेन विनिर्मिउ देह जोँउ। लावण्यउ मनुजहँ थिर न सोँउ।
नवयौवन मनहर जो चढेइ। देवहूँउ न जानेँउ कहँ पडेइ।
जो अवर शरीरहिँ गुण वसंति। ना जानहु केन पथेन जंति।
सो कायहु यदि गुण अचल हाति। ससारहु विरति न मुनि करति।
करि-कर्ण जेम थिर कहुँ न थाइ[1]। पेखतहँ श्री निर-नाश जाइ।
जिमि सूतउ[2] करतलें ठिउ गलेइ। तिमि नारि-विरक्ती क्षणें चलेइ।
भ्रू-नयन-वदन-गति-कुटिल जाहु। को सरल करावन सक्क ताहु।
छोडती न गनै स्वजन-इष्ट। सा दुर्जन मैत्रि'व चल निकृष्ट।
घत्ता। निज्-झखै जो अनुपेख चल, वैराग्य-भाव-सप्राप्तऊ।
सो सुरघर-मडन होइ नर, सुललिय-मनहर-गात्रऊ।
ससार भ्रमतहँ कवन सुक्ख। असुहावउ पावै विविध-दुख।
नरकालय नाना नारकेहिँ। चिरकृतहिँ निहन्यै वैरएहिँ।
हृदयेउ न चिंतन सक्कियाई। तहँ भोगैँ प्रवरइँ दुखियाइँ।
अपरापर जाति विरुद्धएहि। तिर्यञ्च-माँझ उत्पन्नएहि।
मुख-बधन-छेदन-ताडनाइँ। पावीयहिँ तहँ तन-फाडनाइँ।
मनुजत्तने मानव परि-मलत। परि-झखै निजमनें खलबलत।
सुरलोकें प्रवर्णउँ नष्ट-बुद्धि। मनें खीझै देखि पराइ ऋद्धि।
नवनारि जेम रूपइँ करेइ। तिमि जीव कलेवर-शत धरेइ।
घत्ता। संसारहु उपर निहारनउ, किउ जोँउ नरेउ कृतादरहीँ।
मन काइँ न लब्धउ सोइ यदी, प्रवर-रतन रतनाकरहीँ।
जीवहु सुस्वभाव न अहै कोँउ। नरक काहँ पडत धरै जोउ।
सुखि सज्जन नदन इष्ट भाय। ना जीवहँ जाते होँइ सहाय।

---

[1] रहै [2] पारा

णिय जणणि जणणु रोवतयाइँ। जीवें सहुँ ताइँ ण पउ-गयाइँ।
धणु ण चलइ गेहहो एक्कु पाउ। एक्कल्लउ भुजइ धम्मु पाउ।
तणु जलणि जलतइ परिवडेइ। एक्कल्लउ वइवस धरि चडेइ।
जहिँ णयण-णिमेसु ण सुहु हवेइ। एक्कल्लउ तहिँ दुहुँ अणुहवेइ।
अहि-णउल-सीह-वणयरहँ मज्झ। उप्पज्जइ एक्कुवि जिउ असज्झे।
सुर-खेयर-किणर-मुहयगाम। तहिँ भुजइ एक्कुवि जियइ जाम।
—वहीं पृ० ८२-८५

§ २९. जिनदत्त सूरि

काल—११००(१०७५—११५४)ई०। देश—धवलक(धोलका) गुजरात। कुल—

१—जिन-वंदना

पणमह पास-वीर-जिण भाविण। तुम्हि सब्बि जिव मुच्चहु पाविण।
घर-ववहारि म लग्गा अच्छह। खणि-खणि आउ गलतउ पिच्छह॥[1]
—उवएस-रसायण[1]

२—गुरु (जिन-वल्लभ)-महिमा

नमिवि जिणेसर-धम्मह, तिहुयण-सामियह।
पायकमलु ससिनिम्मलु, सिवगयगामियह॥
करिमि जइट्ठिय गुणथुइ, सिरि जिणवल्लहह।
जुग-पवरागम-सूरिहि, गुणगण-दुल्लहह॥१॥

(१) दर्शन-व्याकरण आदि विद्याके निधान

जो अपमाणु पमाणइ, छद्दरिसण-तणइ।
जाणइ जिव नियनामु, न तिण जिव कुवि घणइ॥

---

[1] वहीं

निज जननि-जनक गोवतयाइँ। जीवें संग नाहु न पद-गयाइँ।
धन न चलै गेहहँ एक पाव। एकल्लै भोगे धर्म्म-पाप।
तनु ज्वलनें ज्वलतइ परि-पडेइ। एकल्लै वरवस धरि चलेइ।
जहँ नयन-निमेष न सुख हवेइ। एकल्लै तहँ दुख अनुभवेइ।
अहि-नकुल-सिंह-वनचरहँ माँझ। उप्पज्जै एकइ जिव अ-साझ।
सुर-खेचर-किन्नर सुखद-धाम। तहँ भोगै एके जियै जाम[1]।
—वही पृ० ८२-८५

§ २९. जिनदत्त सूरि

हुंडव-वणिक्, जैन साधु। कृतियाँ—चाचरि[2], उवएसरसायण[2], कालस्वरूप-कुलक[2]।

१—जिन-वंदना

प्रणमहु पार्श्व-वीर-जिन भावेंहिं। तुम्ह सर्वजिव मोचहु पापेंहिं।
घर-व्यवहार न लागे रहा। क्षण-क्षण आयु गलतउ पेखा। ।१।।
—उपदेश-रसायन

२—गुरु (जिन-वल्लभ)-महिमा

नमवि जिनेश्वर-धर्महँ, त्रिभुवन-स्वामियहा।
पाद-कमल शशि-निर्मल, शिवगति-गामियहा।।
करउँ यथा स्थिति गुण-'थुति, श्री जिनवल्लभहा।
युग-प्रवर-आगम-सूरिह, गुण-गण दुर्लभहा।।१।।

(१) दर्शन-व्याकरण आदि विद्याके निधान

जो अप्रमाण प्रमाणै, छै दर्शन-तनई।[3]
जानै जिव निज नाम, न तेंन जिव कोइ हनई।।

---

[1] जब लौं [2] Gaikwad's Oriental Series 1927, Vol XXXVII "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह" [3] तन=केर, का

परु - परिवाइ - गइद - वियारण - पचमुहु ।
तसु गुणवन्नणु करण, कु सक्कइ इक्कमुहु ॥२॥
जो वायरणु वियाणइ, सुहलक्खण-निलउ ।
सद्दु असद्दु वियारइ, सुवियक्खण-तिलउ ॥
सुच्छंदिण वक्खाणइ, छंदु जु सुजइमउ ।
गुरु लहु लहि पइठावइ, नरहिउ विजयमउ ॥३॥
कव्वु अउव्वु जु विरयइ, नव-रस-भर-सहिउ ।
लद्धपसिद्धिहिं सुकइहिं, सायरु जो महिउ ॥
सुकइ माहु'ति पससहिं, जे तसु सुहगुरुहु ।
साहु न मणहि अयाणुय, मइ जियसुरगुरुहु ॥४॥
कालियासु कइ आसि, जु लोइहिं वन्नियइ ।
ताव जाव जिणवल्लहु, कइ ना अन्नियइ ॥
अप्पु चित्तु परियाणहि, लपि विसुद्धनय ।
तेवि चित्तकइराय, भणिज्जहि मुद्धनय ॥५॥
सुकइ विसेसिय वयणु, जु 'वप्पइराउकइ ।
सुवि जिणवल्लहु पुरउ, न पावइ कित्ति कइ ॥
अवरि अणेय विणेयहि, सुकइ-पगंगियर्याहं ।
तक्कव्वामयलुद्धिहिं, निच्चु नमंसयिहिं ॥६॥

(२) गुरु-दर्शनका महाफल

जिण कय नाणा चित्तइँ, चित्त हरति लहु ।
तसु दसणु विणु पुन्निहिँ, कउ लब्भइ दुलहु ॥
सारइँ बहु थुइ-थुत्तइ, चित्तइँ जेण कय ।
तसु पयकमलु जि पणमहि, ते जण कय-सुकय ॥७॥

---

[1] "गउडवहो" (प्राकृत महाकाव्य)के रचयिता

पर - परिवाद - गयद - विदारण पच - मुखू ।

तॉसु गुण वर्णन करण, को सक्कै एक-मुखू ॥२॥

जो व्याकरण वि-जानै, शुभलक्षण-निलयू ।

शब्द-अशब्द विचारै सु-विचक्षण-तिलकू ॥

सुच्छदेन वखानै, छद जो सुयति-मयू ।

गुरु लघु लेइ पइठावै, नर-हिय विजय-मयू ॥३॥

काव्य अपूर्व जो विरचै, नव-रस-भर-सहितो ।

लब्ध-प्रसिद्धिहिँ सुकविहँ, सागर जो मथितो ।

सुकवि माघ'ति प्रशमैं, जे तासु शुभ-गुण्हो ।

साधु न मनहि अजानय, मैं जित-सुरगुर-हो ॥४॥

कालिदास कवि अहेउ, जो लोकेहि वर्णियऊ ।

सो जिननो **जिनवल्लभ**-,कवि ना अन्ययऊ ॥

आपु चित्त परि-जानै, सोउ विशुद्ध-नय ।

तोउ चित्र कविराय भनिज्जै मूर्धनय ॥५॥

सुकवि-विशेषित-वचन, जो **वाक्पतिराज** कवी ।

सोउ जिनवल्लभ समुँह, न पावै कीर्त्ति कवी ॥

अवर अनेकानेक. . .हि सुकवि प्रशंसियहीं ।

तत्काव्यामृतलुब्धेहिँ, नित्य नमंसियहीं ॥६॥

(२) गुरु-दर्शनका महाफल

जो कृत-नाना - चित्रइँ, चित्त-हरति लघू[1] ।

तॉसु दर्शन विनु पुण्यहिँ, को लब्भै दुलभू ॥

सारइँ बहु-'थुति-'थुत्तै, चित्तैं जेहिँ कृत ॥

तॉसु पदकमल जे प्रणमै, ते जन कृत-सुकृता ॥७॥

---

[1] तुरंत

(३) गुरुकी शिक्षाका फल

जहि सावय त बोलु न भक्खहि, लिंति नय ।
जहि पाण-हिय धरंति, न सावय-सुद्धनय ॥
जहि भोयणु न सयणु, न अणुचिउ बइसणउ ।
सह पहरणि न पवसु न दुट्ठउ बुल्लणउ ॥२१॥
जहि न हासु नवि हुड्डु, न खिड्ड न रूसणउ ।
कित्ति निमित्तु न दिज्जइ, जहिँ धण अप्पणउ ॥
करहि जि बहु आसायण, जहिँ तिन मेलियहि ।
मिलिय ति-केलि करंति, समाणु महेलिय[1]हिँ ॥२२॥
जहिँ संकंति न गहणु, न माहि न मंडलउ ।
जहँ सावयसिरि दीसइ, कियउ न विटलउ ॥
ण्हवणयार जण मिल्लिवि, जहि न विभूसणउ ।
सावयजणिहि न कीरइ, जहि गिह-चित्तणउ ॥२३॥
जहिँ न अप्पु वन्निज्जइ, परु वि न दूसियइ ।
जहि सग्गुणु वन्निज्जइ, विगुणु उवेहियइ ॥
जहि किर वत्थु-वियारणि, कसु वि न वीहियइ ।
जहि जिणवयणुत्तिन्नु, न कहवि पयंपियइ ॥२७॥
इह अणुसोय पयट्टह, सम्व न कुवि करइ ।
भवसायरिंति पडंति, न इक्कु'वि उत्तरइ ॥
जं पडिसोय पयट्टहि, अप्पवि जिय धरइ ।
अवसय सामिय हुंति ति, निव्वुइ पुरवरइ ॥३१॥
तसु पयपकउ पुन्निहि, पाविउ जण-भमरु ।
सुद्ध नाण-महुपाणु, करतउ हुइ अमरु ॥

---

[1] मेहरी, महिला

फुल्ल-कदंबक अंबर-डंबर दीसै,
पावस आउ घनाघन सुमुखि ! बरीसै ॥१८८॥
फुल्ला णिवा भम भमरा, दिट्ठा मेघा जल-स्यामला ।
नाचै विज्जु प्रिय-सखिया ! आवे कंता कहु कहिया ॥८१॥
जो नाचै विज्जू मेघधारा, प्रप्फुल्ला णिवा शब्दइ मोरा ।
वीजता मदा शीता वाता, कंपता काया कंत न आया ॥८६॥

(ग) शरद्-वर्णन

नेत्रानंदा ऊगो चंद्रा, धवल-चमर-सम सित-अरविंदा ।
ऊगो तारा तेजस्सारा, विकसु कुमुद-वन-परिमल-कंदा ॥
भासै काशा सर्वा आशा, मधुर पवन लहलहिय करंता ।
हंसा शब्दै फुल्ला बंधू, शरद-समय सखि ! हिय हरंता ॥२०५॥

(घ) शिशिर-वर्णन

जो फूलु कमल-वन वहै लघु पवन, भमै भमर-कुल दिशिविदिश ।
झंकार परै वन रवै कोइल-गण, विरहिय-हिय हुअौं डर-विरस ॥
आनंदिय युवजन उलस उठिय मन, सरस-नलिनि-दल कृत-शयना ।
बीतउ शिशिरउ दिवस दिरघ भउ, कुसुम-समय अवतरिय वना ॥२१३॥

(ङ) वसंत-वर्णन

भमै मधुकर फुल्ल-अरविंद, नव-किंशु-कानन ज्वलिया ।
सर्वदेश पिक-राव चुल्लिय, शीतल-पवन लघु वहै ॥
मलय-कुहर नव-बेल्लि पेल्लिय ।
चित्तें मनोभव-शर हनै, दूर-दिगंतर कंत ।
किमि परि अपहिं धारिहउ, इमि परि-पडिय दुरंत ॥१३५॥
फुल्ल मधु, भमर बहु, रजनि-प्रभु-किरण लघु अवतरु वसंत ।
मलयगिरि-कुसुम धरि पवन वह, सहब कत सुनु सखि ! नियर नहिं कंत ॥१६३॥
चढि चूतें कोइल-शाव मधु-मास पंचम गाव ।
मन-माँझ मन्मथ-ताप, नहिं कंत आजउ आव ॥८७॥

कआ गउ दुव्वरि तेज्जि गरास, खणे खण जाणिअ दीह णिसास ।
कुहू-रव-ताव दुरंत वसंत, कि णिद्दअ काम कि णिद्दअ कन्त ॥१३४॥ (४५३)
वहइ दक्खिण-मारुअ सीअला, रवइ पचम-कोमल कोइला ।
महुअरा महु-पाण महूसवा, भमइ सुदरि ! माहव समरा ॥१४०॥ (४६०)
णव-मजरि लिज्जिअ चूअह गाछेँ, परिफुल्लिअ केसु णआ वण आछे ।
जइ एत्थि दिगतर जाइहि कता, किअ वम्मह णत्थि कि णत्थि वसता ।१४४। (४६५)
जहि फुल्ल किंसु-असोअ-चपअ-मजुला, सहआर-केसर-गध लुद्धउ भम्मरा ।
वहु-दक्ख दक्खिण-वाउ माणह भजणा, महु-मास आविअ लोअ-लोअण-रजणा ॥१६३(४९१)॥

वहइ मलअ-वाआ हत ! कपत काआ,
हणइ सवण-रधा कोइला-लाव-बधा ।
सुणिअ दहदिहासु भिंग-झंकार-भारा,
हणिअ हणइ हञ्जे ! चड-चडाल-मारा ॥१६५॥ (४९३)

वहइ मलआणिला विरहि-चेउ-सतावणा,
रअइ पिक-पचमा विअसु किंसु-फुल्ला वणा ।
तरुण-तरु-पल्लवा मउलु माहवी वल्लिआ,
वितर सहि ! णेत्तआ सगअ माहवा[1] पत्त आ ॥१७९॥ (५१३)

अमिअ-कर-किरण धरु फुल्लु णव-कुसुम-वण,
कुविअ भइ सर ठवइ काम णिअ धणु धरइ ।
रवइ पिक समअ णिअ कत तुअ थिर हिअलु,
गमिअ दिण पुणु ण मिलु जाहि सहि ! पिअ-णिअलु ॥१९१॥ (५३७)

जह फुल्ल केअइ चारु-चपअ-चूअ-मंजरि-वजुला,
सव दीसदीसइ केसु-काणण पाण बाउल भम्मरा ।
वह पोम्म गध विबधु वंधुर मद मद समीरणा,
णिअ केलि-कोतुक-लास-लगिम लग्गिआ तरुणी जणा ॥१९७॥ (५५०)

---

[1] चैत्रमास

काँया-भउ दूबरि त्तेज्जिय ग्रास । क्षणे-क्षण जानिय दीर्घ-निश्वास ।
कुहु-रव ताप दुरत वसत । कि निर्दय काम कि निर्दय कत ॥१३४॥

वहइ दक्खिन मारुत शीतला, रवइ पचम कोमल कोइला ।
मधुकरा मधुपान-महोत्सवा, भ्रमइ सुदरि ! माधव सस्मरा ॥१८०॥

नवमजरि लिज्जिय चूतह गाछे, परिफुल्लित किशु नवा वन आछे[१] ।
यदि आहि दिगतर जाइब कता, किअ मन्मथ नाहिँ कि नाहि वसता ॥१८४॥

जहँ फुल्ल किशु-अशोक-चपक-मजुला, सहकार-केसर-गध-लुब्धउ भ्रम्मरा ।
वहुदक्ष दक्षिण-वात मानहँ भजना, मधुमास आयउ लोक-लोचन-रजना ॥१६३॥

वहइ मलय-वाता हत कपन काया ।
हनइ श्रवण-रध्रा कोकिलालाप-बधा ।
सुनिय दशदिशासु भृङ्ग-झकार-भारा ।
हनिय हनै ओरे ! चड-चडाल मारा ॥१६५॥

वहे मलियानिला बिरहि-चेत-सतापना,
रवै पिक पचमा विकसु किशु फुल्ला वना ।
तरुण-तरु-पल्लवा मुकुलु माधवी-वल्लिया,
वितर सखि ! नेत्रवा समय माधवा आइया ॥१७६॥

अमियकर किरण धरु फुल्लु नवकुसुम वन,
कुपित भइ शर थवइ काम निज धनु धरै ।
रवइ पिक समय निज कत नव थिर हृदय,
गयउ दिन पुनि न मिलु, जाहि सखि ! पिय-नियर ॥१६१॥

जहँ फुल्ल केतकि चारु-चपक-चूत-मजरि-वजुला,
सब दीस दीसै किंशु कानन प्राण व्याकुल भ्रम्मरा ।
वहे पद्म गध-विबंध-बंधुर मंद-मंद समीरणा,
निज केलि-कौतुक-लास-भगिम लागिया तरुणी जना ॥१६७॥

---

[१] है

फुल्लिअ केसु चंद तह विअसिय, मजरि तेज्जइ चूआ,
दक्खिण-वाउ सीअ भइ पवहइ, कंप विओइणि हीआ।
केअइ-धूलि सब्ब दिस पसरइ, पीअर सव्वउ भासे,
आउ बसंत काह सहि¹ कण्णिअइ, कंत ण थाकइ पासे ॥२०३॥ (५६३)

(४) वीर-प्रशंसा

सुरअरु सुरही परसमणि, णहि वीरेस समाण।
ओ वक्कल अरु कठिण तणु, ओ पसु ओ पासाण ॥७६॥ (१३६)

(५) कर्ण (कलचूरि) राजाकी प्रशंसा

चल गुज्जर कुंजर तेज्जि मही, तुअ बब्बर जीवण अज्जु णही,
जइ कुप्पिअ कण्ण-णरेंदवरा, रण को हरि को हर वज्जहरा ॥१३०॥ (४४८)
कण्ण चलंते कुम्म चलइ पुहवि¹ असरणा,
कुम्म चलंते महि चलइ भुअण-भअ-करणा।
महिअ चलंते महिहरु तह असुरअणा,
चक्कवइ चलंते चलइ चक्क तह तिहुअणा ॥६६॥ (१६५)
जे गजिअ गोलाहिवइ राउ, उद्दंड ओड्ड जसु भअ पलाउ।
गुरु विक्कम विक्कम जिणिअ जुज्झ, ता कण्ण परक्कम कोइ बुज्झ ॥१२६॥ (२१६)
जिहि आसावरि देसा दिण्हउ, सुत्थिर डाहर रज्जा लिण्हउ।
कालंजर जिणि कित्ती थप्पिअ, धणु आवज्जिअ धम्मक अप्पिअ ॥१२८॥ (२२२)
हणु उज्जर-गुज्जर-राअ-कुल, दल-दलिअ चलिअ मरहट्ठ-वल।
वल मोडिअ मालव-राअ-कुला, कुल उज्जल कलचुलि कण्ण फुला ॥१८५॥ (२६६)
थिक्क दलण थोंग-दलण तक्क-दलण रिंगए,
णं-ण-णुकट दिग दुकट रगल तुरगए।

---

¹ पृथिवी

फुल्लिअ किंशु चंद्र निभि विकसिय मंजरि त्याजै चूना।
दक्षिण-वायु शीत-भय प्रवहै, कंप वियोगिनि हीया।
केतकि-धूलि सर्व दिशि प्रसरै, पीयर सर्वउ भासै।
आउ वसंत काह सखि[1] करिये, कंत न थाकै पासे ॥२०३॥

(४) वीर-प्रशंसा

सुर-तरु सुरभी परस-मणि, नहिं वीरेश-समान।
वह वल्कल अरु कठिन-तनु, वह पशु वह पाषाण ॥६७॥

(५) कर्ण (कलचूरि) राजाकी प्रशंसा

चलु गुर्जर! कुंजर त्याजि, मही, तव बर्बर जीवन आज नहीं।
यदि कोपिय **कर्ण**-नरेन्द्रवरा, रणे को हरि को हर-वज्रधरा ॥१३०।
कर्ण चलते कूर्म चलै पुहुवि असरणा,
कूर्म चलते महि चलै भुवन-भय-करणा
मही चलते महिधर तहँ असुरजना,
चक्रवर्त्ति चलते चलै चक्र निभि तिभुवना ॥६६।
जे गजिअ **गौडाधिपति** राउ, उद्दंड **ओड्** जसु भय पलाउ।
गरु-विक्रम **विक्रम** जिनिहि जुज्झु, तो **कर्ण**-पराक्रम कोइ बुज्झ ॥२१६।
जिनि **आसावरि** देशा दीनेउ, सुस्थिर **डाहर** रज्जा लीनेउ।
कालंजर जिति कीर्त्ति थापिय, धन आवर्जिय धर्महँ अर्पिय ॥१२८।
हनु उज्वल **गुर्जर**-राजकुल, दरदारिय चलिय **मरहट्ट**-बल।
बल मोडिय **मालव**, राजकुला, कुल-उज्वल **कलचुरि** कर्ण-फुला ॥१८५।
खिक्क दलन थोंग दलन तक्क दलन रेगए,
न-ननु-कट दिग-दुकट रग चल तुरगए

---

[1] रहै

धूलि धवल हक्क सवल पक्खिपवल पत्तिए,
कण्ण चलइ कुम्म ललइ भुम्मि भरइ कित्तिए ॥२०१॥ (३२२)

जुज्झ भट भूमि पड, उट्ठि पुणु लग्गिग्र,
सग्ग-मण खग्ग हण कोइ णहि भग्गिग्रा।
बीस सर तिक्ख कर कण्ण गुण अप्पिग्रा,
पत्थ तह जोलि दह चाउ मह कप्पिग्रा ॥१६१॥ (४८८)

सज्जिग्र जोह विवट्ठिग्र कोह चलाउ धणू,
पक्खर वाह चलू रणणाह कुरत तणू।
पत्ति चलत करे धरि कुत सुखग्गकरा,
कण्ण-णरेद सुसज्जिग्र विद चलति धरा ॥१७१॥ (५०२)

कण्ण पत्थ ढुक्कु लुक्कु सूरवाण सहएण,
धाउ जासु तासु लग्गु अधग्रार सहएण।
एन्थ पत्थ सट्ठि वाण कण्ण पूरि छड्डुएण,
पेक्खि कण्ण कित्ति धण्ण वाण सव्व कट्ठिएण ॥१७३॥ (५०४)

३—कविका संदेश

(जगत् तुच्छ—)

अइचल जोब्बण देह धणा, सिविणग्र सोग्रर बधु-ग्रणा।
अवसउ कालपुरी गमणा, परिहर बब्बर पाप-मणा ॥१०३॥ (४१४)

ए अत्थीरा देक्खु सरीरा, घरु जाया,
वित्ता, पित्ता, सोग्रर, मित्ता, सवु माया।
काहे लागी बब्बर बेलावसि[1] मुज्झे,
एक्का कित्ती किज्जहि जुत्ती, जइ सुज्झे ॥१४२॥ (४६३)

---

[1] बैलावसि=बाहर निकालते हो (मैथिली क्रि० बैलाएब)

धूलि धवल हाँक सबल पक्षि-प्रबल पत्तिए[1],
　　कर्ण चलै कूर्म ललै भूमि भरै कीर्त्तिए ॥२०१॥
जूझ भट भूमि पड़ु उट्ठि पुनि लग्गिया,
　　स्वर्ग-मन खङ्ग हन कोइ नाहि भग्गिया।
बीस-शर तक्षिण कर **कर्ण** गुणे अप्पिया,
　　पार्थ तहँ जोरि दश चाप-मह कप्पिया[2] ॥१६१॥
सज्जित योध विवर्द्धित-क्रोध चलाउ धनू,
　　पक्खर-वाह[3] चलो रणनाथ फुरन्त तनू।
पत्ति[1] चलत करे धरि कुत सु-खङ्गकरा,
　　कर्ण-नरेन्द्रे सु-सज्जित-वृन्दे चलति धरा ॥१७१॥
कर्ण-पार्थ ढुक्कु लुक्कु सूर-बाण-महलेहिँ,
　　घाव जासु तासु लागु अधकार सहलेहिँ।
अत्र पार्थ साठ बाण कर्ण पूरि छाडतेहिँ,
　　पेखि कर्ण-कीर्त्तिधन्य बाण सर्व काटियेहिँ ॥१६३॥

३—कविका संदेश

(जगत् तुच्छ—)

अतिचल-यौवन-देह-धना, स्वप्नए सोदर-बधु-जना।
　　अवसए काल-पुरी-गमना, परिहर **बब्बर** पाप मना ॥१०३॥
ए अस्थीरा देक्खु शरीरा, घरु जाया,
　　वित्ता, पित्ता, सोदर, मित्रा, सब माया।
काहे लागी **बब्बर** बैलावसि मुज्झे,
　　एक्का कीर्त्ती किज्जइ युक्ती, यदि सुज्झे ॥१४२॥

---

[1] प्यादा　[2] काटा　[3] बख्तरदार घोड़ा

§ २८. कनकामर मुनि

काल—१०६० ई०(?)। देश—बुंदेलखंड(?)। कुल—ब्राह्मण, दिगंबर

१–भौगोलिक वर्णन

(१) अंग-देश-वर्णन

दीवाण पहाणहिँ दीव-दिवे। जबू-दुम लांछएँ जबुदिवे॑।
वेढिय लवणण्णव वलयमाणे॑। जोयण सय-सहस परिग्पभाणे॑।
वित्थिण्णउ इह सिरि भग्ह-छेत्तु। गंगाणइ सिधुहु विप्फुरन्तु।
छक्खड भूमि रयणहँ णिहाणु। रयणायरोव्व सोहायमाणु।
एत्थत्थि रवण्णउ अगदेसु। महि-महिलइँ ण किउ दिव्ववेसु।
जहिँ सरवरि उग्गय पकयाइँ। ण धरणि वयणि णयणुल्लयाइँ।
जहिँ हालिणि[1] रूवणि वद्धणेह। सचल्लहिँ जक्खण दिव्वदेह।
जहिँ बालहिँ रक्खिय सालिखेत्त। मोहेविणु गीयएँ हरिणखेत।
जहिँ दक्खइँ भुजिवि दुहु मुयति। थल-कमलहिँ पथिय सुहु सुयंति।
जहिँ सारणि सलिल सरोय-पति। अइरेहइ मेइणि ण हँसति।

(२) चंपानगरी

घत्ता। तहँ देसि रवण्णइँ धण-कण-पुण्णइँ अत्थि णयरि सुमणोहरिया।
जण-णयण-पियारी महियलि सारी, **चंपा** णामइँ गुणभरिया॥

जा वेढिय परिहा-जलभरेण। ण मेइणि रेहइ सायरेण।
उत्तुग-धवल कउ सीसएहिँ। ण सग्गु छिवइ बाहू-सएहिँ।
जिण-मंदिर रेहहिँ जाहिँ तुग। ण पुण्णपुज णिम्मल अहग।
कोसेय पडायउ घरि लुलति। णं सेय-सप्प णहि सलवलंति।

---

[1] देखो स्वयंभू (पृ० ३२), और पुष्पदंत (पृ० १६२ और १६४)

§ २८. कनकामर मुनि

साधु। कृति—करकंड-चरिउ[1]

१—भौगोलिक वर्णन

(१) अंग-देश-वर्णन

द्वीपन कों प्रधानो द्वीप-दीप। जंबुद्रुम-लाञ्छित जंबुद्वीप।
बेठिय लवणार्णव वलयमान। योजन-शत-सहस-परिप्रमाण।
विस्तीर्णउ इह श्रीभरत-छेत्र। गंगानदि-सिंधुउ विस्फुरन्त।
छै खंड भूमि रतनहं निधान। रतनाकर इवँ शोभायमान।
एहिं अहै रम्य (ऍहु) अंग-देश। महि-महिलैं जनु किउ दिव्यवेष।
जहँ सरवरें उगें पंकजाइं। जनु धरनि-वदनें नयनुल्लयाइं।
जहँ हालिनि[2] रूप-निबद्ध-नेह। सचल्लैं यक्ष न दिव्यदेह।
जहँ बाला राखिय शालि-खेत। मोहेविय गीतहिं हरिन खेत।
जहँ द्राक्षइँ भृजिय दुधु मुँचति। स्थलकमलहं पथिक मुख सोवंति।
जहँ सरवर-सलिलें सरोज-पंक्ति। अतिराजै मेदिनि जनु हसति।

(२) चंपानगरी

घत्ता। तहँ देशें रमणयइं, धन-कण-पूर्णइ, आहि नगरि सुमनोहरिया।
जननयन-पियारी, महियल-सारी, चंपा नामइँ गुण-भरिया॥
जा बेठिय परिखा-जल-भरेहिं। जनु मेदिनि राजै सागरेहिं।
उत्तुंग-धवल कपि-शीशएहिं। जनु स्वर्ग छुवै बाहूशतेहिं।
जिनमंदिर राजैं जाहँ तुंग। जनु पुण्य-पुंज निर्मल अभंग।
कौषेय-पताकउ घरें लुलति। जनु श्वेत-सर्प नभें सरसरति।

---

[1] कारंजा जैन-ग्रंथमाला (कारंजा, बरार) में प्रो० हीरालाल जैन द्वारा संपादित (१९३४)
[2] हलवाह-वधू

जा पचवण्ण-मणि-किरण-दित्त । कुसुमंजलि ण भयणेण धित्त ।
चित्तलियहिँ जा सोहइ घरेहिँ । ण अमर-विमाणहिँ मणहरेहिँ ।
णव-कुंकुम-छडयहि जा सहेइ । समरंगणु मयणहों ण कहेइ ।
रत्तुप्पलाइँ भूमिहि गयाइँ । ण कहइ धरती फलसयाइँ ।
जिण-वास पुण्ण-माहप्पएण । ण वि कामुय जित्ता कामएण ।
घत्ता । तहिँ अरिविद्दारणु, मयतरु-वारणु, धाडी वाहणु पहु हुयउ ।
जो कवगुणजुत्तउ, गुरुयणभत्तउ, विज्जासायर पारगउ ।
—करकंड-चरिउ, पृ० ४, ५

(३) सिंहल-द्वीप-वर्णन

ता एक्कहिँ दिणि करकंडएण । पुणु दिण्णु पयाणउ तुरियएण ।[1]
गउ सिंहलदीवहों णिवसमाणु । करकंडु णराहिउ णरपहाणु ।
जहि पाउल पिल्लइँ मणुहरंति । सुर-खेयर-किंणर जहिँ रमंति ।
गयलीलइँ महिलउ जहिँ चलंति । णियरूवेँ रइरूउवि खलंति ।
जहि देक्खिवि लोयहँतणउ भोउ । वीसरियउ देवहँ देवलोउ ।
आवासिउ णयरहों बहिय एसें । अरिसक पवड्ढिय तहिँ जि देसें ।
आवासु मुऍवि सहयरसमेउ । करकंडु गयउ रमणिहिँ अमेउ ।
तहिँ गरुवउ सवणसएँहिँ भरिउ । ण कप्पवच्छु देवेहिँ धरिउ ।
दलवंतहि पत्तहिँ परियरिउ । वडु दिट्ठु राएँ समु वित्थरिउ ।
घत्ता । करकंडेँ पेक्खवि तहों वडहों, दीहइँ सुट्ठु सुकोमलइँ ।
ता लेविणु गुलिया धणुहडिया विद्धाइँ असेसइँ सद्दलइँ ॥
—वहीं पृ० ६४

---

[1] तूर्य—नगाड़ा

जा पचवर्ण-मणि-किरण-दीप्त । कुसुमाजलि जनु भगणेहिँ[1] क्षिप्त ।
चित्तलियहिँ जा सोहै घरेहिँ । जनु अमर-विमानहिँ मनहरेहिँ ।
नवकुकुम-छटयेहिँ जा सहेइ । समरागण मदनहोँ जनु कहेइ ।
रक्तोत्पलाइँ भूमिहिँ गताइँ । जनु कथै धर्म्मश्री-फल-शताइँ ।
जिन-वास-पूजा-माहात्म्यएहिँ । नहि कामुक चिता कामएहिँ ।
घत्ता । तहँ अरिविद्दारन, मदतरु-वारन, धाडीवाहन प्रभु हुअऊ ।
जो कविगुण-युक्तउ, गुरुजन-भक्तउ, विद्यासागर-पारगऊ ।।
--करकड चरिउ, (पृ० ४ ५

(३) सिंहल-द्वीप-वर्णन

ता एकहिँ दिन करकंडएहिँ । पुनि दिन्न प्रयाणहिँ तूर्ययेहिँ ।
गउ सिंहलद्वीपहु निवसमान । करकंड नराधिप नरप्रधान ।
जहँ पावस पिल्लेइ मनहरंति । सुर-खेचर-किन्नर जहँ रमति ।
गजलीलहिँ महिलउ जहँ चलति । निजरूपे रतिरूपहँ खलति ।
जहँ देखिय लोकहँ केर भोग । वीसरियउ देवहँ देवलोक ।
आवासेँउ नगरहँ वहिप्रदेशेँ । अरि-शाका बाढी ताहि देशेँ ।
आवास छाडि सहचर-समेत । करकंड गयेँउ रमणिहिँ अमेय ।
तहँ गरुअउ स्रवण शतेँहिँ भरिउ । जनु कल्पवृक्ष देवेँहिँ धरिउ ।
दलवंतहिँ पत्रहिँ परिचरिऊ । वट देखु राव सम-विस्तरिऊ ।
घत्ता । करकंडेहिँ दीसेँउ सो वट, दीरघ सुष्ट सुकोमलइ ।
तो लेइय गोली धनुहडिया, वेँधेँउ अशेषइँ शाद्वलइ ।।५।।
--वही पृ० ६४

---

[1] नक्षत्रमंडल [2] पक्षी कोई

२—सामन्त-समाज

(१) राज-दर्शन

अवरेहिँ 'वि लोयहिँ कलियमाणु । गउ सुन्दरु पुरवरे जणसमाणु ।

घत्ता । सो पुरवरणारिहि गुणणिलउ पढमतउ दिट्ठउ णयरे कह ।

ण दसरहणदणु तेयणिहिँ उज्झहिँ सुरणारीहि जहँ ।।

तहुँ पुरवरे खुहियउ रमणियाउ । झाणट्ठिय मुणि-मण-दमणियाउ ।

कवि रहसइँ तरलिय चलिय णारि । विहडप्फड सठिय कावि वारि।

कवि धावइ णव-णिव णेहलुद्ध । परिहाणु ण गलयउ गणइ मुद्ध ।

कवि कज्जलु बहलउ अहरे देइ । णयणुल्लये[१] लक्खारसु करेइ ।

णिग्गथ-वित्ति कवि अणुसरेइ । विवरीउ डिभु कवि कडिहिँ लेइ ।

कवि णेउरु करयलि करइ बाल । सिरु छडिवि कडियले धरइ माल।

णियणदणु मण्णिवि कवि वराय । मज्जारु ण मेल्लइ साणुराय ।

कवि धावइ णवणिउ मणे धरंति । विहलंघल मोहइ धर सरंति ।

घत्ता । कवि माण-महल्ली मयण-भर, करकडहो सम्मुहिय चलिय ।

थिर थोरय ओहरि मयणयण उत्तत्त-कणय-छवि उज्जलिय ।।

णवरज्जलंभ रजिय हिएण । करकडइ पुरे पइसतएण ।

गयखधे चडण्णिय जतएण । णिउ-राउलु लीलए पत्तएण ।

तं दिट्ठउ राय-णिकेउ तुगु । अइमणहरु णं हिमवंत-सिगु ।

मुक्ता-हल-माला-तोरणेहि । ण विहसइ मियदतहिँ घणेहि ।

किंकिणि रणंतु धयवडउ मालु । ण णच्चइ पणयणि बिहिय-तालु ।

चामीय-रमणि-रयणेहिँ घडिउ । णं सग्गहो अमर-विमाणु पडिउ ।

तहिँ पइसइ णवणिउ विमलबुद्धि । पारंभिय गुरु-यणु मण-विसुद्धि ।

कर हेमकुभ मगलु करति । कवि माणिणि णिग्गयता तुरति ।

---

[१] नयन=नयनुल्ला

२—सामन्त समाज

(१) राज-दर्शन

अवरेहिँहु लोकहिँ कलितमान[1] । गयो सुन्दर पुरवरे जनसमान[2] ।

घत्ता । सो पुरवरनारिहिँ गुणनिलय पइसता दीठेउ नगरे किमि ।
जनु दशरथनदन तेजनिधि 'योध्या सुरनारीहि जिमि ॥

तहँ पुरवरे क्षुभ्यउ रमणियाउ । ध्यान स्थित-मुनि-मन-दमनियाउ ।
कोइ रहसे तरलिय चलिय नारि । हडफड स-ठिय कोई दुवारि ।
कोइ धावै नव-नृप-नेह-लुब्ध । परिधान न गलियउ गनै मुग्धा ।
कोइ कज्जल वहुलो अधर देइ । नयनुल्लै लाक्षारस करेइ ।
निर्ग्रन्थ-वृत्ति[3] कोइ अनुसरेइ । विपरीत वाल कोइ कटिहिँ लेइ ।
कोइ नूपुर करतले करै बाल । शिर छाडी कटितले धरै माल ।
निजनदन मानिय कोइ वराकि । मार्जार न फेंकै मानुराग ।
कोइ धावै नवनृप मने धरंति । विह्वलधर मोह्नै धरा स्मरंति ।

घत्ता । कोइ मान-महल्ली मदन-भरा, करकडहू सम्मुख चलिया ।
स्थिर थोडा अपहरि मदनयना, उत्तप्त-कनक-छवि-उज्ज्वलिया ॥

नव-राज्य-लाभ-रंजित-हियेहिँ । करकडहिँ पुरे पइसतएहिँ ।
गज - कंधे चढिया जनएहिँ । नृप-राजुल - लीला - प्राप्तएहिँ ।
सो देखउ राज-निकेत तुंग । अतिमनहर जनु हिमवत-शृंग ।
मुक्ताफल-माला-तोरणेहिँ । जनु विहसै सित-दतहिँ घनेहिँ ।
किंकिणि रणत ध्वजपटि'व माल । जनु नाचे प्रणयिनि विहित-ताल ।
चामीकर-मणि-रतनेहिँ गढेउ । जनु सर्गहँ अमर-विमान पडेउ ।
तहँ पइसे नव-नृप विमल-बुद्धि । प्रारंभिय गुरु-जन मन-विशुद्धि ।
केँ हेम-कुंभ मगल करंति । कोइ मानिनि नीसरि गइ तुरंति ।

---

[1] सम्मान कृत　[2] जनों सहित　[3] नंगापन　महल

परिमगलु किउ वर-दीवएहिं। जयकारिउ पुणु णारी-सएहिं।
सोवण्ण-कलस-कय उच्छवम्मि। पइसारिउ सो णिव-मदिरम्मि।
घत्ता। सो सयल-गुणायरु सीलणिहि, विणयभाव-सजुत्तउ।
सामंत-मंति-जण-परियरिउ, पुरि अच्छइ[1] रज्जु करंतउ।

—वहीं पृ० २३, २४

(२) राजकुमार-शिक्षा

करकडहों उप्परि खेयरासु। अइपउरु पवड्ढिउ णेहु तासु।
पाढाविउ सो णीतिएँ जुयाइँ। वायरण-तक्क-णाडय-सयाइँ॥
कविविरइय कव्वइँ बहुरसाइँ। वच्छायण-गणियइँ णवरसाइँ।
मंताइँ असेसइँ ततयाइँ। वसियरण सुसोहइँ जतयाइँ॥
असिचक्क-कुत-छुरियउ वराउ। धणुवेय—सत्ति-दिढ-तोमराउ।
मल्लाण जुज्झ तणुघट्टणाइँ। उल्ललणइँ वलणइँ लोट्टणाइँ।
फल-फुल्ल-पत्त-छेयतराइँ। जाणाविउ सयलइँ सुहयराइँ।
पडु-पडह-मुरय-वीणाइ वसु। विज्जाइँ असेसइँ कलिउऐसु।
घत्ता। ज किपि पसिद्धउ भुवणयले, खेयरइँ जणाविउ सो सुरइ।
लोहेण विडविउ सयलु जणु, भणु कि कर चोज्जइँ णउ करइ॥

—वहीं पृ० १६, १७

(३) पति-विरह

घत्ता। हल्लोहलि हूयउ सयलुजणि अपरपरि जाणइ सचलहि।
हा-हा-रउ उट्ठिउ करुण-सरु, नहों सोए णरवर-सलवलहि॥
जा णर-पंचाणणु वियसिय-आणणु जलि पडिउ।
ता सयलहिँ लोयहिँ परारिय सोयहिँ अइडरिउ॥
रइवेय सुभामिणि ण फणि-कामिणि विमणभया।
सव्वंगे कपिय चित्ते चमक्किय मुच्छगया॥

---

[1] रहता है, है

परि-मंगल किउ वर-दीपकेहिँ। जयकारेँउ पुनि नारी-शतेहिँ।
सौवर्ण-कलश-कृत उत्सवहिँ। पइसारेँउ सो निजमंदिरहीँ।
घत्ता। सो सकल-गुणाकर शील-निधि, विनय-भाव-संयुक्तऊ।
सामंत-मंत्रि-जन-परिवरिय, पुरि आछै राज्यकरंतऊ॥

—वहीँ पृ० २३, २४

(२) राजकुमार-शिक्षा

करकंडह-ऊपर खेचराहु। अतिप्रचर प्रवाढेँउ नेह तासु।
पढयउ सो नीतिय जुताइं। व्याकरण-तर्क-नाटक-शताइँ।
कवि-विरचित-काव्यइँ बहु-रसाइँ। वात्स्यायन-गनितइं नवरसाइँ।
मंत्राइँ अशेषइँ तंत्रयाइं। वशिकरण सु-मोहैँ मंत्रयाइँ।
असि-चक्र-कुंत-छुरियउ वराउ। धनु-वेद-शक्ति दृढ तोमराउ।
मल्लाहँ युद्ध तनु घट्टनाइं। उल्ललनैँ वल्ननैँ लोट्टनाइँ।
फल-फूल-पत्र-छेकन्तराइँ। जानावेँउ सकलैँ शुभकराइं।
पटु-पटह-मुरज वीणाइँ वगि। विद्याइँ अशेषइँ कपिटएसु[1]।
घत्ता। जो किछुउ प्रसिद्धउ भुवनतले, खेचरइँ जनायेउ सो सुरति।
लोभेहिँ विडविउ सकल जन, मन की कर प्रेरण न करइ॥

—वहीँ पृ० १६, १७

(३) पति-विरह

घत्ता। हल्लाहल हूयो सकल जन, अपरापर जानै सचलही।
"हा हा" रव उठेँउ करुण-स्वर, पुनि-शोके नरवर कलबलहीँ॥
जो नर-पंचानन विकसित-आनन जलेँ पडेँऊ।
तो सकलहिँ लोकहिँ प्रसरित-शोकहिँ अति डरेँऊ॥
रति-वेग सुभामिनि जनु फणि-कामिनि विमन-भया।
सर्वांगे कंपिय चित्तेँ चमक्किय मूर्छंगता॥

---

[1] मुकुट

किय-चमर-सुवाएँ सलिल-सहाएँ गुणभरिया ।
उट्ठाविय रमणिहि मुणि-मण-दमणिहि मणहरिया[1] ॥
सा करयल-कमलहिँ सुललिय-मरलहिँ उरु हणइ ।
उव्वा-लउणयणी गग्गिर-वयणी पुणु भणइ ॥
"हा वइरिय वइवस पावमलीमस कि कियउ ।
मइँ आसिव रायउ रमणु परायउ कि हियउ ॥
हा दइव परम्मुह दुण्णय-दुम्मुह तुहुँ हुयउ ।
हा सामि ! स-लक्खण सुट्ठु वियक्खण कहिँ गयउ ।
महो उपरि भडारा णरवर सारा करुण करि ।
दुह-जलहिँ पडती पलयहो जती णाह धरि ॥
हउँ णारि वराइय आवइँ आइय को सरउँ ।
परछडिय तुम्हहिँ जीवमि एवहिँ कि मरउँ" ॥
इय मोय-विमुद्धइँ लवियउ सद्धइँ ज हियइ ।
हउ वोल्लिसु तइयहु । मिलिहइ जइयहु मज्झु पइ ।
वही पृ० ६७

(४) पति-विरह

आवसहो आवइ जाव राउ । मयणावलि णउ पेक्खइ 'वि ताउ ॥
जोइयइ चउद्दिसु हिययहीणु । उव्वेविरु हिंडइ महिहे दीणु ॥
ता भकिउ णरवइ गलिय-गव्वु । "कहिँ गउ कलत्तु सव्वंग-भव्वु ॥
मयणावलि जा आणद-भूअ । सा एवहिँ कि विपरीय हूअ" ॥
ता पेसिय किंकर वर-णिवेण । अवलोयहु सामिणि दिसिवहेण ॥
जोएवि दिसिहिँ आगयवलेवि । पुक्कारहिँ उब्भा-कर करेवि ॥
ता राए देक्खिवि ते सुपत्त । परिमुक्क असु णयणहिँ तुरत्त ॥
"हे पयवइ तुहुँ सवणाणबधु । महु अक्खहि सुंदर-णेह-बंधु ॥

---

[1] मण हरिया (=मनहरिया)

(२) वर्षा-वर्णन

"इमि तपिग्रउ बहु ग्रीष्म सकौं कस बोलियऊ,
पथिक ! ग्राव पुनि पावस ढीठ न ग्रांव पियऊ।
चौदिसि घोरधार छाय गउ गरुग्र-भरो,
गगन-कुहर घुरघुरै मरोषउ ग्रवुधरो ॥१३९॥
वक छाडिय सलिलह्रद तरु-शिखरहिं चढेँऊ,
ताडव करिय शिखडिहि वरशिखरे रटेँऊ।
सलिलेहिँ वर शालूरेँहि परसेँउ रसेँउ स्वरेँहि,
कलकल किउ कलकठहिं चढि ग्रामहि शिखरे ॥१४४॥
मच्छरभय ग्रा-पडेँउ ठाँव गाई-गणहीँ,
मनहर रमिग्रइ नाथ रगेँ गोपागनहीँ।
हरियावल धरॉवलय कदम्बवन महमहिऊ,
कियउ भग ग्रगाग ग्रनगेहिं मम ग्रतिहू ॥१४६॥
भाँपी तम-बद्दली दसहु दिशि छाई ग्रबर,
उट्ठविउ घुरघुरा घोर घन कृष्णाडवर।
नभहि मार्ग नभवल्ली तरल तडतडै तडक्कै,
दर्दुर रटन कठोर शब्द कोँइ सहउ न सक्कै।
निपट निरतर नीरधर दुर्धर धर धारौघभर,
किमि सहौँ पथिक ! शिखरस्थितहँ कोइल रसै स्वर ॥१४८॥
यामिनि ! जो वचनीय तुव, सो त्रिभुवन न ग्रमाइ।
दुखिहहिँ होई चौगुनी, छीजै सुख-सगाहिँ ॥१५६॥

(३) शरद-वर्णन

इमि विलपति पछिम दिन पायउ,
गीति गयल पढतहु प्राकृत।
प्रिय-ग्रनुरागि रजनि रमणीया,
गीयइ पथिक ! जानि ग्ररमणीया ॥१५७॥

दक्खिण-मग्गु णियतइ भत्तिहिँ,
दिट्ठु अइथिरि सिउ मइ भत्तिहि।
मुणियउ पाउसु परिगमिअउ,
पिउ परएसि रहिउ णहु रमिअउ ॥१५९॥
गय विद्दवि वलाहय गयणिहि,
मणहर रिक्ख पलोइय रयणिहि।
हुयउ वासु छम्मयलि फणिदह,
फुरिय जुन्ह निसि निम्मल चदह ॥१६०॥
सोहइ सलिलु सरिहिँ सयवत्तिहि,
विविह तरग तरगिणि जंतिहि।
ज हुय हीय गिभि णवसरयह,
तं पुण सोह चडी णव-सरयह ॥१६१॥
धवपिलय धवल सख-सकासिहि,
सोहइ सरह तीर संकासिहि।
णिम्मलणीरं सरिहिँ पवहतिहिँ,
तड रेहंति विहंगम-पंतिहिँ ॥१६३॥
पडिबिबउ दरसिज्जइ विमलहिँ,
कद्दमभारु पमुविकउ सलिलहिँ।
सहमि ण कुज सद्दु सरयागमि,
मरमि मरालगामि णहु तग्गमि ॥१६४॥
अच्छइ जिह नारिहिँ नर रमिरइ,
सोहइ तरह तीर तिह भमिरइ।
बालय वर जुवाण खिल्लतय,
दीसइ घरिघरि पडह वजंतय ॥१७४॥
दारय कुडवाल तंडव करि,
भमहि रच्छि वामंतय सुंदर।

दक्षिण-मार्ग देखन्ती भक्तिहिँ,
देखे अगस्त्य ऋषी मैं झट्टिहिँ।
जानेउ सो पावसहिँ गमायउ,
प्रिय परदेश रहेउ ना रमियउ ॥१५६॥
गउ फाटियइ बलाहक गगनेहिँ,
मनहर तारक लोकिय रजनिहिँ।
हुयो वाम भूमितलें फणीन्द्रा,
फुरिय जुन्ह निशि निर्मल चन्द्रा ॥१६०॥
सोहै सलिल सरन शतपत्रेहिँ,
विविध तरग तरंगिहिँ जातेंहिँ।
जो हत हती ग्रीष्में नवसरसहि,
सा पुनि शोभा चढी नवसरसहि ॥१६१॥
धवलित धवल-शख-सकाशेहिँ,
सोहै सरहि तीर सकाशेहिँ।
निर्मलनीर सरित प्रवहन्तेहिँ,
तट शोभन्त विहगम-पाँतिहिँ ॥१६३॥
प्रतिबिंबउ दरसीयत विमले,
कर्दमभार - प्रमुचित सलिले।
सहौं न क्रौंच-शब्द शरदागमें,
मरौं मरालागम नहिँ ताकौं ॥१६४॥
आछै जहँ नारिहिँ नर रमिया,
सोहै सरहिँ तीर तेहि भ्रमिया।
बालक-वर-युवान खेंल्लन्ते,
दीसै घर - घर पटह बजन्ते ॥१७४॥
दारक कुडवाल ताडव करि,
भ्रमहिँ रथ्यें वादता सुदर।

सोहइ सिज्ज तरुणि जण सत्थिहि,
घरि-घरि समियइ रेह परित्थिहि ॥१७५॥
दितिय णिसि दीवालिय दीवय,
णवससिरेह-सरिस करि लीअय।
मडिय भुवण तरुण जोइक्खहिं,
महिलिय दिति सलाइय अक्खिहिं ॥

(४) हेमन्त-वर्णन

तह कखिरि अणियत्ति, णियती दिसि पसरु,
लइ ढुक्कउ कोसिल्लि हिमतु तुसारभरु।
हुइय अणायर सीयल, भुवणिहि पहिय जल,
ऊसारिय सत्थरहु सयल कदुट्ठदल ॥१८६॥
सेरधिहिँ घणसारु ण चदणु पीसयइ,
अहरक ओला लकिहिँ मयणु समीसियइ।
सीहडिझि वज्जियउ घुसिणु तणि लेवियइ,
चपएलु मियणाहिण गरिसउ सेवियइ ॥१८७॥
धूइज्जइ तह अगरु घुसिणु तणि लाइयइ,
गाढउ निवडालिगणु अंगि सुहाइयइ।
अन्नह दिवसह सन्निहि अगुलमत्त हुय,
महु इक्कह परि पहिय ! णिवेहिय बह्म-जुय ॥१८६॥
हेमंति कंत विलवतियह, जइ पलुट्टि नासासिहसि।
त तइय मुक्ख खल पाइ मइ, मुइय विज्ज कि आविहसि ॥१६१॥

(५) शिशिर-वर्णन

इम कट्ठहिं मइ गमिउ पहिय ! हेमत-रिउ,
सिसिरु पहुत्तउ धुत्तु णाहु दूरतरिउ।
उट्ठिउ झखड गयणि खरफरसु पवणिहय,
निणि सूडिय झडि करि ओरस तहि रुय गय ॥१६२॥

सोहै शय्य तरुणि-जन साथे,

घर - घर सोहै रेख प्रलिप्ते ॥१७५॥

दीयत निशिहिँ दिवाली दीये,

नव-शिखि-रेख-सदृश कर लीये।

मंडित भुवन तरुण ज्योतिष्कहिँ,

महिला देहिँ मलाई आँखिहिँ ॥१७६॥

(४) हेमन्त-वर्णन

तिमि उत्कंठि निरन्तर पेखै दिशि पसरी,

ले ढूकेँउ चातुरिहिँ हिमतु तुषारभरो।

हुयउ अनादर-शीतल भुवने पथिक ! जल,

अपसारिय सत्थरेहिँ सकल पद्मनउ दल ॥१८६॥

सैरंध्री घनसार न चंदन पीसैहीँ

अधर कपोलालंकृत मदन समिश्रैहीँ।

श्रीखंडेँहिँ विवर्जित कुंकुम लेपियहीँ,

चम्प-तैल मृगनाभि सह सेवियहीँ ॥१८७॥

धूँइज्जै तहँ अगर कुँकुम तन लाइयई,

गाढउ निपटालिंगन अंगेँ सुहाइयई।

अन्यहिँ दिवसहिँ सन्निधि अंगुलिमात्र हुआ,

मैँ एककै पर पथिक ! निवेशिय ब्रह्मयुगा ॥१८६॥

हेमंतेँ कन्त ! विलपंतिय, यदि न लवटि आश्वासिही।

तालेहीँ मूर्ख ! खल ! पापि ! मोही, मरे वैद्य कि आइयही ॥१६१॥

(५) शिशिर-वर्णन

इमि कष्टेँहिँ मम गयउ, पथिक ! हेमन्त-ऋतू,

शिशिर पहुँचेउ धूर्त्त, नाथ दूरन्तरितू।

उठेँउ भखड गगनेँ, खर-परुष पवन-हतेउ,

तेहिँ छूटेँउ भरि करि अशेष तहँ रूप मिटेँउ ॥१६२॥

छाय-फुल्ल-फल-रहिय असेविय सउणियण,
तिमिरतरिय दिसाय तुहिण भूइण भरिण।
मग्ग भग्ग पथियह ण पविसिहि हिमडरिण,
उज्जाणहँ ढम्बर छअ सोसिय कुसुमवण ॥१९३॥

मत्तमुक्क सठविउ'वि वहुगधवककरिसु,
पिज्जइ अद्धावट्टउ रसियहि इक्ख-रसु।
कुद चउत्थि वरच्छणि पीणुन्नय-थणिया,
णियसत्थरि पलुटति केवि सीमतिणिया ॥१९५॥

केवि दिति रिउणाहह उप्पत्तिहि दिणहि,
णियवल्लह करि केलि जति सिज्जासणिहि।
इत्थंतरि पुण पहिय ! सिज्ज इक्कल्लियइ,
पिउ पेसिउ मण दूअउ, पिम्म-गहिल्लियइ ॥१९६॥

मइ घणु दुक्खु सहप्पि मुणवि मणु पेसिउ दूअउ,
णाहु ण आणिउ तेण सु पुणु तत्थव रय हूअउ।
एम भमतह मुन्नहियय ज रयणि विहाणिय,
अणिरइ कीयइ कम्मि अवसु मणि पच्छुत्ताणिय।
मइ दिन्नु हियउ णहु पत्तुपिउ, हुई उवम इहु कहु कवण।
सिगत्थि गइय उवाडयणि, पिक्ख हराविय णिअ सवण ॥१९९॥

(६) वसंत-वर्णन

गयउ सिसिरु वणतिण दहतु, महुमास मणोहरु इत्थ पत्तु।
गिरि-मलय-समीरणु णिरु सरतु, मयणग्गि-विऊयह विप्फुरतु ॥२००॥

वहु विविहराइ घण-मणहरेहिँ, सिय सावरत्त-पुप्फंवरेहि।
पंगुरणिहिँ चच्चिउ तणु विचित्तु, मिलि सहियहि गेउ गिरति णित्तु ॥२०२॥

महमहिउ अंगि वहु-गधमोउ, ण तरणि पमुक्कउ सिसिर-सोउ।
तं पिक्खिबि मइ मज्झहि सहीण, लकोडउ पढिउ नवबल्लहीण ॥२० ३॥

छाय-फूल-फल-रहित असेवित शकुनि-जनेँहिँ,
तिमिरान्तरित दिशाहिँ तुहिन - धँआ - भग्गिया।
मार्ग भागु पथिकन न प्रवसहिँ हिमडरिया,
उद्यानहु डम्बर - सम मखेँउ कुसुम-वन ॥१९३॥

माव्रमुक्त सथपेँउ बहुत - गधोत्कर्ष,
पीवैँ अर्धोच्छिष्ट रसिक (जन) इक्षु-रस।
कुन्द - चतुर्थि महोत्सवेँ पीनोन्नत - थनिया,
निज सेजहिँ पलोँटति कोइ सीमन्तनिया ॥१९५॥

कोइ देहिँ ऋतुनाथहँ उत्पनिहि दिनहीँ,
निज-वल्लभ करि केलि जाइँ शय्यासनहीँ।
ऐँहि समये पुनि पथिक! सेज एकल्लियइ,
प्रियँ पठयेँउ मन - दूतउ, प्रेम-गहिल्लयई ॥१९६॥

मेँ घनि दु:ख-महाप समुझि मन प्रेपेँउँ दूतहँ,
नाथ न आनेउ तिनि सो पुनि तहँवेँ रत हुओ।
इमिहिँ भ्रमन्तहिँ शून्यहृदय जो रजनि विहानी,
अनसोचे किय कर्म अवशि मन पच्छतानी।
मैँ दियउ हृदय ना प्राप्त प्रिय, हुइ उपमा ऐँहु कहु कवन।
शृंगार्थ गई गदही (सो पुनि), पेखु हराई निज श्रवण ॥१९९॥

(६) वसंत-वर्णन

गउ शिशिर वन-तृण-दहत, मधुमास मनोहर इहाँ प्राप्त।
गिरिमलय-समीरण बहु बहत, मदनाग्नि वियोगिहँ विस्फुरत ॥२००॥

बहु विविध-राग-घन-मनहरेहिँ, सित-सर्वरक्त-पुष्पावरेहिँ।
घंगुरणेहिँ चर्चित तनु विचित्र, मिलि सखियाँ गावैँ गीत नित्य ।२०२॥

महमहेँउ अगेँ बहु गंधमोद, जिमि तरणि प्रमुचेँउ शिशिर-शोक।
सो पेखिय मैँ मध्ये सखीन, लकोडउ पढेँउ नव-वल्लभीन ॥२०३॥

किंसुयइ-कसिण धणग्गत्तवास, पच्चक्ख पलासइ धुय-पलास[१] ।
सवि दुस्सह हूय पहजणेण, राजणिउ असुहुवि सुहजणेण ॥२०९॥

निवडंत रेणु धर पिजरीहि, अहिययर तविय णवमजरीहि ।
मरु सियलु वाइ महि सीयलतु, णहु जणइ सीउ णं खिवइ ततु ॥२१०॥

जसु नामु अलिक्कउ कहइ लोउ, णहु हरइ खणद्धु असोउ सोउ ।
कदप्पदप्पि सतविय अगि, साहरइ णाहु ण आसहर अगि ॥२११॥

खणु मुणिउ दुसहु जम-कारापासु, वर-कुसुमिहि सोहिउ दस दिसासु ।
गय णिवउ णिरतर गयणि चूय, णवमजरि तत्थ वसत हूय ॥२१५॥

जल-रहिय मेह सतविअ काइ, किम कोइल कलरउ सहण जाइ ।
रमणी-यण रत्थिहि परिभमति, तूरा-रवि तिहुयण बाहिरति ॥२१८॥

चच्चिरिहि गेउ हुणि करिवि तालु, नच्चीयइ अउव्व वसत-कालु ।
घण-निविड-हार परिखिल्लरीहिं, रुणभुण-रउ मेहल-किकिणीहिं ॥२१९॥

जइ अणक्खरु कहिउ मइ पहिय !
घणदुक्खाउन्नियह मयण-अग्गि विरहिणि पलित्तिहि,
त फरसउ मिल्हि तुहु विणय-मग्ग पभणिज्ज झत्तिहि ।
तिम जपिय जिम कुवइ णहु, त पभणिय ज जुत्तु ।
आसीसिवि वर-कामिणिहि, उवट्टाऊ पडिउत्त" ॥२२२॥

त पडुजिवि चलिय दीहच्छि, अइ-तुरिय,
इत्थंतरिय दिसि दक्खिण तिणि जाम दरसिय,
आसन्न पहाउरिउ दिट्ठु णाहु तिणि झत्ति हरसिय ।
जेम अचिंतिउ कज्जु तसु, सिद्धु खणद्धि महतु ।
तेम पढत सुणतयह, जयउ अणाइ-अणतु ॥२२३॥

---

१ "धुतपलाश पलाशवनं पुरः"—माघ कवि

किंशुकहि कृष्ण घनरक्तवर्ण, प्रत्यक्ष परामें धुन पगास।
सब दुसह हुआ प्रभजनेहिं, मजनेउ असुख हि सुहजनेहिं ॥२०९॥

भुइँ पडती रेणू पिंजरीहिं, अधिकतर तपी नवमजरीहिं।
मरु शितल वहै महि शीतलत, न होइ शीत न नशै ताप ॥२१०॥

जसु नाम अलीकै कहै लोक, ना हरे क्षणार्द्ध अशोक शोक।
कदर्प-दर्प-सतपित अग, माहारै नाथान सहकार अग ॥२११॥

क्षण बूझेउ दुसह यम-कालपाश, वरकुसुमहिँ मोहै दश-दिशासु।
गये निविड-निरतर-गगनें चूत, नवमजरि तहाँ वसन्त हूअ ॥२१५॥

जल-रहित मेघ सन्तपैं काय, किमि कोइल कल-रव सहेउ जाय।
रमणी-गण रथ्येहिं परिभ्रमति, तूरी-रव त्रिभुवन बधिर्यति ॥२१८॥

चाचरिहिँ गीत-ध्वनि करिय ताल, नाचीय अपूर्व-वसत-काल।
घन-निविड-हार परिवेष्टिनेहि, रुनझन-रव मेखल-किंकिणीहिँ ॥२१९॥

यदि अनक्षर कहेउँ पथिक¹ मैं।
घनदुखपूर्ण मदनाग्नि विरहेहिँ प्रलिप्ता,
सो परुष छोडि विनयमार्ग-मन भणियहु।

तिमि बोलेहु जिमि कोपु नाहि, सो बोलेहु जो युक्त।"
आशीषिय वरकामनिहिँ, बट्टोही विनियुक्त ॥२२२॥

तेहिँ पठाइ चली दीर्घाक्षि अति तुरतै,
एँहि बिच दिश दक्षिण तेहि याम दरसी,
पास रोकि पथ दीठेउ नाथ, (तिय) झट हर्षिय।

जिमि अचितहू कार्य तसु सिझेउ क्षणार्ध महन्त।
तैस पढत सुनन्तयहूँ, जयतु अनादि अनन्त ॥२२३॥

---

¹ राक्षस

§ २७. बब्बर

काल—१०५० ई० (कर्ण कलचूरी १०४०–७० ई०)। देश—त्रिपुरी

१–जनताका जीवन और आशा

(१) गरीबीका जीवन

सिग्र विट्ठी किज्जइ, जीग्रा लिज्जइ, बाला बुड्ढा कंपता।
बह पंच्छा वाग्रह, लग्गे काग्रह, सब्बा दीसा झंपता।
जइ जड्डा रूसइ, चित्ता हासइ, पटे ग्रग्गी थप्पीग्रा।
कर पाग्रा सभरि, किज्जे भित्तरि, ग्रप्पा-ग्रप्पी लुक्कीग्रा ॥१९५॥ (५४५)
ताव बुद्धि ताव सुद्धि, ताव दाण ताव माण, ताव गब्ब,
जाव जाव हत्थ णच्च, विज्जु-रेह-रंग णाइ, एक दब्ब।।
एत्थ ग्रत ग्रप्प-दोस, देव रोस होइ णट्ठ, सोइ सब्ब;
कोइ बुद्धि कोइ सुद्धि, कोइ दाण कोइ माण, कोइ गब्ब ॥११९॥ (५५४)

(२) सुखी जीवन

पुत्त पवित्त बहुत्त धणा, भत्ति कटुंबिणि सुद्ध मणा।
हक्क तरासइ भिच्च-गणा, को कर बब्बर सग्ग मणा ॥९५॥ (४०५)
सुधम्म-चित्ता गुणवन्त-पुत्ता, सुकम्म-रत्ता विणग्रा कलत्ता।
विसुद्ध-देहा धणवंत-गेहा, कुणति के बब्बर सग्ग-णेहा ॥११७॥ (४३०)
सो माणिग्र पुणवन्त, जासु भत्त पडिग्र तणय।
जासु घरिणि गुणवति, सोवि पुहवि सग्गह णिलग्र ॥१७१॥ (२७९)
उच्चउ छाग्रण विमल घरा, तरुणी घरिणि विणग्रपरा।
वित्तक पूरल मुद्दहरा, वरिसा समग्रा सुवसकरा ॥१७४॥ (२८३)

---

[१] "प्राकृत पैंगल" चन्द्रमोहन घोष द्वारा Bibleo thica Indica (1902) में संपादित। जिन कविताओंमें बब्बरका नाम नहीं, वह बब्बरकी हैं, इसमें

§ २७. बब्बर

(चेदी)। कुल--(कर्णका दर्बारी कवि)। कृतियाँ--स्फुट कवितायें[1]

१-जनताका जीवन और आशा

(१) गरीबीका जीवन

शीॅल वृष्टी कीजिय, जीत्रा लीजिय, बाला-बृढा कपता।
वह पछुवाँ वाता, लागे कायहँ, सर्वा दिशा झाँपता।
यदि जाडा रूसै, चिन्ता ह्रासै, पेटे अग्नी थप्पीया।
कर-पादा सहरि, कीजै भीतरि, आपा-अप्पी लुक्कीया ॥१६५॥
तौ लों बुद्धी तौलों शुद्धी, तौ लों दाना तौलों माना, तौलों गर्वा।
जौलों जौलों हाथे नाचै, विज्जूरेखारगा न्याई, एका द्रव्या।
एही बीच आत्मदोषें, दैव-रोषें होइ नष्ट, सोइ सर्व।
कोई बुद्धि कोई शुद्धि, कोई दान कोई मान, कोई गर्व ॥१६६॥

(२) सुखी जीवन

पुत्र पवित्र बहुत धना, भक्ताँ कुटुंविनि[1] शुद्ध-मना।
हाँके असई भृत्य-गणा, को करें बब्बर स्वर्गें मना ॥६५॥
स्वधर्म-चित्ता गुणवन्त पुत्रा, सुकर्म-रक्ता विनता कलत्रा।
विशुद्ध-देहा धनवत-गेहा, करति के बब्बर स्वर्ग-नेहा ॥११७॥
सो मानिय पुणवत, जासु भक्त-पंडित तनय।
जासु घरनि गुणवति, सोउ पुहुमि स्वर्गह निलय ॥१७१॥
ऊँची छाजन वि-मल घरा, तरुणी घरनी विनयपरा।
वित्तकें पूरल मँदघरा, वर्षा समया सुक्खकरा ॥१७४॥

---

[1] सन्देह है, मगर कर्ण-कालीन जरूर है [1] भार्या

पिअ-भत्ति पिआ, गुणवंत सुआ ।
धण-जुत्त घरा, बहु-सुक्ख-करा ॥४४॥ (३६२)

गुणा जासु सुद्धा, बहू रूअमुद्धा ।
घरे वित्त जग्गा, मही तासु सग्गा ॥५३॥ (३६८)

कमल-णअणि, अमिअ-वअणि ।
तरुणि घरणि, मिलइ सुपुणि ॥५७॥ (३७१)

गुरुजण-भत्तउ, वहुगुण-जुत्तउ ।
जसु जिअ पुत्तउ, सउ पुणवंतउ ॥६१॥ (३७४)

ओग्गर-भत्ता रंभअ-पत्ता, गाइक घित्ता दुध्ध-सँजुत्ता ।
मोइल-मच्छा नालिय-गच्छा, दिज्जइ कंता खा पुणवंता॥६३॥(४०३)

२—सामन्ती समाज

(१) कुलक्षणा[1] स्त्री

भौंहा कविला उच्चा निअला, मज्झा पिअला णेत्ता जुअला ।
रुक्खा वअणा दंता विरला, केसे जिविला ताका पिअला ॥९७॥ (४०८)

(२) नारी-सौंदर्य

रे धणि ! मत्त-मअंगज-गामिणि, खंजण-लोअणि चंदमुही ।
चंचल जोब्बण जात ण जाणहि, छइल समप्पहि काइं णही ॥१३२॥ (२२७)

सुंदरि गुज्जरि णारि, लोअण दीह-विसारि ।
पीण-पओहर-भार, लोलिअ मोत्तिअ-हार ॥१७८॥ (२८६)

हरिण-सरिस्सा णअणा, कमल-सरिस्सा वअणा ।
जुवअण-चित्ता-हरिणी, पिय-सहि ! दिट्ठा तरुणी ॥७९॥ (३८९)

चल-कमल-णअणिआ, खलिअ-थण-वसणिआ ।
हसइ पर-णिअलिआ, असइ धुअ वहुलिआ ॥८३॥ (३१३)

---

[1] कुरूप भी

प्रिय-भक्त प्रिया गुणवत सुता ।
धनवत घरा, बहु सुक्ख-करा ॥४४॥
गुणा जासु शुद्धा, वधू रूप-मुग्धा ।
घरे वित्त जग्गा, मही तासु स्वर्गा ॥५३॥
कमल - नयनि, अमिय - वयनि ।
तरुणि घरनि, मिलै सुपुणि ॥५७॥
गुरुजन - भक्तउ, बहुगुण - युक्तउ ।
जमु जिय पुत्रउ, सोँइ गुणवनउ ॥१६॥
ओगर[1]-भत्ता रंभा-पत्ता, गायकेँ घीवा दुग्ध-सँयुक्ता ।
मोँगुर-मच्छा नालिय-शाका, दीजै काता खाँइ' पुणवता ॥६३॥

२—सामन्ती समाज

(१) कुलक्षणा स्त्री

भौँहा कपिला ऊँच लिलारा । माँझे पियरा नेत्रा-युगला ।
रुक्षा वदना दैतांविरला । कैसे जीविय ताका प्रियला ॥६७॥

(२) नारी-सौंदर्य

रे धनि ! मत्त-मतंगज-गामिनि, खंजन-लोचनि चंद्रमुखी ।
चंचल-यौवन जात न जाने, छैलँ समर्पै काहेँ नहीँ ॥१३२॥
सुंदरि गुर्जरि नारि, लोचन दीर्घ-विसारि[2] ।
पीन-पयोधर-भार, लोलिय मौक्तिक-हार ॥१७८॥
हरिन्न-सरीखा नयना, कमल-सरीखा वदना ।
युवजन-चित्ता-हरणी, प्रिय सखि ! दृष्टा तरुणी ॥७६॥
चल-कमल-नयनिया, स्खलित-थन-वसनिया ।
हसै पर-नियरिया, असति ध्रुव बहुरिया ॥८३॥

---

[1] बासमती (?)   [2] विस्तारी

महाभत्त-माअग-पाए ठवीआ, महातिक्ख-वाणा कडक्खे धरीआ।
भुआ पास भोंहा धँणूहा समाणा, अहो णाअरी कामराअस्स सेणा ॥२६॥ (४४३)
तुहु जाहि सुंदरि ! अप्पणा, परितेज्जि दुज्जण थप्पणा।
विअसत केअइ-सपुडा, णिहु एहु आविह वप्पुडा ॥६१॥ (४०१)
खंजण-जुअल णअण-वर-उपमा, चारु-कणअ-लइ भुअ-जुअ सुसमा।
फुल्ल-कमल-मुहि गअ-वर-गमणी, कासु सुकिअ-फल विहि गढु तरुणी।१५३।(४७७)
तरल-कमल-दल-सरि-जुअ-णअणा, सरअ-समअ-ससि-सुअरिस-वअणा।
मअगल-करि-वर-सअलस-गमणी, कवण सुकिअ-फल विहि गठ रमणी।१६७।(४६६)
पाअ-णेउर[1] झंझणक्कइ, हंस-सद्द-सुसोहणा,
थोर-थोर-थणग्ग णच्चइ, मोंत्ति-दाम-मणोहरा।
वाम-दाहिण-धारि धावइ, तिक्ख-चक्खु-कडीक्खआ,
काहु णाअर-गेह-मंडिणि, एहु सुंदरि पेक्खिआ ॥१८५॥ (५२३)

(३) ऋतु-वर्णन

(क) ग्रीष्म

तरुण-तरणि तवइ धरणि, पवण वहइ खरा,
लग्ग णाहि जल वड़ मरुथल, जण-जिअण-हरा।
दिसइ चलइ हिअअ दुलइ, हम इकलि वहू,
घर णहि पिअ सुणहि पहिअ ! मण इच्छइ कहू ॥१९३॥ (५४१)

(ख) पावस

वरिस जल भमइ घण गअण सिअल पवण मणहरण,
कणअ-पिअरि णचइ विजुरि फुल्लिआ णीवा।
पत्थर वित्थर हिअला पिअला णिअल ण आवेइ ॥१६६॥ (२७३)
णच्चइ चंचल विज्जुलिआ सहि ! जाणएँ,
मम्मह खग्ग किणीसइ जलहर-साणएँ।

[1] नूपुर

महामत्त-मातंग-पादे थपीया, तथा तीक्ष्ण-बाणा कटाक्षे धरीया ।
भुजापाश भौँहा धनूहा-समाना, अहो नागरी कामराजाहँ सेना ।।१२६।।
तुहुँ जाहु सुंदरि आपना, परित्यजिय दुर्जन स्थापना' ।
विकसंत-केतकि-संपुटा, चुप एहु आयहु बापुरा ।।९१।।
खंजन-युगल नयनवर-उपमा, चारु-कनक-लत भुज-युग-सुपमा ।
फुल्लकमल-मुखि गजवर-गमनी, कासु सुकृत-फल विधि गढ तरुणी ।।१५३।।
तरल-कमलदल-सर-युगनयना, शरद-समय-शशि-सुसदृश-वदना ।
मदगल-करिवर-स-अलस-गमनी, कवन सुकृत-फल विधि गढ रमणी ।।१६७।।
पाद-नूपुर झंझनक्कै, हंस शब्द-सुसोहना ।
थोर-थोर-थनाग्र नच्चै, मोत्ति-दाम-मनोहरा ।
वाम-दाहिन-धारेँ धावै, तीक्ष्ण-चक्षु-कटाक्षिया ।
काहु नागर-गेहु-मंडनि, एहु सुंदरि पेखिया ।।१८५।।

(३) ऋतु-वर्णन

(क) ग्रीष्म

तरुण-तरणि तपै धरणि, पवन वहै खरा ।
लाग नाहिँ जल बड मरुथल, जन-जीवन-हरा ।
दिश चलै हृदय डुलै, हम ऐँकली वधू ।
धरेँ नहिँ पिय सुनहि पथिक ! मन-इच्छै कहू ।।१९३।।

(ख) पावस

वरिस जल भमै घन गगन, शीँतल-पवन मन-हरन ।
कनक-पियरि नचै बिजुरि, फूलिया निंबा ।
पत्थर-विस्तर-हियरा पियरा, नियर न आवई ।।१६।।
नाचै चंचल विज्जुरिया सखि ! जाइ,
मन्मथ-खड्गहँ धरसै जलधर-शानै ।

मत

फुल्ल कग्रबग्र ग्रवर डग्रर दीसएँ,

पाउस पाउ घणाघण सुमुहि ! वरीसएँ ।।१८८।। (३००)

फुल्ला णीवा भम भमरा, दिट्ठा मेहा जल सामला ।

णच्चे विज्जु पिग्र-सहिग्रा, ग्रावे कंता कहु कहिग्रा ।।८१।। (३९१)

ज णच्चे विज्जू मेहधारा, पफुल्ला णीवा सद्दे मोरा ।

वाग्रंता मदा सीग्रा वाग्रा कपता काग्रा कंता णाग्रा ।।८९।। (३९९)

(ग) शरद्-वर्णन

णेत्ताणंदा उग्गो चंदा, धवल-चमर-सम-सिग्र-ग्ररविंदा,

उग्गे तारा तेग्रा-सारा, विग्रसु कुमुग्र - वण - परिमल - कंदा ।

भासे कासा सव्वा ग्रासा, महुर-पवण लह-लहिग्र करंता,

हंसा सद्दे फुल्ला बंधू, सरग्र-समग्र सहि ! हिग्र ग्रहरंता ।२०५। (५६६)

(घ) शिशिर-वर्णन

जं फुल्लु कमल-वण वहइ लहु पवण, भमइ भमरकुल दिसिविदिस,

झंकार पलइ वण रवइ कुहिल-गण, विरहिग्र हिग्र हुग्र दर-विरस ।

ग्राणंदिग्र जुग्रजण उलसु उठिग्र मण, सरस, णलिणि-दल किग्र सग्रणा,

पलट सिसिररिउ दिग्रस दिहर भउ, कुसुम-समग्र ग्रवतरिग्र वणा ।।२१३।। (५८१)

(क) वसंत-वर्णन

भमइ महुग्रर फुल्ल-ग्ररविंद, नवकेग काणण जुलिग्र,

सव्वदेस पिक्क-राव चुल्लिग्र, सिग्रल-पवण लहु वहइ,

मलग्र-कुहर णव-बल्लि पेल्लिग्र ।...

चित्त मणोभव सर हणइ, दूर-दिगतर कंत ।

किम परि ग्रप्पउ धारिहउ, ऍम परिगलिग्र दुरंत ।।१३५।। (२३३)

फुल्लिग्र महु भमर वहु रग्रणि पहु किरण लहु ग्रवग्ररु वसंत ।

मलग्र गिरि कुसुम धरि पवण वह, सहव कत सुण सहि ! णिग्रल णहि कंत ।१६३।(२७०)

चडि चूग्र कोइल-साव, महु-मास पंचम गाव ।

मण-मज्झ वम्मह ताव, णहु कंत ग्रज्जबि ग्राव ।।८७।। (३९७)

स्वामिय अतिहि अजान, जो इन पर बोलै हिय।
जान्या एह प्रमाण, कीधौं जो न कदर्थियइ ॥
—प्रबंध चिंतामणि, पृ० २२

(२) रुद्रादित्यकी तैलप पर न चढ़नेकी सलाह

देव ! हमारी सीख, कीजै औगनियै नहीं।
तू चालती भीख, इन मन्त्रिहिँ होइह सखी ॥
रुलियउ राजहँ राज, तैँ बइठै मैँ लघियइ।
ए पुनि वडो अकाज, तू जाने मालव-धनी ॥
स्वामी मुखतेँ वीनवै, यह पाछिउ जुहार।
मोहिँ आयसु हिय शीश तुह, पडतो देखूँ छार ॥
—प्र० चि०, पृ० २२

(३) मुंजसे तैलपका भीख मँगवाना

झोली टुट्टी की न मुअ, कि हुअ न छारह पुज।
हिंडै[1] डोरी डोरियउ, जिमि मर्कट निमि मुज ॥
चित्तेँ विषाद न चिंतियइ, रतनाकर गुण-पुंज।
जिमि जिमि वाजै विधि-पटह, तिमि ना चिज्जै मुज ॥
सागर खाईँ लंक-गाढ, गढपति दश-शिर राव।
भाग्य क्षयी सो भंजि गउ, मुज ! न करहि विषाद ॥
गयेँ गज रथ गयेँ तुरग गयेँ पायकडानउ भृत्य।
सर्गे ठिउ करि मंत्रणा, महता रुद्रादित्य ॥
—प्र० चि०, पृ० २३

[1] घूमता है, भटकता है

२—सुखी कुटुंब

भोली मुन्धि म गव्वु करि, पिक्खवि पहु-रुवाइँ ।
चउदह-सइँ छहुत्तरइँ, मुंजह गयह गयाइँ ।।
च्यारि बइल्ला धेनु दुइ, मिट्ठा-बुल्ली नारि ।
काहू मुंज कुडबियहँ, गयवर बज्झइँ बारि ।।
—प्र० चिं०, पृ० २४

३—दासी[1]-प्रेम-निंदा

दासिहिँ नेह न होइ, नाना निरहीं जाणियइ ।
राउ मुँजेसरु जोड, घरिघरि भिक्खु भमाडियइ ।।[2]
वेसा छंडि वडायती, जे दासिहिँ रच्चंति ।
ते नर मुजनरिन्द-जिम, परिभव घणा सहंति ।।
—प्र० चिं०, पृ० २४

४—नीति-वाक्य

जे थक्का गोला नई, हूँ बलि कीजूँ ताह ।
मुज न दिट्ठउ विहलिऊ, रिद्धि न दिट्ठ खलाहँ ।।
जा मति पच्छइ सम्पजइ, सा मति पहिली होइ ।
मुज भणइ मुणालवइ, विघन न बेढइ कोइ ।।
—प्र० चिं०, पृ० २४

५—वैराग्य

कसु करु रे पुत्त कलत्त धी कसु करु रे करसण वाडी ।
एकला आइवो एकला जाइबो हाथ-पग बेहु झाडी ।।
—प्रबंधचिंतामणि, पृ० ५१

---

[1] मृणालवती [2] घुमाती है

२–सुखी कुटुंब

भोली मुग्धे ! न गर्व करु, पेखेँवि प्रनि-रूपाइँ ।
चौदहसै छेहत्तर, मुजह गजह गताइँ ।।
चारि वइल्ला धेनु दुइ, मिट्ठा-बोल्ली नारि ।
काह मुज ! कुटुंबियइँ, गज-वर बाँधे द्वारि ।।
—प्र० चि०, पृ० २४

३–दासी-प्रेम-निंदा

दासिहिँ स्नेह न होइ, नाना निरखी जानियइ ।
राव मुँजेश्वर जोइ, घर-घर भीख भ्रमावई ।।
वेसा छाडि बडायती, जे दासिहिँ रजंति ।
ते नर मुज-नरेन्द्र जिमि, परिभव घना सहंति ।।
—प्र० चि०, पृ० २४

४–नीति-वाक्य

जे थाके[1] गोदा नदी, हौँ वलि कीजौँ ताह ।
मुज न देखेउ विहरियउ, ऋद्धि न दीसु खलाहँ ।।
जा मति पाछे ऊपजै, सा मति पहिले होइ ।
मुज भनै मृणालवति, विघन न वाढै कोइ ।।
—प्र० चि०, पृ० २४

५–वैराग्य

कासुकर रे पुत्र-कलत्र-धी कासुकर रे कर्षण-वाडी ।
एकले आइब एकले जाइव हाथ-पग दोनोँ झाडी ।।
—प्रबंध चिंतामणि, पृ० ५१

---

[1] ठैर रह्यो, ठहर जाय

§ २६. अब्दुर्रह्मान[1]

काल—१०१० ई० । देश—मुल्तान । कुल—जुलाहा (मीरसेन । मीरहसन)

१—परिचय

अणुराइयरयिहरु कामिय-मणहरु, मयण मणह-पह-दीवयरो ।
विरहिणिमइरद्धउ सुणहु विसुद्धउ, रसियह रस-सजीवयरो ॥२२॥
अइणेहिण भासिउ रइमइवासिउ, सवणसकुलियह अमिय सरो ।
लइ लिहइ वियक्खणु अत्थह लक्खणु, सुरइ-संगि जु विअड्ढ-नरो ॥२३॥

२—प्रोषितपतिकाका संदेश

(प्रोषितपतिका पथिकको रोकती है)

धम्मिलउ मुक्कमुह, विज्जभइ अरु अंगु मोडई ।
विरहानलि संतविय, ससइ दीह कर-साह तोडई ॥
इम मुद्धह विलवंतियह महि चलणेहि छिहंतु ।
अद्धुड्डीणउ तिणि पहिउ पहि जोयउ पवहंतु ॥२२॥
तं जि पहिय पिक्खेविणु पिअ-उक्कखिरिया,
मंथर-गय सरलाइवि उत्तावलि चलिया ।
तह मणहर चल्लंतिय चंचलरमणभरि,
छुडवि खिसिय रसणावलि किंकिणि-रव पसरी ॥२६॥
तं जं मेहल ठवइ गठि णिट्ठुर सुहय,
तुडिय ताव थूलावलि णवसर-हारलय ।
सा तिवि किवि संवरिवि चइवि किवि संचरिया,
णेउर चरण-विलग्गिवि तह पहि पखुडिया ॥२७॥

---

[1] पच्चाए सि पहूओ पुव्वपसिद्धो य मिच्छदेसो त्थि ।
तह विसए संभूओ आरद्दो मीरसेणस्स ॥३॥

§ २६. अब्दुर्रहमान

पुत्त अद्दहमाण) (आरद्द) । कृति—सनेह-रासय (संदेश-रासक), शृंगारी कवि ।

१—परिचय

अनुरागी-रतिघर कामी-मनहर, मदनमना पथ-दीपकरो ।
विरहिणि-मकरध्वज सुनहु विशुद्धउ रसिकन रस सजीवकरो ॥२२॥
अतिस्नेहहिँ भाषेँउ रतिमतिवासित, श्रवण-शष्कुलिहिँ अमृतसरो ।
लये लिखै विचक्षण अर्थहिँ लक्षण, सुरति-संगेँ जोँ विदग्ध-नरो ॥२३॥

२—प्रोषितपतिकाका संदेश

(प्रोषितपतिका पथिक को रोकती है)

केशमुक्तमुंख जँभाये अरु अंग मोडई ।
विरहानलेँ संतपिय, श्वसै दीर्घ-कर-शाख तोडई ॥
इमि मुग्धा विलपती महिहिँ चरणेहिँ छुवन्ती ।
अर्धोद्विग्ना सा पथिक पथेँ जोयउ चलती ॥२५॥
तहि पथिकहिँ पेखिया प्रियहिँ उत्कंठितिका,
मथर-गति सरलाइय उत्तावलि चलिया ।
तिमि मनहर चल्लन्ती चंचलरमणभरी,
छुटी खिसकि रसनावलि, किंकिणि-रव पसरी ॥२६॥
ता मेखलहिँ राखि गाँठेँ निष्ठुर सुभगा,
टुटी तबहिँ स्थूलावलि नव-सर-हार-लता ।
वह तेहिँ किछुक उठाइ किछुक तजि संचलिता,
नूपुर चरण लपटिया इमि पथि आ-पडिया ॥२७॥

तह तणयो कुलकमलो पाइय कव्वेसु गीय विसयेसु ।
अद्दहमाण पसिद्धो सनेहय रासयं रइय ॥४॥
—संदेशरासक (भारतीय विद्या (बंबई) मार्च १९४२ ई०)

पडिउट्ठिय सविलक्ख-सलज्जिर सभसिया,
तउ सय सच्छ णियसण मुद्धहवि वलसिया।
तं संवरि अणुसरिय पहिय पावयणमणा,
फुडवि णित्त कुप्पास विलग्गिय दर सिहणा ॥२८॥
छायंती कह कह व सलज्जिर णिय करहीँ,
कणय-कलस झपंती णं इंदीवरहीँ।
तो आसन्न पहुत्त सगग्गिर-गिरवयणी,
कियउ सद्दु सविलासु करुण दीहरनयणी ॥२९॥
ठाहि ठाहि णिमिसद्धु सुथिरु अवहारि मणु,
पिसुणि किंपि ज जपउँ हियइ पसिज्जि खणु।
एय वयण आयन्नि पहिउ कोऊहलिउ,
णेय णिअत्तउ तासु कमद्धु'वि णहु चलियउ ॥३०॥
गाहा तं निसुणेविणु राय-मराल-गइ,
चलणंगुट्ठि धरत्ति सलज्जिर उल्लिहइ।
तउ पंथिउ कणयगि तत्थ बोलावियउ,
"कहि जाइसि हिव पहिय कहँ व तुह आइयउ" ॥४१॥
"णयरणामु सामोरु सरोरुहदलनयणी,
णायर-जन-संपुन्नु हरिस ससिहरवयणी।
धवल-तुंग-पायारिहिँ तिउरिहि मडियउ,
णहु दीसइ कुइ मुक्खु सयलु जणु पंडियउ ॥४२॥
तवण-तित्थु चाउद्दिसि मियच्छि वखाणियइ,
मूलत्थाणु[1] सुपसिद्धउ महियलि जाणियइ।
तिह हुंतउ हउँ इक्किण लेहउ पेमियउ,
खभाइत्तइँ वच्चउँ पहु-आएसियउ" ॥६५॥

---

[1] मुल्तान (मूलस्थान=मूलत्राण ?)

पडि उट्ठी सविलक्ष सलज्जिल सभ्रमिया,
तव सित-स्वच्छ-वसन मूर्धहिँ खसिया।
ढाँकि ताहि अनुसरी पथिक-मिल्लन-मनसा,
फटी कंचुकी क्षुद्र-छिद्र तहँ झलक कुचा ॥२८॥
ढाँकती कैसहूँ सलज्जिल निज-करहीं,
कनक-कलश झाँपती मनहुँ इंदीवरहीं।
नियरे पुनः पहुँचि सगद्गद-गिर-वदनी,
कहेँउ शब्द सविलास करुण-दीरघ-नयनी ॥२९॥
"ठहर ठहर निमिषार्ध सुथिर अवधारु मने,
सुनु जो किछु मैं भाखौं हियहिँ पसीजु क्षणे।"
एह वचन सुनि पुनि पथिक कौतूहलियउ,
तुरतहिँ लौटेँउ तासु पदार्धउ ना चलियउ ॥३०॥
गाथा ताहि सुनाइय, राज-मराल-गती,
चरणागुष्ठहिँ भूमि सलज्जिलसों खनती।
इमि पथिकहिँ कनकांगि वहाँ बोलाइयऊ,
"कइँ जाइस हे पथिक! कहाँसे आइयऊ" ॥४१॥
"नगर नाम सामोरु[१] सरोरुहदलनयनी!
नागरजनसपूर्ण अहै शशिधरवदनी!
धवल-तुंग-प्राकारेँहिँ त्रिपुरेँहिँ मडितऊ,
नहिँ दीसै कोँइ मूर्ख सकल जन पडितऊ ॥४२॥
तपन-तीर्थ चौदिसहिँ मृगाक्षि! बखानियई,
मूलतान सुप्रसिद्धउ महितलेँ जानियई।
तहँते मोहिँ केहु लेख देइ भेजावियऊ,
खभातहिँ मैं जाउँ प्रभूप्रेषियत हउँ" ॥६५॥

---

[१] शाम्वपुर=मुलतान

एय वयण आयन्नवि सिधुब्भववयणी,
सर्सवि सासु दीहुन्हउ रालिलुब्भवनयणी।
तोडि करंगुलि करुण 'रागगिर-गिर' पसरु,
जालधरि व समीरिण मूध थरहरिय चिरु ॥६६॥

रुइवि खणद्धु फुसावि नयण पुण वज्जरिउ,
"खंभाइत्तहँ णामि पहिय तणु जज्जरिउ।
तह मह अच्छइ णाहु विरह-उल्हावयरु,
अहिय कालु गम्मियउ ण आयउ णिद्दयरु ॥६७॥

पउ मोडवि निमिसिद्धु पहिय जइ दय करही,
कहउँ किंपि संदेसउ पिय तुच्छक्खरही"।
पहिउ भणइ "कणयंगि ! कहह कि रुन्नयण,
भिज्जती णिरु दीसहि उव्विन्नमियनयण" ॥६८॥

"जसु णिग्गमि रेणुक्करडि, कीअ ण विरहदवेण।
किम दिज्जइ संदेसडउ, तसु णिट्ठुरइ मणेण ॥६९॥

जसु पवसंत ण पवसिआ, मुइअ विओइ ण जासु,
लज्जिज्जइँ संदेसडउ, दिंती पहिय पियासु" ॥७०॥

लज्जवि पंथिय जइ रहउँ, हिअउ न धरणउ जाइ।
गाह पढिज्जसु इक्क पिय, कर लेविणु मन्नाइ ॥७१॥

तुह विरहपहर संचूरिआइँ, विहडंति जं न अंगाइँ।
त अज्ज-कल्ल-संघडण-ओसहे णाह तग्गंति ॥७२॥

कहवि इय गाह पथिय ! मन्नाएबि पिउ।
दोहा पंचकहिज्जसु, गुरुविणएण सँउ ॥७४॥

पिअ-विरहानल संतविउ, जइ वच्चइ सुरलोइ।
तुअ छड्डिवि हिय अट्ठियह, तं परिवाडि ण होइ ॥७५॥

कंत जु तइ हिअयट्ठियह, विरह विडंबइ काउ।
सप्पुरिसह मरणाअहिउ, परपरिहव-संताउ ॥७६॥

एह वयन कानें सुनि सिंधूद्भववदनी,
लेइ दीर्घोष्ण-निश्वास सलिलसभववदनी ।
फोडि करागुलि करुण सगद्‌गद-गिरा कही,
मुग्धा वातेहिं कदली जिमि थहराय रही ॥६६॥
रोइ क्षणार्द्धहिं पोँछि नयन पुनि बोलियऊ,
"खम्भातहि को नाम पथिक ! तनु जर्जरिऊ ।
तहँ मम आछै नाथ विरह-उल्लासकर,
अधिक काल चलि गयउ, न आयउ निर्दयर ॥६७॥
पद मोड़हु निमिषार्ध पथिक ! यदि दया करी,
कहौं किमपि सदेश प्रियहिं तुच्छाक्षरहीं ।"
पथिक भनै "कनकाङ्गि ! कहहु किमि रुदिययनी,
खिन्ना दीसै बहु उद्विग्निल मृगनयनी" ॥६८॥
"जेहि निकसे भस्मोत्कर, कीय न विरहदवेहिं,
किमि दीजै सदेसडा, ताँसु निष्ठुरहि मनेहिं ॥६९॥
जासु प्रवास न प्रवसिया, मुई वियोग न जेहि ।
लज्जीअउँ सदेसडउ, देती पथिक ! प्रियेहिं ॥७०॥
लज्जिय पंथिक ! यदि रहौं, हियहु न धारिय जाइ ।
गाथा पढियहु एक प्रिय, कर गहि लेहु मनाइ ॥७१॥
'तव विरहचोटहिं चूरचूर" नष्ट जो ना अंग हुये ।
सो आजकल-मिलन-उत्सहेँहिं नाथ ठहरे हुये ॥७२॥
कहियउ एँह गाथा पथिक, मनायो प्रिय ।
दोहा पाँच कहीजो, बहुविनयेहिँ सह ॥७४॥
प्रिय-विरहानल संतपित, यदि जाओँ सुर-लोक ।
तोँहि छाड़ी हृदयस्थितहँ, सो पुनि नीक न होइ ॥७५॥
कन्त ! जोँ तोँहिँ हृदयस्थितहिं, विरह पराजै काहु ।
सत्पुरुषहिँ मारणाधिक, पर-परिभव-संताप ॥७६॥

गरुअउ परिहवु कि न सहउ, पइ पोरिस-निलएण ।
जिहि अंगिहि तू विलसियउ, ते दद्धा विरहेण ॥७७॥
विरह-परिग्गह छावडइ, पहराविउ निरवक्खि ।
तुट्टी देह ण हउ हियउ, तुअ संभाणिय पिक्खि ॥७८॥
मह ण समत्थिम विरहसउ, ता अच्छहु विलवंति ।
पालीरूअ पमाण पर, धण सामिहि घुम्मति ॥७९॥
संदेसडउ सवित्थरउ, पर मइ कहण न जाइ ।
जो काणगुलि मूँदडउ, सो बाहडी समाइ ॥८१॥
ल्हसिउ असु उद्धसिउ, अगु विलुलिय अलय,
हुय उब्बिर वयण खलिय विवरीय गय ।
कुकुम कणय-सरिच्छ कति कसिणा वरिया,
हुइय मुध तुय विरहि णिसायर णिसियरिया" ॥८७॥
पहिउ भणइ "पडिउंजि जाउ ससिहरवयणी,
अहवा किंवि कहणिज्जसु मह कहु मियनयणी" ।
"कहउ पहिय ! कि ण कहउ कहिसु कि कहियवयण,
जिण किय एह अवत्थ णेहरइ-रहिय-यण ॥९१॥
जिणि हउ विरहह कुहरि एव करि घल्लिया,
अत्थलोहि अकयत्थि इकल्लिय मिल्हिया ।
संदेसड़उ सवित्थरु तुहु उत्तावलउ,
कहिय पहिय ! पिय गाह वत्थु तह डोमिलउ ॥९२॥
पिअ-विरह-विओए संगमसोए, दिवस-रयणि झूरत भणे,
णिरु अगु सुसतह बाह फुसतह, अप्पह णिद्दय किंपि भणे ।
तसु सुयण निवेसिय भाइण पेसिय, मोहवसण बोलंत खणे,
मह साहस वक्खरु हरि गउ तक्खरु, जाउ सरणि कसु पहिय ! भणे" ।
इहु डोमिलउ भणेविणु निसितम-हरवयणी,
हुइय णिमिस णिप्फद सरोरुहदलनयणी ।

गरुओ परिभव किन सहौं, तौंहिँ पौरुष-निलयँहिँ ।
जेहि अगेंहिँ लु विलासियौ, सो डाहेंउ विरहेंहिँ ॥७७॥

विरह-परिग्रह देहरिहिँ, प्रहरेंउ निरपेक्षि ।
टूटी देह न हनेंउ हृदय- तुव समानहिँ पेखि ॥७८॥

मैं न समर्था विरह-सँग, सो रहऊँ विलपन्ति ।
पालिय रूप प्रमाण पुनि, धनि स्वामीहिँ घुमन्ति ॥७९॥

संदेसड़ो सविस्तरो, पर मोहिँ कहेंउ न जाइ ।
जो कनगुरिया मूँदड़ी, सो बाँहुडी समाइ ॥८१॥

ह्रसेंउ तेज उद्सेंउ अग विखरिय अलकें,
हुअ फिक्कफिक वदन स्खलित-विपरीत-गती ।
कुंकुम-कनक-सदृश कान्ति. कलुपावृतिया,
हुइ मुग्धा तुव विरहें निशाचर निशिचरिया" ॥८७॥

पथिक भनै "तैं भेजु जाउँ शशिधरवदनी,
अथवा किछु कथनीय सों मोंहिँ कहु मृगनयनी" ॥८८॥

"कहौं पथिक ! कि न कहौं, कह्यु की कहँकहिया,
जिन किय एहु अवस्थ नेहरतिरहितैया ॥९१॥
जिन हौं विरहकुहरें इमि करि छडिया,
अर्थलोभि अकृतार्थ इकल्ली मुचडिया ॥

संदेसड़ो सविस्तर, तुहुँ उत्तावलऊ,
कहेंहु पथिक प्रिय गाथाँ वस्तु तहँ डोमिलऊ ॥९२॥

प्रिय-विरह-वियोगे संगम-शोके, दिवस-रजनि झूरत मने,
अति-अंग सुखन्तहँ वाष्पाश्रु वहतहँ आपुहिँ निर्दय किमपि भने ।
तसु सुजन निवेशिय, भावहिँ पेखिय मोहवशेन वोंलत क्षणे,
मम स्वामिय वक्तरु हरि गउ तस्कर, जाउँ शरण काँसु पथिक! भने" ॥९५॥

एहु डोमिलउ भनी पुनि निशितम-हरवदनी,
हुई निमिष निष्पन्द सरोरुहदलनयनी ।

णहु किंहु कहइ ण पिक्खइ ज पुणु अवरु जणु,
चित्ति भित्ति ण लिहिय मुध सच्चविय खणु ॥९६॥
पहिउ भणइ थिरु होहि "धीरु, आसासि खणु,
लइवि वरविकय ससिराउन्न फसहि वयणु" ।
तस्स वयणु आयन्नि, विरहभर-भज्जरिया,
लइ अचलु मुहु पुंछिउ, तह व सलज्जरिया ॥९८॥
"जइ अंबरु उग्गिलइ राय पुणि रंगियइ,
अह निन्नेहुउ अगु, होइ आभंगियइ ।
अह हारिज्जइ दविणु, जिणिवि पूणु भिट्टियइ,
पिय विरत्तु हुइ चित्त, पहिय ! किम वट्टियइ ॥१०१॥
कहि ण सवित्थरु सक्कउँ मयणाउहवहिया,
इय अवत्थ अम्हारिय कतइ सिँव कहिया ।
अंगभंगि णिरु अणरइ, उज्जग्गउ णिसिहि,
विहलघलगय मग्ग, चलतिहि आलसिहि ॥१०५॥
धम्मिल्लइ संवरणु न घणु कुसुमहिँ रइउ,
कज्जलु गलइ कवोलिहि, ज नयणिहि धरिउँ ।
ज पिया आसा गंगिहि अंगिहिँ पलु चडइ,
विरह-हुयासि झलक्किउ तं पडिलिउँ झडइ ॥१०६॥
सुन्नारह जिम मह हियउ, पिय-उक्कखि करेइ ।
विरह-हुयासि दहेवि करि, आसाजलि सिंचेइ" ॥१०८॥
पहिउ भणइ "पहि जंत अमगलु मह म करि,
रुयवि रुयवि पुणरुत्त वाह संवरिवि धरि" ।
"पहिय ! होउ तुह इच्छ अज्ज सिज्झउ गमणु,
मइ न रुत्तु विरहग्गि धूम लोयण सवणु ॥१०९॥
खंधउ दुवइ सुणेबि अंगु रोमंचियउ,
णेय पिग्म परिवडिउ पहिउ मणि रंजियउ ।

ना किछ कहे न पेखे जो पुनि अवर जनहीं,
चित्र-भित्ति जिमि लिखित मुग्धाँ सच्चाइय क्षणहीं ॥९६॥
पथिक भनै "थिर होहि धीर आश्वासु क्षणहिं,
लाउँ लेइ वराकिय शशिसंपूर्ण पोंछहु वदना।"
तासु वचन आकर्णि विरह-भर-भजलिया,
लेइ अचल मुख पोंछु तहँहि सलज्जिलिया ॥९८॥
"यदि अबर छोडहि रग फिनु रगिअई,
जो निस्नेहउ अग होइ अभ्यगिअई।
जो हारिज्जइ धनहिं, जितवि पुनि भेंटिअई,
प्रिय विरक्त ह्वै चित्त पथिक! किमि फरियई ॥१०१॥
कहि न सविस्तर सकौं मदनायुध-वधितहु,
ऍह अवस्थ हम्मारिय कतहिं सब कहियहु।
अग-भग वहु अरती, उज्जग्गौं निशिहीं,
विधिलघितगति मगहिं, चलन्ती आलसहीं ॥१०५॥
केशनकर सवरण न घन-कुसुमहिं रचउँ,
काजल बहै कपोलहिं जों नयनहिं धरऊँ।
जो प्रिय-आशा सगेंहिं अगे माँस चटै,
विरहहुताशें झलक्केंउ सो दुगुनोउ झटै ॥१०६॥
सोनारहि जिमि मम हृदय, प्रिय-उत्कठि करेइ।
विरहहुताशे दहन लगि, आशाजल सिन्चेइ" ॥१०८॥
पथिक भनै "पथि जात अमंगल मम न करु,
रोइ रोइ पुनि रुदन-अश्रु लेंहु रोकि धरु।"
"पथिक! होहु तव इष्ट आज सिद्धहु गमनू,
मैं न रोयों विरहाग्नि-धूम लोचनस्रवणू" ॥१०९॥
खंधहु दुओ सुनीइ, अग रोमाचितऊ,
नहीं प्रेम परि-पडेउ पथिक मनें रंजितऊ।

तह जंपइ मियनयणि सुणिहि धीरयमु खणु,
किहु पुच्छहु ससिवयणि ! पयासहि फुड वयणु ॥१२१॥

णव-घणरिह-वि-णग्गय निम्मल फुरइ करु,
सरयरयणि पच्चक्खु झरंतउ अमिय-भरु।

तह चंदह जिण णत्थ पियह सजणिय सुहु,
कइयलग्गि विरहग्गिधूमि झंपियउ मुहु ॥१२२॥

३—ऋतु-वर्णन

(१) ग्रीष्म-वर्णन

"णव गिम्हागमि पहिय ! णाहु ज पविसयउ,
करवि करंजुलि सुहसमूह मह णिवसियउ।

तसु अणु-अचि पलुट्टि विरह हवि तविय तणु,
वलिवि पत्त णिय-भुयणि विसंठलु-विहल-मणु ॥१३०॥

तह अणरइ रणरणउ असुहु असहंतियहँ,
दुस्सहु मलय-समीरणु मयणा-कंतियहँ।

विसमझाल झलकंत जलंतिय तिव्वयर,
महियलि वण-तिण-दहण तवतिय तरणि-कर ॥१३१॥

जम-जीहइ णं चचलु णहयलु लहलहइ,
तडतडयड धर तिडइ ण तेयह भरु सहइ।

अइउन्हउ वोमयलि पहंजणु जं वहइ,
त झंखरु विरहिणिहि अगु फरिसिउ दहइ ॥१३२॥

हरियंदणु सिसिरत्थु उवरि ज लेवियउ,
तं सिहणह परितवइ अहिउ अहिसेवियउ।

ठविय विविह विलवंतिय अह तह हारलय,
कुसुम माल तिवि मुयइ, झाल तउ हुइ सभय ॥१३५॥

तब बोलै "मृगनयनि ! सुनहु धीरयहु क्षण,
किछु पूछउँ शशिवदनि ! प्रकाशहिँ स्फुट वचन ॥१२१॥
नव-घन-रेख-विनिर्गत निर्मल फुरै करो,
शरद-रजनि प्रत्यक्ष भरतउ अमृत-भरो।
तेँहि चन्दहिँ जयनार्थ प्रियहिँ सजनित सुखो,
कवहिँ लागि विरहाग्नि-धूम झाँपियउ मुखो" ॥१२२॥

३—ऋतु-वर्णन

(१) ग्रीष्म-वर्णन

"नव-ग्रीष्मागमेँ पथिक ! नाथ जब प्रवसितऊ,
करव करांजलि सुख-समूह मम निवमितऊ
तसु पाछहीँ लउट्टि विरह-अगि-तपित-तना,
तवहिँ आइ निजभवन विसस्थुल-विकल-मना"
तिमि अनरति-रणरणक-असुख असहनियहीँ,
दुस्सह मलय-समीरण मदनाक्रान्तियहीँ।
विषमज्वाल झलकंत ज्वलतिय तीव्रतरा,
महियल वन-तृण-दहन तपते तरणिकरा ॥१३१॥
यमजिह्वा जिमि चचल नभतल लहलहई,
तडतडतड धरा करै न तेजोभर सहई।
अतिउष्णउ व्योमतलेँ प्रभजन जो वहई,
सो झंखण विरहिहिँ अग परसेँउ दहई ॥१३२॥
हरिचंदन शीतार्थं उपरि जो लेपितऊ,
सो स्तनकहिँ परितपै अहेउ अहि-सेवितऊ।
थपी विविधि विलपंतिय जो तहँ हार-लता,
कुसुममाल तेँउ मुँचै ज्वाल तव हुइ सभया" ॥१३५॥

(२) वर्षा-वर्णन

इम तवियउ वहु गिंभु कहवि मइं बोलियउ,

पहिय ! पत्तु पुण पाउमु धिट्ठु ण पत्तु पिउ।

चउदिसि घोरंधारु पवन्नउ गरुयभरु,

गयणि गुहिरु घुरहुरइ, सरोसउ अंबुहरु ॥१३६॥

वगु मिल्हवि सलिलद्दहु, तरु-सिहरहि चडिउ,

तडव करिवि सिहडिहि, वरसिहरिहि रडिउ।

सलिलिहि वर सालूरिहि, फरसिउ रसिउ सरि,

कलयलु किउ कलयठिहि, चडि चूयह-सिहरि ॥१४४॥

मच्छरमय संचडिउ रन्नि गोयंगणहि,

मणहर रमियइ नाहु रंगि गोयगणिहि।

हरियाउलु धरवलउ कयबिण महमहिउ,

कियउ भगु अगगि अणगिण मह अहिउ ॥१४६॥

झंपवि तम् वद्दलिण दसह दिसि छायउ अबरु,

उन्नवियउ घुरहुरइ घोरु घण-किसणाडंबुरु।

णहह मग्गि णहवल्लिय तरल तडयडवि तडक्कइ,

दद्दुररडणु रउद्दु सद्दु कुवि सहवि ण सक्कइ।

निवड-निरंतर नीरहर दुद्धर धर धारोहभरु,

कि सहउँ पहिय-सिहरट्ठियइ दुसहउ कोइल रसइ सरु ॥१४८॥

जामिणि जं वयणिज्ज तुअ, तं तिहुयणि णहु माइ।

दुक्खिहि होइ चउग्गुणी, झिज्जइ सुहसंगाइ ॥१५६॥

(३) शरद्-वर्णन

इम विलवंती कहव दिण पाइउ,

गेउ गिरंत पढंसह पाइउ।

पिय-अणुराइ रयणिअ रमणीयव,

गिज्जइ पहिय ! मुणिय अरमणीयव ॥१५७॥

न यात्रा न वित्तो न मित्रो न गेहो । न धर्मो न कर्मो न जीवो न देहो ।
न पुत्रो कलत्रो न इष्टोउ दष्टो । गयउ गजपुरे दूरदेशे पइट्ठो ।
क्षयो होइ निश्चय अधर्मेहि धर्मो । विनष्टेहि धर्मेहि सर्वो अकर्मो ।
करेँउ दुष्कृत दोहकेहि हलेहि । शुभाचारभ्रष्टेहि दुष्टेहि एहि ।
अनिष्टो कनिष्टो भुजो सप्रहाइ । समुद्र रउद्रे क्षयो तुम्ह जाइ ।

——वही पृ० २, २३

४—सामंती वणिक्समाज

(१) वसंत-वर्णन

घत्ता । इतहू मधुमासहू आगमनू । इतहू प्रियपुत्र-समागमनू ।
परमोत्सवेँ रोमाचित-भुजहू । मुहू विकसिउ धनदत्तह सुतहू ॥८॥

जिम तीर्थ तेमि पचहु शतेहिँ । कियउ भवन सोहू निर्वृति-गतेहिँ ।
घरघर मगलइ प्रवोपिताइँ । घरघर मिथुनै परितोपिताइ ।
घरघर तोरणै प्रसाधिताइँ । घरघर स्वजनै अल्पाधिकाइँ ।
घरघर बहुचदन-छटा दीन । मरु-कुन्द-वनय-दवना-प्रकीर्ण ।
घरघर स-रेणु[१]-रज-पिंजरीउ । सोहति चूत तरु-मजरीउ ।
घरघर चर्चरि कौतूहलाइँ । घरघर अदोलै सोहलाइँ ।
घरघर कृत्-वास्त्राभरण सोहू । घरघर आरब्ध महायशोघ ।
घरघर स्वरूप-रजित-मनाइँ । युवती जोवैँ (मुँह) दर्पणाइँ ।

घत्ता । घरघल जल-मगल-कलश किय, घरघर देवय अवतदिणा ।
घरघर शृगारवेप धरेँऊ, नाचेउ वरयुवतिहिँ उच्छलिया ॥९॥

सो गजपुर सो पौरसमागम । सो सित-पक्ष वसतहँ आगम ।
सोइँ निरतराइँ चूत-वनईँ । सोइ धवलपुजवियइँ भवनइँ ।

---

[१] पटवास, सौगंधिक चूर्ण

सो बहु परिमलद्दु वण-तूरउ । पिय-सुह-सीयलु दाहिण मारुउ ।
सो पुर-सोह कासु उवमिज्जइ । जा पिक्खवि सुर हमिरइ दिज्जइ ।
जहिँ उज्जाण-पुरइ सुहसचिय । दाहिणपवन पहय-कुसुमचिय ।
जहिँ मरुकुद-कुसुम सचलियउ । दवणय-मजरीउ नव हरियउ ।
जहिँ आयंबिर फुल्लप लासउ । सोहइ नाइ पलित्तु हुवासउ ।
जहिँ बहु रस-विसेस-वरा-कमलइ । बहु-कुसुमइ धुणति भमर-उलइ ।
घत्ता । जहिँ मालइ-कुसुमामोयरउ, चुबतु भमइ वणि महुअरऊ ।
अइमुत्तए'वि जहि रइ करइ, सो वरवसंतु को न सरई ॥१०॥
——वही पृ० ५६-५७

(२) नारी-सौन्दर्य

दिट्ठि कुमारि वियणि सोवणघरि । लच्छि नाइँ नव-कमल-दलतरि ।
जिण-सासणि छज्जीव दया इव । पडिय-मरणि सुगइ वरिमाइव ।
मुहुमारुइण मलय-वणराइव । सिंहलदीवि रयणविख्याइव ।
सोहइ दप्पणि कील करंती । चिहुर-तरग-भग विवरती ।
सो फलिहतरेण सा पिक्खइ । सावि तासु आगमणु न लक्खइ ।
घत्ता । न वम्मह भल्लि विंधण-सील जुवाण-जणि ।
तहि पिक्खिवि कति , विंभिउ झत्ति कुमारमणि ॥८॥
उप्पल दल-दीहर-पायहिँ । नह-मणि-किरण-करबिय-छायहिँ ।
जंघोरुय गुज्झंतर पासइँ । सुणियत्थइँ णिभीण परिवासइँ ।
पोततर उब्भिन्न पयासइँ । तं विहसति पिहिय परिहासइँ ।
वियडु नियंब-बिंबु सोहिल्लउ । रेहइ अद्धाइद्ध कडिल्लउ ।
रोमावलि वलि अंगि विहावइ । थिय पिपीलि-रिंछोलि'व नावइ ।
रसणादाम निबंधणु सोहइ । किंकिणरणझणंतु मणु खोहइ ।
समचक्कलु कडियलु किसु मज्झइ । नज्जइ करयल मुट्ठिहि गिज्झउ ।
तिवलि-तरगइँ नाही - मंडलु । नं आवत्ता - इद्ध महाजलु ।

सो बहुपरिमलाढ्य-वन-तूर्यउ । प्रिय-सुख-शीतल-दक्षिणमारुतु ।
सो पुर-शोभाँ कासु 'पमिज्जै । जा पेक्खिय सुर अचरज दिज्जै ।
जहँ उद्यानपुरै सुख-सचित । दक्षिण-पवन-प्रहत-कुसुमचित ।
जहँ मरु-कुद-कुसुम सचलियउ । दवना-मजरीउ नव-हिलियउ ।
जहँ आलाम्रहु फुल्लपलाशउ । सोहै न्याइँ प्रदीप्त-हुताशउ ।
जहँ-बहुरस विशेप-शव कमलइँ । बहुकुसुमैं धुनति भ्रमरकुलइँ ।
घत्ता । जहँ मालति-कुसुमामोदरत, चुवत भ्रमैं वनें मधुकरऊ ।
अतिमुक्तएउ जहँ रति करई, सो वर-वसत को न स्मरई ॥१०॥
—वही पृ० ५६-५७

(२) नारी-सौन्दर्य

दीख कुमारि विजनें सोवनघरें । लक्ष्मि न्याइँ नवकमल-दलतरें ।
जिन-शासने छै जीव-दया इव । पडित मरनें सुगति-वरिमा इव ।
मुख-मारुतें मलय-वन-राजि'व । सिहलद्वीपें रत्न-विख्याति'व ।
सोहै दर्पणें क्रीडाँ करती । चिकुर - तरग - भग विवरती ।
सो स्फटिकातरेहिँ तहिँ पेखइ । सापि तासु आगमन न लक्खई ।
घत्ता । जनु मन्मथ-भल्ल-बिधानशील युवान-जनें ।
ताहि पेखिय कांति, विस्मेउ भट्ट कुमार मनें ॥८॥
उत्पलदल-दीरघ-पायहिँ । नख-मणि-किरण-करवित-छायहिँ ।
जघ-उरू-गुह्यान्तर-पासइँ । मुनिवसितैं झीन परिवासइँ ।
पीतातर-उद्भिन्न-प्रयासइँ । तेहिँ वह सति पिहित-परिहासैं ।
विकट - नितब-बिंब सोहिल्लउ । राजै अर्द्धोअर्द्ध कटिल्लउ ।
रोमावलि वलि अंगें विभावै । थिउ पिपीलि-रेखा इव नावै ।
रसना-दाम-निबधन सोहै । किंकिणि रण-झणत मन क्षोभै ।
सम-चक्कर कटितट कृश-मध्यउ । आवे करतल-मुष्टिहु ग्राह्यउ ।
त्रिवलि-तरगइ ,नाभीमडल । ननु आवता ऋद्धि-महाजल ।

पीणुन्नय-निबिडइँ थणवट्टइँ । निब्भिदइँ हारावलि थट्टइँ ।
मालइ-माला कोमल्ल-बाहउ । रयण-कडय-केऊर-सणाहउ ।
सरलंगुलि सुरेह कोमल कर । सफ्फा-वयव नाइँ नहतबिर ।
रयणाहरण विहूसिय कंठि । वेलासिरि'व उयहि-उवकंठि ।
किउ अपमाणु णिउत्तु मुहुल्लउ । अहरउ नावइ दाडिम-फुल्लउ ।
उत्तुंगि तिक्खग्गें नासि । पच्छन्नेण'व अमुणिय सासेँ ।
कन्निहिँ कुंडल-जुअ-गंडयलिहिँ । नयणिहिँ दीह-कसण-चलधवलिहिँ ।
भउहा-जुअलएण सुविहत्तेँ । भालयलेण अद्ध-ससिपत्तेँ ।
महुपिय-पेसल महुरालावि । सिरु आवंचिय केस-कलावि ।
सो पिक्खेंवि अणोवमरूवेँ । अच्छेरइँ विब्भम संभूवेँ ।
बोल्लाविय नायइ-परिहासइँ । मणहर-कामुक्कोवण भासइँ ।
"हे मालूर[1]-पवर-पीवर-थणि । अच्छहिँ काइँ इत्थु वज्जिय जणि ।
कारणु काइँ नयरु ज सुन्नउँ । मढ-विहार-देहुरहिँ रवन्नउँ ।
राणउ कवणु आसि इह राउलि । धय-तोरण-मणि-खंभ-रमाउलि ।"
त निसुणेवि सलज्जिय-वयणी । थिय हिट्ठामुह पगलिय-नयणी ।
मइल-कवोल कज्जला मीसिय । नियकुल-देवयाइँ मं भीसिय ।
घत्ता । वरदत्तु पुत्तियहु तउत्तणउ, मुहकमलु निहालहिँ करि विणउ ।
लइ जलु पक्खालहि लोयणइँ, म निरु करि दुक्खुक्कोयणइँ ।।
—वहीँ पृ० ३२-३३

(३) आभूषण-सज्जा

निय-पुत्त-विढत्तु पिक्खिवि अतुलु महाविहउ ।
वट्टिउ सिंगारु पइ परिहरिउ, परिहरिविगउ ।।
कमलइँ पुत्त-पयाव फुरंतिएँ । लइउ दिव्वु आहरणु तुरंतिए ।
बद्धु कडिल्लि अलक्खिय नामउ । उप्परि पीडिउँ रसणादामउ ।

---

[1] कपित्थ (कैथ)

पीनोन्नत-निविडइँ स्तनवट्टैं । निर्भिदे हारावलि ठट्टैं ।
मालति-माला - कोमल - बाहउ । रतन - कटक - केयूर - सनाथउ ।
सरलांगुलि-सुरेख कोमल कर । सन्ध्या'वयव न्याइँ नभ-नामर ।
रतनाभरण - विभूषित कंठे । वेलाश्री'व उदधि - उपकंठे ।
किउ अपमान अनूप-मुखल्लउ । अधरउ नावइ दाडिम-फुल्लउ ।
उत्तुंग तीक्ष्णाग्रे नासें । प्रच्छन्नें हिं 'व अज्ञान श्वासें ।
कर्णे कुंडल-युग गण्ड-स्थले । नयनेहिँ दीर्घ-कृष्ण-चल-धवले ।
भौंहा युगलएहिँ सुविभक्ते । भाल-नलेहिँ अर्ध-शशि-पत्रे ।
मधु-प्रिय-पेशल-मधुरालापें । शिर आछादिय केश-कलापें ।
सो पेखिया अनूपमरूपा । अप्सराँइँ विभ्रमस-भूता ।
वोलेरू नागर-परिहासइँ । मनहर-कामु-रकोपन-भाषइँ ।
"हे मालूर प्रवर-पीवर-थनि ! आछेहि' काह इहाँ वर्जित-जनें ।
कारन काइँ नगर जो सूना । मठ-विहार-देवलहिँ रमन्ना[1] ।
राना कवन आसि[2] एहि राउलें । ध्वज-तोरण-मणिखंभ समाकुलें ।"
सो सुनियाउ सलज्जिय-वदनी । थिउ हेट्ठामुख पधरिय-नयनी ।
मइल-कपोल कज्जला-मिश्रिय । निजकुलदेवताइँ जनु भीपिय ।
घत्ता । वरयात पुत्रियह तवकेरउ, मुखकमल-निहारहिँ करि विनय ।
लेइँ जल पक्खारै लोचनइँ, जनु चिर करि दुखुल्कोचनइ ॥
—वहीं पृ० ३२-३३

(३) आभूषण-सज्जा

निज पुत्र विदग्धता पेखि, अतुल महाविभव ।
बाटेंउ शृंगार पति परिहरेंउ गउ ॥
कमला पुत्र-प्रताप स्फुरंतिएँ । लयेंउ दिव्य-आभरण तुरंतिएँ ।
बाँधु कटिल्लि अलक्षित-नामउ । ऊपर पीडेंउ रसनादामउ ।

[1] रमणीय [2] हो

मुक्कउ किंकिणीउ नउ सकिउ । भरिबि रयण-कचुकउ तडविकउ ।
मुद्ध मराल-जुयलि किउ छन्नउँ । कबुकठ कदलिए रवन्नउँ ।
पीण-घणत्थण-मंडल-हारि । सिरु धम्मिल्ल-कुसुम-पब्भारिं ।
कन्नहिँ कुडलाइँ आइद्धइँ । उप्परि वेढियाइँ पहचिधइँ ।
पूरिउ रयण-चूडु मणि-वलयहो । दिन्नइँ केँउरइँ बाहु-लयहो ।
अगुलीय मणि मुज्जावत्तउ । बीसहिँ अगुलीहिँ पविखत्तउ ।
पय-मणिबद्धय नेउर-जुयलउ । सुह-सजनिय महुर-रव-मुहलउ ।
जघाजुयलि रयण पज्जत्तउ । कडियलि[१] रसण-कणय-कडि-सुत्तउ ।
मुहि मणि-चूडहोँ ककण जुयलउ । सोहिउ अद्धहारि वच्छयलउ ।
एमाहरणु लेवि सविसेसि । थिय नदणहोँ बियडि परिओसि ।
—वहीँ पृ० ६७-६८

(४) विरह-वर्णन

घत्ता । तो वुच्चइ अहरु पुरतियइँ णिवसतिहि तउतणइँ घरि ।
उप्पाइय केणवि भंति पहु, जा सा कहि म हियइ धरि ।।७।।
तुहुँ पुरवरहोँ सव्व-साहारणु । जाणहिँ कज्जाकज्ज-वियारणु ।
णवर णिरारिउ विप्पियगारउ । सुहियउ होइ सगु तुम्हारउ ।
सेविज्जति विचित्त सणेहउ । मछुडु तुहुँ जिण जम्मिबि एहउ ।
तो वरइत्ति वुत्तु अवंकउ[२] । को सयकइ तउ करिवि कलकउ ।
हउभि णाहि तउ विप्पिय-गारउ । जाणहिँ तुहुँ जि सगु अम्हारउ ।
णवर ण जाणमि काइमि कारणु । जाउ असत्थ पियम्म निवारणु ।
केम कतिपइँ मणिण कलकमि । खणगित्तु'बि देवखणहँ न सक्कमि ।
मउ-चलति णिघतहोँ णयणइं । अणशगऊ करंति तव वयणइ ।
घत्ता । अच्छतु ताम पियविप्पियइँ, एक्कंगणिबि म रइ करहि ।
परियाणिबि एही कज्जई, ज जाणहिँ त भणि धरहि ।।८।।

---

[१] कटितल [२] अ-कुटिल

मुवतउ किंणिीउ ना शकेँउ । भरिउ रतन-कचुकउ तडक्कउ ।
मूर्धं मराल-युगलेँ किउ छन्नउ । कवुकठ-कदलिएँ रमन्नउ[1] ।
पीन-घन-स्तानमडल-हारेँ । शिर-धम्मिल-कुसुम-प्रबृ-भारेँ ।
कर्णहिँ कुडलाइँ आवद्धेँ । ऊपर वेठियाइँ प्रभ-चिन्हेँ ।
पूरेँउ रतन-चूड मणि-वलयहोँ । दीनी केयूरइँ वाहुलतहोँ ।
अगुलीय-मणि मुजावर्त्तउ । वीसहिँ अगुलीहि प्रक्षिप्तउ ।
पद-मणि-वद्धेउ नूपुर-युगलउ । सुख-संजनित मधुर-रव-मुखरउ ।
जघा-युगलेँ रतन-प्रज्-जुत्तउ । कटितलेँ रसन-कनक-कटिसूत्रउ ।
मुखेँ मणि-चूडहोँ कंकण-युगलउ । सोहेँउ अर्धहार वक्षतलउ ।
ए आभरण लेइ सविशेषेँ । ठिय नदनहोँ विकट परितोषेँ ।

—वहीँ पृ० ६७-६८

(४) विरह्-वर्णन

घत्ता । तो वोले अधरफुरतियइँ, निवसतिहि तवकेर घरे ।
उत्पादिय कैसेँहुँ भ्रान्ति प्रभु, या सा काहि न हृदय धरे ।।७।।
तव पुरवरहोँ सर्व-साधारण । जानैँ कार्याकार्य-विचारन ।
केवल अत्यन्त विप्रिय-कारउ । सुहृदउ होइ सग तुम्हारउ ।
संविज्जइँ विचित्र-सनेहउ । मत्सर तोहि न जन्मेँउ एहउ ।
तो वरयातो वोल अवकउ । को सक्कै तव करव कलकउ ।
हौँहु नाहि तव विप्रिय-कारउ । जानै तुहुँहु संग हम्मारउ ।
केँवल न जानौँ काहुउ कारण । जाउ अस्वस्थ प्रियम्म्[2]-निवारण ।
केम कांति तेइँ मनेहिँ कलंकउँ । क्षणमात्रउ देखवहु न सक्कउँ ।
मद चलति देखते नयनइँ । अनरामउ[3] करति तव वदनइँ ।
घत्तो । रहै. ताँह प्रिय-विप्रियइँ, एकागनेहु न रति करहि ।
परि-जानिय एँहि कार्यगती, जो जानहि सो मनेँ धरहि ।।८।।

---

[1] था　　[2] प्रेम, प्रियतम　　[3] अनभीष्ट

णिसुणिवि तासु परम्मुह वयणइँ। मुहुं मउलिउ जलभरियइँ णयणइँ।

हियवइ निब्भरु मणु सम्मारिउ। "दुक्खु दुक्खु" पुणु मणु साहारिउ।

थिय गरुयाहिमाणि मणु लाइवि। मच्छरु माणु मरट्टु पमाइवि।

णउ पहसइ णउ तणुसिगारइ।

णउ केणवि सहु णयण-कडक्खइ। णउ कासुवि गुणदोसइँ अक्खइँ।

तोवि ताहँ घरवइ ण सुहावइ। अयखेरतु पुणुवि बोल्लावइ।

अच्छहिँ काइँ एत्थु दुक्कदिरि। णीसरु कंति जाहि पियमदिरि।

त दुव्वयण तासु असहंती। णिग्गय परिमणु आउच्छती।

—वहीं पृ० १०-११

५—सामन्त-समाज

(१) राजद्वार, राजांगण

रायगणगणि पयडिवि दुट्ठहों दुच्चरिउ।

तं निसुणहु जेम भविसयत्ति-जसु वित्थरिउ।

दाइय दुप्पपंचु आयन्निवि। माण-कसाय-सल्लु मणिमन्निवि।

हरियत्तहों सवेउ समासिवि। कमलदलच्छि लच्छि सवासिवि।

नियय जणेरि वयण सपेसिवि। पुव्वावर सवेउ गवेसिवि।

बहु नवल्ल पाहुडइँ समारिवि। चदप्पहुँ जिणवरु जयकारिवि।

निग्गउ वणिवरिंदु पहुवारहों। भडथड-निवह-विसम-संचारहों।

जहिँ गय गुलगुलंति पिहु जंगम। हिलिहिलति तुक्खार-तुरगम।

जहिँ मंडलिय सक्क-सामंतहँ। निवडिय कणयदडु पइसतहँ।

गलइ माणु अहिमाणु न पुज्जइ। निय-सच्छद-लील नउ जुज्जइ।

जहिँ अब्-भोट्ट[१] जट्ट जालंधर। मारुअ-टक्क-कीर-खस-बब्बर।

मरु-वेयंग-कुंग-वेराडवि। गुज्जर-गोड-लाड-कन्नाडवि।

इय एमाइ अउव्व-वसुधर। अवसरु पडिवालति महानर।

---

[१] देशोंके नाम

सुनिया तासु परामुख-वचनै । मुख मुकुले॑उ जल भरियउ नयनै ।
हियवइ निर्भर मन सभारे॑उ । "दु ख दु ख" पुनि मन मधारे॑उ ।
ठिउ गरुआभिमान मन लाइय । मत्सर-मान-दर्प प्र-मार्जेउ ।
ना प्रहसैं ना तनु शृगारै ।
ना काहुहिँ सँग नयन कटाक्षै । नहि कामुउँ गुण-दोषै आवै[1] ।
तोहु ताहँ घरपति न मोँहावे । अपमानंत पुनिहू बोलावै ।
"अच्छहि काहँ इहाँ दुष्-कदिरे॑ । नीसरु कात ! जाहि प्रियमदिरे॑ ।"
सो दुर्वचन-वास असहती । निर्-गउ परिजन आ-पूछती ।
—वहीँ पृ० १०-११

५—सामन्त-समाज

(१) राजद्वार राजांगण

राजागण जाई प्रकटिउ दुप्टहँ दुश्चरितू ।
सो सुनहु जिमि भविषदत्त-यश विस्तरिउ ॥
दर्शिय दुष्प्रपंच आकर्णिय । मान-कषाय-शल्य मने॑ मानिय ।
हरिदत्तहोँ सकेत समासे॑उ । कमलदलाक्षि-लक्ष्मि संवासे॑उ ।
निजहिँ जनेरि-वचन सप्रेषिय । पूर्वापर सकेत गवेषिय ।
बहु नवल्ल पाहुरइँ[2] सँभारिय । चद्रप्रभ-जिनवर जयकारिय ।
निर्-गउ वणि-वरेंद्र प्रभु-द्वारहोँ । भट-ठट-निवह-विषम-सचारहोँ ।
जहँ गज गुलगुलति पृथु जंगम । हिलहिलंति तूपार-तुरगम ।
जहँ मडलिये॑ शक्र-सामन्तहँ । वारेउ कनकदड पइसतहँ ।
गलै मान अभिमान न पुज्जै । निज-स्वच्छद लील ना जुज्जै ।
जहँवाँ भोट-जट्ट-जालंधर । मारुव-टक्क-कीर-खस-बर्बर ।
मरुवे - अग - कुग - वैराटउ । गुर्जर - गौड - लाट - कर्नाटउ ।
ई एताइं अपूर्व-वसुधर । अवसर प्रतिपालति महानर ।

---

[1] बोलै   [2] प्राभृत (=भेंट)

घत्ता । सामत-सएँहिँ ज सेविज्जइ रत्तिदिणु ।
तं रायदुवारु पिक्खिबि कासु न खुट्टइ मणु ।।

——वहीं पृ० ७१

(२) सामन्ती युगकी शिक्षा

घत्ता । चिन्हइँ दरिसतु महत्तरइँ, सज्जण-जण-हियवउ भरइ ।
आणद णदि-कलयल-रवेण, उज्झासाल पईसरइ ।।
तहिवि तेण गुतु वयण णिउत्ति । परमागम-कल-गुण-सजुत्ति ।
पुणि अक्खर सकेय-कयत्थें । बहु वायरण-सद्द-सत्थ-त्थें ।
सयलकला-कलाव-परियाणिय । अवगाहण-सत्तिए लहु जाणिय ।
जोइस-मत-तत बहु-भेयइँ । धणु-विन्नाण नाण-गुण-छेयइँ ।
विविहाउहइँ विविह-सवरणइँ । रणि हत्थापहत्थ-वावरणइँ ।
दिण्ण पहर पडिपहर पमुक्कइ । लक्खण-चलण-चचला ढुक्कइँ ।
मल्लजुज्झ आवग्गण-सचइ । ढोक्कर-कत्तरि करण पवन्नइँ ।
गय-तुरग-परिवाहण सन्नइँ । सारासार-परिक्खण [1]गन्नइँ ।
घत्ता । एमाइ विसिट्ठइँ अण्णहिँमि आगउ गुणिहिँ तासु वग्गिउ ।
जिण महिम पुज्ज दाणोच्छविण उज्झारालहिँ णीसरउ ।।२।।
उज्झासाल गुएँवि घरु आयहों । थिर-गभीर-गुणिहिँ विक्खायहों ।

——वहीं पृ० ८

(३) युद्ध (भविपदत्तका)

पढमउँ पहरंतएँ सामिसालि । परिभमिय विसम-भडण-करालि ।
भडथडु अप्प परिहोइ जाम । पाइक्कहों पसरु न होइ ताम ।
त मतिहु वयण सुणेवि तेण । अवलोइय नर हरिसियभुएण ।
दिट्ठइँ सग्गमाणइँ जोह जाम । पाइक्कहों पसरु न होइ ताम ।

---

[1] ग्रहण करते हैं

घत्ता। सामत शतेँहिँ जो सेविज्जै रात्रिदिन।
सो राजदुवारहँ पेखि कासु न खुट्टै मन॥

—वहीँ पृ० ७१

(२) सामन्ती युगकी शिक्षा

घत्ता। चिन्हैँ दर्शन्ति महत्तरहिँ, सज्जन-जन-हृदयउ भरै।
आनदनदि-कलकल-रवेहिँ, पाध्या-शाला[1] पईसरै॥
तहाँ तेहिँ गुरुवचन-नियुक्ते। परमागम-कलाँ-गुण-मयुक्ते।
पुनि अक्षर-सकेत-कृतार्थे। बहु व्याकरण-शब्द-शास्त्रार्थे।
सकल-कला-कलाप-परिजानिय। अवगाहन शक्तिएँ बहु जानिय।
ज्योतिष-मत्र-तत्र बहुभेदइँ। धनु-विज्ञान वाण-गुण-छेदइँ।
विविध-आयुधइँ विविध-सवरणैँ। रणेँ हस्त-पहस्त व्यापरणैँ।
दीनु प्रहर प्रतिप्रहर प्रमुचइँ। लक्षण-चलन-चचला-हुक्कइँ।
मल्लयुद्ध आवल्गन सचइँ। ढोक्कर-कर्त्तरि-करन प्रपचइँ।
गज-तुरग-परिवाहन सज्ञइँ। सारामार-परीक्षण गिन्नइँ।
घत्ता। एताइँ विशिष्टइँ, अन्यहँउ अगउ, गुणेंहिँ तासु वरिऊ।
जिन-महिम-पूज-दानोत्सवेँहिँ, पाध्याशालहिँ नीसरिऊ।
पाध्याशाल मुचि घर आयउ। थिर-गभीर-गुणेँहिँ विख्यायउ।

—वहीँ पृ० ८

(३) युद्ध (भविषदत्तका)

प्रथमउँ प्रहरतउ स्वामिशाल। परिभ्रमिय विषम-भडन कराल।
भट-ठट आपा-परिहोइ जाहँ। पायक्कहोँ पसर न होइ ताहँ।
सो मंत्रिहु वचन सुनीय तेहिँ। अवलोकेँउ नर हर्षित-भुजेहिँ।
दृष्टैँ सम्मानैँ योध जाहँ। पाइक्कहोँ प्रसर न होइ ताहँ।

---

[1] उपाध्यायशाला, पाठशाला

पसरइ साकेय-नरिंद-सिन्नु। रोमच उच्च कंचुअ पवन्नु।
हरि-खर-खुर-रवि खोणी खणतु। गयपय पहारि धरदरमलंतु।
"हणु मारि मारि" कलयलु करालु। सन्नद्ध वद्ध भड-थडव मालु।
त निऍवि सधणु अहिमुहुँ चलतु। धाइउ कुरु साहणु पडिखलतु।
घत्ता। कलयल-गभीरइँ दिन्नसरीरइँ, हय-रणभेरि-भयंकरइँ।
कुरुपोयणवल्लहँ अणिहय-मल्लहँ भिडियइँ बलइँ समच्छरइँ॥
दुवई। सो हरि-खर-खुरग्ग-संघट्टि छाइउ रणु अतोरणे।
ण भड-मच्छरग्गि-सधुक्कण धूमतमधयारणे॥
धूलीरउ गयणंगणु भरतु। उट्ठिउ जगु अधारउ करतु।
नउ दीसइ अप्पु न परु स-खग्गु। न गइंदु न तुरउ न गयणमग्गु।
तेहवि काले अविसट्ट-मोह। हुकारहु पहरु मुअति जोह।
किवि आहणति दिसि बहु मुणेवि। गय-गज्जिउ हय-हिंसिउ सुणेवि।
किवि कोक्किकवि पडिसद्दहों चलति। असि-मुट्ठिए नियलोयण मलति।
धावतु कोवि अहियाहिमाणु। गयदतहिँ भिन्नु अपिच्छमाणु।
कत्थइ पहराउर[1] अयसमोह। गयघड पयट्ट निहणति जोह।
रउ नट्ठु विहिडिउ भडबलेण। महि मुद्दिय वण-सोणिय-जलेण।
घत्ता। तो गय-घड पिल्लिउ सुहडहिँ मिल्लिउ अवरुप्परि कप्परियतणु।
सरजालो मालिउ पहर करालिउ, भमरावत्ति भमिउ रणु॥
दुवई। तो इक्कवयकन्न-पगुरणहिँ गुहडहिँ नारसिंहहिँ।
वढ-दाढ़ा-कराल-मुह-भासुर लोललल्त जीहाहिँ॥१॥
खज्जतु भमिउँ करवट्ट सिन्नु। ओसारु निविड गयघडहिँ दिन्नु।
तेहइ वि कालि सोडीर-वीर। पहरति सुहड सगाम-धीर।
केणवि कासुवि असिघाउ दिन्नु। उरु सिरु स-खग्गु भुअ-दडु छिन्नु।
असि वाहइ कोवि गलद्ध सेसु। हत्थेण धरेबि पडतु रीसु।

[1] प्रहार से पीडित

पसरै साकेत-नरेन्द्र शीर्ण। रोमाच उच्च-कचुक प्रॉवरण।
हरि-खर-खुर-रवे क्षोणी खनत। गजपदप्रहरे धर दरदरत।
"हन, मार,मार" कलकल-कराल। सन्नद्ध वद्ध भटठटह माल।
सो निजहु स-धनु अभिमुख चलत। धाये उ कुरु-साधन[1] प्रतिस्खलंत।

घत्ता। कलकल-गभीरइ, दीर्णशरीरइ, हत-रणभेरि-भयकरई।
कुरुउनवल्लभ, अनिहत-मल्लहँ, भिडियै वलई समत्सरई॥

द्विपदी। तो हरि-खॉर-खुराग्र-सघट्टे, छाइउ रणुग्रतोरणे।
जनु भट-मत्सर-'ग्नि-सधुक्षण धूमतम'न्धया रणे॥

धूली-रज गगनागणे भरत। उट्ठेउ जग-अधारउ करत।
ना दीसै आपु न पर स-खड्ग। न गयद न तुरग न गगन-मार्ग।
तेहिइ काले अ-विसृष्ट-मोह। हुकारहु "प्रहरु" मुँचति योध।
केउ आ-हनति दिशि-वधु मॉनेइ। गज-गर्जन हय-हिन्हिन सुनेइ।
केउ कोक्किउ प्रतिशब्दहु वदति। असि-मुष्टिहिँ निज-लोचन मलनि।
धावत कोँइ अधिकाभिमान। गजदतहिँ भिन्दु आपृच्छमान।
कतहूँ प्रहरातुर अयश-मोह। गजघट-प्रवृत्त नि-हननि योध।
रज नष्टउ हिंडिउ भटवलेहिँ। महि मुद्रिय व्रण-शोणित-जलेहिँ।

घत्ता। गजघट पेॅल्लेॅउ सुभदेहिँ मिल्लेॅउ, अपरोपरि कर्परिय तनू।
शरजालो मालेउ, प्रहर करालेउ, भ्रमरावर्त्ते भ्रमेॅउ रणू॥

द्विपदी। तो एकहिँ एक प्रागुरणहि सुभटहिँ नरसिंहहिँ।
दृढ दष्ट्रा-कराल मुख-भासुर लोलललत जीभहिँ॥

खाद्यत भ्रमिउ कर-वाहँ-शीर्ण। ओसार निविड गजघटहिँ दिन्न।
तेहिंई काल शौडीर-प्रवीर। प्रहरति सुभट सग्राम-धीर।
केहुउ काहुहिँ असिघाउ दिन्न। उरु-शिर स-खड्ग भुजदड छिन्न।
असि वाहै कोउ गलार्ध-शेष। हाथेहिँ धरेउ पडंत-शीश।

---

[1] सेना

केणवि आरोडिउ लवकण्णु। वचेवि फरसु कुतेण भिन्नु।
केणवि रणि लज्जिउ एक्कवाउ। विज्जाहर करणि दिन्नु घाउ।
केणवि ढुक्कतु ललतु जीहु। दोखडिवि पाडिउ नारसीहु।
कत्थइ कडु आविय गयहँ पंति। परिभमिय सुहड सीसइँ दलंति।
कत्थइ पहराउर दुन्निवार। हिंडिय[1] तुरग पडि आसवार।
कत्थइ सरोहु वण सोणियधु। गुरहिउ करि नरकेसरिहि खधु।
एहइ वट्टतए रणि असक्कि। मतणउँ जाउ महिवाल चक्कि।
"अहो! अच्छइ हु काइँ निरावसन्न। कुरुवइहि ओँसारिय लवकन्न।
मछुडु दुज्जउ भूवाल राउ। दीसइ धणपइ-सुउ बहु-पराउ"।
त मतिवयणु हियवइ धरेवि। उट्ठिय सयलवि समहरु करेवि।

घत्ता। महिवइ सामतिहिँ समरि भिडतिहिँ कुरुवइ साहणु ओसरिउ।
दिढ पहर करालिउ समरस-जालिउ, रणगहि मिल्लिवि नीसरिउ ॥१५॥

दुवई। भग्गइ सामि सिन्नि पइसतए पसरिबि निययमडले।
निरु खलभलिय गाम-पुर-पट्टण, तहिँ कुरुभूमि-जगले ॥

—वही पृ० १०२-१०३

४ : ग्यारहवीँ सदी

§ २५. अज्ञात कवि

काल—१०१० (भोज-काल १००९-४२)।

१—तैलप-पराजित मुंजकी विपदा

(१) मुंजका पश्चात्ताप

इणि राजिइँ नहु काजु, भोज-गुणागर तूह विणु।
काठ दिवारउ आज, जिम जरईं भोजह मिलूँ ॥

[1] भटका फिरता है

काहुहि आलोडेँउ लवकर्ण । बचाइ परशु-कुलेहिँ भिन्न ।
काहुहिँ रणेँ तजेँउ एक बाव । विद्याधर-कर्णे दिन्न घाव ।
काहुहि ढुक्कत ललत जीभ । दोखडउ पातेँउ नारसीह ।
कतहूँ कउ आवी गजहँ पंक्ति । परिभमिय सुभट शीर्शँ दलनि ।
कतहूँ प्रहरातुर दुर्निवार । हिंडिय तुरग, पडिया सवार ।
कतहूँ सरोप व्रण-शोणितान्ध । मुरभिउ करि नरकेसरिहि स्कंध ।
ऐसेँइँ होवते रणेँ असक्केँ । मंत्रण हुई महिपाल-चक्र ।
"अहोँ ! आछै काइँ निरावसन्न । कुरुपतिहिँ ओसारेँउ लवकर्ण ।
निश्चय दुर्जय भूपाल राव । दीसै धनपति-सुन बहु-प्रसाद ।"
सो मंत्रिवचन हृदयहिँ धरेइ । उट्ठिय सकलउ समहर करेइ ।
घत्ता । महिपति सामन्तहिँ समर-भिडन्तहिँ, कुरुपति-साधन अपसरेँऊ ।
दृढ-प्रहरकरालउ, समर-सज्वालेँउ, रण-महि, मेल्लिय नीसरेंऊ ॥१५॥
द्विपदी । भागै स्वामि शीर्ण पइसनएँ पसरेँइ निजय-मडले ।
अति-खलबलिय ग्राम-पुर-ट्टपन, तहँ कुरुभूमि-जगले ॥
—वही पृ० १००-१०३

४ : ग्यारहवीँ सदी

§ २५. अज्ञात कवि

काल—१०१० (भोज-काल १००६-४२) ।

१—तैलप[1]-पराजित मुंजकी विपदा

(१) मुंजका पश्चात्ताप

एहि राजहिँ नहिँ काज, भोज गुणागर ताहि विनु ।
काठ दिवारउ आज, जिमि जाई भोजहँ मिलौँ ॥

---

[1] चालुक्यराज तैलप

सामिय ग्रतिहिँ ग्रजाणु, ज इण परिबोलइ हियइ ।
जाण्या एहु प्रमाणु, कीधउँ ज न कयत्थियइ ।।
—[1]प्रबध चिंतामणि, पृ० २२

(२) रुद्रादित्यकी तैलप पर न चढ़नेकी सलाह

देव ! ग्रम्हारी सीष, कीजइ ग्रवगणिग्रइ नहीँ ।
तूँ चालती भीष , इणि मन्त्रिहिँ हुस्यइ सही ।।
रुलियउँ रायह राजु, तइँ वइठइ मइँ लघियइ ।
ए पुणि वड्उँ ग्रकाजु, तूँ जाणे मालव-धणी ।।
सामी मुह तउ वीनवइ, ए छेहलउ जुहारु ।
ग्रम्ह ग्राइसु हिय सीँसि, तुह पडतउँ देषूँ छारु ।।
—प्र० चि० पृ० २२

(३) मुंजसे तैलपका भीख मँगवाना

झोली तुट्टवि कि न मुग्र, किँ हुउ न छारह् पुंजु ।
हिण्डइ दोरी दोग्यिउ, जिम मकडु तिम मुंज ।।
चित्ति विसाउ न चिंतियइ, रयणायर गुण-पुंजु ।
जिम जिग वायइ विहिण्डहु, तिम नाचिजइ मुंजु ।
सायरु षाईं लंकगढु, गढवइ दससिरु राउ ।
भग्ग पईं सो भंजि गउ, मुंज म करिसि विसाउ ।।
गय गय रह गय तुरयगय, पायक्कडानि भिच्च ।
सग्गट्ठिय करि मतणउँ, महुता रुद्दाइच्च ।।
—प्र० चि०, पृ० २३

---

[1] प्रबंध-चिंतामणि, विश्व-भारती, शांति-निकेतन (संवत् १९८९)

वाकडिया लिय भौंहडियहँ भर भुवन भ्रमाडइ ।
लारी लोचन लह कुंडलें[1] मुम्वर्गहँ पातै ॥
जनु शशिबिंब कपोल कर्ण हिंडोल फुरता ।
नासावंशा गरुड-चंचु, दाडिमफल दंता ॥
अधर प्रवालहँ रेख, कंठ राजल सर रुडऊँ[2] ।
जनु-वीणा रणरणै, जान कौंइलटहकलऊँ[3] ॥
सरल तरल भुजवल्लरीय, थन-पीन-तुंग ।
उदर-देशें लंका सोहै त्रिवली तरंग ॥
कोमल विमल नितंब बिंब जनु गंगापुलिना ।
करि-कर उरुयुग हरिन-जंघ पल्लव कर-चरणा ॥
मलपति[4] चालति बेलीइव हंसला हरावै ।
संध्याराग अकाल वाल नखकिरण करावै ॥
सहजैं सुंदर-राजमति, सुलखन सुकुमारा ।
घनउँ घनंरउ गहगहे, नवयौवन बाला ॥
भवलभोली[5] नेमि जिन वीवाह सुनेइ ।
नेह गहिल्ली गोरडी हियरेई विहसेइ ॥
श्रावण शुक्ला छट्ठ दिन, बीई सवउँ जिनेन्द्र ।
चल्लै राजल परिणयन, कामिनि नयनानंद ॥
—नेमिनाथफाग (पृ० ८३-८४)

२—शृंगार-सजाव

किमि किमि राजलदेवि केर शृंगार भनेवउ ।
चंपकगोरी अतीधौत अँग चँदन लेंपेवउ ॥
खोंप भरावेउ जाति-कुसुम कस्तूरी सारी ।
सीमंतें सिंदूर-रेख मोतीसर सारी ॥

[1] कटाक्ष [2] सुन्दर [3] टहकना [4] मस्त [5] भोली-भाली

नवरंगी कुंकुमि तिलय किय रयणतिलउ तसु भाले ।
मोती कुण्डल कन्नि थिय बिंबालिय कर जाले ।।
नरतिय कज्जलरेह नयणि मुँहकमलि तंबोलो ।
नागोदर कंठलउ कंठि अनुहार विरोल्नो ।।
मरगद [1]जादर कंचुयउ फुड फुल्लह माला ।
करे कंकण मणि-वलय चूड खलकावइ बाला ।।
रुणुझुणु रुणुझुणु रुणुझुणएँ कडि घाघरियाली ।
रिमझिमि रिमझिमि रिमझिमएँ पयनेउर जुयली ।।
नहि आलत्तउ वलवलउ सेअंसुय किमिसि ।
अंखडियाली रायमइ प्रिउ जोअइ मनरसि ।।
—वहीं (पृ० ८३-८४)

---

[1] 'चादर' शब्दका पूर्व रूप

नवरंग कुंकुम तिलक किय रतन तिलक तसु भाले ।
　　　　मोती कुंडल कर्ण ठिय बिंबालिय कर जाले ॥
नरतिय कज्जल-रेख नयनें मुखकमल तंबूलो ।
　　　　नागोदर कंठलउ कंठ अनुहार विरोलो ॥
मरगत--जादर[1] कंचुकहुउ फुर फूलहं माला ।
　　　　करहीं कंकण-मणिवलय चूड खडकावै वाला ॥
रुनझुन-रुनझुन-रुनझुनै कटि घाघरियाली ।
　　　　रिमझिम-रिमझिम-रिमझिमै पद नूपुर युगली ॥
नखें अलवतक बलवलउ श्वेतांशु-विमिश्रित ।
　　　　अखंडियाली राजमति प्रिय जोवै मन रसि[2] ॥
　　　　　　——वहीं (पृ० ८३-८४)

---

[1] दोनों जरीके कीमती वस्त्र　　[2] रस रखकर

हिन्दी काव्य-धारा

परिशिष्ट

– १ –

ग्रंथ, जिनसे सहायता ली गई

– २ –

कवियोका कालक्रम, उनकी रचनाएँ

– ३ –

देहाती और तद्भव शब्द

– ४ –

सम-सामयिक राजवंश

नागार्जुन

परिशिष्ट १

निम्नलिखित ग्रंथो, संग्रहो और साहित्य-पत्रों (Journals)से सामग्री एकत्र की गई—

१. पुरातत्त्व निबंधावली—राहुल सांकृत्यायन। इंडियन प्रेस (प्रयाग)से प्रकाशित।
२. सिद्धोंके दोहे—The Journal of Department of Letters, Calcutta University के Vol. XXVIII में।
३ चर्यापद—J. D. L., Cal. के Vol. XXX में।
४ स्वयंभू रामायण (हस्तलिखित)—भांडारकर इन्स्टीटयूट, पूनामें सुरक्षित।
५ गोरखबानी—हिंदी-साहित्य-सम्मेलन (प्रयाग)से प्रकाशित, १९९६ वि०सं०।
६. सावयधम्म दोहा।
७ महापुराण—पुष्पदंत, डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा माणिकचंद्र दिगम्बर-जैन-ग्रंथ-मालामें सम्पादित, तीन जिल्द (१९३७, १९४०, १९४१ ई०)।
८. जसहरचरिउ—पुष्पदंत, डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा करंजा-जैन-ग्रंथमाला (करंजा, बरार)में सम्पादित (१९३१ ई०)।
९ नायकुमारचरिउ—पुष्पदंत, प्रोफेसर हीरालाल जैन द्वारा देवेंद्र-जैन-ग्रंथमाला (करंजा, बरार)में सम्पादित। (१९३३)।
१०. परमात्मप्रकाश दोहा और योगसार दोहा—योगींदु, ए० एन्० उपाध्ये द्वारा श्रीरायचंद-जैन-शास्त्रमाला (बंबई)की १०वीं ग्रंथसंख्या (१९३० ई०)।
११. पाहुडदोहा—रामसिंह, करंजा-जैन-ग्रंथमालामें प्रकाशित।
१२ भविसयत्तकहा—धनपाल, गायकवाड ओरियंटल सिरीज, बडोदा द्वारा प्रकाशित (१९२३ ई०)।
१३ प्रबंधचिंतामणि—मेरुतुंगाचार्य; मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित और विश्वभारती, शांतिनिकेतनसे प्रकाशित।
१४. संदेशरासक—अब्दुर्रहमान; 'भारतीय विद्या'में मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित (मार्च १९४२ ई०)।
१५. प्राकृतपैंगल—चंद्रमोहन घोष द्वारा Bibliothica Indica में सम्पादित (१९०२ ई०)।

१६. करकडचरिउ—कनकामरमुनि; प्रोफेसर हीरालाल जैन द्वारा करजा-जैन-ग्रन्थमालामे सम्पादित (१६३४ ई०)।
१७ प्राचीनगुर्जरकाव्यसंग्रह—गायकवाड ओरियटल सिरीज, बडोदासे प्रकाशित (१६२७)।
१८. अपभ्रंशकाव्यत्रय—गायकवाड़ ओरियटल सिरीज, बडोदासे प्रकाशित (१६२७ ई०)।
१६ प्राकृतव्याकरण—हेमचद्र सूरि, डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा सम्पादित और मोतीलाल लाधाजी (पूना) द्वारा प्रकाशित (१६२८ ई०)।
२०. छदोऽनुशासन—हेमचद्र सूरि, देवकरण-मूलचंद (बबई) द्वारा प्रकाशित (१६१२ ई०)।
२१ नेमिनाथचरित—हरिभद्र सूरि; डाक्टर हर्मन् याकोबी द्वारा सम्पादित।
२२ उपदेशतरंगिणी—रत्नमदिरगणि; धर्माभ्युदय प्रेस, बनारससे प्रकाशित।
२३ कुमारपालप्रतिबोध—सोमप्रभ सूरि, गायकवाड ओरियटल सिरीज, बडोदासे प्रकाशित (१६२० ई०)।
२४. पृथ्वीराजरासो
२५ अनुव्रतरत्नप्रदीप—लक्खण, (अप्रकाशित) भारतीय विद्याभवन, बम्बईमे सुरक्षित।

परिशिष्ट २

कवि और उनकी कृतियाँ; उनके समसामयिक राजा आदि

आठवीं शताब्दी

कवि	कृतियाँ
सरहपा—७६० ई०	उपदेशगीति दोहाकोष
	तत्त्वोपदेशशिखर ,,
	भावनाफल दृष्टिचर्या ,,
	वसत तिलक दोहाकोष
	महामुद्रोपदेश ,,

कवि	कृतियाँ
	मरहपादगीतिका
शवरपा—८८० ई० धर्मपाल (७७०-८०६)	चित्तगुह्यगभीरार्थगीति
	महामुद्रावज्रगीति
	शून्यतादृष्टि
	षडगयोग
	सहजसवरस्वाधिष्ठान
	सहजोपदेश स्वाधिष्ठान
स्वयभूदेव—७९० ई० ध्रुव धारावर्ष (७८०-९४)	हरिवशपुराण
	रामायण (पउरचरिउ)
	स्वयभूछद
भूसुकपा—८०० ई० धर्मपाल-देवपाल (शातिदेव) (७८०-८०६-४९)	सहजगीति

नवीं शताब्दी

कवि	कृतियाँ
लुईपा—८३० ई० धर्मपाल-देवपाल	अभिसमय-विभग
	तत्त्वस्वभावदोहाकोष
	बुद्धोदयभगवदभिसमय-गीतिका
विरूपा—८३० ई० देवपाल (८०६-४९)	अमृतसिद्धि-दोहाकोष
	कर्मचडालिका-
	विरूप-गीतिका
	विरूप वज्र-गीतिका
	विरूपपदचतुरशीति
	मार्गफलान्विताववादक
	सुनिष्प्रपचतत्त्वोपदेश
डोम्बिपा—८४० ई० देवपाल	अक्षरद्विकोपदेश

कवि	कृतियाँ
	गीतिका
	नाडीविंदुद्वारे योगचर्या
दारिकपा---८४० ई० देवपाल	महागुह्यतत्त्वोपदेश
	तथतादृष्टि
	सप्तम सिद्धान्त
गुडरीपा---८४० ई० देवपाल	गीति
कुक्कुरीपा---८४० ई० देवपाल	योगभावनोपदेश
	स्रवपरिच्छेदन
कमरिपा---८४० ई० देवपाल	असम्बधदृष्टि
	असम्बधसर्गदृष्टि
	गीतिका
कण्हपा---८४० ई० देवपाल	गीतिक
	महाढुंढन
	वसततिलक
	असम्बधदृष्टि
	वज्रगीति
	दोहाकोष
गोरखनाथ---८४५ ई० देवपाल	गोरखवानी
	वायुतत्त्वोपदेश
टेंडणपा---८४५ ई० देवपाल-विग्रहपाल (८०६-४९-५४)	चतुर्योगभावना
महीपा---८७५ ई० विग्रहपाल-नारायणपाल (८५०-५४-९०८)	वायुतत्त्व
	दोहागीतिका
भादेपा---८७५ ई० विग्रहपाल-नारायणपाल	चर्यापद (गीति)
धामपा---८७५ ई० विग्रहपाल-नारायणपाल	कालिभावनामार्ग
	सुगतदृष्टिगीतिका
	हुंकारचित्तविंदुभावनाक्रम

दसवीं शताब्दी

कवि	कृतियाँ
देवसेन—९९३ ई०	सावयधम्मदोहा
तिलोपा—९६० ई० राज्यपाल-गोपाल द्वि० विग्रह-पाल द्वि० (९०८-४०-६०-८०)	निवृत्तिभावनाक्रम
	करुणाभावनाधिष्ठान
	दोहाकोष
	महामुद्रोपदेश
पुष्पदंत—९५९-७२ ई० राठौड़ कृष्ण-खोट्टिग तौ०-(९३९-६८-७२)	महापुराण
	(आदिपुराण
	उत्तरपुराण)
	यशोधरचरित
	नागकुमारचरित
शांतिपा—१००० ई० विग्रहपाल-महीपाल (९६०-८८-१०३८)	सुखदु:खद्वयपरित्यागदृष्टि
योगींदु—१००० ई०	परमात्मप्रकाशदोहा
	योगसारदोहा
रामसिंह—१००० ई०	पाहुडदोहा
धनपाल—१००० ई०	भविसयत्तकहा

ग्यारहवीं शताब्दी

कवि	कृतियाँ
अज्ञातकवि—१००० ई० भोज (१००९-४२)	फुटकर रचनाएँ
अब्दुर्रहमान—१०१० ई० ...	सनेहरासय (संदेशरासक)
बब्बर—१०५० ई० कर्ण कलचुरी (१०४०-७०)	फुटकर रचनाएँ
कनकामर—१०६० ई०	करकंडचरिउ
जिनदत्तसूरि (१०७५-११५४) ..	चाचरि
	उपदेशरसायन
	कालस्वरूपकुलक

बारहवीं शताब्दी

कवि	कृतियाँ
हेमचंद्र सूरि---११७९ ई० कर्ण, जयसिंह, कुमारपाल आदि सोलंकी राजाओंके समकालीन	प्राकृतव्याकरण छंदोऽनुशासन देशीनाममाला
हरिभद्र सूरि---११५९ ई० जयसिंह-कुमारपाल (१०९३-११४२-७३)	णेमिणाहचरिउ
अज्ञात कवि---बीसलदेव (११५३-६४)	फुटकर (उपदेशतरंगिणीसे)
आम भट्ट---जयसिंह-कुमारपाल	,, ,,
विद्याधर---११८० ई० जयचंद (११७०-९४)	स्फुट कविताएँ
शालिभद्र सूरि---११८४ ई०	बाहुबलिरास
सोमप्रभ---११९५ ई०	कुमारपालप्रतिबोध
जिनपद्म सूरि---१२०० ई०	थूलिभद्द फाग
विनयचंद्र सूरि---१२०० ई०	नेमिनाथ चतुष्पादिका
चंदबरदाई---१२०० ई०	पृथिवीराज रासो

तेरहवीं शताब्दी

कवि	कृतियाँ
लक्खण---१२५७ ई०	अणुव्रयरयण पईव (अनुव्रतरत्नप्रदीप)
जज्जल---१२९० ई० हम्मीर (१२९२-९९)	फुटकर (प्राकृतपैंगलसे)
कुछ और अज्ञात कवि ..तेरहवीं सदीका पूर्वार्ध .	फुटकर रचनाएँ
हरिब्रह्म तेरहवीं सदीका उत्तरार्ध... मिथिला-नेपालके राजा हरिसिंहके मंत्री चंडेश्वरके आश्रित	फुटकर कविताएँ
अंबदेव सूरि---१३१४ ई०	समररास
अज्ञात कवि---१३०० ई०	शालिभद्रकक्का (बारहखडी)
,,	फुटकर(उपदेशामृततरंगिणीसे)
राजशेखर सूरि---१३१८(?) ई०	नेमिनाथ फाग

परिशिष्ट ३

कुछ खास देहाती और तद्भव शब्द

संकेत—प०-पजाबी; सि०-सिधी; ब०-बंगला; भो०-भोजपुरी; मै०-मैथिली, म०-मगही; मरा०-मराठी; हि०-हिंदी; गु०-गुजराती, राज०-राजस्थानी; स०-सस्कृत; ग्रस०-ग्रासमिया; उडि०-उडिया।